मुक्तावती

लेखक

बलभद्र ठाकुर

प्रकाशक

इलाहाबाद • जालंधर

[मूल्य

प्रकाशक

इन्द्रचन्द्र नारंग

हिन्दी-भवन

२१२ रानी मंडी,

इलाहाबाद

मुद्रक

इन्द्रचन्द्र नारंग

कमल मुद्रणालय

२१२, रानी मं

इलाहाबा

अपनी स्वर्गीया
मणिपुरी धर्म-माता
की
पवित्र स्मृति
को
सादर, सस्नेह,
जिनके कारण
मणिपुर मेरी मातृ-भूमि
बन चुका है !
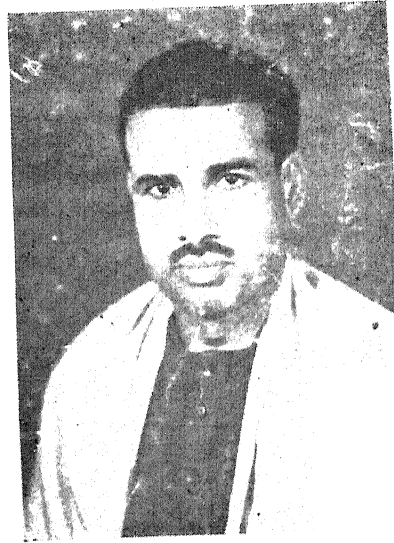
परिचय

गुप्त युग में हमारे मानसिक क्षितिज का अधिकतम विस्तार हुआ। हमने सर्वतोमुखी उन्नति की। उस समय के सभ्य जगत् के चीनी, ईरानी, भारतीय और रोमी, इन चार स्वाधीन राष्ट्रों में विस्तार, तत्त्वज्ञान, कला और कृष्टि (संस्कृति) सभी दृष्टियो से भारत सबका अगुआ था। पूर्व में सुमात्रा, जावा, फिलीपीन, तैवान (फारमोसा) के दक्खिनी अंश, तथा दक्षिण-पश्चिम मे मदगास्कर और उत्तर की ओर हिन्दकोह तक उसका विस्तार था। उसकी कृष्टि और बौद्ध धर्म, चीन कोरिया और जापान तक पहुँच गये थे। ज्ञान-विज्ञान कला और साहित्य मे भी उस युग मे चरम उन्नति हुई। महरौली की लोहे की कीली, जिस पर आज तक हवा-पानी का कोई असर नही हुआ, उसी युग में बनी। उसी युग में (४६६ ई० मे) आर्यभट ने 'लघु आर्यभटीय सिद्धान्त' लिखा, जिसमें "सूर्य और तारों के स्थिर होने पृथ्वी के गोल होने तथा अपने अक्ष पर और सूर्य के चारों ओर घूमने और चन्द्रमा के भी घूमने का प्रतिपादन है, सूर्य और पृथ्वी और चन्द्रमा के आपेक्षिक परिमाण और दूरियाँ दी हैं, गुरुताकर्षण की विवेचना है, ग्रहणों के कारणों की वैज्ञानिक व्याख्या तथा ज्यौतिष के अन्य अनेक नियम हैं।"[1] यह और बात है कि हमारी युनिवर्सिटियों के कूप-मण्डूक अध्यापक बच्चों को यही पढ़ाये जायें कि गुरुताकर्षण की विवेचना पहले-पहल न्यूटन ने १७वीं शताब्दी में की।

---

१. जयचन्द्र विद्यालंकार—भारतीय कृष्टि का क ख, पृष्ठ २०२

वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला में भी गुप्त-काल में चरम उन्नति हुई, और साहित्य मे भी। विष्णु शर्मा का 'पंचतत्र' और विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' इसी युग की कृतियाँ हैं। "भारतीय कवियों का शिरोमणि कालिदास भी गुप्त युग का है। कालिदास के काव्यों नाटकों में भारत का आत्मा जिस तरह प्रकट हुआ है वैसा आज तक और किसी रचना में शायद नहीं हुआ। रघु के दिग्विजय की कहानी द्वारा उसने बतलाया कि कम्बोज से कन्याकुमारी तक और वक्षु से लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक सारा भारत एक है।"[1] रघु-दिग्विजय में कालिदास ने अयोध्या से पूर्व समुद्र जा कर सारे भारत की परिक्रमा की है। रघु जहाँ-जहाँ पहुँचता है, उस प्रदेश के विशिष्ट वृक्षों से उसके हाथी-घोड़े बाँधे जाते हैं, उस प्रदेश के विशिष्ट फल आदि उसके सैनिक खाते हैं, और उस प्रदेश का राजा वहाँ के स्थानीय विशिष्ट पदार्थ उसे भेंट मे देता है। रघु-दिग्विजय पढ़ते हुए पाठक अनुभव करता है कि कवि ने वह वर्णन लिखने से पहले स्वय भारत की पूरी परिक्रमा कर के उन देशों को देखा और परखा होगा। उसकी उत्प्रेक्षा प्रेक्षा पर आधारित थी, हवाई कल्पना न थी। यही कारण है जो कालिदास को आज भी 'कनिष्ठिकाधिष्ठित' किये हुए है। और उस दिग्विजय के भू-अंकन को टटोलते हुए जयचन्द्र विद्यालंकार ने कंबोज की शनाख्त आधुनिक पामीर से की[2]।

परन्तु हमारे मानसिक क्षितिज के विस्तार में धीरे-धीरे संकोच आने लगा। हम कूप-मडूक बनने लगे। शकराचार्य का समकालिक

---

१. जयचन्द्र विद्यालंकार—भारतीय इतिहास का उन्मीलन, पृष्ठ २४५।

२. जयचन्द्र विद्यालंकार—रघुज़ लाइन ऑफ़ कौनक्वेस्ट अलौंग इडियाज नौर्दर्न बौर्डर (भारत की उत्तरी सीमा पर रघु की विजय-रेखा)।

कश्मीरी दार्शनिक जयन्त भट्ट लिखता है—

कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः ।
वचोविन्यासवैचित्र्यमात्रमत्र विचार्यताम् ॥

जब 'प्रेक्षा' ही न रही तो 'उत्प्रेक्षा' कहाँ से हो ! राजशेखर तक यह संकोच धीरे-धीरे अपना प्रभाव दिखाता रहा । उसके बाद तो हम पूरे 'कूपमंडूक' बन गये । संस्कृत कवियों की उक्तियाँ—

निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ।

और

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम् ।—

इसी कूपमंडूकता के उदाहरण हैं । कालिदास के उसी रघु-दिग्विजय के श्लोक—

पारसीकांस्ततो जेतुं प्रतस्थे स्थलवर्त्मना ।
इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी ॥—

की मल्लिनाथ ने यों टीका की—

"ततः स रघुः । संयमी योगी तत्त्वज्ञानेनेन्द्रियाख्यानिन्द्रियनामकान् रिपूनिव । पारसीकान् राज्ञो जेतुं स्थलवर्त्मना प्रतस्थे । न तु निर्दिष्टेनापि जलपथेन । समुद्रयानस्य निषिद्धत्वादिति भावः ।" कालिदास भारत की सीमा-रेखा पर रघु को चला रहा था, ईरान-विजय उसका उद्देश न था, इस बात को न समझ कर मल्लिनाथ ने 'समुद्रयात्रा-निषेध' की कल्पना की, यह भूल कर कि जिस समय कालिदास रघु-दिग्विजय लिख रहा था, उस समय भारतीय जावा, सुमात्रा, फिलीपीन, तैवान, कोरिया और जापान जा रहे थे । चीन भी जलमार्ग से जाते थे । कालिदास के काल में समुद्र-यात्रा निषिद्ध न थी । आगे एक और श्लोक—

विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः ।
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाँल्लग्नकुङ्कुमकेसरान् ॥—

की टीका के आरंभ में ही वह लिखता है—"सिन्धुर्नाम काश्मीरदेशेषु कश्चिन्नदविशेषः।"

यह ठीक है कि कश्मीर में सिन्धु नाम की एक छोटी-सी नदी है जो वितस्ता में मिलती है। परन्तु रघु कश्मीर में न गया था। 'कश्चिन्नदविशेषः' में 'कश्चिद्' शब्द स्पष्ट कह रहा है कि मल्लिनाथ सिन्धुनद को जानता न था। मल्लिनाथ की कूपमण्डूकता के ये दो उदाहरण पर्याप्त हैं। और साहित्यदर्पणकार ने तो कूपमण्डूकता को परा काष्ठा तक पहुँचा दिया। उसने फतवा दे दिया कि किसी स्थल-विशेष का वर्णन करते समय अमुक-अमुक बातों का उल्लेख कर देना चाहिए। (उस स्थान को देखने की आवश्यकता नहीं।) यथा—मानसरोवर के वर्णन में कमलों और राजहंसों का वर्णन होना चाहिए, यह जानने की क्या आवश्यकता कि मानसरोवर में कमल और राजहंस होते हैं या नहीं!

हिन्दी साहित्य का तो आरंभ ही कूपमण्डूकता के युग में हुआ। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास ने तो डंके की चोट कहा—

नानापुराणनिगमागमसम्मत यद्
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।

अर्थात् संस्कृत ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है उसका भाषा-अनुवाद मैं करूँगा, मौलिक कुछ न लिखूँगा। परन्तु इस प्रतिज्ञा के बावजूद कालिदास से उन्होंने विश्वासघात किया। कालिदास के स्मर-दहन प्रसंग में 'काम' नमेरु-शाखाओं में छिप कर बैठा था और शिवजी देवदारु-द्रुम-वेदिका पर बैठे थे—

दृष्टिप्रपातं परिहृत्य तस्य कामः पुरःशुक्रमिव प्रयाणे।
प्रान्तेषु संसक्तनमेरुशाखं ध्यानास्पदं भूतपतेर्विवेश॥

स देवदारुद्रुमवेदिकायां शार्दूलचर्मव्यवधानवत्याम् ।
आसीनमासन्नशरीरपातस्त्रिलोचनं संयमिनं ददर्श ॥

तुलसीदास के इसी प्रसग मे 'काम' नमेरु या देवदारु वृक्ष पर नही बैठता; वह बैठता है आम की डाल पर—

देखि रसाल बिटप बर साखा, तेहु पर चढेउ मदन मन माखा ।

और शिवजी ने राम-कथा कैसे सुनी ?—

मैं जिमि कथा सुनी भवमोचनि, सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ।
प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा, सती नाम तब रहा तुम्हारा ।
दच्छ जग्य तव भा अपमाना, तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना ।
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा, जानहुँ तुम्ह सो सकल प्रसगा ।
तब अति सोच भयउ मन मोरें, दुखी भयउँ बियोग प्रिय तोरें ।
सुदर बन गिरि सरित तड़ागा, कौतुक देखत फिरउँ बेरागा ।
गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी, नील सैल एक सुन्दर भूरी ।
तासु कनकमय सिखर सुहाए, चारि चारु मोरे मन भाए ।
तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला, बट पीपर पाकरी रसाला ।
सैलोपरि सर सुदर सोहा, मनि सोपान देखि मन मोहा ।

सीतल अमल मधुर जल जलज बिपुल बहुरग ।
कूजत कलरव हस गन गुंजत मंजुल भृंग ।

तेहि गिरि रुचिर बसइ खग सोई, जासु नास कल्पान्त न होई ।
माया कृत गुन दोष अनेका, मोह मनोज आदि अबिबेका ।
रहे ब्यापि समस्त जग माहीं, तेहि गिरि निकट कबहुँ नहिं जाहीं ।
तहँ बसि हरिहि भजइ जिमि कागा, सो सुनु उमा सहित अनुरागा ।
पीपर तरु तर ध्यान सो धरई, जाप जग्य पाकरि तर करई ।
आँब छाँह कर मानस पूजा, तजि हरि भजनु काजु नहि दूजा ।
बर तर कह हरि कथा प्रसगा, आवहिं सुनहिं अनेक बिहगा ।
राम चरित बिचित्र बिधि नाना, प्रेम सहित कर सादर गाना ।

सुनहिं सकल मति बिमल मराला, बसहिं निरन्तर जे तेहि ताला।
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा, उर उपजा आनन्द बिसेखा।
तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास।

इस वर्णन को पढ़ कर कौन विवेकशील पाठक यह विश्वास करेगा कि तुलसीदास ने कभी हिमालय पर्वत देखा था? तुलसीदास ने काशी में बैठ कर हिमालय की यह हास्यास्पद कल्पना की थी। परन्तु उससे भी बढ़ कर हास्यास्पद है बीसवीं शताब्दी के 'वैज्ञानिक आलोचना' का दम भरने वाले कूपमंडूक आलोचकों का एकमत हो कर यह लिखना कि तुलसीदास ने चारो धामों की यात्रा की थी!

विदेशियों की ठोकरें खा-खा कर १८५७ में हमारी नींद खुली। उसके बाद भारतेंदु ने स्पष्ट शब्दों में कहा—

'हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई!' ऋषि बंकिमचन्द्र और स्वामी दयानन्द ने जागृति का शंख फूँका। आचार्य जगदीश चन्द्र वसु, बापूदेव शास्त्री और गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने विज्ञान, गणित और इतिहास में नई नई खोजें कीं, क्रान्तिकारी युवकों ने दुनिया छान डाली, सैकड़ों फाँसी के तख्तों पर झूले, विदेशी शासकों से लड़ते हुए शहीद हुए, परन्तु हमारे साहित्यिक खर्राटे भरते रहे, उनके कान पर जूँ न रेंगी! न तो उन्हें पराधीनता की बेड़ियाँ महसूस हुईं, न उन्होंने अपनी नाक के आगे देखा। वे आँसू बहाते रहे या बाला के बाल-जाल में लोचन उलझाते रहे या नश्वर स्वर में अनश्वर गीत गाते रहे। केवल एक अज्ञातनामा कवि ने लिखा—

एकान्त है निस्तब्ध नीरव शान्ति का संचार है,
प्रासाद है उद्यान है यह स्वर्ग का क्या द्वार है?
देखो, शिला पर सामने दिल का लिखा उद्गार है,
श्वेतांग प्रभुओं के शवों का शान्त शयनागार है!

केश बिखराये तपस्वी वह नमेरू कह रहा,
अक्षुब्ध निद्रा में तले है वीर कोई सो रहा।
सोने दो उसको शान्ति से ओ डैम काला आदमी,
काले न मुर्दों मे भी सोयें रंग की ज़ब तक कमी।[1]

ख्यातिप्राप्त कवियों मे केवल माखनलाल चतुर्वेदी ने महसूस किया—

उत्तर दक्षिण पूरब पश्चिम जहाँ गये भारती सिपाही,
भारत माँ की विमल मूर्ति पर आये पोत अनन्त सियाही।

अन्य कूपमण्डूकों ने वीर सतसइयाँ लिखीं तो कतिपय स्वनाम-धन्य साहित्यकार अंगरेज कूटनीतिज्ञ टाड के कूटनीति-काव्य में आश्रय खोजते रहे! खुदीराम वसु और कानाईलाल दत्त का बलिदान, जतीन बाघा का रणकौशल, रासबिहारी वसु की वीरता, जिसपर जापानी भी मुग्ध हो गये, और जतीन दास का आमरण अनशन उन्हें प्रेरणा न दे सके!

हिमालय हमारे देश के उत्तर मे पच्छिम से पूरब लगातार चला गया है। पूरब, दक्खिन और पच्छिम की बाकी आधी चौहद्दी समुद्र ने पूरी की है। समुद्र-यात्रा तो निषिद्ध हो ही चुकी थी, हिमालय से भी हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध टूट गया था। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी के पुनरुत्थान का हमारे साहित्यिकों पर जरा भी प्रभाव न पड़ा! प्रसाद ने 'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर' मनु की नौका 'महावट से बँधी' पाई! 'कामायनी' के अन्तिम सर्ग का कैलास-मानसरोवर का वर्णन हास्यास्पद है, और उतना ही हास्यास्पद है प्रथम सर्ग का समुद्र-वर्णन! जायसी ने भी जायस में बैठ कर सात समुद्रों का वर्णन किया था! और हमारे आलोचकों ने 'कामायनी' को विश्व का और युग-युग का

---

१. बुद्धदेव विद्यालंकार के उद्गार, कलकत्ता के अँगरेजी कब्रिस्तान को देख कर।

महाकाव्य कहा ! 'अहो रूपमहो ध्वनिः !'

ऐसी स्थिति में एक साधन-विहीन अदम्य साहसी युवक बलभद्र ठाकुर 'सायर सिंह सपूत' की भाँति घिसी-पिटी लकीर को छोड़ कर चला। उसने अपनी पीठ पर कबल लाद कर हिमालय को रौंद दिया ! वर्षों इसी साधना में बिता दिये ! आँखें खोल कर कुल्लू देखा, गढ़वाल देखा, कैलास-मानसरोवर देखा, नेपाल देखा और देखे मणिपुर और दार्जिलिङ् ! हिमालय के और भी कतिपय क्षेत्र ! देखे ही नहीं, उन्हें परखा भी ! वहाँ की भूमि का, वहाँ की वनस्पति का, वहाँ के निवासियों का, वहाँ के समाज का, सामाजिक रीति-रिवाजों का और शासन-प्रणाली का आँखें खोल कर गहन अध्ययन किया। और उस गहन अध्ययन का परिणाम है उनके हिमालय के जीवन पर लिखे आधे दर्जन से भी अधिक उपन्यास ! इतने ही से सन्तुष्ट न हो कर उन्होंने समुद्र-यात्रा भी की और उसका परिणाम आजकल उपन्यास के रूप मे लिपिबद्ध कर रहे हैं !

हिमालय-कथामाला मे 'मुक्तावती' उनका पहला उपन्यास है। इसका विषय है मणिपुर का जीवन और जन-संघर्ष। लेखक का प्रकृति-वर्णन बड़ा सजीव है। वारुणी-यात्रा और लोकताक-सरोवर के वर्णन लेखक के प्रेक्षण की गहनता के नमूने हैं। उनके वर्णनों में प्रकृति को आलम्बन रूप में चित्रित नहीं किया गया। वह सौन्दर्य के सच्चे पारखी की बड़ी सबल भाषा में आत्माभिव्यक्ति है ! अपने कतिपय पात्रों को यद्यपि लेखक ने आदर्श पात्र कहा है पर मुझे वे प्रतीकात्मक ही लगे। स्वतन्त्रता-संग्राम में ऐसे उच्चचरित्र व्यक्तियों से मुझे स्वयं वास्ता पड़ चुका है। और उपन्यासकार की सफलता की सबसे बड़ी कसौटी यही है कि उसकी कल्पना से प्रसूत पात्र हमें प्रतीकात्मक प्रतीत हों। उनके नारी-पात्र हमारे साहित्य के अनोखे पात्र हैं। और कोई साहित्य-स्रष्टा हमें ऐसे सबल नारी-पात्र नहीं दे सका ! 'मुक्तावती' की मुक्ता और तोम्बी के

मुकाबले मे यदि कोई नारी खड़ी हो सकती है तो 'नेपाल की वो बेटी' की हेमा। बलभद्र ठाकुर की 'हेमा' हिन्दी साहित्य का बेजोड़ नारी-पात्र है, यद्यपि वह एक अपढ़ नेपाली किसान की अपढ़ बेटी है ! 'मुक्तावती' का कथानक बड़ा सबल और खूब गठा हुआ है। भाषा अत्यन्त प्रौढ़ है। कही-कहीं लेखक पर जबरदस्ती कर भाषा मे छोटे-मोटे परिवर्तन मैंने किये हैं; जैसे लेखक के संस्कृत-व्याकरण-सम्मत सबोधन 'जगदंब !' को मैने 'जगदंबा !' बना दिया है। ऐसी त्रुटियों के लिए पाठक मुझे उत्तरदायी ठहरायें, लेखक को नहीं ! बलभद्र ठाकुर के सभी उपन्यासो का प्रेम-वर्णन बड़ा स्वस्थ और सबल है। और सर्वत्र उन्होंने महाभारत के 'सकामस्य सकामायाः' सिद्धान्त का परिपालन किया है। 'सकाम मनु' का 'अकामा इड़ा' पर बलात्कार बलभद्र ठाकुर के साहित्य मे कही न मिलेगा। उनकी उत्प्रेक्षाएँ प्रेक्षा पर निर्भर होने के कारण बड़े सजीव चित्र उपस्थित करती हैं ! और उपन्यास का सबसे बड़ा गुण रोचकता तो उसमे भरी ही हुई है ! नवीनता तो है ही ! इस 'मुक्तावती' उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है विचारों और आदर्शों का समन्वय। गाँधीवाद और मार्क्सवाद का, अर्थात् गाँधीवादी और मार्क्सवादी पात्रों के सिद्धान्तगत द्वन्द्व के भीतर से उनके पारस्परिक प्रेमपूर्ण जीवन का बड़ा सुन्दर समन्वय बलभद्र ठाकुर ने प्रतिष्ठित किया है। सह-अस्तित्व का यही आदर्श हमारे राष्ट्रीय एव अन्तर-राष्ट्रीय जीवन मे अपेक्षित है !

लेखक का परिचय इतना ही है कि वे मैथिल ठाकुर हैं। 'ठाकुर' जातिवाची नहीं, वश-परम्परागत आदरवाची शब्द है। एक मैथिल ठाकुर विद्यापति से हिन्दी के पाठक परिचित ही हैं; दूसरे मैथिल ठाकुर हिन्दी साहित्य में हैं बलभद्र। सस्कृत साहित्य के तो वे प्रकांड पडित हैं ही, इसके अतिरिक्त अँगरेजी और रूसी साहित्य का अध्ययन भी उन्होंने किया है। भारत की कतिपय प्रान्तीय भाषाओं के अतिरिक्त

नेपाली आदि भाषाएँ भी सीखी हैं। मैथिल ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हो कर भी वे निर्जातिक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श में विश्वास करते हैं। वैसे वे मार्क्सवादी हैं, पर कठमुल्ला मार्क्सवादी नहीं; परम उदार मार्क्सवादी ! कविकुलशिरोमणि कालिदास के पद-चिह्नों पर चलते हुए उन्होंने पर्यटन-जन्य ज्ञान के आधार पर साहित्य-सृजन किया है। आशा है हमारे साहित्य-स्रष्टाओं की नई पीढ़ी उनसे प्रेरणा प्राप्त करेगी।

शरत् पूर्णिमा
२०१५ विक्रमी

—इंद्रचंद्र नारंग

पाठकों से

किसी समाज के परिचायक साहित्यिक साधनों मे 'उपन्यास' सबसे सरल, सरस और सबल साधन माना जाता है। किन्तु उसकी सरलता, सरसता और सबलता निर्भर करती है उपन्यास एवं उपन्यासकार के निजी सामर्थ्य पर ! निजी ईमानदारी पर ! मै अथवा मेरा यह उपन्यास इस दिशा मे कहाँ तक सफल हो सका है इसका निर्णय मेरे अधीन नही है। क्योंकि "भिन्नरुचिर्हि लोकः !" पाठको की रुचि-भिन्नता की ही भाँति उपन्यास के पात्रों के व्यक्तित्व एव रुचियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। हाँ, मणिपुर मे अपने कुछ मास के निवास मे 'मणिपुरी समाज' के सम्बन्ध मे अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार मै जितना कुछ पढ़ और परख सका उस सबको कथा-सूत्र मे पिरो कर 'राष्ट्र-भारती' के भडार में पेश कर रहा हूँ, पूरे विश्वास के साथ ! पूरी ईमानदारी के साथ !

कथानक का काल ई० सन् १९२५-२६ से सन् १९३५-३६ तक है। उपन्यास मे वर्णित सघर्ष यद्यपि ऐतिहासिक है, पर वह है औपन्यासिक रंग मे रँगा हुआ। और पात्र काल्पनिक हैं अथवा प्रतीकात्मक। उपन्यास में चित्रित रोज-मर्रे का तत्कालीन मणिपुरी जीवन आज भी बहुत कुछ वैसा ही है, और वे कतिपय स्थानिक समस्याएँ भी जिनका चित्रण उपन्यास मे किया गया है।

मैंने मणिपुरी समाज मे यथार्थ की अतिशय सुन्दरता को भी लक्ष्य किया था, और उसकी कुरूपता को भी। उसी आधार पर उपन्यास के पात्रों की सृष्टि की गई है। अपने उच्चादर्शी पात्रों के प्रति मेरे मन में

भी वही ममता और निष्ठा है जैसी कि वाल्मीकि के मन में अपने राम, लक्ष्मण, भरत एवं सीता के प्रति। निरुद्देश्य जीवन को पसन्द करनेवाले करें निरुद्देश्य कला को पसन्द, पर मैं तो सोद्देश्य जीवन को पसन्द करता हूँ, और सोद्देश्य कला को भी!

यथार्थ की पृष्ठभूमि पर मणिपुर में 'गाँधीवाद' एवं 'मार्क्सवाद' के जन्म और द्वन्द्व, एवं बाद में पारस्परिक प्रेम, आदर और विश्वास के आधार पर उभय पक्ष में पारिवारिक सह-अस्तित्व और समन्वय की ओर बढ़ने की कहानी भी सोद्देश्य कही गई है। और यथार्थ की ही पृष्ठभूमि पर प्रान्तवाद और जातिवाद के घृणित द्वन्द्व और उसके समाधान की कहानी भी।'

उपन्यास के कई प्रमुख पात्र कुछ भावुक होने के कारण कई यथार्थवादी पाठकों को अपने साथ शायद न ले सकें, लेकिन मेरा दृढ़ विश्वास है कि अधिकांश पाठकों के दिलों को वे जीतेंगे अवश्य! उच्चादर्श-निष्ठ भावुकता मानव-समाज की प्रगति की बहुत बड़ी प्रेरक पूँजी रहती आई है! "वन्दे मातरम्..." एवं "जन-गण-मन-अधिनायक..." हमारे इन राष्ट्रगीतों का कौन-सा स्वर-व्यंजन अतिशय भावुकता से रिक्त है? स्वयं राष्ट्रवादी भावना ही इस भावुकता पर आधारित है, और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का विशाल व्यापक आदर्श भी!

मणिपुरी महिलाएँ भारत के कतिपय अन्य प्रान्तों की महिलाओं से कर्मठता और स्वावलंबन के क्षेत्र में बहुत आगे हैं, और शताब्दियों पहले से कतिपय सामाजिक स्वतन्त्रताओं के क्षेत्र में भी। लेकिन दाम्पत्य-जीवन में बहुत कुछ स्वातन्त्र्य के बावजूद उस समाज का इस क्षेत्र में आदर्श है, 'सतीत्व'—'एक-निष्ठता'! तभी तो लगभग चार सौ वर्ष पूर्व की 'महासती थोइबी' उस समाज की आदर्श नारी के रूप में आज तक पूज्य बनी हुई है! 'मुक्तावती' में सीता, सावित्री और थोइबी के सतीत्व का तेज भी है, और उसके अतिरिक्त दुखी जनता के लिए

व्यापक दर्द की शौर्य-साहसभरी आग भी! सीता-सावित्रियाँ अतीत समाज की यथार्थ हो अथवा कवियों-कलाकारो की कल्पना की सन्तान, पर समाज के मन पर वे अधिकार जमा सकी यथार्थ के रूप मे ही! मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारी 'मुक्तावती' निरी हवाई कल्पना की सन्तान नहीं है! वह धरती की वीर बेटी है, और दाम्पत्य-निष्ठा के क्षेत्र मे न थोइबी से न्यून है, न सीता से, न सावित्री से!

—बलभद्र ठाकुर

चन्द्रावत सिंह ने कलकत्ता-विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा में प्रथम आ कर मणिपुर की शान और मान को ऊँचा कर दिया और मणिपुर स्टेट-दरबार ने उसे मजिस्ट्रेट के शानदार पद पर नियुक्त कर मानो बदला चुका दिया। गरीब दुखिया माँ की लालसा पूरी हुई। अपनी एक मात्र सन्तान के सौभाग्य की वेदी पर उनके जीवन भर का बलिदान मानो सफलता की नई हरी पौंद में एकाएक लहलहा उठा। और मणिपुर के दूसरे लोग इसलिए भी खुश हुए कि राज्य के बड़े-बड़े पद अब राजकुमारों के लिए ही सुरक्षित नहीं रह गये। एक निर्धन 'मइतेइ'[1] बालक ने अपनी प्रतिभा और अध्यवसाय के बल पर मानो बलात् उस सुरक्षा की दीवार में दरार डाल दी।

वसन्त की मीठी सजीव अँगड़ाई नये रक्तों में उल्लास ला चुकी थी। हर बस्ती और मुहल्ले के बालक चौराहों पर 'याउक छड' बनाने में मशगूल हो चुके थे। 'याउक' माने भेड़ और 'छड' माने झोंपड़ी, अर्थात् 'भेड़ की झोंपड़ी' इस शब्दार्थ से उन्हें कोई लगाव न था, कोई जानकारी न थी, किन्तु बाँस के छोटे-छोटे खम्भों और बातियों के सहारे मन्दिरनुमा एक छोटी-सी फूस की झोंपड़ी तैयार करने में उनके मन का लगाव कम प्रबल न था। झोंपड़ी के सिरे पर झीने पीले कपड़े के छोटे-छोटे झंडे गाड़ने में उन्हें कम आनन्द न आ रहा था। वे पीले-पीले झीने झंडे झोंपड़ी के सिरे पर हवा में यों लहरा रहे थे जैसे पर्वत के शिखर पर 'ब्रह्म-कमल' के असख्य पीले फूल!

---

१. गैर-राजवंशी मणिपुरी क्षत्रियों को 'मइतेइ' कहते हैं।

पूर्णिमा की सन्ध्या मानो पूर्ण चन्द्र की उभरती आभा में मुसका उठी। जैसे होलिका राक्षसी के निश्चित निधन पर अपनी खुशी वह दबा न सकी। मुहल्ले के आबालवृद्ध नर-नारी बड़े उत्साह और उल्लास में 'याउक छुड' के द्वार पर एकत्र हुए। मुहल्ले के मन्दिर से ठाकुर-जी की मूर्ति जुलूस के साथ वहाँ लाई गई। ब्राह्मण पुरोहित ने झोंपड़ी के द्वार पर खूब विधि विधान से मूर्ति की पूजा की। फिर सभी नर-नारी झाल मृदंग ढोल आदि बाजे बजाते, कीर्तन के सुमधुर पद गाते, झोंपड़ी की तीन बार परिक्रमा कर ठाकुरजी की मूर्ति को पुनः जुलूस के साथ मन्दिर की ओर वापस ले चले। और ठीक उसी समय एक बालक ने सूखी घास के एक मुट्ठे में आग लगा उसे झोंपड़ी पर यों फेंक दिया। जैसे किसी घृणित पड़ोसी के घर को जलाने के लिए किसी नट-खट लड़के ने शरारत कर दी हो। और लहमे भर में आग की लपटों में चाँदनी यों थिरक उठी जैसे उस जलते घर को देख उसकी नसों में खुशी की लहरियाँ कौंद उठी हों। कुछ मिनटों में ही झोंपड़ी जल कर राख बन गई। उपस्थित लोगों ने बड़ी श्रद्धा से राख कपाल से लगा-लगा अपने घरों को प्रस्थान किया। जैसे वे अपने किसी पूज्य व्यक्ति के शव-सस्कार की समाप्ति पर घर वापस जा रहे हों!

उमग की एक नई लहर से पुनः इम्फाल का सारा नगर सजीव हो उठा। जैसे वर्ष भर का सामाजिक दुख-दर्द 'याउक छुड' की चिता में जल कर, उसकी समाधि पर अचानक नव वर्ष के उल्लासभरे नशीले फूल सारे नगर में खिल उठे हों! हर टोला और मुहल्ला बाजे-गाजे की आवाज में मुखरित हो उठा। वृत्ताकार बन कर नाचती हुई युवा-युवतियों की जुड़ी हुई टोलियाँ यों प्रतीत हो रही थीं जैसे यौवन के जादू से परिचालित यौवन-उपवन के विभिन्न पुष्प मालाओं में गुँथ कर नाच रहे हों! और दर्शकों का मन इस उल्लास में यों थिरक रहा था जैसे समुद्र-तट पर बैठे दर्शकों का हृदय लहरों को देख-देख कर!

चन्द्रावत का निमन्त्रण पा कर उसका सहपाठी मित्र शैलेन्द्र कलकत्ते से इम्फाल पहुँचा था। अपने मित्र के मुँह से अनेक बार मणिपुरी होली का उच्छ्वसित आख्यान सुन चुके होने के कारण बडे कौतूहल से वह होली देखने आया था।

होलिका-दहन देख कर दोनो मित्र वापस आ चुके थे। मणिपुर के सामान्य घरो से चन्द्रावत के घर का काट बिलकुल भिन्न था। उसने अभी-अभी नये ढग से उसे बनाया था। दो कमरो के बीच दोनों को जोड़ता हुआ एक चौड़ा गलियारा था जो स्वय एक छोटा कमरा-सा बन चुका था। और गलियारे के दरवाजे के बाहर एक छोटा-सा दालान था। रसोई-घर बिलकुल अलग था। एक कमरे मे स्वयं चन्द्रावत और दूसरे मे माँ का वास था। अपने-अपने पलग पर आमने-सामने बैठे दोनो मित्र बातो मे मशगूल हो पडे थे।

सिगरेट का एक गहरा कश खीच कर मुँह से धुआँ उड़ा कर शैलेन्द्र ने गंभीर स्वर मे कहा—"किसी विद्वान ने यह गलत नहीं बताया कि किसी समाज को समझने के लिए आरंभ के दस दिन ही पर्याप्त हैं अथवा पूरे दस वर्ष। तो दस दिन मे से पाँच दिन मेरे बीत ही चुके। अर्थात् तुम्हारे समाज के सम्बन्ध में कुछ कहने का आधा हकदार मै अब बन चुका हूँ, और शेष पाँच दिन के बाद पूरा हकदार बन जाने का हक भी मै नहीं त्याग सकता।"

चन्द्रावत ने हुक्के की नली से मुँह हटा कर मुसकाते हुए जवाब दिया—"लेकिन बिना पूरे दस वर्ष यहाँ वास कराये तुम्हारा यह हक मैं स्वीकार नहीं कर सकता शैलेन!" फिर क्षणभर चुप रह कर एकाएक गभीर हो कर वह बोला—"यहीं रम न जाओ शैलेन! हम दोनों का सम्मिलित छात्र-जीवन कम सुखद न रहा, और पूरी आशा है कि यहाँ सम्मिलित सामाजिक जीवन भी कम सुखदायी न रहेगा। यही तो विशेषता है मणिपुरी समाज की, कि वह किसी भी व्यक्ति को सदा के

लिए अपने में घुला-मिला लेता है बशर्ते कि वह व्यक्ति भी इसमें हृदय से घुल-मिल जाय। मणिपुर का सारा हिन्दू समाज आखिर अनेक जातियों और रक्तों के सम्मिश्रण का ही तो परिणाम है ?"

अपने मित्र के इस अर्थ-गर्भित आमन्त्रण पर विशेष ध्यान न दे उसके उत्तर का अन्तिम अंश पकड़ कर शैलेन्द्र ने फिर कहा—"तुम्हारे समाज की इसी विशेषता की ओर मैं अभी-अभी संकेत करने जा रहा था। कल उस पहाड़ी टीले पर से इस सुन्दर उपत्यका की एक झाँकी मुझे मिली। प्रकृति ने कितने यत्न और कौशल से इस क्षेत्र का निर्माण किया है! चारों ओर पर्वत-प्राचीरों की मजबूत किलेबंदी और बीच में एक विशाल अंडे के पूर्ण अर्धांश की शक्ल का शस्य-श्यामल समतल विशाल भूखंड! और तुमसे ही इस समाज के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान कर मैं यह विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि यहाँ मानो जातियों और रक्तों के सम्मिश्रण की एक अद्भुत प्रयोगशाला हो! मानो माँ प्रकृति यहाँ भुजाएँ उठा कर बार-बार यह उद्घोष कर रही हो कि—'रक्त की दीवार, जाति की दीवार, धर्म और संस्कृति की दीवार भी किसी दिन मानव मात्र को एक होने से रोक नहीं सकती!"—कहते-कहते एकाएक भाव-विह्वल हो वह बोल उठा—"अहा! चन्द्रावत! मेरे मित्र! कैसा होगा वह युग जब अखिल विश्व का मानव इन दीवारों की समस्त बाधाओं को तोड़ कर एकत्व की स्नेहमय डोर में..."

बात आगे न बढ़ सकी। मुहल्ले की सजी-धजी पाँच तरुणियाँ सहसा कमरे में प्रविष्ट हो चन्द्रावत के सामने यों आ खड़ी हुईं जैसे कृष्ण-बलराम के गंभीर वार्तालाप को भंग करने के निमित्त धृष्ट गोपियों की एक टोली। नव यौवन से सुपुष्ट चेहरों पर मुसकान की मीठी-मोटी आभा उभारतीं ये रह-रह कर कनखियों से शैलेन्द्र की ओर भी निहारने लगीं। वहाँ हरीकेन लालटेन की धीमी-धीमी रोशनी उनके यौवन की मुसकाती आभा में जैसे और भी धीमी पड़ चली। मानो दीपक के प्रकाश

पर चाँद की रोशनी बरसने लग पड़ी हो।

शैलेन्द्र भी उन्हें गहरे, पर संकुचित नेत्रों से बार-बार निहारने लगा। उनके चेहरे पर नागा, कूकी, मंगोल, आर्य, जाने किन-किन रक्तों की मिली-जुली रेखाओं में उसे वही सौन्दर्य और वही विशेषता दिखाई दे रही थी जिसकी ओर कुछ क्षण पहले उसने चन्द्रावत से भावनाभरे स्वर में संकेत किया था। उनके पहनावे एवं साज-सजाव मे मणिपुर की जातीय विशेषता मुखरित हो रही थी। चोलियों के भीतर उभरी हुई छातियों के ठीक ऊपर से टखनो या घुटनों तक ढाँके हुए किनारीदार ढाईगज्जा 'फनिक' (लुंगी) और तिस पर गले से कमर तक लहराती भड़कीली सूती अथवा रेशमी 'इनफी' (ओढ़नी) में यह विशेषता खूब मूर्तिमान हो उठी थी। सिर पर कंघी किये काले-काले चमकीले बालों के नीचे नाक के अर्धांश से सीमन्त के मूल तक गोपी-चन्दन की दो खड़ी रेखाएँ यों प्रतीत हो रही थी जैसे कपाल से जुड़ी सफेद सूत की दो धारियाँ सिर पर बिछे चमकीले काले फूलों के गुच्छे छू रही हों!

होली के आरम्भिक उल्लास से जुड़ कर यौवन का चांचल्य मानो रह-रह कर मुखरित होना चाह रहा था, परन्तु परदेसी से अपरिचय का संकोच जैसे संयम की जंजीर बन कर उसे रोके हुए था। वे एक-दूसरी को मुसकान-भरी नजरों से निहार रही थीं। मानो मन-ही-मन एक-दूसरी से पहल करने का अनुरोध किये जा रही थी।

आखिर थम्बाल पोम्बी ने साहस किया। आँखें जरा नचा कर मुसकाती हुई चन्द्रावत से वह बोली—"ये तो होली के दिन हैं दादा! हमारा वर्ष भर का सबसे अच्छा त्योहार! बहनें खड़ी हैं। बिना दान-दक्षिणा के निस्तार नहीं दादा!"—कह कर वह एकाएक चन्द्रावत की चादर का छोर पकड़ कर झकझोर उठी।

चन्द्रावत ने चादर का छोर छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए तनिक

खीझभरी मुसकराहट के साथ मीठी फटकार जताते हुए जवाब दिया—"अच्छा दल बना कर आ धमकी यहाँ ! अभी जाता जा ! बातें कर रहा हूँ । कुछ देर बाद आना या किसी और दिन ।"

"बिना दान के मथुरा-गमन कैसा दादा ?"—इस बार कई स्वर एक साथ ही बोल उठे । जैसे कृष्ण-कन्हैया के समक्ष हठीली गोपियों के स्वर मुखरित हो उठे हों । और चन्द्रावत ने तनिक हँस कर भयभीत होने का अभिनय भी किया ।

अब उनमें तोम्बी सना सब की ओर से बोली—"हाकिम बन गये दादा, मगर बहनों की पूजा तो न की ? इसलिए यह पहली हाजरी अपने हाकिम दादा के घर । अगर पहली ही यात्रा खाली गई तो आगे का क्या भरोसा दादा ?"

दादा ने अब देर करना ठीक न समझा । पाँच रुपये बहनों की भेंट करने पड़े । सब खुश हो उठीं । क्योंकि किसी एक व्यक्ति से इतनी रकम पाने की उमीद उन्हें न थी ।

सकोच सब का दूर हो चला । वास्तव में वे बातें चन्द्रावत के बजाय शैलेन्द्र से करना चाह रही थीं, पर भाषा की कठिनाई थी । अतः चन्द्रावत को मानो जबरन दो-भाषिये का काम सौंपते हुए इस बार सब की ओर से चन्द्रा ने पहल की ।

शैलेन्द्र की ओर आँखों और अंगुलियों से संकेत करके तनिक ठुनक कर मुसकराती हुई वह बोली—"तो अपने बंगाली दोस्त को भी समझा दो न दादा, कि इस तरह बेवकूफ बन कर हमारी तरफ ताकने से कोई लाभ नहीं । मणिपुर की होली इतनी सस्ती नहीं कि बिना दान-दक्षिणा के ही आँखें सेंकी जायँ । हम दान लेने आई हैं, दान !!"

चन्द्रा अपने अन्तिम वाक्य पर खूब जोर दे कर बोली । सभी सखियाँ खिलखिला पड़ीं । जैसे संगीत में तबले का स्वर झनक उठा हो ! उस भाषा से अनभिज्ञ होते हुए भी शैलेन्द्र को समझते देर न लगी कि

अब वह स्वयं उनका लक्ष्य बन चुका है। उनकी उपहास-पूर्ण सम्मिलित हँसी का आघात उसे अप्रतिभ किये बिना न रहा। जैसे गोली दग कर निशाने पर जा लगी हो।

चन्द्रावत से शैलेन्द्र की मनोदशा छिपी न रह सकी। वह भी अब मजाक की तरग में आ गया। उन तरुणियों को उत्साहित करते हुए बोला—"असामी कुछ कम कंजूस नही है। यदि सामर्थ्य हो स्वय निबट लो। स्वयं वसूल लो!"

फिर क्या था! अन्धे को चाहिये दो आँखें! वे चाहती ही थीं स्वय निबटना। महाजन बनी रहने के बजाय उन्हें प्यादा बनने मे अधिक लाभ दिखाई दिया। उन्हें भय या सन्देह था कि शायद चन्द्रावत स्वय बाधा बन कर उनके बीच मे उपस्थित हो पडे! एक अपरिचित परदेसी से इस प्रकार मजाक करने से उन्हें रोके, डाँटे, फटकारे! लेकिन जब वह बाधा स्वय दूर हट कर एक सरस दर्शक का स्थान ले चुकी तो वहाँ होली का उल्लास खिलते देर न लगी।

अब सब की सब चन्द्रावत के सामने से शैलेन्द्र के सम्मुख जा खड़ी हुई। किसी आड़ से निशाना साधने के बजाय सीधे सम्मुख प्रहार करने का अवसर पा वे खुश हो उठीं। एक ओर से सत्या ने और दूसरी ओर से रुक्मिणी ने शैलेन्द्र के कुर्ते का किनारा पकड़ा और थम्बाल पाम्बी और तोम्बी सना ने चादर का छोर। और चन्द्रा जरा मुँह बना कर तनिक रोब के साथ अपनी टूटी-फूटी बँगला में बोली—"बोगाली मोशाइ! ऐमन कोरे कैनो देखूचेन! आमरा दान चाई, दान!!"

इतना कह कर वह ठुमक कर हँस पडी। दूसरी सखियाँ तनिक जोर से हँसीं। जैसे एक गोली के दगते ही दूसरी गोलियाँ एक साथ गड़क उठीं। शैलेन्द्र घबरा गया। उसे इतनी उन्मुक्तता की आशा कतई न थी। पिछले चार-पाँच दिनों से वह इन चेहरों को देखता आ रहा था। उनपर यौवन-सुलभ हास्य की रेखाएँ अवश्य दीखी थीं, पर वे सयम

और मर्यादा की डोर में बंधी होतीं। लेकिन इस संयमहीन हँसी और आचरण ने उसके हृदय में कँपकँपी पैदा कर दी। इस अतर्कित अचानक आक्रमण का आवेग वह बर्दाश्त न कर सका। जैसे आश्वस्त असावधान सैनिक सहसा शत्रुओं से घिर कर काँप उठा हो!

और उधर से चन्द्रावत ने मुसका कर मानो उसे और भी भयभीत करते हुए कहा—"बस! अच्छे फँसे दोस्त! अगर इन्हें उचित दान-दक्षिणा से आज खुश न कर सके तो समझ लो कि तुम्हारी खैर नहीं! सारे कपड़े छीन कर तुम्हें सीधे बगाल विदा कर देंगी। समझे?"

"खाक समझे!"—इस बार शैलेन्द्र तनिक भय और नाराजी के स्वर में बोला—"समझ गया कि यह सब तुम्हारी शरारत है चन्द्रावत। जो कुछ देना हो मेरी ओर से दे दो इन्हें, और जल्द विदा करो इस बला को!"

जैसे कोई कायर राजा शत्रुओं से घिर कर झट अपने मन्त्री को आदेश दे रहा हो नज़राना जल्द चुका देने को। शैलेन्द्र की स्थिति पर उन कन्याओं को मन-ही-मन बड़ी हँसी आई। थम्पाल पोम्बी जरा मुँह बना कर उलहनाभरे स्वर में चन्द्रावत से बोली—"देख लो तुम्हारे दोस्त की बहादुरी दादा! इतना भूचड़! इतना डरपोक! अच्छा, तो बचाओ अपने दोस्त की इज्जत। नहीं तो..."

अपने मित्र की इस मनोदशा पर चन्द्रावत को भी बड़ी हँसी आई। हँसते हुए ही वह शैलेन्द्र से बोला—"बड़े डरपोक हो दोस्त! आशा न थी कि इतनी जल्दी हथियार डाल दोगे तुम! हँसी-मज़ाक में भी इतना भय!" और फिर उन तरुणियों के हाथ झट पाँच रुपये और थमा कर उन्हें विदा कर दिया। एक ही झपट्टे में केवल एक घर से इतनी रकम पा कर उनकी खुशी का ठिकाना न रहा! चन्द्रावत की माँ भी रसोई-घर से आ कर इस लीला की झाँकी ले मन-ही-मन खूब हँसीं।

कुछेक क्षण बाद शैलेन्द्र का मानसिक स्वास्थ्य वापस आया। लेकिन फिर भी तनिक क्रोध का दिखावा करते हुए उसने चन्द्रावत से पूछा—"यह दान-दक्षिणा क्या बला है भाई ? तुमने पहले से तो कुछ बताया होता !"

"पहले से बता कर इस अतर्कित घटना के रसास्वाद से तुम्हें वंचित करने की मूर्खता भला मै कैसे करता ?"

"अच्छी होली है तुम्हारे मणिपुर की !"

"अच्छी तो है ही ! इन्ही सब बातों से तो मणिपुर की होली में विशेषता है। आज से सप्ताह-डेढ़-सप्ताह तक यह दृश्य चालू रहेगा। देखना, कल सुबह से कितनी भीड़ इस कमरे में होती है !"

"तब तो मै चला जाऊँगा कहीं अन्यत्र ! मुझसे बर्दाश्त न होगी यह भीड़-भम्भड़ !"

चन्द्रावत जोर से हँसा। बोला—"कहाँ जाओगे अन्यत्र ? हर जगह तो यही हाल रहेगा। लेकिन डरने की जरूरत नहीं भाई ! अब ऐसा नही होगा। ये लड़कियाँ थी मुहल्ले की। और मै तुम्हें दिखाना चाहता था मणिपुर की होली।"

"अच्छा !"—शैलेन्द्र ने आश्चर्य से आँखें फैला कर व्यंगभरे स्वर मे कहा—"तो यह श्रीमान् जी का नाटक था ? श्रीमान् चन्द्रावत-जी इस नाटक के आयोजक और निर्देशक थे ?"

"नाटक नहीं, असलियत थी। चन्द्रावत नही, चन्द्रावत के पूर्वज शताब्दियां पूर्व इस नाटक का आयोजन और निर्देशन यहाँ कर गये हैं। तभी से यह चालू है। कल से देखोगे हर टोले-मुहल्ले के चौरस्ते पर पाँच से ले कर पन्द्रह बीस तक की उम्र की कन्याओं के गिरोह किस प्रकार राहगीरों से पैसे वसूल करते हैं !"

"और पैसे वसूल कर वे करती क्या हैं ?"

"किसी गंभीर दार्शनिक विवेचना में जाने के बजाय होली के हर

पहलू को हलकेपन से ही देखने की जरूरत है भाई ! गिरोह बना कर इस प्रकार आठ-नौ दिनों में सचित पैसों से वे मिल कर भोज-भात करेंगी। खुद खायेंगी, कुछ दूसरों को भी खिला देंगी। एक प्रकार का 'पिकनिक' समझ लो। मनोरजन।"

"तब तो, यह अच्छी प्रथा है भाई !"—कहते-कहते शैलेन्द्र के मन का सारा आक्रोश मानो क्षण मे दूर हो गया। इस प्रथा के समर्थन मे प्रसन्नता-भरे स्वर मे वह बोला—"तुम्हारे समाज की उदारता और बुद्धिमत्ता का लोहा मैं अब मान गया चन्द्रावत ! उल्लासमय जीवन ही विकास की ओर दौड़ता है। और समाज के स्वाभाविक विकास और प्रगति के लिए उसे अधिक-से-अधिक उल्लास का अवसर देना बुद्धिमत्ता भी है, उदारता भी है !"

और चन्द्रावत ने हँस कर जवाब दिया—"और तुम हो कि इस उदारता और बुद्धिमत्ता के एक सक्रिय पहलू से सामना होते ही चौंक उठे ! भयभीत हो पड़े !"

शैलेन्द्र इस व्यग-भरे आक्षेप से लजा कर चुप रह गया। और उधर से माँ ने कमरे मे प्रविष्ट हो भोजन के लिए दोनों को तैयार होने का आदेश दिया। और स्वय मिट्टी के फर्श को लीप-पोत कर चौका लगाने लगीं। फिर जरा दूर-दूर उन्होंने दो पीढ़े डाल दिये।

पलग से उठ कर अपने कपड़े बदलते हुए चन्द्रावत ने शैलेन्द्र से मुसकराते हुए कहा—"तुम तो भाग्यवान हो भाई ! माँ ने तुम्हें तो छूट दे रखी है कपड़े न बदलने की, मगर मुझसे वे तनिक भी रियायत करने को तैयार नहीं। बगैर कपड़े बदलवाये और हाथ-पैर धुलवाये वे भात देने को तैयार न होंगी।"

इतना कह कर उसने एक-एक कर कुर्ता, बनियाइन और धोती अलग करके रेशम की एक दो-गज्जा 'फनिक' पहनी। कंधे पर एक ताजा धुला हुआ अँगोछा डाला। फिर हाथ-पैर धो कर अपने कमरे के

एक कोने में बड़े आदर और पवित्रता से काठ की छोटी मेज पर रखें, फ्रेम-जडे 'राधा-कृष्ण' के चित्र के सामने वह हाथ जोड़ खड़ा हो गया। प्रार्थना की। आरती उतारी। फिर पीढे पर आ कर बैठ गया। इस प्रकार इस नित्य-कृत्य मे उसे दस मिनट से अधिक न लगे।

फूल की चमचमाती थालियों मे बॉई बगल से तहिया कर विशाल अडे की आकृति मे भात परोसा था, और दॉई बगल की खाली जगह मे आलू की भजिया और कोई चटनी थी। तथा थाली से पृथक् कटोरी मे दाल। और दॉई तरफ नीचे फर्श पर केले के ताजे पत्ते का एक टुकड़ा बिछा कर उस पर मछली के कई भूने हुए टुकडे थे और एक दूसरी कटोरी मे शोरबादार मछली भी। और भात के तहियाये ढेर पर तुलसी का एक पत्ता डाल कर उसे 'ठाकुरजी' का प्रसाद भी बनाया जा चुका था। और मॉ एक धुली-हुई मटमैली सूती 'फनिक' पहने तथा सिर पर एक भीगा हुआ अँगोछा डाले कुछ देर खड़ी खड़ी दोनों को वात्सल्यभरे नेत्रो से निहारती रहीं।

शैलेन्द्र ने एक बार मॉ की ओर देखा। और जवाब मे मॉ उससे पुचकार-भरे स्वर मे बोली—"चाओ, इबुडो![1] चाओ!"

और चन्द्रावत ने तनिक हँस कर व्यंग-भरे स्वर में शैलेन्द्र से पूछा—"कुछ पल्ले पड़ा शैलेन्द्र?"

और शैलेन्द्र ने मॉ का तात्पर्य समझते हुए भी न समझने का अभिनय किया।

तब चन्द्रावत ने मुसकराते हुए स्पष्ट किया—"तुमसे मॉ कह रही हैं शैलेन, कि 'खा बेटा, खूब खा!' और मैं उनकी ओर से चुनौती दे रहा हूँ कि यदि तुम खूब न खा सके, अन्न का एक दाना भी शेष छोड़ा तो निश्चित रूप से तुम पुनः उन लड़कियों के हवाले कर दिये

---

१. इबुडो = बेटा। (पुत्र के लिए मणिपुरी सबोधन, आदरार्थ भी)।

जाओगे ! समझे ?"—कह कर चन्द्रावत खूब जोर से हँसा। और माँ अचरजभरी आँखों से उसे देखने लगीं।

शैलेन्द्र भी इस बार ज़ोर से हँसा। बोला—"समझा ! मगर अब तुम्हारी वाञ्छा पूरी न हो सकेगी। उन लड़कियों का आतंक तो अब मन से मिट चुका है। और इधर माँ के पैरों पर गिर कर स्वयं माफी माँग लूँगा। तुम्हें चुनौती देने या बीच में आने का अवसर न दूँगा।"

"यदि मुझे बीच में आने का मौका नहीं देना चाहते, तो मणिपुरी भाषा अब तुम्हें जरूर सीखनी पड़ेगी। तिब्बत-बर्मी परिवार की होने के कारण मणिपुरी भाषा अनार्य भाषा अवश्य है, पर आर्य शैलेन्द्र के लिए कोई अधिक कठिनाई न होगी यदि तनिक लगन से वे सीखना शुरू कर दें।"—कह कर वह हँस पड़ा।

"भाषा बिना सीखे भी हम दोनों के बीच तुम्हारी जरूरत न पड़ेगी मित्र ! मानव का मन यदि मानव के मन को जानना चाहे, उसमें पैठना चाहे तो भाषा की दीवार भी उसे रोक नहीं सकती !"

इतने में पड़ोस की एक सात-साला बालिका 'राधे' वहाँ आ पहुँची। उसके एक हाथ में केले की एक फली तथा दूसरे में एक 'कमला' (संतरा) था। शैलेन्द्र को भोजन पर बैठे देख वह क्षण भर ज़रूर ठिठकी, लेकिन झट बाड़ी से केले का एक पत्ता ला कर शैलेन्द्र की थाली के आगे उसे बिछा दिया। और एक-एक कर केले और संतरे का छिलका अलग कर उस पर यत्न से परोसनी लगी। और मणिपुरी भाषा में क्या-कुछ बोलती शैलेन्द्र से उसे खाने का स्नेहभरा अनुरोध भी जताने लगी। जैसे माँ अपने बेटे को पुचकार रही हो !

चन्द्रावत अपनी हँसी को दबा न सका। हँसते हुए ही वह शैलेन्द्र से बोला—"तुम्हारे इस तर्क की ताकत को अब मैं मान गया दोस्त, कि मानव का मन यदि मानव के मन को जानना चाहे, उसमें पैठना चाहे, तो भाषा की दीवार भी उसे रोक नहीं सकती। इस चार-पाँच दिन के

परिचय मे ही, तुम्हारी भाषा से अनभिज्ञ होते हुए भी, यह शिशु 'राधे' तुम पर किस तरह जान दे रही है!"—कह कर वह पुनः जोर से हँसा।

और जवाब मे शैलेन्द्र ने भी खूब जोर से हँस कर एक बार राधे के स्नेह-तरल पवित्र चेहरे को देखा। फिर सन्तुष्ट स्वर मे बोला—"यह मेरी माँ जो ठहरी! यहाँ मेरी दो माताएँ हैं चन्द्रावत! एक बूढी माँ, एक शिशु माँ! दोनो ही मुझ पर स्नेह और वात्सल्य की अजस्र वृष्टि किया करती हैं।"—कहते-कहते एकाएक उसके स्वर मे गीलापन आ गया। पलकें भी गीली हो चली।

माँ उसी समय रसोई-घर से दोनो हाथो मे दूध से भरी दो कटोरियाँ लिये वहाँ आ पहुँची। दोनो थालियों के किनारे एक-एक कटोरी रख कर वे क्षण भर उस दृश्य को देख अपनी हँसी दबा न सकी। लेकिन राधे तनिक भी अप्रतिभ न हो सकी।

भोजन के बाद सहसा माँ ने मानो कुछ याद करके चन्द्रावत से कहा—"कहना भूल गई! तुझे 'कोनुङ' (राजमहल) से बुलावा आया है चाँदा! झटपट तैयार हो जा! शैलेन को भी साथ लेता जा! उसे भी "थाबल चोङबा"[1] दिखा ले आ!" कह कर वे जूठी थालियाँ अलग करने तथा जूठे स्थान को पुनः लीपने मे लग गईं।

(२)

मणिपुर-नरेश की चन्द्रावत पर विशेष कृपा हो चली थी। इस निर्धन 'मइतेइ' बालक को मजिस्ट्रेट-पद पर नियुक्त करवाने में उनकी अपनी रुचि भी कम न थी। यदि बड़ो का मन एक बार भी अनुकूल

---

१. अविवाहित युवा-युवतियो का सम्मिलित वृत्ताकार नृत्य "थाबल चोङबा"।

बन गया तो बिना किसी प्रतिकूल घटना के उस अनुकूलता में कमी नहीं आ पाती। उदारता का अहंकार मिट नहीं पाता। और क्रमशः इसी अहंकार के उदर से ममत्व और वात्सल्य का उदय भी होता है।

मणिपुर-नरेश का मन इसी अहंकार से आविष्ट हो चला था। उस मन में ममत्व और वात्सल्य का छिपा हुआ स्रोत अब प्रकट होना चाह रहा था। नरेश चन्द्रावत को अब निरा 'मइतेइ' रहने देना नहीं चाह रहे थे। मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हो वह शासकों की श्रेणी में आ चुका था। किन्तु रक्त और जाति से वह अब भी शासकों से दूर था। जैसे असली फूलों के बीच कागज का कोई फूल! इस दूरी को दूर करने के उपाय नरेश के मन में अक्सर चक्कर काटा करते। उनका अहंकाराविष्ट वात्सल्य-तरल मानव इस मइतेइ-रत्न को पूर्णतः आत्मसात् करने को अधीर हो उठा था। मानो जगल का सिंह एक अनाथ मानव-शिशु को अपना कर, पाल-पोस कर, उसे अपने परिवार का अभिन्न अंग बना लेना चाह रहा हो।

राजमहल का विशाल आँगन 'थावल चोङ्बा' के उल्लसित चांचल्य से थिरक उठा था। आकाश में पूर्ण चन्द्र मुसकरा रहा था। चाँदनी का दूध जैसे अनवरत बरस रहा हो। जैसे आकाश भी दूधिया रंग से होली खेल रहा हो! राजवंश के तरुण-तरुणियों का समूह, वृत्त-बद्ध हो, नृत्य में संलग्न हो चुका था। और मानो नृत्य का निर्देश करते हुए एक तरफ 'बैंड' बाजे की आवाज अपनी विविध भंगियों के साथ मुखर हो उठी थी। 'पैट्रोमैक्स' के प्रकाश में सब के चेहरों की प्रभा और भी प्रफुल्ल बन चली थी। जैसे प्रखर प्रकाश में चमकती प्रतिमाएँ नाच रही हों! मुसाहबों और विशिष्ट दर्शकों के बीच विशिष्ट उच्च आसन पर बैठे नरेश भी दर्शक बन चुके थे। जैसे दरबारियों से घिरे सिंहासन पर आसीन गन्धर्वराज दरबार के नृत्य-कौशल को परख रहे हों। और नगर के दूसरे सामान्य दर्शक आँगन में तनिक दूर खड़े अपनी आँखें

सेक रहे थे। राज-मर्यादा के कँटीले तार जैसे उन्हे निकट जाने से रोके हुए हो! अपने मित्र शैलेन्द्र के साथ चन्द्रावत भी विशिष्ट दर्शको की टोली मे जा बैठा।

विशिष्ट दर्शको मे कई राजकुमार थे, अनेक राज-महिलाएँ और राजकुमारियाँ भी। राजवश की वेश-भूषा सामान्य नागरिकों से पृथक् न थी, किन्तु स्तर अवश्य अलग था। वस्त्रो की बहुमूल्यता उन्हे अवश्य पृथक् कर चुकी थी। चेहरो पर रक्तो का वही सजातीय समान सम्मिश्रण और भाषा भी वही समान। हाँ, चेहरे की रेखाओ मे वैयक्तिक भिन्नताएँ अवश्य थीं। उन युवा चेहरो पर सरस हास्य की रेखाएँ फूट-फूट आती। आपस मे आँखें उलझ कर फिर गुरुजनों के भय से झट अलग भी हो जातीं। जैसे फूलो की पखुड़ियाँ फैल कर फिर सिमट जाती। नरेश के नेत्र भी रह-रह कर सब ओर घूम जाते। और जिसपर क्षण भर भी वे टिक जाते उसके मन का सौभाग्य मन-ही-मन कई-गुना बढ़ जाता। मुख पर गर्व और प्रसन्नता के भाव उभर आते। मानो चन्द्रमा के प्रतिबिम्बित प्रकाश मे मुँह का आइना चमक उठा हो! और नरेश की नजर को अपनी-अपनी ओर खीचने मे मुसाहबो मे भी कम होड़ न थी। जैसे एक साथ अनेक दर्पण सूर्य के प्रकाश को आकृष्ट करने के प्रयास में लगे हुए हों। नरेश के मुख पर किसी अन्य के उद्देश्य से उभरी मुसकान को भी अक्सर स्वोद्देश्यक मान कर वे खुशी और अहकार से भर जाते। उनका मन आकाशचारी बन जाता। जैसे सूर्य की किरणें एक साथ अनेक आइनो मे प्रतिबिम्बित हो उन सब को एक साथ चमका रही हों!

आज चन्द्रावत पर नरेश के नेत्र रह-रह कर बिखर जाते। अनुकम्पा की मुसकान और चितवन रह-रह कर चन्द्रावत के चेहरे पर सकोच की रेखाएँ उभार देती। जैसे रह-रह कर अपने चेहरे पर पड़ती हुई टार्च की रोशनी से कोई बचने का प्रयास कर रहा हो! और मुसाहबों का

मन ईर्ष्या से आकुल हो कर भी चन्द्रावत का महत्त्व महसूस करते हुए राजनयिकों की सकपट मुसकान के रूप में उनके चेहरों पर उभर कर प्रसन्नता का नाट्य किये बिना न रह पाता। राजकुमारियों के नेत्र भी तटस्थ न रह सके। यौवन से प्रदीप्त चन्द्रावत का चेहरा और व्यक्तित्व अब उनकी आँखों में भी जा बसा।

नागा-कुकी आदि रक्तों का चढ़ाव-उतार लिये उसके खिंचे लम्बे चेहरे का रंग खूब चमकीला गाढ़ा गेहुँआ था। नेत्रों में मंगोल रक्त का किंचित् धसाव होते हुए भी चौड़े ललाट के नीचे स्थूल-केश भौंहों का तिरछा विन्यास उनकी काली-काली पुतलियों को खूब आकर्षक बना रहा था। और तनिक तनी हुई नाक के नीचे न-मोटे-न-पतले ओंठों पर हलकी-हलकी लाली की आभा भी कम आकर्षक न थी।

पर राजकुमारियों के कटाक्ष पात से प्रभावित हो कर भी चन्द्रावत तटस्थ ही रहा। ऐसे अवसर पर कुछ क्षण शैलेन्द्र से बातों में लग कर वह अपने को यों बचा लेता जैसे कोई चतुर सुन्दरी झट अपनी सहेली से बातों में लग कर किसी तरुण के कटाक्षपातों को न देखने का अभिनय कर रही हो। लेकिन राजकुमारों का मन अब भी चन्द्रावत के प्रति उपेक्षा और अवज्ञा से रिक्त न था। बल्कि उसके शासकों की श्रेणी में आने के बाद से वह और भी उनकी ईर्ष्या और वितृष्णा का पात्र बन चला था। मानो कमल-पुष्पों से भरे हुए पोखरे में कोई एक विजातीय पुष्प बलात् ला कर डाल दिया गया हो!

लोग नृत्य से थक कर वापस अपने आसन पर आ विराजते। और कई अन्य राजकुमार तथा राजकुमारियाँ नये सिरे से नृत्य में शामिल होते। नरेश की निगाहें उन्हें एक बार देख लेतीं। महाराजा के चेहरे पर उभरी मुसकान ही मानो उनके नृत्य का परम पुरस्कार होती। बीच-बीच में नरेश आलोचक भी बन जाते। उस चालू नृत्य के सम्बन्ध में उनकी आलोचना को मुसाहब लोग अत्यन्त आदरपूर्ण ध्यान से सुनते
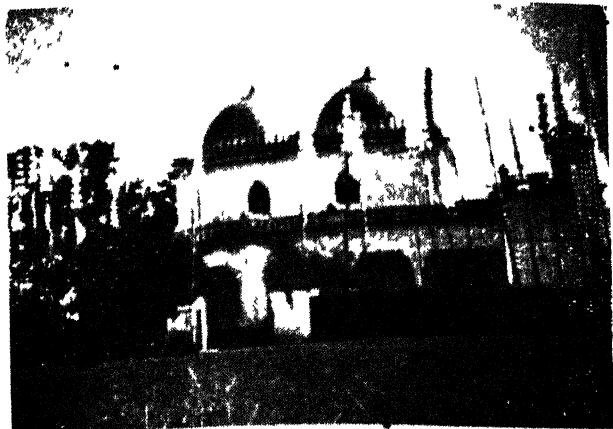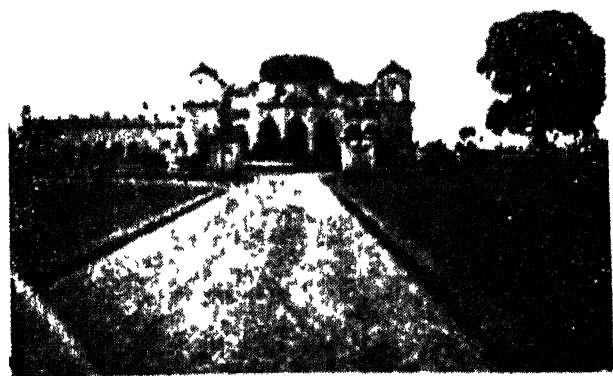
'लोकताक' सरोवर के एक गाँव के किनारे बाँस या केले के थमों के बेड़े पर मछली मारते बच्चे

मणिपुरी रास-नृत्य

लग जाते। अपनी-अपनी सहमति जताने में एक-दूसरे से पीछे न रहने का प्रयत्न करते।

नरेश सिर पर वासन्ती रंग का पग्गड़ और उसी रंग का धोती-कुर्ता पहने मसनद के सहारे लेटे, हुक्के का सुनहला पेचवान मुँह मे दाबे क्षणभर ध्यानस्थ हो जाते। फिर एकाध कश खीच कर बहुमूल्य तमाकू के धुएँ से सारी मडली को सुवासित कर देते। एक समय वे नृत्य-संलग्न युवा-युवतियों का नाम ले-ले कर उस ओर तर्जनी का सकेत करते हुए बोले—"राजकुमार 'स्नाहल' का पैरों को उठाने और नचाने का ढंग अभी ठीक नहीं हुआ। अगों का असन्तुलित सचालन नृत्य में महान दोष माना गया है। लेकिन 'उर्वशी' मे तो 'यथा नाम तथा गुणः' स्पष्ट दिखाई दे रहा है। अंगों की भाव-भगिमा एव पैरों को उठाने तथा उछालने का लयबद्ध विन्यास कम मनोहर नहीं है। और उर्वशी का बॉया हाथ पकडे राजकुमार 'विजय' की निपुणता भी अवश्य श्लाघ्य है। उसके अगों के सचालन में भी वही प्रवीणता है जो उर्वशी में। तो बताइये कि इन दोनों का दाम्पत्य कैसा रहेगा? क्यों? क्या विचार है आप लोगों का?"

"वही जो अन्नदाता का है!"—एक साथ कई स्वरों ने सहमति जताई।

"और यदि अन्नदाता विरोध में हों?"—अन्नदाता ने हुक्के का एक हलका कश ले कर व्यगभरी मुसकान के साथ उन मुसाहबों से फिर पूछा।

"हम हर हालत में अन्नदाता के विचार के साथ हैं!"—कुछ लोगों ने दृढ़ता से, और कुछ ने हवा के रुख के अनुसार जवाब दिया।

उत्तर सुन कर अन्नदाता के मुख पर सन्तोष की रेखाएँ उभर आईं। फिर अन्नदाता का ध्यान नृत्य-लग्न अन्य युवा-युवतियों पर भी गया।

कुछ देर उन सबकी आलोचना कर लेने के बाद अपने मुख्य सभा-पंडित विद्या-महार्णव श्रीअचउवा शर्मा से वे बोले—"विद्यामहार्णव! युवा-युवतियों के इस सरस और सम्मिलित नृत्य की तात्त्विक विवेचना क्या है? व्याख्या क्या है?"

महाराजा के प्रश्न के समर्थन में एक साथ अनेक स्वर गूँज उठे—"अन्नदाता का प्रश्न परम प्रासंगिक है! प्रसंग के परम अनुकूल!"

मुसाहबों का ध्यान अब नृत्य से हट कर श्रीअचउवा शर्मा की ओर जा लगा। मानो प्रश्न के पंख पर सवार हो महाराजा का तेज अब प्रधान सभा-पंडित के मुख-मंडल से जा जुड़ा हो! और शर्माजी मानो इस आदेश-अनुरोध को देवता के प्रसाद की तरह स्वीकार कर कुछ क्षण के लिए नेत्र मूँद ध्यानस्थ हो गये। फिर नरेश के गृह-देवता 'श्री-गोविन्दजी' के मन्दिर की ओर मुँह कर के दोनों हाथ सिर से सटा परम श्रद्धा-पूर्वक उस परम लीलामय को नमस्कार किया। फिर कुछ क्षण उन्होंने आँगन के बीच पवित्र तुलसी तरु के चारों ओर नृत्य और वाद्य की एकात्मता में मानो स्वतः-चालित यन्त्र की भाँति घूमते उस परम चंचल नृत्य-मंडल को खूब गहरी निगाहों से निहारा। और तब स्वस्थ मन से गला खखार कर जैसे उत्सुक श्रोताओं को सावधान किया।

"धर्मावतार का प्रश्न पूर्णतः प्रासंगिक है, इसमें सन्देह का लेश भी नहीं!"—अपनी तात्त्विक विवेचना की भूमिका उतारते हुए श्रीअचउवा शर्मा ने काव्यमयी भाषा में नाटकीय दार्शनिक ढंग से कहना आरंभ किया—"कभी वृन्दावन में भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ था। ललित लवंग-लताओं से प्रणय-लीला करता हुआ मलय-पवन, मधुकर-निकर-विगुंजित कोकिल-कूजित, उन परम लीलामय के परम रमणीय कुंज-कुटीर में प्रविष्ट हो उनकी परम पावनी लीला के सन्दर्शन एवं संस्पर्श से जब वह स्वयं परम पावन बन गया तो स्वतः यह प्रश्न उदित हुआ—

'परम लीलामय की इस परम पावनी लीला का परम रहस्य क्या है?"—कहते-कहते कुछ क्षण के लिए मानो अपने-आप उनके नेत्र निमीलित हो चले।

सहमति मे नरेश का सिर तनिक हिला और श्रोताओं ने साधुवाद किया। और भक्तों के नेत्र भावना के आँसू से भर उठे। जैसे हृदय के वृन्दावन से लीलामय का सरस पवित्र तेज फूट आँखों मे उतर आया हो!

शर्माजी ने एक बार अगल-बगल निहार कर फिर से कहना आरभ किया—"महासती वृन्दा ने उस परम लीलामय की परम पावनी लीला के प्रसाद से ही तो तुलसी-तरु का परम पावन रूप उपलब्ध किया! और इसीलिए तो तुलसी-तरुओं का वह परम पावन वन 'वृन्दावन' के नाम से प्रख्यात हुआ! और अन्ततः महासती वृन्दा के प्रणय मे आबद्ध उन परम लीलामय को इस परम पावन वृन्दावन मे अवतरित होना पड़ा!"

कुछ भक्तों के नेत्र पुनः अश्रु-तरल हो उठे। और विद्या-महार्णव ने किसी की ओर ध्यान दिये विना हाथ जोड़ अत्यन्त भक्ति-भरे स्वर मे पुनः कहना आरम्भ किया—"अन्नदाता! प्रभो! उन महाप्रभु की परम पावनी लीला का ही तो यह परम प्रसाद आज यहाँ भी मूर्तिमान हो उठा है! मणिपुर के घर-घर मे महासती वृन्दा ही तो पवित्र तुलसी-तरु के रूप मे विराजमान हैं! और इस प्रकार सारा मणिपुर ही पवित्र वृन्दावन है! और अनन्त-श्री-विभूषित श्रीमान् मणिपुर-नरेश का यह पवित्र प्रागण भी तो उसी पवित्र वृन्दावन का परम पवित्र केन्द्र है, जहाँ के अधिष्ठाता देवाधिदेव स्वय श्रीगोविन्दजी महाराज उन्हीं परम पुनीत परम लीलामय के परम पावन प्रतीक बन कर विराजमान हो रहे हैं!"—कहते-कहते शर्माजी ने अपने भक्ति-भरित हाथों को सिर से सटा इस बार खूब तन्मयता से श्रीगोविन्दजी को प्रणाम

अर्पित किया।

नरेश का सिर भी सहसा श्रद्धा से झुक चला। हाथ से हुक्के का पेचवान सहसा नीचे आ गिरा जिसे झट एक दासी ने सम्हाल लिया। मुसाहबों की सम्मिलित श्रद्धा भी गोविन्दजी की भेंट हुई। जैसे किसी बड़ी नदी के समुद्र में समर्पित होते ही उसमें मिले हुए असख्य नदी-नाले अपने-आप समर्पित हो जाते हैं।

पंडित अचउबाजी ने फिर से भावना-भरे स्वर में काव्यमयी भाषा में कहना आरभ किया—"सप्रति उसी तुलसी-तरु के चतुर्दिक् परि-भ्रमित इस नृत्य-माला में, उन परम लीलामय की परम पावनी लीला मुझे इस प्रकार आबद्ध प्रतीत हो रही है मानो निखिल विश्व-ब्रह्माण्ड इस क्षण मानव-ऊर्मियों की प्राणमयी माला बन कर इस मणिपुर की पावनी धरित्री पर अवतरित हो उठा हो!"—कह कर एकाएक पंडित अचउबा शर्मा का सिर परम श्रद्धा से उस नृत्य-मडल के उद्देश से भी झुक चला।

नरेश ने एक बार मुँह से धुआँ छोड़ मुक्तकंठ से साधुवाद और प्रशंसा की अतिवृष्टि की। मुसाहबों की टोली भी इस क्रिया में पीछे न रही। और विद्या-महार्णव का हृदय मानो गर्व और सन्तोष की ऊर्मियों में उछल कर एकाएक उनके चेहरे पर आ गया।

अब नरेश की नजर एकाएक चन्द्रावत की ओर पहुँची। चन्द्रावत को एक निरे दर्शक की भाँति बैठे देख उन्हें मानो आश्चर्य हुआ।

तनिक आँखें फैला कर आश्चर्य व्यक्त करते हुए वे बोले—"अरे! तुम यों ही बैठे रह गये चन्द्रावत? नृत्य में सम्मिलित नहीं हुए?"

नरेश का यह आश्चर्य चन्द्रावत के लिए भी कम आश्चर्य-जनक न था। वहाँ बैठे दूसरों को भी कम आश्चर्य न हुआ। यह तो सबको मालूम था कि राजबाड़ी के 'थावल चोङबा' में वे ही अविवाहित युवा-युवती शामिल हो सकते हैं जिनकी नसों में राजवंश का उष्ण रक्त बह

रहा हो। फिर एक मइतेइ-पुत्र के उसमें शामिल न होने पर इस प्रकार नरेश द्वारा व्यक्त आश्चर्य उस मइतेइ-पुत्र को भी आश्चर्य मे डाले विना न रहा। जैसे कोई ऊँचा बलिष्ठ व्यक्ति दयावश किसी बौने को अपने कधे पर चढ़ा कर किसी सुन्दर पेड़ की डालों में लगे मीठे दुर्लभ फलों को तोड़ कर चखने का आदेश दे रहा हो! पर चन्द्रावत से कुछ जवाब देते न बना। आश्चर्य-चकित नेत्रों से एक बार नरेश को देख फिर सिर झुकाये चुपचाप वह बैठा रहा। जैसे बौने को अब भी उस दयालु की दया पर विश्वास न हो सका। शायद यह क्रूर मजाक हो कि फल की ओर हाथ बढ़ाते ही वह कधे से झिटक कर कहीं दूर फेंक न दिया जाय!

अब नरेश के नेत्र राजकुमारियों के समुदाय में भी पहुँचे। परम मानिनी राजकुमारी मुक्तावती भी एक दर्शिका के रूप मे ही वहाँ बैठी दीखी।

नरेश ने पुनः आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—"मुक्ते! तू सदा की मानिनी ही रही! नृत्य में सम्मिलित होना कोई दोष तो नही? अपराध तो नहीं? विद्यामहार्णव की तत्त्वभरी व्याख्या तूने सुनी होगी बेटी! मैं समझता हूँ और विश्वास भी है कि उन परम लीलामय की इस परम लीलामयी नृत्यमाला मे यदि मुक्ता 'मुक्ता' बन कर सम्मिलित हो जाय तो मुक्ता का सौन्दर्य और उसकी पवित्रता सौ-गुनी बढ़ जाय! क्यों, क्या विचार है सब लोगों का?"—कह कर उन्होंने मुसकराते हुए सभासदों के विचार भी पूछे। नरेश के कवित्व की सबने मुक्तकंठ से प्रशंसा की। एक स्वर से सहमति भी जताई। हाँ, राजकुमारों और राज-महिलाओं को चन्द्रावत के शामिल होने का प्रस्ताव अटपटा और बुरा अवश्य लगा। पर राजा की इच्छा और आदेश के समक्ष सिवा चुप रह जाने के और चारा क्या था? किन्तु मुक्तावती का चेहरा एका-एक लाल हो उठा। संकोच के बोझ से पलकें भी झुक चलीं। उसे

यह प्रस्ताव शायद बुरा न लगा। और उसका चेहरा लज्जा की मधुर मुसकान से यों उद्भासित हो उठा जैसे सुवर्ण की प्रतिमा गुलाबी 'बल्ब' के अक्स में चमक उठी हो!

नरेश ने एक बार गहरी निगाह से उसे देख कर वात्सल्यभरे स्वर में आदेश दिया—"इबेमा![1] वर्ष भर के बाद आने वाले इस पवित्र पर्व में सम्मिलित न होना किसी पाप से कम नहीं है। तैयार हो जा!" और फिर चन्द्रावत से कहा—"चन्द्रावत! तुम भी तैयार हो जाओ। जाओ, तुम दोनों अब नृत्य-मडल में सम्मिलित हो कर परम पुनीत परम लीलामय के साथ एकात्म्य अनुभव करो। आनन्द उपलब्ध करो। तुम दोनों की जोड़ी बड़ी सुन्दर रहेगी!"

नरेश के इस अकाट्य मधुर आदेश के आगे उन्हें खुशी से झुकना पड़ा। उपस्थित अन्य लोगों के साथ इस बार भी उन दोनों को कम आश्चर्य न हुआ। लेकिन इस आश्चर्य ने उस युगल-जोड़ी के हृदय में खूब मीठा-मीठा कम्पन भी पैदा कर दिया।

(३)

चन्द्रावत और शैलेन्द्र राजमहल से काफी रात बीते वापस आये। शैलेन्द्र को झट नींद आ गई, पर चन्द्रावत आज नृत्य की थकान के बावजूद जल्द नींद को ला न सका। आज वह जीवन के नये अनुभव से गुजरा था। मणिपुर में पैदा होने के कारण 'थावल चोङबा' या 'थावल चोङबा' में प्रविष्ट होना उसके लिए कोई नई बात न थी। किन्तु स्वयं राजा के अनुरोध से राजवंशीय 'थावल चोङबा' में प्रविष्ट होना बिलकुल नया अनुभव था। और तिसपर मुक्तावती जैसी परम सुन्दरी मानिनी राजकुमारी के साथ! यह उसके जीवन का सबसे रोमांचक प्रसंग था।

---

१. बेटी! (पुत्री के लिए मणिपुरी संबोधन)।

इस रोमांचक प्रसंग का जीवन्त चित्र अब भी उसके मानस-पट से मिटा न था। बल्कि रह-रह कर स्मृति की कूची उस चित्र में रंग भर रही थी। मुक्ता की सुकोमल व सुपुष्ट हथेली को अत्यन्त विश्वास के साथ हथेली में बाँधे जिस कौशल से वह नाच रहा था उसके लिए भी यह काम आश्चर्य न था। आरम्भ में कुछ हिचक थी, कुछ बाधा थी, पर बाद मे हथेलियों के अव्यक्त वार्तालाप में निवेदन की जो ध्वनि थी वह उस ध्वनि से पृथक् न थी जिसमें बँधा हुआ निखिल विश्व-ब्रह्मांड दिन-रात 'सृष्टि सृष्टि' इस मगलमय नाद से अनुप्राणित हुआ करता है। यह वही ध्वनि थी जो परमाणुओं की परम सूक्ष्मता में और सौर-मंडल की विराट् विशालता में समान भाव से ध्वनित होती हुई सृष्टि के मंगलमय गीत गाया करती है।

नृत्य के समय चन्द्रावत ने चेष्टा की तटस्थ बने रहने की, मुक्ता ने भी, पर क्रमशः, अनजाने, उनके अणु-परमाणुओं से जिस गुनगुनाहट की गूँज आने लगी उसमे जैसे एक सन्देशा था, एक चिरन्तन सत्य का उद्घोष—"सयोग में सृष्टि है, संपूर्णता है। वियोग या पार्थक्य में विनाश और अपूर्णता!" वे तटस्थ न रह सके। उनके हृदय हथेलियों में उतर कर परस्पर मानो उसी सन्देशे को, उसी चिरन्तन सत्य को सुनने लगे। एक दूसरे को सुनाने लगे। प्रथम दृष्टिपात में ही प्रेम के प्रस्फोट की भाँति वहाँ प्रथम बाह्य संयोग ने ही मानो अस्फुट भाषा में यह स्पष्ट उद्घोष कर दिया कि—"विधाता ने तुम दोनों को उत्पन्न ही किया है एक-दूसरे के निमित्त!"

माँ ने मच्छरदानी की किनारियाँ बिछौने के नीचे ठीक कर दी थी। किलेबन्दी ठीक थी। पर वसन्त के मच्छर जाने किस रण-संगीत को अलापते उस किले में प्रवेश के प्रयास में थे। लेकिन चन्द्रावत, उस किले के भीतर पलंग के चौड़े गद्देदार काष्ठ-फलक पर इतमीनान से करवटें लेता 'थावल चोड्या' के मानस चित्र में उलझा हुआ था। रह

रह कर आकांक्षा की डोर उस चित्र-फलक को उसकी नजरों में उतार देती। स्मृतियाँ उसमें विविध भाँति से रंग भरना शुरू कर देतीं। और उस रंग की मादकता में उसकी कल्पना और भी मधुर मुखर बन जाती। और फिर महाराजा की अनुकम्पा की स्मृति उसके हृदय में कृतज्ञता की बाढ़ ला देती। चन्द्रावत बचपन से ही पितृहीन था। सो, इस समय नरेश अपनी समस्त कृपा और वात्सल्य के साथ उसी रिक्त पितृ-स्थान की पूर्ति करते उसे दीख रहे थे। हृदय सहसा श्रद्धा और भक्ति से भर चला। राजा वास्तव में प्रजा का पिता होता है इस मान्यता पर आस्था उसकी दृढ़ हो चली।

मुक्ता और चन्द्रावत नृत्य-लग्न अन्य लोगों के साथ, एक साथ अपने पैरों को उठा कर उछालते हुए जब उस कक्ष में स्वयंचालित यन्त्र की भाँति घूम रहे थे, वे रह-रह कर एक दूसरे के मुँह की ओर भी तनिक देख लेते। मुक्ता लजा जाती। उसके चेहरे पर उभरी हुई लज्जा की लाली चन्द्रावत की आँखों में एक नशा उतार देती। अचानक वह भी लजा जाता। फिर सम्हल कर तटस्थ बन कर वे दोनों पूरे सन्तुलन के साथ बैंड बाजे के निर्देश का अनुसरण करते हुए नाचने लग जाते।

इस समय पलंग पर पड़े-पड़े इसी चित्र को वह मन की नजरों से निहार रहा था। मन के तार-तार अनोखे नशे के आकस्मिक आघात से सिहर जाते; झंकृत हो जाते। और उस झंकार से उठे अनिर्वचनीय आनन्द की लहरियों में मन उसका डूब जाता। उस नृत्त-बद्ध मंडली में चन्द्रावत का एक हाथ किसी अन्य राजकुमारी के हाथ से संपृक्त था, और मुक्तावती का एक हाथ किसी अन्य राजकुमार के हाथ से। लेकिन मन का संयोग उनमें न था। अतः रह-रह कर नृत्य-मर्यादा का उल्लंघन भी अनजाने हो जाता। मुक्ता और चन्द्रावत जैसे वृत्त से छिन्न हो जाते। लेकिन दूसरे ही क्षण सावधान हो टूटी कड़ी को जोड़ने के प्रयास में बगल के हाथों को पकड़ लेते। लेकिन मुक्ता और

चन्द्रावत के हाथ कभी अलग नहीं हुए।

विश्वास ने आशा को जन्म दिया। और आशा ने आकांक्षा को। और आकांक्षा का माधुर्य अब तर्क के तारों मे प्रविष्ट हो मुखरित होने लगा। नाचने लगा। चन्द्रावत विश्वस्त हो कर सोचने लगा—"जीवन, और विशेष कर मानव-जीवन, और कला से सुसंस्कृत सभ्य जीवन मे कितना सौन्दर्य है! कितना सारस्य! नर और नारी एक समन्वित पूर्ण शक्ति के ही तो दो रूप हैं! दोनों का पृथक् अस्तित्व रहते हुए भी उनके पार्थक्य में संपूर्णता तो नही! सौन्दर्य तो नहीं! समन्वयहीन बिखरी शक्ति में निर्माण और विकास की क्षमता तो नहीं!" फिर एकाएक उसके मन में परमाणु के युग्म तत्त्व 'प्रोटोन' और 'एलेक्ट्रोन' के द्वन्द्व-नृत्य का चित्र उभर आया। वह पुनः सोचने लगा—"इन दोनों मूल तत्त्वों के द्वन्द्व-नृत्य मे ही तो सारी सृष्टि की, विश्व-ब्रह्माण्ड के निर्माण की कहानी छिपी हुई है! एक तत्त्व नर है, एक नारी। तो तात्पर्य यह कि नर-नारी तत्त्व के सम्मिलित नृत्य मे ही सारा विश्व-ब्रह्मांड छिपा हुआ है। और उसी नृत्य का प्रतीक है हमारा यह मणिपुरी जातीय नृत्य 'थावल चोङबा'!"

यह सोचते ही उसके हृदय मे अपनी उज्ज्वल जातीयता का गर्व उभर उठा। इस गर्व की गर्मी ने उसे पलंग पर पड़ा न रहने दिया। वह एकाएक उठ कर बैठ गया। इतमीनान से सोचने लगा। अब अचानक उसकी स्मृति में सृष्टि की मणिपुरी पौराणिक कथा उभर आई। और इसके साथ ही मणिपुर का एक अन्य महत्त्वपूर्ण जातीय नृत्य भी। चैत, वैशाख, जेठ, इन तीन महीनों में सारे गाँव की नर-शक्ति और नारी-शक्ति एक साथ मिल कर 'लाइ हराउबा'[1] नामक नृत्य

---

१. लाइ = देवता, हराउबा = मनोरंजन (देवताओं का मनोरंजन नृत्य)।

में इस सृष्टि की पवित्र गाथा ही तो गाया करती हैं ! और इस सृष्टि के निमित्त ही तो 'लाइनूरा' नाम से प्रख्यात मणिपुर की आदि सप्त देवियों ने मणिपुर की जलमय सतह पर अहर्निश नाच-नाच कर 'लाइपुमथाउ' नामक स्वर्ग के नौ देवताओं को रिझाया था ! प्रसन्न किया था ! और तब मणिपुर की पवित्र पृथ्वी की उत्पत्ति हो सकी थी !

फिर उसकी स्मृति में मणिपुरी पुराण के अनुसार इस सृष्टि का एक अन्य रोमांचक प्रसंग भी उभर आया। उन सप्त देवियों एवं नौ देवताओं के सम्मिलित प्रयास या समागम से पृथ्वी का जन्म तो हो गया, पर जल में डूबी होने के कारण वह सृष्टि के योग्य न बन सकी। तब पुनः उन देवी-देवताओं का सम्मिलित नृत्य आरम्भ हुआ। फलस्वरूप आदि शक्ति शिव और पार्वती का अवतार हुआ। और तब पुनः उस नर-नारी शक्ति का अखंड अविचल युग्म-नृत्य आरंभ हुआ। और फिर उसी युग्म-नृत्य से हर-पार्वती में सृष्टि की अद्भुत अतुल शक्ति उत्पन्न हुई। शिव के त्रिशूल में प्रचण्ड शक्ति का आविर्भाव हुआ। उसके एक ही प्रबल प्रहार ने दक्षिण दिशा के एक पर्वत में सुरंग या छिद्र बना दिया।[१] और तब मणिपुर का सारा जल उस छिद्र के रास्ते समुद्र में गिरने लगा। और तब वही जल-प्लावित धरती एकाएक एक परम रमणीय उपत्यका में बदल गई ! इस धरती का कण-कण धन-धान्य और मणि-माणिक्य में उद्भासित हो उठा ! और तब मणिपुर यह नाम सचमुच सार्थक हो उठा !

---

१. यह स्थान आज 'चिङ नुङ हुत्' नाम से प्रख्यात है। चिङ = पर्वत, नुङ = भीतर, हुत् = छेद करना। मणिपुर की सबसे बड़ी नदी 'इम्फाल' पर्वत के इसी दर्रे से मणिपुर के सारे फालतू जल को अपने पेट में लिये बर्मा की 'इरावती' नदी में जा मिलती है।

अब चन्द्रावत के मनोमच पर पुनः मुक्तावती आ प्रकट हुई। इस बार उसमें और भी आकर्षण था। आकांक्षा के आसव ने हृदय के नेत्रों मे खूब रग भर दिया। मदभरा रग! उस रंग के सयोग से उन नेत्रों में मुक्ता का सौन्दर्य और भी लुभावना बन गया। जैसे किसी आधुनिक शहरी सुन्दरी का सौन्दर्य 'फैशन' के प्रसाधनों से। चन्द्रावत अपने मन की आँखों से इस परम सौन्दर्य को रह-रह कर निहारने लगा। तृप्ति न थी, थकान न थी! हृदय के अन्तस्तल मे मानो रह-रह कर 'मुक्ता मुक्ता' यह परम रमणीय परम आकर्षक ध्वनि ध्वनित होने लगी। और उत्तरोत्तर उसका मन एकात्म्य की ओर बढ़ने लगा। जैसे पार्वती शंकर के मन को खींच-खींच कर आत्मसात् कर रही हो!

मुक्ता से उसका परिचय या संपर्क नया न था। मजिस्ट्रेट-पद पर नियुक्त होने से पूर्व वह राजकुमारियों का गृह-शिक्षक नियुक्त था। इस प्रकार राजकुमारी मुक्ता उसकी शिष्या रह चुकी थी। अन्य मणिपुरी नारियों की भाँति उसके नाक-नक्श पर भी सम्मिलित रक्तों का प्रभाव था। लेकिन यह प्रभाव अपने विशिष्ट सुन्दर रूप को ही ले कर प्रकट हुआ था। सीमा-पार की बर्मी महिलाओं के सुनहले गोरे रंग की कमनीयता से भिन्न उसके स्वच्छ गोरे रग पर मानो विधाता ने बडे कौशल से गुलाबी 'पालिश' कर दी थी। उसके अगों के सगठन में मानो हजारों वर्ष पहले की 'चित्रांगदा' उतर आई थी।

मुक्ता की शालीनता, प्रतिभा और सौन्दर्य ने उसे प्रभावित अवश्य किया था, पर उसके प्रति आसक्ति या आकर्षण की भावना उसमें प्रकट रूप से कभी न आ सकी। एक निर्धन मइतेइ-पुत्र के लिए उस दिशा में सोचना या बढ़ना कम निरर्थक या उपहास-जनक न था। लेकिन अब निर्धनता का दुर्गुण बहुत कुछ दूर हो चला था। नरेश अनुकूल हो चले थे। और आज उस 'अनुकूलता' के इशारे ने मानो एकाएक जोर का खरोंचा मार कर उसके मन के अन्तर्तम में उस

सोई हुई आसक्ति और आकर्षण को जगा दिया। जिस प्रकार गाढ़ी नींद से एकाएक जगाये हुए व्यक्ति के मन में जोर की चौंक के साथ कुछ देर के लिए खलबली मच जाती है, चांचल्यमिश्रित रोमांच हो आता है, वही दशा इस समय चन्द्रावत के मन की भी थी।

लेकिन निद्रा का नशा भी अधिक देर तक तटस्थ न रह सका। एक नारी के प्रति सर्वथा नूतन आसक्ति व आकर्षण का नशा क्रमशः निद्रा के नशे में विलीन होता गया। अब उस नशे का अवचेतन मन के साथ सपर्क हुआ। अवचेतन मन की विशाल पटभूमि में राजबाड़ी का 'थावल चोङ्बा' पुनः पुनः प्रकट हुआ। इस बार उसमें कहीं अधिक आवेग था, कहीं अधिक नूतनता और रगीनी। काल की पटभूमि भी विशाल बन चली। हर रात 'थावल चोङ्बा' का आयोजन अधिकाधिक शानशौकत से होता, और 'थावल चोङ्बा' में नरेश की ओर से चन्द्रावत और मुक्ता की जोड़ी चुनी जाती। और हर नृत्य में वे दोनों परस्पर अधिकाधिक निकट होते जाते और इस नैकट्य में परस्पर मिलन की मीठी आकाङ्क्षाएँ तीव्र वेग से उत्पन्न हो उनके हृदयों को हिला देतीं। कँपा देतीं।

उसका अवचेतन मन इस मधुर स्वप्न-जगत् से मानो वापस जाना नहीं चाह रहा था। शैलेन्द्र अब तक जाग कर शौचादि से निबट कर कोई पुस्तक पढ़ने लग गया था। उसने चन्द्रावत की उस गाढ़ी मीठी निद्रा में व्याघात डालने की कोई चेष्टा न की। माँ भी, नित्य-प्रति की भाँति घर-बाहर झाड़ू लगा चुपचाप कमरा और आँगन लीपने में लग गई। आँगन के मध्य में स्थित तुलसी-तरु के चारों ओर बड़ी श्रद्धा से लीपा लगा कर उन्होंने महासती वृन्दा को अनेक नमस्कार भी किये। सूर्य की सुनहली किरणों के रंग ने घर के पीछे वेणु-निकुंजों के पंछियों में मानो फिर से नई जान डाल दी। उनके कल-रव से घर-आँगन सजीव बन गया। पर फिर भी चन्द्रावत की नींद न खुली।

पाँच-सात की उम्र से ले कर पन्द्रह-सोलह की उम्र की कन्याओं के कई जत्थे जातीय वेश-भूषा में सजे-धजे, उस कमरे मे पैसों के लिए प्रविष्ट होने लगे, लेकिन फिर भी चन्द्रावत की नींद अखड बनी रही। शैलेन्द्र के आगे पैसों से भरा एक डब्बा रखा हुआ था। पूर्व-निर्देश के अनुसार 'जैसी देवी वैसी पूजा' का परिपालन करते दो-दो चार-चार पैसों से ही वह उन जत्थों को विदा किये जा रहा।

लेकिन एक जत्थे की कन्याएँ बड़ी धृष्ट थीं। वे दान की छोटी रकम से सन्तुष्ट होना नहीं चाह रही थीं। बल्कि पिछली रात उन पच-कन्याओं को मिले दान की उदार रकम के बारे में सुन चुकी होने के कारण वे स्वयं भी बड़ी आशा लिये पहुँची थी। आखिर शान्ति और मनोरमा ने चन्द्रावत की चादर का छोर पकड़ कर झकझोर ही दिया। और तिस पर उलहने की सम्मिलित आवाज ने भी उसे जागने पर मजबूर कर दिया।

गहरी और मीठी अँगड़ाई ले कर चन्द्रावत पलंग पर उठ बैठा। उन कन्याओं के अभियोग पर उदार मन से विचार किया। उन्हें भी सन्तुष्ट किया। वे भी सन्तुष्ट मन से विदा हो चलीं।

"कमाल कर दिया तुमने आज!"—शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए ताना कसा—"रात की रंगीनियाँ मानो स्वप्न बन कर अब भी तुम्हें मीठी-मीठी निद्रा के नशे मे डुबोये रहीं! आकाक्षा के मधुर पलने पर थपकातीं रहीं! क्यों?"

चन्द्रावत के चेहरे पर सकोच की हलकी लाली उभर आई। अपनी झेंप मिटाते हुए उसने झट सफाई पेश की—"रात बहुत थक गया यार! नाचने की आदत जो बहुत दिनों से न थी।"

"ऐसी थकावट तुम्हें हर रोज मुबारक!"—शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए पुनः व्यंग कसा—"और ऐसे अवसरों पर आदत के वापस आते देर कितनी लगती है!"

लेकिन कमरे में एकाएक माँ के प्रवेश ने इस सरस वार्तालाप का सुकोमल धागा अचानक तोड़ दिया। उन्होंने दोनों को झटपट नहा-धो तैयार होने का आदेश दे दिया।

"तुम्हें तो हमारे मुहल्ले के पोखरे से भय लगता है शैलेन!"—चन्द्रावत ने मुसकाते हुए अपने मित्र में तनिक भय पैदा करने के ख्याल से कहा—"लेकिन तोम्पोक के पोखरे का रास्ता तो आज निर्विघ्न नहीं! भय-रहित नहीं! कीमत गहरी चुकानी पड़ेगी तुम्हें!"

"क्यों?"—शैलेन्द्र ने जरा डरे स्वर में पूछा।

और चन्द्रावत ने मानो याद दिलाते हुए मुसका कर जवाब दिया—"क्या इतनी जल्दी भूल गये रात की उस घटना को? पंच-कन्याओं की हरकतों को? मैंने नहीं बताया तुम्हें कि आज से सप्ताह-डेढ़ सप्ताह तक हर टोले-मुहल्ले के चौरस्तों का यही हाल रहेगा?"

"लेकिन भय तो अब रहा नहीं!"—शैलेन्द्र ने हँस कर जवाब दिया—"तुम तो माँ निद्रा के आँचल में छिपे पड़े थे, और मुझे सवेरे से आज इतनी कवायद करनी पड़ी कि अब भय की गुंजायश रह ही नहीं गई! जेब में कुछ पैसे अवश्य रहने चाहिएँ। फिर भय किस बात का?"

"बहुत जल्द तुम पक्के बन गये दोस्त!"—चन्द्रावत ने जरा जोर से हँस कर शाबाशी दी—"असली गुर तुम जान गये। अच्छा, तो अब चले चलें।"

मजिस्ट्रेट बन जाने के बावजूद घरेलू जीवन में चन्द्रावत सामान्य नागरिकों-सा बना रहा। अपने घर से बाहर जा कर नहाने-धोने में तौहीन महसूस नहीं किया करता। तिस पर मणिपुर का विशिष्ट सामाजिक संस्कार भी था। वहाँ राज-वंश के लोग भी बढ़ईगीरी आदि कार्य भी करने में सकुचाते नहीं और राज-वंश की महिलाएँ भी अपने हाथों से बुने कपड़े स्वयं बाजार में बैठ बेचने में संकोच महसूस करतीं नहीं!

अतः बिना किसी सकोच के चन्द्रावत अपने मित्र को ले कर अन्य मुहल्ले के स्वच्छ पोखरे की ओर चल पड़ा ।

उन दोनों को उस पोखरे तक पहुँचने में तीन-चार चौरस्ते पार करने पड़े । हर चौरस्ते पर कन्याओं के गिरोह मोर्चेबन्दी किये खड़े थे । जिस किसी राही ने कर चुकाने मे जरा भी आनाकानी की तो खैर नही । और तरुणियों की टोली से घिरे कुछ सरस तरुण राही तो जान-बूझ कर कुछ देर अडिग बन जाते । कुछ देर तारुण्य की फुलझड़ियाँ वहाँ झरने लग जातीं । फिर कुछ ले-दे कर पिंड छुड़ा किसी अन्य टोली की ओर वे चल देते ।

चलते-चलते शैलेन्द्र ने कहा—"रंगभरी एकादशी से ही राजबाड़ी में श्रीगोविन्दजी की होली देखता आ रहा हूँ । ब्रज की होली भी मै वृन्दावन जा कर देख चुका हूँ । मणिपुर मे उसी ब्रज की होली की नकल होते हुए भी लेकिन असल से कही अधिक सजीवता मुझे दिखाई दी यहाँ । पर इस प्रकार पैसे वसूल कर 'पिकनिक' करने की प्रथा तो मुझे ब्रज में भी कहीं नहीं दिखाई दी चन्द्रावत !"

"और 'थावल चोङबा' तुमने कहाँ देखा ब्रज मे ?"—चन्द्रावत ने तनिक अभिमान-भरे स्वर मे प्रश्न किया । और फिर स्वय जवाब भी दिया—"हमारी वैष्णव सस्कृति और सभ्यता ब्रज एव बगाल की ऋणी होती हुई भी अपनी जातीय विशेषता से रिक्त नही है । केवल अन्धानुकरण नहीं है दोस्त !"—कहते-कहते उसके चेहरे पर एकाएक जातीय गौरव का जैसे अहं उभर आया ।

शैलेन्द्र चन्द्रावत के गर्व-गुम्फित चेहरे को तनिक देख कर मुसकरा दिया । जवाब मे कुछ कहने जा ही रहा था कि अचानक कन्याओं के एक झुंड से वे दोनों फिर घिर गये । उनसे बहुत जल्द छुट्टी पा कर वे उस स्वच्छ पुष्करिणी के किनारे आ पहुँचे । पोखरे के किनारे ही चन्द्रावत के घनिष्ठ मित्र शोभाशोक सिंह का घर था ।

राधा-दामोदर का एक मन्दिर और एक विशाल मंडप भी।

तोम्पोक सिंह ने दोनों का स्वागत किया। झट पटिया ला कर दालान के फरश पर फैला दी। भरा हुआ हुक्का भी आ गया।

और चन्द्रावत ने मुसकाते हुए यह अभियोग पेश किया—"मेरे मित्र की शिकायत है कि इम्फाल के अधिकांश पोखरे स्वच्छ नहीं हैं। इन्हें आश्चर्य लगता है कि कैसे यहाँ के लोग ऐसे पोखरों में नहाते-धोते और उन्हीं में का पानी भी पीते हैं। लेकिन तुम्हें इस स्वच्छ पोखरे के कारण ही ये सबसे अधिक सभ्य और सुसंस्कृत मानते हैं तोम्पोक!"—कह कर चन्द्रावत जरा जोर से हँस पड़ा।

और तोम्पोक ने भी हँस कर मुसकाते हुए व्यंग-भरे स्वर में जवाब दिया—"गनीमत है चन्द्रावत, कि एक पढे-लिखे बंगाली ने कम-से-कम किसी एक मणिपुरी को भी सभ्य और सुसंस्कृत तो मान लिया!"

जवाब सुन कर शैलेन्द्र का चेहरा कुछ अप्रतिभ हो उठा। लेकिन सम्हल कर उसने जवाब दिया—"किसी एक ही पैमाने से सभी बंगालियों को नापना बंगाली समाज के प्रति न्याय तो नहीं महाशय?" फिर एकाएक भावना और आवेश से भरे स्वर में वह दाँये हाथ की तर्जनी को हिलाते हुए बोला—"मैं उस बंगाली को स्वस्थ और सच्चा बंगाली कभी नहीं मानता महाशय, जो किसी भी गैर-बंगाली या गैर-बंगाली समाज को अपने या अपने समाज से हीन समझता है, घृणित मानता है! आप विश्वास रखिये कि मणिपुर के अधिकांश पोखरों को अस्वच्छ कह कर भी मैं मणिपुरी समाज को घृणित या हीन नहीं मानता! बंगाल में भी ऐसे अस्वच्छ पोखरों की कमी नहीं है। मैं उन्हें भी अच्छा नहीं मानता! कुछ पोखरों की अस्वच्छता के कारण मणिपुरी समाज को हीन या घृणित कह कर मैं स्वयं हीन या घृणित बनना नहीं चाहता तोम्पोक बाबू!"

तोम्पोक अपने व्यंग से संकुचित हो सफाई पेश करते हुए बोला—

"आप नाराज न हों शैलेन बाबू ! मैने तो केवल मजाक किया था। परिस्थिति से आदत और आदत से रुचि बनती है। यदि समाज अच्छी परिस्थिति के आधार पर सघटित हो जाय तो इस आदत और रुचि के बदलते भी देर न लगेगी। और तब उन पोखरो मे न कोई नहाना पसन्द करेगा, न उनका पानी पीना।"

"लेकिन रुचि, आदत और परिस्थिति मे भी जन्य-जनक-भाव सम्बन्ध हैं तोम्पोक बाबू ! रुचि से आदत, और आदत से परिस्थिति भी बनती है। और..."

लेकिन चन्द्रावत इस बहस को बढ़ाने के पक्ष मे कतई न था। मुसकाते हुए झट बीच मे ही बोला—"होली के दिनों मे हर बात को हलकेपन से ही लेने की जरूरत है दोस्तो ! तुम दोनो को मै इस समय तर्क की कर्कशता और दर्शन की गहराई मे उलझने कतई नहीं दूँगा।" फिर कुर्ते के ऊपर के जेब से घड़ी निकाल उसपर एक दृष्टि डालते ही घबड़ाहट का नाट्य करते हुए शैलेन्द्र से—"बड़ी देर हो गई यार ! माँ वहाँ नाराज हो रही होंगी। चलो, झटपट नहा-धो कर चलते चलें।"

इतना कह कर चन्द्रावत लोटा ले 'बभ्रुवाहन-मैदान'[1] की ओर शौच से निबटने चल पड़ा। कल रात "युङचाक" नामक मणिपुरी तरकारी खाने के कारण शैलेन्द्र को भी आज दुबारा शौच के लिए चन्द्रावत के साथ जाना पड़ा।

---

१. इम्फाल नगर के पश्चिम में मीलों लबा-चौड़ा एक मैदान है जिसे 'बभ्रुवाहन-मैदान' कहते हैं। कहते हैं कि इसी मैदान मे अर्जुन और बभ्रुवाहन का युद्ध हुआ था जिसमें चित्रांगदापुत्र बभ्रुवाहन ने अपने विश्वविजयी पिता अर्जुन को परास्त किया था।

भोजन के बाद शैलेन्द्र और चन्द्रावत राजबाड़ी की ओर चले। आज की होली मुख्य थी। रास्ता सदर बाजार से हो कर था। बाजार के मारवाड़ियों, पंजाबियों, बंगालियों और बिहारियों की रंगभरी होली अपना रंग जमाये थी। लाल, पीले, नीले, हरे आदि अनेक रंग पिचकारियों से छूट-छूट कर उनके चेहरों और कपड़ों को रंगरेजों के-से बना चुके थे। जैसे अभी-अभी दुकानों से निकली रंगरेजों की टोलियाँ उन्मत्त हो खेल रही हों। जगह-जगह भूमि भी इन रंगों से रंग चुकी थी। युवकों की टोलियाँ किलकारियाँ भर-भर कर अपने शिकारों पर या टूट रही थीं जैसे समर-भूमि के सैनिक जान बचा कर भागते शत्रु-सैनिकों पर! पर आश्चर्य कि मणिपुर जैसे स्त्री-प्रधान प्रदेश में इम्फाल के बाजार में आज स्त्रियाँ कहीं दिखाई न दे रही थीं। स्त्रियों से हमेशा भरी हुई दुकानें आज खाली थीं, जैसे शत्रुओं के आक्रमण के आतंक से त्यक्त घर-द्वार!

'पोलो ग्राउंड' के बगल वाले रास्ते से गुजरते, इम्फाल नदी का पुल पार करते वे राजबाड़ी के काफी पास पहुँच गये। हर ओर से नर-नारियों का सजा-धजा कारवाँ राजमहल की ओर यों बढ़ा जा रहा था जैसे अनुशासन में बँधे सैनिकों का विशाल दल। अथवा विशाल मानव-नदी धीर-गंभीर प्रवाह के साथ समुद्र में समर्पित होने जा रही हो! बालिकाओं व युवतियों की पोशाक अपने स्तर के अनुसार भड़कीली फनिक, फुरित् (चोली) और पीली इनफो (ओढनी) थी, तथा प्रौढ़ाएँ व वृद्धाएँ अधिकतर भगवे रंग की फनिक व सफेद 'इनफी' में थीं। जैसे राजस के साथ बँधी हुई सात्विकता अपना पृथक् अस्तित्व बताती जा रही हो! तथा पुरुषों की पोशाक थी स्वच्छ-सफेद धोती, कुर्ता, चादर और पगड़ी। और उसी समय 'महाबली ठाकुर' (हनुमानजी) के

मन्दिर की बगल से चार-पाँच सौ पुरुषों का एक भव्य विशाल जुलूस भी राजबाड़ी की ओर बढ़ रहा था। जुलूस के सभी पुरुष पीली धोती, पीला कुर्ता और पीली पगड़ी में सजे थे। और चार झंडियों से युक्त तीन बड़े झंडे—लाल, हरे व पीले रंग के—उनके हाथों मे लहराते यों लग रहे थे जैसे राजा की सलामी के लिए जा रही सेना की अलग-अलग टुकड़ियों के विभिन्न-रगी झडे!

महाराजा के गृहदेवता 'श्रीगोविन्दजी' के विशाल भव्य मंडप मे आज तिल धरने की भी जगह न थी। अवसरोचित साज-सज्जाओं मे सज कर पृथक् टोलियों में सट कर बैठे नर-नारियो का समूह बहुत कुछ यों लग रहा था जैसे मडप के विशाल फरश पर मानव-पुष्पों के अनेक गुच्छे करीने से सजा कर रखे गये हों! गोविन्दजी के मन्दिर में जगन्नाथ-जी की मूर्ति के अतिरिक्त राधा-कृष्ण, सीता-राम और लक्ष्मण की मूर्तियाँ भी थीं। शैलेन्द्र और चन्द्रावत ने मूर्तियों को प्रणाम किया। फिर वे विशिष्ट दर्शकों की टोलियों मे, प्रथम पक्ति में यों जा बैठे जैसे दीपकों की जगमगाती पक्ति में बिजली के दो जलते हुए बल्ब!

कीर्तनियो के अनेक दल अपनी-अपनी पारी की प्रतीक्षा मे वहाँ बैठे थे। प्रत्येक दल के पहिनावे का रग भिन्न-भिन्न था, पर पोशाक की शक्ल और साज एक जैसी। धोती, कुर्ता और पगड़ी की एक जैसी पोशाक में वे सेना की विभिन्न टुकड़ियों जैसे दीख रहे थे। किसी दल का रंग बिलकुल सफेद था, किसी का बिलकुल पीला, और किसी का बिलकुल गुलाबी। लेकिन इन सबके मुख्यतया दल दो ही थे—एक श्रीगोविन्दजी का, दूसरा मणिपुर-नरेश का। और होली-कीर्तन के वाद्य-उपकरण थे—झाल, मृदग, ढोल, डफली आदि।

महाराजा मुख्यासन पर विराजमान हो चुके थे। जैसे माला का 'सुमेरु' मनकों के बीच चमक रहा हो! उन विभिन्न वाद्यों के सम्मिलित झंकार से मंडप का कोना-कोना यों सजीव हो उठा था जैसे चिड़ियों की

चहचहाहट से कोई उपवन। पारी-पारी से वे दल उन वाद्यों के लय-ताल में अपने स्वरों को मिला कर व्रज की मीठी बोली में होली के मधुर व सशक्त रागों से सबको या हिलाये और कँपाये-दे रहे थे जैसे सागर में रह-रह कर उठती हुई लहरें दर्शकों के दिलों को। उनके अंगों की तालबद्ध भंगिमा और लयबद्ध कम्पन के साथ स्वरों के आरोह और अवरोह में दर्शकों के हृदय बँध कर मानो गेंद बन उछलने और गिरने लग जाते। गजब की सजीवता थी! और मणिपुर-नरेश खुश हो-हो कर उन सबको पान की गिलोरियों एवं अन्य पुरस्कारों से प्रसन्न किये जा रहे थे। जैसे किसी अखाड़े का समदर्शी अध्यक्ष दंगल के हर दल को पुरस्कृत और प्रोत्साहित कर रहा हो!

और बीच-बीच में अबीर-गुलाल की पिचकारियाँ भी खूब छूट रही थीं। जैसे हृदय के उल्लासभरे खून के मीठे-मीठे छींटे छिटक कर सबको प्यार और समत्व का सन्देश दे रहे हों! युवा-युवतियों की तो बात क्या, वृद्धाएँ भी उन्हें गोविन्दजी का पावन प्रसाद समझ कर बड़ी श्रद्धा से ग्रहण किये जा रही थीं। किसी के भी वस्त्र इस पवित्र प्रसाद के छींटों से अछूते न रहे। स्वयं नरेश के वस्त्र भी अछूते न रह सके। मानो जीवन का उन्मुक्त उल्लास धार्मिक भावना से बँधा हुआ भी, भेद-भाव की चौड़ी खाई को बेहिचक पाटे जा रहा था। पाट चुका था।

होली का उन्मुक्त उन्माद चालू रहा। लेकिन महाराजा कुछ देर बाद उठ कर महल में चल दिये। चन्द्रावत को भी मौका मिला। शैलेन्द्र इस बीच कई बार धीमे स्वर में उठ चलने का आग्रह उससे कर चुका था। सो अब मौका मिलते ही दोनों मित्र भी वहाँ से उठ कर घर की ओर चल दिये।

शैलेन्द्र का हृदय बड़ा भावुक था। उस भावुक कोमल हृदय में आज सवेरे एक काँटा बिंध चुका था। उस काँटे का दर्द उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। होली का स्नेहिल उन्मुक्त उल्लास भी उस दर्द को दबा न

सका। "गनीमत है चन्द्रावत, कि एक पढ़े-लिखे बगाली ने किसी एक मणिपुरी को भी सभ्य और सुसंस्कृत तो मान लिया?" तोम्पोक सिंह के इस उपालम्भ-भरे व्यगवाक्य को होली के इस उल्लास-हुलास में भी वह भूल न सका। यह जैसे समस्त शिक्षित बगालियो के प्रति बड़ा गहरा और तीखा व्यग था। तो क्या पढे-लिखे बगाली इतने संकीर्ण, अनुदार और नासमझ होते हैं जिनकी नजरों में सिवा बंगाली और बगाली समाज के कोई अन्य व्यक्ति या समाज सभ्य और सुसस्कृत होता ही नहीं? 'मणिपुरी' इस शब्द से मतलब समस्त गैरबगालियों से था इसे समझते शैलेन्द्र को देर न लगी थी। स्वभाव से पर्यटक होने के कारण वह भारत के कई प्रान्तों मे घूम चुका था। स्वभाव से उदार होने के कारण गैरबगाली मित्रों की भी उसे कमी न थी। ऐसे अभियोग और उपालभ उसके कानो के लिए बिलकुल नये भी न थे। लेकिन आज के इस उपालभ ने उस विस्मृत दर्द को खरोंचा मार कर यों जगा दिया जैसे विस्मृति की मलहम-पट्टी से भरा हुआ दिल का घाव अचानक फूट पड़ा हो!

शैलेन्द्र जन्म से ब्राह्मण हो कर भी जात-पॉत और छुआछूत में विश्वास न किया करता। हर प्रकार की सकीर्णता से वह दूर था। अन्यथा एक मइतेइ के घर का भात बड़े प्रेम से बेहिचक वह कैसे खा पाता? और चन्द्रावत की मॉ को वह अपनी मॉ की तरह प्यार और सम्मान कैसे कर पाता? मणिपुरियों के बीच इन चन्द दिनों का निवास ही उत्तरोत्तर उसके हृदय में मणिपुरी समाज के लिए आदर और आत्मीयता के भाव कैसे भर पाता? लेकिन तोम्पोक ने तो उसे शिक्षित सकीर्ण बंगाली मान कर ही यह व्यग किया था, यह तथ्य शैलेन्द्र से छिपा न रह सका। अर्थात् वह समस्त बगालियों की संकीर्णता और अनुदारता का प्रतीक बन कर ही उसकी आँखों में प्रकट हुआ है यह सोचते ही उसका सरल सुकोमल मन बेचैन हो उठा। जैसे कोई किसी

जहरीली लौकी की तरकारी खाने के बाद सभी लौकियों को जहरीली और कड़वी मान बैठा हो !

आज उसके बोल-चतियान और व्यवहार में कुछ गम्भीरता-सी आ गई थी। भोजन उसने खिन्न मन से ही किया था। इस समय भी चन्द्रावत से मनोदशा उसकी छिपी न रह सकी। राजबाड़ी से वापस आ कर अब तक दोनों मित्र अपने-अपने पलंग पर बैठ चुके थे।

"तुम जरूरत से ज्यादा भावुक हो शैलेन!"—चन्द्रावत ने मुसकाते हुए मजाक के स्वर में उसे स्वस्थ शान्त करने का प्रयास किया—"क्या हो गया यदि किसी ने कुछ ऐसी-वैसी कह ही दी ? जिस प्रकार बंगालियों को अपनी अनुदारता और संकीर्णता स्वयं नहीं दिखाई देती, उसी प्रकार गैर-बंगालियों और मणिपुरियों की संकीर्णता भी उनकी अपनी आँखों में नहीं उभर पाती। तोम्बोक द्वारा किया गया आक्षेप क्या स्वयं उसकी निज की संकीर्णता का द्योतक नहीं है शैलेन ? पर मुझे इस बात का कम गर्व और अहंकार नहीं कि कम-से-कम मेरा शैलेन संकीर्ण नहीं है! अन्यथा उसने आते ही मणिपुरी समाज को मानव-एकता की प्राकृतिक प्रयोगशाला कह कर इस समाज का इतना भव्य अभिनन्दन व सम्मान न किया होता ?"—कहते-कहते चन्द्रावत के चेहरे पर सचमुच गौरव की एक रेखा उभर आई। और शैलेन्द्र के सरल शुभ्र चेहरे से विषाद की रेखा के मिटते देर भी न लगी।

लेकिन बातचीत का सिलसिला भी शुरू हो चला। शैलेन्द्र ने निष्कपट मन से जोर दे कर कहा—"पर तोम्बोक सिंह का आक्षेप सचाई से रहित तो नहीं चन्द्रावत ? बंगाल से बाहर आसाम, बिहार, उड़ीसा, यू॰ पी॰ आदि प्रान्तों में प्रवासी बंगालियों की संख्या भरपूर है। पर बड़े खेद के साथ इस तथ्य को स्वीकार अवश्य करना पड़ता है मित्र, कि उन प्रान्तों के मुख्य निवासियों में इन प्रवासियों के प्रति श्रद्धा, सद्भावना और आत्मीयता रंचमात्र भी नहीं! काश, ये शिक्षित, पर

सकीर्ण बंगाली इस तथ्य को हृदयंगम कर पाते! इसपर ठंढे दिल से सोच-विचार कर उनकी श्रद्धा और सद्भावना अर्जित करने का सच्चे दिल से प्रयास करते!"—कहते-कहते सचमुच उसके स्वरों में व्यथा उभर आई।

और चन्द्रावत ने उसे पुनः शान्त करने के प्रयास में युक्तियुक्त जवाब दिया—"तुम दुखी न हो शैलेन! केवल बंगालियों को ही दोष देना नासमझी से खाली नहीं है। यदि भारत की किसी अन्य जाति को भी आरभ में उसी प्रकार अग्रेजी शासन के स्तंभ के रूप में अन्य प्रान्तों में प्रवास या निवास करने का अवसर मिल पाता तो वह बगालियों से अधिक उदार न हो पाती यह मै दावे के साथ कह सकता हूँ! देशी या विदेशी किसी भी सरकार के संरक्षण में शासन-यन्त्र का पुर्जा बन कर किसी अन्य प्रदेश मे जीने पर स्वभावतः किसी भी जाति के लोग श्रेष्ठत्व के अहकार से तुच्छ बन सकते हैं। अन्य प्रदेशो और जातियों की तो बात क्या, वे स्वय अपनी जाति के सामान्य नागरिकों को भी तुच्छ समझने लग जाते हैं।"

"पर इसी से इसे अच्छा तो नही कहा जा सकता चन्द्रावत?"

"लेकिन इसी से बंगाली समाज के विशिष्ट गुणों को भुलाया भी तो नही जा सकता शैलेन? तुम यूरप का उदाहरण ले लो। एक ही गोरी चमड़ी के लोग! और एक ही ईसाई धर्म को मानने वाले भी! पर जातीयता की अनुदारता और सकीर्णता के कारण ही तो वे एक न बन सके? अन्यथा वह आज पृथक्-पृथक् जातियों के अनेक छोटे राष्ट्रों में बॅटा न होता? राष्ट्रों का क्षुद्र वैमनस्य और अलगाव वहाॅ कायम न होता? और इसी प्रकार की जातीय व प्रान्तीय सकीर्णता न्यूनाधिक मात्रा में भारत की विभिन्न जातियों और प्रान्तों में भी मौजूद है! प्रवासी बंगालियों के प्रति उनका प्रबल घृणा-भाव ही क्या इस तथ्य में प्रबल प्रमाण नहीं है? फिर अकेले बगाली ही कैसे दोषी जो तुम

इस प्रकार बेचैन हो पड़े ?"—कह कर चन्द्रावत मुसकरा पड़ा।

"तुम तो मुसका रहे हो चन्द्रावत, लेकिन तुम्हारे ही इस उदाहरण से क्या यह घातक संभावना नहीं प्रकट होती कि कहीं जातिवाद और प्रान्तवाद की यह सकीर्णता किसी दिन भारत-भूमि को भी खंड-खड न कर दे ?"

चन्द्रावत सहसा गभीर हो पड़ा। एकाएक कोई युक्तिसगत जवाब उसे न सूझा। मिनट भर चुप रह कर सिगरेट का एक कश खींच कर दृढ गभीर स्वर में वह बोला—"लेकिन मेरा यह विश्वास भी है कि उस समय हमारे देश के अनेक शैलेन्द्र इस प्रवृत्ति का विरोध भी अवश्य करेंगे ! और इस सकीर्ण प्रवृत्ति के लिए केवल बगाली ही जिम्मेदार न ठहराये जायेंगे, बल्कि उन्हीं जैसे सकीर्ण हृदय के विभिन्न प्रान्तों के गैर-बगाली भी ! यह तो एक प्रकार का हमारा साझा राष्ट्रीय दोष है। सभी प्रान्तो एव जातियों के उच्च आचार-विचार वाले लोगों के साझे प्रयत्न से इस साझे राष्ट्रीय दोष का निराकरण भी हो कर रहेगा शैलेन !"—कह कर एकाएक मुहल्ले में बज-उठे ढाल की आवाज की ओर सकेत करके मुसकराते हुए वह बोला—"अब छोड़ो इन बातों को। देखो 'थावल चोडबा' उधर चालू हो चला। कल रात राजवश का 'थावल चोडबा' तुमने देखा और आज यहाँ जनता का देखो। चलो आज तुम्हें भी जरूर नचाऊँगा किसी के साथ।"—कह कर जरा जोर से वह हँस भी पड़ा।

लेकिन शैलेन्द्र ने मुसका कर जवाब दिया—"मैं तो नहीं नाचता किसी के साथ !"

चन्द्रावत ने ललकारा उसे—"क्यों ? क्याँ रे हो ! नवयुवक हो ! फिर यह लज्जा और कायरपन क्यों ? डरो मत ! मणिपुरी तरुणियों में पुरुषों की संकीर्णता तुम्हें बिलकुल नहीं मिलेगी !"—कह कर वह पुनः तनिक जोर से हँसा।

शैलेन्द्र भी हँसा, पर उससे जवाब देते न बना।

अब वह जिज्ञासाभरे लहजे मे बोला—"इस 'थावल चोडबा' की जरा व्याख्या और विश्लेषण तो करो चन्द्रावत!"

"जरा नहीं, खूब ज्यादा करूँगा दोस्त!"—चन्द्रावत ने मुसकाते हुए जवाब दिया। फिर व्याख्या-विश्लेषण की भूमिका उतारते हुए वह बोला—"पहले तो शब्दार्थ समझो। 'थावल' माने चाँदनी और 'चोडबा' माने उछलना। अर्थात् युवा-युवतियो द्वारा सम्मिलित रूप से चाँदनी में उछलने की क्रिया अर्थात् नृत्य।"

शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए प्रश्न किया—"पर अभी तो दिन है, दिन का तीसरा पहर? और दिन मे चाँदनी कहाँ?"

और चन्द्रावत ने तनिक जोर से हँस कर जवाब दिया—"बगाली तो स्वभाव से ही कवि होता है, कविता के हर मर्म को समझने वाला! फिर भी विश्लेषण की जरूरत? वाह प्यारे! क्या इतना भी नही समझ सके कि जिस क्षण भी यौवन का उल्लास मुखरित हो पड़े, वह क्षण ही चाँदनी! और वह काल ही मानो चाँदनी में नहाती हुई रजनी!"

"होता होगा बंगाली स्वभाव से कवि, पर मैं तो नहीं हूँ! लेकिन कविता का तुम्हारा लोहा अब मै जरूर मान गया!"—शैलेन्द्र भी खूब जोर से हँस कर बोला।

"अच्छा तो इसके लिए अपने मित्र को शतशः धन्यवाद!"—चन्द्रावत ने मुसकाते हुए कहा—"अब विस्तृत विश्लेषण भी सुनो जरा! कम मजा न आयगा। बगैर चूँ-चपड़ किये पहले सारी कहानी सुन जाओ। बाद में टीका-टिप्पणी करते रहना।"

शैलेन्द्र सावधान हो पड़ा, और चन्द्रावत ने जरा गला खखास कर इतमीनान से कहना आरभ किया—

"यह यहाँ की पौराणिक किवदन्ती है शैलेन! मणिपुर के आदि

पिता अथवा प्रजापति का नाम 'अतिङ्को' था। अतिङ्को के दो पुत्र थे—'सनामही' और 'पाखम्ब'। दोनों भाइयों में शायद राजगद्दी के उत्तराधिकार के लिए झगड़ा उठ खड़ा हुआ। और तब अतिङ्को ने दोनों पुत्रों को आज्ञा दी सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा की, और प्रदक्षिणा में प्रथम आने वाले के लिए पुरस्कार रखा मणिपुर की राजगद्दी!

"ज्येष्ठ सनामही बड़ा सबल और तेज था। वह पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने झट चल पड़ा। लेकिन पाखम्ब कमजोर था। उसे विजय की आशा कतई न थी। अतः वह घर में ही रहा। और बाद में अपनी माँ 'लइमरेन' के उपदेश पर उसने पिता के आसन को ही पृथ्वी-तुल्य मान उसकी तीन बार प्रदक्षिणा कर डाली। पिता प्रसन्न हो उठा। उसने पाखम्ब को गद्दी दे दी।

"फिर वर्षों बाद सनामही भी पृथ्वी की प्रदक्षिणा पूरी करके घर लौटा। लेकिन राजगद्दी पर पाखम्ब को देख उसके क्रोध का ठिकाना न रहा! उसके क्रोध से पृथ्वी काँप उठी! भूकम्प हो चला! और उस भयानक भूकम्प से प्रजा व्याकुल हो पड़ी! और स्वयं सनामही पाखम्ब की हत्या करने चल पड़ा।

"लेकिन पाखम्ब से प्रजा सन्तुष्ट थी। अतः वह मिल कर सनामही के क्रोध से उसकी रक्षा के प्रयास में लग पड़ी। उसने पाखम्ब को अपने बीच में ले लिया।

"थाबल चोङ्बा नृत्य तुम खुद देख चुके हो। वह प्रजा द्वारा सनामही के कोप से पाखम्ब की उसी रक्षा के सम्मिलित प्रयास का प्रतीक है शैलेन!"

"वास्तव में कथा तो कम मजेदार नहीं है दोस्त!"—शैलेन्द्र ने खूब जोर से हँसते हुए अपना मत प्रकट किया—"लेकिन मौलिक बिलकुल नहीं! ठीक इसी से मिलती-जुलती कथा शिव-पुराण में भी है।"

"अच्छाऽऽऽ !"—चन्द्रावत ने जरा चौक कर आँखें फैला कर आश्चर्य प्रकट किया।

और शैलेन्द्र ने उसका आश्चर्य दूर करते हुए मुसकरा कर कहा—"लेकिन शिवपुराण की उस कथा में पाखम्ब और सनामही की जगह गणेश और कार्तिकेय हैं। अतिङ्को और लइमरेन की जगह शिव और पार्वती हैं। तथा पुरस्कार मे राजगद्दी के बजाय विवाह को प्रथमता है। लेकिन शर्त समान है—पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके कौन पहले पिता के समक्ष उपस्थित होता है !"

"अच्छाऽऽऽ!"—चन्द्रावत ने तनिक मुसका कर पुनः आँखें फैला कर आश्चर्य प्रकट किया। और शैलेन्द्र ने मुसकराते हुए कहना जारी रखा—"बात यो हुई कि गणेश और कार्तिकेय विवाह के निमित्त आपस में झगड़ पड़े—'पहले मेरी शादी, तो पहले मेरी !' और झगडा निबटाने के लिए भगवान् शंकर ने दोनों के सामने शर्त रखी पृथ्वी-प्रदक्षिणा के प्राथम्य की। कार्तिकेय अपने द्रुतगामी मयूर पर सवार हो निकल पड़े, पर गणेश अपने चूहे की सवारी पर कार्तिकेय के समक्ष बिलकुल पंगु थे। अतः उन्होंने चालाकी की शरण ली। इस चालाकी की सलाह उन्हें भी माँ पार्वती से मिली। गणेश ने अपने चूहे पर सवार हो शकर-पार्वती की तीन बार प्रदक्षिणा की। और बताया कि—'माता-पिता में एक पृथ्वी तो क्या, निखिल ब्रह्माड छिपा होता है।' और तब आशुतोष शकर के प्रसन्न होते देर न लगी। और पुरस्कार में कार्तिकेय के लौट कर आने से पहले ही गणेश का 'ऋद्धि' और 'सिद्धि' नामक दो सुन्दरी सुकुमारियों से झट विवाह भी कर दिया गया।"

"और कार्तिकेय का क्या हुआ ?"—चन्द्रावत ने कौतूहलभरे स्वर में पूछा।

"होना क्या था ?"—शैलेन्द्र ने हँस कर जवाब दिया—"सनामही की भाँति वे भी वापस आ कर खूब क्रुद्ध हुए, लड़े-झगड़े, और अन्त में

रूठ कर सदा के लिए माँ-बाप से अलग हो गये! कैलाश से दूर 'क्रौंच' पर्वत पर चले गये। आजीवन क्वाँरेपन और ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया! और तब से वे 'कुमार कार्तिकेय स्वामी' के नाम से प्रख्यात हुए। पूजे जाने लगे। बस!"

"हाय! बेचारा कार्तिकेय!"—चन्द्रावत ने एक बार हँस कर मानो सहानुभूति जताई। फिर आगे बोला—"लेकिन मणिपुर की इस पौराणिक कथा में कुछ और नवीनता है शैलेन! पिता 'अतिङको' को अपनी भूल महसूस हुई। गृह-युद्ध के भयानक परिणाम से डर कर वह सनामही के पास पहुँचा। अत्यन्त प्यार-भरे स्वर में बोला—'क्रोध न करो बेटा! आखिर तुम दोनों सगे हो, सहोदर हो! गृह-युद्ध का परिणाम किसी के लिए भी ठीक न होगा! 'घर फूटे, गँवार लूटे' की कहावत चरितार्थ होगी! सो, तुम दोनों अब सुलह कर लो! क्या हुआ यदि छोटा भाई ही गद्दी का अधिकारी बन गया! लेकिन मैं तुम्हें गद्दी से भी बड़ी चीज देता हूँ। पाखम्ब तो केवल गद्दी का ही राजा है, पर मैं तुम्हें वर देता हूँ कि तुम मणिपुर के घर-घर के राजा बनो! मणिपुर के घर-घर में तुम्हारी पूजा होवे! अब तो मान जाओ, अब तो प्रसन्न हो जाओ, पुत्र!'

"और सनामही सचमुच प्रसन्न हो गया। दोनों भाइयों में सचमुच सुलह हो गई। लेकिन यह प्रसन्नता और सुलह अधिक देर तक न टिक सकी। क्योंकि जब सनामही को मालूम हुआ कि माता 'लइमरेन' के उपदेश पर ही पाखम्ब ने पिता के आसन की प्रदक्षिणा की और गद्दी का हकदार बना, तो उसका शान्त हुआ क्रोध पुनः भभक उठा! लेकिन इस बार उसके क्रोध का शिकार पाखम्ब के बजाय स्वयं माता 'लइमरेन' बनीं। उसने क्रोधावेश में एकाएक 'लइमरेन' का दायाँ हाथ पकड़ लिया! उसे मारना चाहा!

"लेकिन पत्नी का यह अपमान पति से बर्दाश्त न हो सका!

'अतिङ्को' भी क्रुद्ध हो पड़ा । क्रोधभरे स्वर मे सनामही से बोला—'पापी ! तूने माँ का अपमान किया ! उसका दायाँ हाथ पकड़ कर उसका सतीत्व नष्ट कर दिया ! तो ले ! अब अपनी माँ को ही ग्रहण कर अपनी पत्नी के रूप मे ! मै अब इसे कतई ग्रहण नही करता !'

"सनामही अब एकाएक अप्रतिभ हो गया ! डर गया ! लजा गया ! और तब माँ ने अपनी जाँघ से एक कन्या पैदा की । उसे सनामही को दे दिया । वह सनामही की पत्नी बनी। उस कन्या का नाम था 'लइमतानु' जिसका अर्थ होता है—'जाँघ को मथकर पैदा की गई स्त्री ।' और तब से सनामही मणिपुर के घर-घर मे पूजा जाने लगा ! कार्तिकेय की तरह वह आजीवन क्वाँरा और ब्रह्मचारी न रहा !"

फिर एकाएक हँस कर वह बोला—"कुछ तो मौलिकता और नवीनता तुम्हे मिली होगी शैलेन ? बोलो, अपनी राय जाहिर करो ! कैसा मजेदार कथानक है यह !"

शैलेन्द्र ने भी हँस कर सहमति जताई—"खूब मजेदार ! और वैज्ञानिक अध्ययन के लिए खूब उपयोगी भी !" फिर एकाएक गभीर बन कर वह गभीर स्वर मे बोला—"समाजशास्त्र एव नृतत्त्व का यह सिद्धान्त इससे और भी प्रमाणित होता है चन्द्रावत, कि मानव के आदिम समाज मे माताओं से भी मैथुन की प्रथा थी, और बहन से विवाह की भी !"

सुन कर चन्द्रावत एकाएक चौंक उठा। चेहरे पर अरुचि उभर आई । अत्यन्त अरुचिभरे स्वर मे वह बोला—"छी, छी ! तुम क्या बोल गये शैलेन ! छी ! इस विश्लेषण से मैं कभी सहमत नहीं हो सकता ! कभी नहीं !!!"

"चौंको मत चन्द्रावत !"—शैलेन्द्र पुनः गम्भीर स्वर में बोला—"किसी भी विषय के गभीर और वैज्ञानिक अध्ययन के लिए भावनाओं की तिलांजलि हमें देनी पड़ती है । भावना हमें कवि बना सकती है,

मानवता या पशुता के उच्चतम या निम्नतम स्तर तक पहुँचा सकती है, लेकिन हमें तत्त्व-द्रष्टा नहीं बना सकती।"

"लेकिन तत्त्व-दर्शन के मोह में ही क्या भावनाओं की पवित्रता का बलिदान कर दिया जाय? यह पवित्रता ही तो मानव-समाज की सर्वश्रेष्ठ पूँजी है शैलेन!"

"लेकिन इसे तुम क्यों भूलते हो चन्द्रावत, कि 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'। ज्ञान से बढ़ कर पवित्र वस्तु इस संसार में कुछ नहीं! शरीर-विज्ञान का विद्वान् शरीर के गुप्तांगों के परीक्षण, विवरण और विश्लेषण से इसलिए विरत नहीं हो जाता कि सभ्य-संस्कृत समाज में उसकी नग्नता और चर्चा निषिद्ध है, बीभत्स है?"

जवाब में चन्द्रावत के कुछ कहने से पहले ही दो गिलासों में चाय लिये कमरे में माँ प्रविष्ट हुईं। दोनों के आगे एक-एक गिलास रख कर फिर दो कटोरियों में जरा-जरा मूढ़ी (लाई) भी रख गईं।

फिर चन्द्रावत से आदेशभरे स्वर में बोलीं—"यहाँ व्यर्थ की बतकही में लगे रहने से अच्छा हो कि तुम दोनों 'थाबल चोंडबा' देख आओ।" फिर अंगुलियों से शैलेन्द्र की ओर इशारा करके मुसकाते हुए बोलीं—"अपने दोस्त को भी नचाओ न आज! लड़कियाँ हँसी-खुशी से नाचेंगी इसके साथ! और इसे भी मणिपुर की होली जीवन भर याद रहेगी!"

लेकिन माँ के आदेश पर चन्द्रावत बड़े जोर से हँसा। बोला—"मगर मेरा दोस्त बड़ा डरपोक है इमाँ! कल रात आई तो थीं लड़कियाँ, जिनकी जरा-सी हरकत से ही यह घबरा गया! डर गया!" फिर मुसकाते हुए वह शैलेन्द्र से भी बोला—"माँ का आदेश है शैलेन, कि आज तुम्हें भी 'थाबल चोंडबा' में अवश्य, अवश्य नचाया जाय ताकि मणिपुर की होली जीवन भर तुम याद रख सको! कई लड़कियाँ तैयार बैठी हैं पहले से ही मोर्चा बाँधे!"

लड़कियों के मोर्चे की बात सुन कर शैलेन्द्र के चेहरे पर तनिक घबराहट की रेखा उभर आई। चन्द्रावत ने उसे भाँपा और हँस कर मजाक किया—"बातो के ही बहादुर हो यार! केवल बातों के ही कलाकार! राजबाड़ी का 'थावल चोङ्बा' आँखों से देख चुके होने के बाद भी घबराहट? मणिपुर की लड़कियाँ कोई हौवा नहीं होतीं! झटपट चाय पी कर तैयार हो जाओ। और माँ के आदेश का भी तो कुछ ख्याल रखा करो! और एक दूसरी बात यह कि पुराणो में मणिपुर को 'गन्धर्व-देश' भी कहा गया है। गन्धर्वा के इस देश मे आ कर अथवा रह कर यदि गन्धर्व-विद्या से बिलकुल अछूते ही रह गये तो यहाँ आना और रहना ही व्यर्थ!"—कह कर चन्द्रावत मुसकरा पड़ा।

और जवाब मे शैलेन्द्र ने भी मुसकरा दिया।

(५)

आज होलिका-दहन का छठा दिन था। इस बीच राजबाड़ी के 'थावल चोङबा' मे चन्द्रावत और मुक्तावती का नृत्य मे हमेशा साथ रहा। हमेशा उनकी जोड़ी चुनने मे नरेश का हाथ रहा। और मुक्ता के माता-पिता से भी यह तथ्य छिपा न रह सका कि महाराजा की मर्जी है मुक्ता का विवाह चन्द्रावत से कराने की। राजवंश भी महाराजा की प्रजा है, और सामान्य प्रजा भी प्रजा। प्रजा को राजा की इच्छा के विरुद्ध कुछ करने या कहने का अधिकार नहीं, इस नियम को मुक्ता के माता-पिता अच्छी तरह जानते और मानते थे। क्योंकि वे स्वय राजवंश के थे। राज-रक्त का स्वाभिमान उनमे कम न था। अभी तो महाराजा से तीसरी पीढ़ी भी न गुजर सकी थी उनकी। लेकिन चन्द्रावत भी तो अब सामान्य नहीं रह गया था! राज-रक्त का न सही, राजा का एक परम कृपाभाजन और उच्च अधिकारी तो वह बन ही चुका था! अधिकार की दृष्टि से वह मुक्तावती के पिता राजकुमार चन्द्रमणि सिंह

से भी आगे बढ़ चुका था। और चन्द्रावत भी एक प्रकार से निश्चिन्त हो चुका था कि मुक्ता का हाथ उसे सदा के लिए प्राप्त हो ही जायगा।

इस निश्चिन्तता और विश्वास ने उसके हृदय में और भी रंगीनियाँ भरनी शुरू कीं। आजकल उसका चेहरा इन रंगीनियों से उल्लसित रहा करता। अपने को साजने-सँवारने में भी अब वह कुछ अधिक सावधान हो चला। और रह-रह कर शैलेन्द्र से अपने मन के उल्लास को प्रकट करने की आकांक्षा भी उसकी प्रबल होने लगी। ऐसे समय शैलेन्द्र जैसा घनिष्ठ और विश्वस्त मित्र पा कर वह कम प्रसन्न न हुआ।

प्रसंग छेड़ने के विचार से शैलेन्द्र से प्रसन्नताभरे स्वर में वह बोला—"आज 'हलकार' है शैलेन! श्रीगोविन्दजी के बड़े भैया 'श्रीविजयगोविन्दजी' की होली है आज! आज सारा नगर इकट्ठा होगा वहाँ! बड़े मजेदार दृश्य देखने को मिलेंगे! आज देवर-भाभियों का वो युद्ध होगा कि देख कर दंग रह जाओगे तुम!"

और शैलेन्द्र ने भी हँस कर जवाब दिया—"लेकिन मैं तो श्रीमती मुक्तावती और श्रीमान् चन्द्रावतजी का ही युद्ध देखना चाहूँगा। आयेंगी मुक्तावतीजी भी वहाँ आज?"

चन्द्रावत जरा लजा गया, पर भीतर से कम प्रसन्न न हुआ। संकोच-विजड़ित स्वर में बोला—"जब सारा नगर आयेगा तो वे ही क्यों रह जायेंगी? पर हम दोनों का युद्ध अब न होगा। और तुम भी चिन्ता न करो! तुम्हारे लिए भी कोई जोड़ मैं जुटा कर रहूँगा!"

"मैं बिना किसी जोड़ का ही अच्छा हूँ भइया! इस फन्दे में मुझे फाँसने की कोशिश न करना दोस्त!"

चन्द्रावत ने मुसकाते हुए कहा—"यह फन्दा ही कुछ ऐसा विचित्र है दोस्त, कि न चाहने पर भी लोग कभी-कभी अपने-आप इसमें उलझ जाते हैं!"

"चिन्ता न करो। मैं खूब सावधान हूँ इस मामले में!"

चन्द्रावत हँस पड़ा। बोला—"महर्षि विश्वामित्र पराशर आदि भी अपने तईं कम सावधान न थे। यदि मेरा मित्र उन महर्षियों को भी पछाड़ सका तो कम-से-कम मित्र होने के नाते मुझे तो कम गर्व न होगा!"

शैलेन्द्र ने झल्ला कर कहा—"अभी छोड़ो इस फिजूल की बात को! चलो, 'हलकार' देख आये!"

"अच्छा, अब मित्र को नाराज नहीं करूँगा! चलता हूँ।"

उसी क्षण माँ ने चाय से भरे दो गिलास और गरमागरम पकौड़ियो से भरी एक थाली ला कर उन दोनो के आगे रख दी। चाय-पानी से निबट कर और सज-धज कर 'श्रीविजयगोविन्दजी' के मन्दिर की ओर वे चल पड़े।

'विजयगोविन्दजी' के मन्दिर का सारा विशाल आँगन होली के रग मे रँगा हुआ था। छोटे-बड़े दो छत्रदार कैंप तनिक दूर-दूर लगे थे। बड़ा कैंप 'विजयगोविन्दजी' का था और छोटा मणिपुर-नरेश का। कीर्तनियो और गवैयो की टोलियाँ लगभग बारह थी जिनमे एक मणिपुर-नरेश की थी, और शेष जनता और 'विजयगोविन्दजी' की। सबका पहनावा समान था—धोती, कुर्ता और पगड़ी, पर रग सबके पृथक्-पृथक् थे। और झडे भी भिन्न-भिन्न और विभिन्न रंगों के! और एक टोली थी गोपिकाओं की जो ब्रज की ठेठ स्त्री-पोशाक—घाघरा, चोली और चुँदरी मे सजी-धजी एव हाथ में डडा लिये इस प्रकार तैयार खड़ी थीं मानो अभी से वे सोच रही हों देवर-भाभी के होली-युद्ध मे अपने डंडा-प्रहार के निशानों के सम्बन्ध में! मणिपुरी महिलाओं मे पर्दे की प्रथा कतई नहीं है, पर गोपिकाओं की भूमिका में तैयार खड़ी उन महिलाओं की धीमी-धीमी मुसकान उनके घूँघट की ओट में यो चक्कर काट रही थी जैसे पर्दे में कैद चाँद की मुसकान बाहर निकल भागने के प्रयास में हो। वह सारा विशाल आँगन ऐसा लग रहा था मानो स्वयं 'ब्रज'

की आत्मा डेढ़-दो-हजार मील दूर वहाँ पहुँच कर थिरक रही हो !

दर्शकों के मारे तिल धरने की भी जगह न रह गई थी। हर बात में जैसे दो विशिष्ट संस्कृतियों का संगम वहाँ दिखाई दे रहा था। प्रथम तो, नर और नारी संस्कृति का, दूसरे, मणिपुरी और गैर-मणिपुरी संस्कृति का। क्योंकि नारियों का परिधान यदि शुद्ध मणिपुरी था, तो पुरुषों का गैर-मणिपुरी। उनके धोती-कुर्ता और चादर के लिबास में बंगाल की संस्कृति मानो स्वयं बोल रही थी। पर इस उभय तत्त्व को बंगाल का गौड़िया (वैष्णव) धर्म जैसे एक में लपेटे हुए था। हर बाल-वृद्ध नर-नारी के भाल पर गौड़िया वैष्णव तिलक मानो इसी एकत्व का प्रतीक था। तीसरे, आज ब्रज-संस्कृति भी मणिपुरी संस्कृति में मिल कर वहाँ खूब मुखर हो उठी थी !

ढोल, डम्फ, झाल, मृदंग आदि वाद्यों के संघटित सुपुष्ट स्वर गवैयों के सधे स्वरों में मिल कर आकाश को गुँजा रहे थे, दर्शकों के दिलों को हिला रहे थे। स्वरों के आरोह-अवरोहों में मानो बिलकुल घुले-मिले दर्शकों के हृदय क्षण आकाश में और क्षण धरती में उछल-कूद मचाये हुए थे। जैसे गेंद उछल-उछल कर नीचे गिर रहे हों !

अनेक टोलियाँ पारी-पारी से अपना 'पार्ट' अदा कर-करके यथा-स्थान विश्राम लेने लगी थीं। और अब थी स्वयं मणिपुर-नरेश की टोली की पारी। एकाएक जनता की आँखें नरेश की ओर जा लगीं। और नरेश ने अपना पहला लिबास बदल कर अपनी टोली का परिधान धारण किया। भगवे रंग की धोती, कुर्ता और पगड़ी में उनका व्यक्तित्व यों खिल उठा जैसे राजस पर सात्विकता का, भोग पर विराग का रंग जबरन चढ़ा दिया गया हो, चमका दिया गया हो !

महाराजा की टोली भीड़ के ठीक बीच में जा खड़ी हुई। पीले, भगवे और गुलाबी रंग के तीन झंडे टोली के सिर पर लहराने लगे। बजनियों के गलों में बाजों की डोरियाँ बँध गईं। महाराजा स्वयं अपनी

टोली के बीच आ खड़े हुए। उनके गले मे भी एक ढोल बाँध दिया गया। मानो सुन्दर प्रतिमा के गले मे अजीब अभव्य माला डाल दी गई हो!

बाजो पर बजनियो के सधे हुए हाथ थिरक उठे। सधी और मिली स्वर-लहरी अचानक आकाश मे गूँज उठी। महाराजा के हाथ भी निश्चेष्ट न रह सके। मानो लहरो के आघात से नई लहर पैदा हो चली। उनके सधे हाथ भी अपने दल के बजनियो के हाथो के लय-ताल मे मिल कर अपने ढोलक के पेट पर यो थपकने और थिरकने लग पडे जैसे कोई प्यार के आवेश मे अपने बच्चे की पीठ को अभ्यस्त कलात्मक ढग से थपकाये जा रहा हो! और इस बार उन लोगों का नशीला उल्लास भी खूब मुखर हो उठा जो रग भर-भर कर पिच-कारियो के छर्रें छोड़े जा रहे थे। मानो समर-भूमि मे स्वय राजा के सक्रिय प्रवेश ने सैनिको के उत्साह को उन्मत्त बना दिया हो! अब वे केवल पिचकारियो तक ही सीमित न रहे। मानो मन का उल्लास सहसा भीषण बन कर सबकी पीठो पर बरसने लगा। बाल्टी भर-भर कर घोला हुआ रग वे अन्धाधुन्ध यो फेकने और उँडेलने लगे जैसे मशीनगन की गोलियाँ मूक बन कर बरस रही हो! स्वय नरेश की पीठ भी आघातों से अछूती न रही। रग के अनवरत प्रहार से उनकी पीठ का कुर्ता बिलकुल भीग-भीग चला। किन्तु अटल गिरि-शृग की तरह, स्थितप्रज्ञ भाव से वे सब कुछ बर्दाश्त किये जा रहे थे, जैसे अर्जुन की बाण-वर्षा को भीष्म पितामह!

इस प्रकार कुछ देर बाद महाराजा की पारी भी समाप्त हुई। अब अन्तिम पारी रह गई गोपों और गोपिकाओं की। नर-नारी के चिरन्तन प्यारमय संघर्ष का सरस सुन्दर नाटक! प्रकृति-पुरुष के द्वन्द्व का उन्मुक्त मनोहर नाट्य! देवर-भाभी इस द्वन्द्व के लिए पहले से ही तैयार खड़े थे। गोपो की वेश-भूषा ब्रज के ठेठ गोपों की-सी थी। मणिपुरी जवान

पर ब्रज की ठेठ बोली भी अब थिरक उठी! देवर-भाभी का सरस मनहर संवाद! किसी देवर ने ब्रज की बोली में किसी भाभी से मजाक किया, चुनौती दी, तानेकसी की। और अचानक तब भाभियों मे उबाल आ गया। नर-तत्त्व पर नारी-तत्त्व ने संघबद्ध हो हल्ला बोल दिया। और नर-तत्त्व मानो नारी-तत्त्व से बहुत जल्द परास्त हो भाग भी खड़ा हुआ। भाभियाँ अपने हाथों की छड़ियाँ घुमाते मानो विजय के उल्लास में और भी उन्मत्त हो चलीं। देवरों को खदेड़ने में उन्हें खूब मजा आने लगा। और वे पराजित देवर, भाग-भाग कर भीड़ में यों छिपने लगे जैसे मोर्चे के सैनिक शत्रुओं के निशानों से बचने के लिए पेड़ों या खन्दकों की आड़ मे!" जिस किसी की भी पीठ पर भाभी की छड़ी का प्रहार जम जाता, चिहुँक उठ कर भी वह उसे मानो भाभी का प्यारभरा प्रसाद मान कर चुप रह जाता। और जब कोई देवर बाल्टी भर रग ला कर चुपके से भाभी की पीठ पर उँड़ेल देता, भाभी भीतर से प्रसन्न हो कर भी ऊपर से और भी उन्मत्त हो उसका पीछा करने लग जाती। मानो क्रोध का नकाब पहने प्यार दौड़ने लग जाता!

आधे घंटे बाद इस युद्ध में भी शैथिल्य आ गया। मानो नर-तत्त्व ने नारी-तत्त्व के समक्ष पूरी तरह घुटने टेक दिये। और उधर मणिपुर-नरेश ने अपने दल के लोगों में वस्त्रादि का पुरस्कार बाँट अपनी उदारता अथवा स्वार्थ का परिचय भी दिया।

'हलकार' समाप्त हो गया। और उधर सूर्य देवता ने भी कुछ देर मानो सध्या देवी से होली खेल उसके आगे घुटने टेक दिये। महाराजा की कार भी राजमहल की ओर रवाना हो पड़ी।

(६)

'हलंकार' के सातवें दिन मणिपुर के सामाजिक धार्मिक जीवन में पुनः एक वार्षिक पुण्य पर्व उपस्थित हुआ। 'वारुणी' का पुण्य पर्व! चैत्र

कृष्ण त्रयोदशी के दिन ! किन्तु मणिपुर मे विशेष मास-प्रथा का प्रचलन होने के कारण उनकी दृष्टि में यह था वैशाख कृष्ण त्रयोदशी का दिन। उनके लिए होली की पूर्णिमा भी फागुन की पूर्णिमा के बजाय चैत्र की पूर्णिमा थी। वारुणी-पर्व-यात्रा की तैयारियाँ पूर्व रात्रि में ही आरंभ हो चलीं। क्योंकि इम्फाल से पूर्व-दक्षिण के कोने में चार-पाँच मील दूर 'नोंगमाजिंग-चींगजाओ' नामक पर्वत की ऊँची चोटी पर पहुँचना था उन्हे ! घने जंगलों से घिरी हुई ढालों पर आँकी-बाँकी पगडंडी का वह मार्ग बड़ा बीहड़ था ! बाघ, चीता, भालू और बनैले सुअरों से भरे जंगल का मार्ग ! तिसपर प्रस्थान का समय आधी रात के बाद का ! और तिसपर कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी की रजनी के घने काले पर्दे से ढका हुआ पथ-प्रान्तर और दिग्-दिगन्त ! उन दिनों आज की तरह न तो मार्ग बन सका था, न यातायात के साधनों की आधुनिक व्यवस्था हो सकी थी। सैंकड़ो मशालें जल उठीं, और उन जलती मशालों के आलोक मे आबाल-वृद्ध नर-नारियों की सजी-धजी टोलियाँ 'नोंगमाजिंग चींगजाओ' की ओर यों रवाना हो पड़ी जैसे कोई विशाल वाहिनी ऊँचे पर्वत के दुर्भेद्य दुर्ग को विजय करने चल पड़ी हो !

शैलेन्द्र और चन्द्रावत भी तैयार हो कर चल पड़े। प्रस्थान से पूर्व चन्द्रावत ने शैलेन्द्र से कहा था—"मणिपुर देखने आये हो तुम ! तो वारुणी-पर्व के मेले को भी देखो और वहाँ मणिपुरी इतिहास के धार्मिक-सास्कृतिक विकास की एक पिछली कड़ी के प्रमाण रूप मे शिव-पार्वती के मन्दिर को भी। सदियो पहले सारा मणिपुरी समाज शैव था। शिवोपासना ही मुख्य धर्म था हमारा। किन्तु लगभग दो सौ वर्ष पूर्व राजा 'पामहेइबा' के शासन-काल में यहाँ रामानन्दी वैष्णव धर्म को संरक्षण और प्रोत्साहन मिला। सारा समाज रामोपासना के रंग मे रँग गया। और उसके बाद राजा 'भाग्यचन्द्र' के समय में यहाँ आया बंगाल का गौड़िया वैष्णव धर्म जिसने राज्य का संरक्षण और

प्रोत्साहन पा कर सारे समाज को कृष्णोपासना के रंग में रँग डाला। यद्यपि हम उसी रंग मे अब तक रँगे चले आ रहे हैं, किन्तु फिर भी पुराने रग को बिलकुल भूल नहीं गये। यहाँ से सतरह-अठारह मील दक्षिण में 'विष्णुपुर' नामक प्राचीन प्रख्यात स्थान है। मणिपुरी पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान् विष्णु ने सर्वप्रथम 'विष्णुपुर' को ही मणिपुर में निवास-योग्य स्थान बनाया था। वहाँ अनेक वैष्णव देवताओं के अतिरिक्त भगवान् विष्णु का मन्दिर मानो उसी परम प्राचीन स्मृति को आज भी ताजा किये हुए है। इस प्रकार यहाँ शिव और विष्णु की उपासना प्राचीन काल से साथ-साथ चलती आ कर रामोपासना और उसके बाद कृष्णोपासना की व्यापक घनी छाया में यों तिरोहित हो चली जैसे जगल के बीच कोई प्राचीन ध्वस्त अवशेष !"

शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए जैसे चुटकी ली—"और तुम लोग उसी घनी छाया में छिपे अथवा उस छाया के बोझ के नीचे कराहते इन बूढ़े देवताओं के मानो उद्धार के लिए हर वर्ष दल बाँध कर निकलते हो ! आश्चर्य की बात तो यह कि राम और कृष्ण स्वयं विष्णु के अवतार होते हुए भी अपने ही मूलाधार भगवान् विष्णु को यहाँ पारी-पारी से दबाने के निमित्त इस प्रकार आ पहुँचे जैसे कोई शत्रु के शासन और प्रभाव को मिटाने आ पहुँचा हो ! ये देवता लोग भी बड़े लोभी, बड़े इर्ष्यालु और बेईमान होते हैं भइया !"—कह कर वह ठठा कर हँस पड़ा।

चन्द्रावत भी हँसते हुए बोला—"बाप की गद्दी पर बेटे ही तो बैठते हैं ? यदि बाप स्वेच्छा से गद्दी त्यागना न चाहे तो उसके लोभी पुत्र जबर्दस्ती ही अधिकार जमा लेते हैं। समझ लो कि शिव, विष्णु और राम पारी-पारी से निर्वासित किये जा कर अथवा स्वयं 'रिटायर' हो कर किन्हीं-किन्हीं विशेष स्थानों पर अब आराम से बचे दिन गुजार रहे हैं !"

"फिर उनके आराम में खलल पहुँचाने के लिए क्यों आज सदल-बल तुम लोग जा रहे हो? पाप नहीं लगेगा?"

और चन्द्रावत ने फिर हँस कर जवाब दिया—"क्योंकि यदि बूढ़ों की खोज-खबर न ली जाय तो वे बेहद नाराज हो जाते हैं। और एक दूसरी बात! लोग वहाँ जाते हैं एक बहुत बडे स्वार्थ को ले कर। क्वाँरी कन्याएँ और क्वाँरे युवक भगवान् शंकर और जगदम्बा पार्वती के दरबार में उपस्थित हो सुन्दर-सुन्दर वरों और सुन्दरी पत्नियों की मानसिक याचना करते हैं। वर-कन्या के माता-पिता भी पुत्र-पुत्रियों के लिए यही काम करते हैं। चलो न वहाँ! क्वाँरे हो अभी! किसी सुन्दर-सलोनी तरुणी की माँग तुम भी कर लेना अपने लिए!"—कहते-कहते वह खूब जोर से हँसा। हँसते हुए ही फिर बोला—"और यदि तुमने संकोच किया तो मै स्वयं हाथ जोड़ याचना करूँगा—'हे आशुतोष! हे औढर-दानी! हे करुणामयि जगदम्बा! मेरे मित्र के मन को मणिपुर की किसी सलोनी तरुणी के रूप-जादू में इस प्रकार कैद कर दो कि अपने मित्र को छोड़ वह मणिपुर से कभी भाग न सके!'—कहते हुए वह फिर ठठा कर हँस पड़ा।

शैलेन्द्र भी खूब जोर से हँसा। बोला—"बाहर के लोगों में पहले से ही यह खूब प्रख्यात है कि मणिपुर की महिलाएँ बडी जादूगरनी होती हैं। बाहर से पहुँचे किसी भी पुरुष को अपने जादू के जोर से भेड़-बकरा बनाये बिना नहीं छोड़तीं! किन्तु मैं कोई ऐसा-वैसा पुरुष नहीं कि कोई अपना जादू चला कर भेड़-बकरा बना सके मुझे!"—कहते-कहते उसके मुसकाते सुन्दर चेहरे पर अहंकार की तनिक आभा भी चमक उठी।

और चन्द्रावत ने हँसते हुए फिर कहा—"मैं शकर भगवान और पार्वती माता से यह भी प्रार्थना करूँगा कि मेरा शैलेन किसी तरुणी के रूप-जादू में फँस कर भी कभी भेड़-बकरा न बन सके! जानवर बनने के

बजाय मनुष्य के रूप में ही अपनी प्रेयसी का अनुगत बना रहे !"

"धत् !"—शैलेन्द्र ने तनिक गुदगुदी अनुभव करते लज्जित स्वर में कहा—"मै भला किसी का अनुगत बन कर रहूँगा ! अनुगत बन कर रहने को ही तो जानवर बनना कहते हैं भाई !"

"तो मै यही प्रार्थना करूँगा कि वह तरुणी ही मेरे शैलेन की चेरी बन जाय। क्यों ?"—मुसकाते हुए कहते-कहते वह एकाएक गम्भीर हो कर बोला—"सच बताओ शैलेन ! क्या कोई भी मणिपुरी तरुणी तुम्हारे मन को अब तक तनिक भी आकृष्ट नहीं कर सकी ? क्या मणिपुरी महिलाओं मे तुम्हें सौन्दर्य की मोहकता नहीं दिखाई दी ?"

"अवश्य दिखाई दी ! तुम हीन-भाव अनुभव मत करो दोस्त ! किसी भी समाज मे दुर्लभ शारीरिक सौन्दर्य स्वल्प संख्या में ही पाया जाता है। तुम्हारे मणिपुरी समाज में भी इस दुर्लभ सौन्दर्य का नितान्त अभाव नहीं है। बल्कि तुम्हारे मुहल्ले की तरुणियों मे ही मुझे कई दुर्लभ सौन्दर्य दिखाई दिये !"

चन्द्रावत मन-ही-मन खुश हुआ। और उसे लगा जैसे शैलेन्द्र का मन भी अवश्य किसी की ओर आकृष्ट हो चुका है। उसने प्रकट रूप से मुसकाते हुए कहा—"तो अब मुझे कुशल दूती का 'पार्ट' भी अदा करना पड़ेगा अपने मित्र के लिए। किसी दुर्लभ सौन्दर्य को जैसे-तैसे खींच कर अपने मित्र के गले का हार अवश्य बना कर छोड़ूँगा मै !" फिर एकाएक भावना-भरे स्वर में—"शैलेन ! मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं ! क्या धरा है बंगाल में ? 'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।' और मुझे अपने मित्र की विशाल उदारता के सम्बन्ध में राई-रत्ती भी सन्देह नहीं ! सच्चे दिल से मैं पुनः अपने प्रस्ताव को दुहरा रहा हूँ—'यहीं बस न जाओ !' सदियों पहले कितने बंगाली यहाँ आ-आ कर सदैव के लिए मणिपुरी बन गये ! तुम्हारे सहवास में मुझे जो अपूर्व सुख मिल रहा है, कम-से-कम अपने मित्र के इस सुख के लिए ही

जन्म-धरती के मोह का त्याग कर दो ! घर पर माता-पिता भी तो नहीं रहे तुम्हारे ? और यहाँ मेरी माँ तुम्हें मुझसे कम प्यार नहीं करतीं, यह सच मानो तुम !"

"सच मानता हूँ ! सौ बार सच मानता हूँ ! किन्तु अभी तो छोड़ो इस व्यर्थ की बात को । यात्रा पर प्रस्थान करें अब !"

माँ के साथ दोनों मित्र भी मुहल्ले के सहयात्रियो में शामिल हो रवाना हो पड़े । दर्जन भर मशालों के सामूहिक आलोक में चलते-चलते शैलेन्द्र ने देखा कि उन तरुणियों का वह दल भी चपल-चचल गति से आगे बढ़ा जा रहा है जो होलिका-दहन की रात को उससे दान लेने आई थीं । उनमें एक के साथ 'थावलँ चोङ्बा' मे वह नाच भी चुका था । वे तरुणियाँ भी चलती-चलती ही शैलेन्द्र की ओर तिरछी चितवन से देख-देख मुसकरा रही थी । आपस मे चुपके-चुपके जाने क्या-कुछ बोल कर तनिक हँस भी देतीं । शैलेन्द्र अप्रतिभ हो अपनी आँखे झट फेर कर झुका लेता । और चन्द्रावत अंग्रेजी अथवा बँगला में उससे इस प्रकार के मजाक करता—"देखता हूँ, तुम खुद औरत बन गये दोस्त ! अच्छा, बताओ ! इनमें कौन है पसन्द तुम्हें ?"

"तुम भी मजिस्ट्रेट से अब 'ईडियट' (महामूर्ख) बन गये भइया !" शैलेन्द्र ने तनिक झेंप और झल्ला कर जवाब दिया—"अब छोड़ो इन फिजूल बातों को !"

" 'ईडियट' बने विना एक मजिस्ट्रेट भी कुशल दूती का पार्ट अदा नहीं कर सकता दोस्त !"—चन्द्रावत ने हँस कर जवाब दिया—"यदि 'ईडियट' बन कर भी इस 'मिशन' मे सफलता मुझे मिल गई, अपना अहोभाग्य समझूँगा मै !"

"अच्छा, समझ लेना ! अभी तो तेजी से कदम बढ़ा कर इन 'ईडियट' लड़कियों से आगे बढ़ने का प्रयास करो जरा !"

"जरा क्यों, खूब करूँगा !"—कह कर वह शैलेन्द्र का हाथ पकड़

तेज कदमों से अब आगे बढ़ चला। झुंड के बच्चे पीछे छूट गये। लेकिन वे तरुणियाँ भी जैसे इसे अपने तारुण्य का अपमान समझ कुछ मिनट बाद ही झट आगे बढ़ आईं। यह प्रतियोगिता बार-बार चलती रही। उस दल के कई दूसरे लोग मजिस्ट्रेट चन्द्रावत सिंह की इस बचकाना हरकत पर हँस पड़े। बच्चों ने भी उन्हें पछाड़ने की कोशिश की।

चन्द्रावत ने अब हँस कर शैलेन्द्र से कहा—"मणिपुर नारी-प्रधान देश है भइया! यहाँ की नारी-शक्ति पुरुषों से पीछे रह कर हार स्वीकार नहीं कर सकती! अब भलमनसाहत अपनी हार स्वीकार कर लेने में ही है! 'भालो मानुश' की तरह स्वाभाविक गति से ही चलने में भलमनसाहत है अब! माँ भी तनिक पीछे छूट गई हैं, और दूसरे लोग भी हँस रहे होंगे हमारी इस हरकत पर!"

यह सुनते ही शैलेन्द्र एकाएक अप्रतिभ हो उठा। झट रुक कर बोला—"रुक जाओ चन्द्रावत! जवानी की तरंग में आ कर माँ को पीछे छोड़ देना बहुत बड़ा अपराध हो गया! बहुत बड़ा पाप! माँ को साथ ले कर धीरे-धीरे चलेंगे! जहन्नुम में जायँ वे छोकरियाँ!"

चन्द्रावत भी रुक गया। लेकिन हँसते हुए बोला—"ये छोकरियाँ अकेली जाने के बजाय हमारे साथ ही जहन्नुम में जाना कहीं ज्यादा पसन्द करेंगी! साथ वे नहीं छोड़ सकतीं! आखिर हम उनके अभिभावक भी तो ठहरे!"

चार-पाँच मिनट बाद ही वहाँ माँ भी आ पहुँचीं। अपनी प्रतीक्षा में खड़े चन्द्रावत से वात्सल्यभरे स्वर में वे बोलीं—"तुम लोग रुके क्यों 'इबुङो'? तुम लोग ठहरे जवान! बुढ़िया के लिए रुकने की जरूरत क्या? बुढ़िया भी पहुँचेगी ही आखिर! रास्ता वह नहीं भूल सकती। इतने लोग जो जा रहे हैं साथ!"

और चन्द्रावत ने शैलेन्द्र की ओर तर्जनी का संकेत करते शिकायत

की मानो—"मगर तुम्हारा यह बंगाली बेटा जो नहीं मानता इमाँ! कहता है बूढ़ी माँ को पीछे छोड़ देना बहुत बड़ा पाप हो गया! बहुत बड़ा अपराध!"

माँ शैलेन्द्र के चेहरे को वात्सल्य-भरे नेत्रों से देख मुसकाती हुई बोलीं—"कह दे मेरे बंगाली बेटे से, वह मेरी चिन्ता न करे।" और फिर मुसकाते हुए शैलेन्द्र को हाथ के इशारे से आगे बढ़ने का उन्होंने आदेश भी दे दिया।

सब चल पड़े, लेकिन अब माँ की गति का ख्याल करके धीरे-धीरे। अब तक नगर की सीमा से वे बाहर आ पहुँचे थे। घना जंगल आरम्भ हो चला था। उस बीहड़ पगडंडी पर शतशः मशालों के प्रकाश से आगे बढ़ते हुए यात्रियो का अटूट कारवाँ यों प्रतीत हो रहा था जैसे जंगल के बीच से प्रकाश की एक गंभीर सरिता चतुर्दिक् रश्मि-कणों को बिखेरती नीचे के बजाय ऊपर की ओर बढ़ी जा रही हो! और पेड़-पौधो के हरे-हरे पत्ते उस प्रकाश-पुंज मे झिलमिलाते यो दिखाई दे रहे थे जैसे कोटि-कोटि हरे-नीले मणियों का समुदाय पेड़-पौधों की डालों पर सज कर चमक रहा हो, थिरक रहा हो! हिंस्र जन्तु प्रकाश से बेहद डरा करते हैं। उन सहस्रों यात्रियों के कोलाहल में मिल कर गहन जगल के गर्भ को जैसे छेद-छेद कर बिखरती हुई किरणें उनमे भय का संचार करती हुई उन्हें दूर-दूर भगा रही थीं।

इस प्रकार चन्द्रावत और शैलेन्द्र अपने झुंड के साथ चलते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ से पहाड़ की कड़ी चढ़ाई शुरू होती थी। उस तलहटी के जंगल को साफ करके तनिक मैदान-सा बना दिया गया था। वहाँ भी एक अच्छा-खासा मेला लगा हुआ था। क्योंकि वह मैदान 'श्रीविजयगोविन्दजी' का था, और मणिपुर-नरेश की ओर से "रास-लीला" का वहाँ बड़ा शानदार आयोजन था। लीला आरभ भी हो चली थी। कृष्ण की भूमिका में एक बालक था एवं राधा की

भूमिका में एक बालिका। पर गोपिकाओं की भूमिका मे तरुणियाँ भी थीं। कृष्ण के सिर पर मोर-पंख-जटित मुकुट था, गले में जाँघ तक लटकने वाली माला या वनमाला, कमर से टखनों तक पीले रेशम की भड़कीली धोती एवं नंगे बदन में लहराता पीले रेशम का दुपट्टा तथा दोनों हाथों की अंगुलियों में थमी, ओठों से भिड़ी हुई बाँसुरी मन्द मधुर स्वर से जैसे जंगल को गुँजा रही थी। राधा और गोपिकाओं का लिवास बहुत कुछ ब्रज की गोपिकाओं के लिवास का भड़कीला अनुकरण था। कमर से नीचे तक के अगों को ढके हुए रग-बिरगा भड़कीला लहँगा 'पेट्रोमेक्स' और मशालों की रोशनी में लहरा रहा था। बदन मे कसी हुईं चोलियाँ थीं, और सिर पर शृंग की तरह बँधे हुए जूड़ों को ढकती नीचे गले तक झीनी-झीनी चुँदरियाँ लहरा रही थीं। जिनकी ओट से मुसकाते हुए चेहरे यों प्रतीत हो रहे थे जैसे बादलों के झीने आवरण में चाँद मुसकरा रहे हों!

चन्द्रावत और शैलेन्द्र अपने झुंड के साथ एक ओर बैठ कर रास-लीला की झाँकी लेने लग पड़े। मृदग के लय-ताल पर 'ओझा'[१] रास-नृत्य का निर्देश कर रहा था। और ओझा की बगल में बैठी दो पेशेवर गायिकाएँ रह-रह कर सगीत का निर्देश किया करतीं। बग-भाषा के संगीत-पदों एव शब्दों में अपने स्थानीय उच्चारण का रंग भर-भर कर मृदग और करताल के लय-ताल पर वे गा-गा उठतीं—

"कस्तुरी कुम-कुम आगरु चन्दन............
चातकी केतको माधवी मल्लिके, भूमि चम्पक डागर नागर
कुसुमित सुगन्धे...कस्तुरी कुम-कुम........."

रात्रि के शेष पहर के माधुर्य में मिल कर नृत्य-गीत और मृदंग-करताल के सधे-मिले स्वर गहन जगल में गूँजते हुए यों प्रतीत हो रहे

---

१. पेशेवर नृत्य-निर्देशक को मणिपुर में 'ओझा' कहते हैं।

थे जैसे स्वयं 'वनदेवी' रात्रि-शेष में जाग कर वाद्य के लय-ताल पर अपनी सखियों के साथ प्रभाती गा रही हो! श्रीविजयगोविन्द के विपिन-प्रांगण में जैसे द्वापर् की वह वृन्दावनी लीला ही उतर कर, नाच-नाच कर माधुर्य के जादू बिखेर रही हो! और उधर अपनी सखियों की टोली में बैठी वह तरुणी, जो शैलेन्द्र के साथ 'थावल' चोडबा' मे नाच चुकी थी, इस क्षण इस माधुर्य के नशे में जैसे सुध-बुध खो कर शैलेन्द्र के चेहरे को एक टक से, अनुरागभरी चितवन से निहार रही थी। मानो राधा अपने कृष्ण को निरख रही हो! शैलेन्द्र भी जैसे उस चितवन के तीर से चौंक-चौंक कर जब-तब कनखियो से उस तरुणी को निहार लेता। दूसरी तरुणियाँ भी मुसकरा देतीं, शायद ईर्ष्या से उत्तेजित हो कर। लेकिन चन्द्रावत मन-ही-मन खुश हो रहा था। सोच रहा था—"हाँ, एक खूब सुन्दर मछली तगड़े मच्छ को लुभाने आखिर बढ़ी तो! इच्छा मेरी पूर्ण हो कर रहेगी!"

रास-लीला की झाँकी ले-ले कर भीड़ पर्वत-शिखर की ओर बढ़ती जा रही थी। चन्द्रावत भी अपने दल के साथ आगे बढ़ चला। कड़ी चढ़ाई शुरू हो चली। ढालो पर जंगल के बीच से गुजरती आँकी-बाँकी पगडंडी सबको पग-पग पर साँस लेने को मजबूर कर रही थी। फिसलने के भय से सम्हल-सम्हल कर पैर रखना पड़ रहा था। और पग-पग पर फूलती हुई साँसें जैसे पैरो की जंजीर बन कर उन्हें रोक रही थीं। पर्वत की चोटी पर लहराती हुई आलोक-माला नीचे से यों दिखाई दे रही थी जैसे आकाश से चाँद-सूरज उस चोटी पर उतर कर शतशः तारों के साथ थिरक रहे हों! और उत्तरोत्तर ऊँची होती पगडंडी पर मशालों की ऊपर चढ़ती हुई अटूट श्रृंखला जैसे उसी आलोक-माला के आकर्षण से बलात् खिंची जा रही हो!

चलते-चलते ही चन्द्रावत ने शैलेन्द्र से कहा—"वारुणी की यह यात्रा तो पर्याप्त प्राचीन है शैलेन, किन्तु इस अवसर पर रास-लीला का

यह आयोजन अधिक प्राचीन नहीं है। ईस्वी सन् १७६४ में 'भाग्यचन्द्र सिंह' मणिपुर के राजा बने। कहते हैं उन्हीं को विजयगोविन्दजी ने स्वप्न में निर्देश किया था इस स्थान का। उन्हें बताया था—'थइबोङ-पाम्बी के नीचे उस जगल मे मैं निवास करता हूँ।' और महाराजा भाग्य-चन्द्र ने स्वप्न-निर्देश के अनुसार इस स्थान की तलाश करते-करते 'थइबोङ-पाम्बी' के इस जंगल को देख लिया। उस दिन से इस स्थान पर राज्य की ओर से वारुणी-यात्रा के अवसर पर नियमित रूप से रास-नृत्य का आयोजन किया जाने लगा। यहाँ भी श्रीविजयगोविन्दजी के मन्दिर के निर्माण की योजना बनाई जा रही है। फिर तो 'थइबोङ-पाम्बी' के इस वन की छटा ही कुछ और होगी! 'थइबोङ' एक बड़े आकार का बड़ा स्वादिष्ट फल होता है, और 'पाम्बी' माने वृक्ष। आम और थइबोङ के वृक्ष धार्मिक दृष्टि से बड़े पवित्र माने जाते हैं। वे जो पीपल जैसे पत्तों वाले वृक्ष तुमने देखे होंगे वे ही 'थइबोङ-पाम्बी' हैं। फल का मौसम अभी नहीं है, नहीं तो चखाता तुम्हें! बड़ा मीठा होता है! बड़ा ही स्वादिष्ट!"

और शैलेन्द्र ने हँस कर जवाब दिया—"और अभी उस 'थइबोङ-पाम्बी' के वन में जिस माधुर्य की वृष्टि हो रही थी, क्या थइबोङ के फल में उससे अधिक मिठास और स्वाद होता होगा?"

और चन्द्रावत ने शैलेन्द्र की हथेली को अपने हाथ से दबा कर मुसकाते हुए धीरे से कहा—"सच शैलेन! मुझे भी अपनी मुक्ता याद आ गई थी वहाँ! हृदय में प्रविष्ट हो वह इस प्रकार मधुर हो उठी कि क्या बताऊँ भइया! और मैं यह भी वहाँ देख रहा था कि एक राधा भी अपने कृष्ण से आँखें लड़ा-लड़ा कर उसके हृदय में माधुर्य का नशा भर-भर कर उसकी आँखों में उतार रही थी!"—कह कर वह जोर से हँस पड़ा।

शैलेन्द्र झट तात्पर्य समझ कर झेंप चला। और चन्द्रावत को

हँसी ने आगे बढ़ती तरुणियों को भी जैसे खरोंचा मार कर तनिक मुड़ कर देखने पर मजबूर कर दिया। मशाल के प्रकाश मे उन मुड़े तिरछे चेहरों पर मन्द मधुर मुसकान की लहरियाँ और बाँकी भौहो की भगिमा और भी मधुर बन कर चमक उठीं। शैलेन्द्र ने भी देखा उस ओर। अपनी राधा की बाँकी चितवन को अपने पर ही निबद्ध देख वह पुनः अप्रतिभ हो उठा। लेकिन उसी क्षण आकाश मे बिजली कड़क उठी! बादलों से सारा आकाश पटता हुआ-सा दिखाई दिया! सब लोग सहम कर, सावधान हो कर तनिक तेजी से आगे बढ़ने लगे। क्योंकि आकस्मिक वर्षा की झड़ी से मशालो के बुझने, स्वयं भीगने और अँधेरे में उस पिच्छल ढलानी पथ पर फिसल-फिसल कर गिरने का खतरा जैसे एकाएक उनकी आँखो में साकार हो उठा।

अपनी माँ का हाथ पकड़ तनिक तेज कदमों से ऊपर बढ़ते हुए चन्द्रावत ने कहा—"शैलेन! अक्सर हर वर्ष इस यात्रा के पथ पर देवराज इन्द्र का यह कोप बरसा करता है! बड़ा ईर्ष्यालु देवता है यह इन्द्र! न तो ऋषि-मुनियों की तपस्या को बर्दाश्त कर पाता है, न सामान्य मनुष्यो की सामान्य तपस्या को! शायद डर रहा होगा कि औढरदानी शकर से कोई व्यक्ति अपने दूसरे जन्म मे इन्द्र की गद्दी का अधिकारी होने का ही कहीं वर न माँग बैठे!"—कह कर वह हँस भी पड़ा।

शैलेन्द्र ने भी हँसते हुए कहा—"गद्दी पर बैठने के लोभ की अपेक्षा उस गद्दी से चिपके रहने का लोभ कही और भी भयानक होता है चन्द्रावत! क्या देवता और क्या मनुष्य, सबकी मनोवृत्ति इस दिशा में समान होती है।"

इतने में वर्षा की झड़ी भी आरंभ हो चली। लोग जलती मशालो को झड़ी के आघात से बचाने का प्रयास कर के भी बचा न सके। देखते-ही-देखते घोर अन्धकार के हजारों काले पजे शेषनाग के सहस्र फनों की

तरह फैल कर धरती और आकाश मे बिछ गये। और तिसपर आँधी-तूफान का सवेग हाहाकार, एव रह-रह कर बिजलियों के कड़क उठने की भयानक हुंकार जैसे घाव में उठे असख्य फोड़ों की तरह उस पथ की पीड़ा को बढ़ाने लग पड़ी! चन्द्रावत ने झट जेब से अपना बड़ा टॉर्च निकाल कर जला दिया। जहाँ-तहाँ कई दूसरे टॉर्च भी जल उठे। लेकिन उस घोर अन्धकार मे टॉर्चों की वह रोशनी इक्के-दुक्के जुगुनुओं की रोशनी-सी दिखाई दे रही थी। लेकिन आस-पास के यात्रियों के लिए उसका कम महत्त्व न था। चन्द्रावत और शैलेन्द्र ने स्वय आगे-पीछे हो कर माँ को अपने बीच मे ले लिया। और चन्द्रावत की टॉर्च की रोशनी मे मुहल्ले की तरुणियों का वह दल सहमे और सावधान कदमों से आगे-आगे चला। उन दो स्पृहणीय तरुणों के समक्ष फिसल कर गिरने की घोर लज्जा उन्हें खूब सावधान बना चुकी थी। बूँदों का सवेग समूह अलकों पर गिर-गिर कर उनके कपड़ों पर बिखर रहा था। रास्ते के पेड-पौधे अपनी डालों की छाया उनपर कर के जैसे छातों का काम दे रहे थे। माताएँ अपने शिशुओं को पीठ पर बाँधे अथवा हाथ में सम्हाले चल रही थीं। बहनें अपने बड़े भाइयों का हाथ पकड़े चल रही थीं। कहीं-कहीं एक दूसरे से टकरा कर कुछ लोग गिर भी पड़ते, और झट स्वय सम्हल कर या सम्हाले जा कर उठ कर आगे चल पड़ते। इस प्रकार पीछे के यात्रियों की 'ट्रेन' सहसा रुक कर चिल्ल-पों मचाने लग जाती। वर्षा और आँधी का वेग बीच-बीच में तनिक मन्द पड़ कर मानो उन आपद्-ग्रस्त यात्रियों को तनिक राहत पहुँचाने का प्रयास करता।

इस प्रकार गिरते-पड़ते और पथ की भयानक पीड़ा को बर्दाश्त करते यात्रियों का दल एक ऐसी जगह आ पहुँचा जहाँ उन्हें तनिक राहत महसूस हुई। चोटी से कुछ नीचे खुली जगह में नागाओं की एक बस्ती थी। लेकिन हिन्दू मणिपुरियों की दृष्टि में नागा ठहरे अछूत! अतः

उनके घरों में जा कर सिर छिपाने के बजाय बस्ती के किनारे खड़े बड़े वृक्षों की छाया में वे खड़े हो साँसों को सन्तुलित करने लग पड़े। नागाओं के पालतू मुर्गे अब जाग कर बाँग दे-दे कर भोर होने की सूचना सबको दे रहे थे। अपने खोभाडों में नजरबन्द सुअरों का परिवार भी जाग कर 'चें-चें चूँ-चूँ' कर रहा था। आँधी का वेग भी थम चुका था। वर्षा भी थमने ही वाली थी। मानो उसकी सबल सहेली आँधी दूर से ही उसे जबरन खींच अपने साथ ले जाना चाह रही हो! उषा भी बादलों के पर्दे को चीर कर उभर आना चाह रही थी। वर्षा थम गई। आकाश साफ होने लगा। लेकिन अँधेरा अब भी तनिक शेष रह गया। नागाओ से आग माँग कर लोगों ने फिर से मशालें जलाईं। और रात के शेषांश मे मशालों की कतार फिर यो चमक उठी जैसे उषा के सहस्त्र नेत्र अचानक खुशी में चमकने लग पडे हो!

उत्तरोत्तर आकाश साफ होता जा रहा था। उसकी लाली उत्तरोत्तर यों फैलती जा रही थी जैसे झीनी-झीनी लाल चुनरी को कोई अदृश्य जादूगर प्राची के आकाश मे फैलाता जा रहा हो! भोर के तारों के प्रकाश की भाँति मशालों का प्रकाश भी धीमा पड़ता जा रहा था। मशालें अब एक-एक कर बुझाई जाने लगी और देखते-ही-देखने बाल सूर्य का बिम्ब भी प्राची के पेट से निकल कर मुसकराने लगा। सूर्य-किरणों की कोटि-कोटि सेनाएँ कुछ क्षण में ही धरती और आकाश में फैल चलीं। वर्षा मे सद्यःस्नात तरु-गुल्मों के पत्र-पल्लव सुनहली किरणों मे नहा-नहा कर यों चमकने लग पड़े जैसे स्नान के बाद तेल-कंघी के परिष्कार से चेहरे चमकने लगते हैं। चोटी पर मन्दिर के गुंबज और कलँगी में भी मानो खुशी की मुसकान कौंद-कौंद उठने लगी।

चन्द्रावत और शैलेन्द्र अपने दल के साथ चोटी पर जा पहुँचे थे। मन्दिर के चतुर्दिक् मैदान में भीड़ काफी जम चुकी थी। वर्षा से सबके वस्त्र गीले हो चुके थे। कुछ लोग मारे ठंढ के काँप भी रहे थे। इस क्षण

सूर्य की किरणों से जैसे गरम-गरम मीठा रस उनके अंगों में प्रविष्ट हो उन्हें सुख पहुँचा रहा था। चन्द्रावत के दल की तरुणियाँ तनिक धूप सेंक लेने के बाद माँ के साथ जंगल में जा बढ़ीं शौचादि के निमित्त। दूसरी ओर चन्द्रावत और शैलेन्द्र चल पड़े। और फिर चोटी के आँगन के बड़े तालाब मे नहा-धो नये-धुले कपड़ों और गोपीचन्दन में सज-धज कर सबके चेहरे यों चमकने लग पड़े जैसे साज-शृंगार के बाद प्रतिमाएँ। क्वाँरी कन्याएँ और तरुणी सधवाएँ लाल, पीले, हरे व बैगनी रंग की फनिकों और इनफियों में सज उठीं और वृद्धाएँ हलकी गेरुआई अथवा सफेद फनिकों और इनफियों में। बैगनी रंग की बहुरंगी-धारीदार और कसीदा-कढ़ी बहुमूल्य फनिकों एवं रेशम की चादरों में सजी कुछ तरुणियाँ धन-वैभव का गर्व भी जता रही थीं। पुरुषों का लिबास सफेद धोती, कुर्ता एवं सूती अथवा रेशमी चादरों में सात्विक भाव को जता रहा था। मैले कपड़ों मे भिखमंगों की टोलियाँ भी विचर रही थीं।

मन्दिर के आँगन में सरस्वती-कुंड, काली-कुंड आदि विभिन्न देवताओं के कई यज्ञ-कुंड भी मौजूद थे। और मन्दिर के चतुर्दिक् हरे-भरे जगल के रूप में मानो प्रकृति ने मनोहर किले का निर्माण कर दिया था! ताइरेन, सइकुही, लिम्पोप, उपल, उइन और थांगजी आदि विभिन्न जाति के छोटे-बड़े वृक्षों से जंगल समृद्ध था। 'उइन' के वृक्ष गृह-निर्माण के लिए बड़े कीमती माने जाते हैं। हिंस्र पशुओं का कोई अस्तित्व अभी प्रतीत नहीं हो रहा था। हिरणों के झुंड भी छिप चले थे। किन्तु विभिन्न जाति के पक्षी अभी उड़-उड़ और बोल-बोल कर जैसे मेले की मौज मना रहे थे। जंगली कबूतरों का झुंड उड़-उड़ कर बिखरे दानों को चुग रहा था। कोयल की तरह मीठे स्वर वाले 'ताम्ना' पक्षी अभी भीड़ के कारण अपनी 'ताम्-ताम्' की मीठी आवाज को छिपाये कहीं जंगल में छिप चले थे। लेकिन कौवों का काँव-काँव का सामूहिक कटु स्वर तनिक तेज हो चला था। और इस काँव-काँव के

विरोध में ही मानो 'चरोय' जाति के पक्षी एकाकी या सामूहिक रूप में 'चें-चों-च' का राग अलापते हुए अचानक चहकने लग जाते थे।

मारे भीड़ के कन्धा छिल रहा था। मन्दिर में आसानी से प्रवेश और दर्शन पाना बड़े साहस का कार्य था। चन्द्रावत के दल की तरुणियाँ भी अब मन्दिर में प्रवेश की तैयारी कर रही थीं। और मन्दिर में प्रवेश करने से पहले 'राधा' ने अपनी सखियों की आँख बचा कर एक बार खूब गहराई से, तिरछी आँखों से, अपने 'कृष्ण' की ओर देखा। मानो उस रूप को हृदय में पुनः कैद करके ही वह मन्दिर में प्रविष्ट होना चाह रही हो! लेकिन सखियो से उसकी यह चोरी छिपी न रह सकी!

"अरी तोम्बी!"—थम्बाल पोम्बी ने जैसे चोरी का भंडाफोड़ करते हुए मीठी चुटकी ली—"रात रासलीला में बार-बार आँखें चला कर भी चित-चोर को चुरा कर अपने दिल मे क्या कैद नहीं कर सकी तू? तू विश्वास रख, बेचारा बंगाली अब तेरी कैद से छुटकारा कभी पाने का नहीं! चल जल्दी मन्दिर में!"

रुक्मिणी, सत्या और चन्द्रा ठहाका मार कर हँस पड़ीं। और तोम्बी सना झेंप कर एकाएक लाल हो उठी। रुक्मिणी आँखें नचा कर मुसकाती हुई बोली—"तू विश्वास रख तोम्बी, तेरे चितचोर को हममें से कोई भी चुराने की कोशिश न करेगी। बल्कि मै अभी खुद तेरे लिए वर माँगूँगी—"हे शंकर भगवान! हे पार्वती माता! बंगाली बाबू का दिल ऐसा कर दो कि वह बिना किसी नाज-नखरे के हमारी तोम्बी के आँचल मे अपने-आप आ बँधे! तू चिन्ता न कर, मनकामना जरूर पूरी होगी तेरी!'

तोम्बी सना ने तनिक झेंप कर जवाब दिया—"अगर ईर्ष्या से जली जा रही है तो तू ही कैद कर ले उसे! मेरे लिए क्यों, अपने लिए ही जा कर वर माँग!'

"पहले तू जो कब्जा जमा चुकी है उसपर !"—चन्द्रा ने मुसकाते हुए कहा—"वैसे बंगाली बाबू है बड़ा सलोना नौजवान ! मन तो हमारा भी चल चुका था, मगर अब तेरे लिए उसे बकसती हैं हम! यहाँ एक-से-एक सलोने मणिपुरी नौजवान हैं। अब तनिक हमारी ओर से तू ही आँखें चला कर इस भीड़ मे से ढूँढ दे कि उन्हीं को अपने-अपने दिल में बैठा कर आज मन्दिर में हम वर माँगें। तेरी नजर की परख बड़ी तेज है तोम्बी !"

यों तोम्बी सना हास-परिहास की कला में अपनी सखियों से कहीं अधिक प्रवीण थी, किन्तु इस क्षण उसकी मनोदशा यों हो चली जैसे रँगे-हाथों पकड़े गये किसी चोर की ! थम्बाल पोम्बी अब जैसे तोम्बी का पक्ष ले कर बोली—"अब तोम्बी को अधिक लज्जित करना छोड़ कर चलती चलो मन्दिर मे ! हममें किसके दिल में चोर बैठा नहीं है ? हममें कौन दूध की धोई हुई है ? अगर सबका मन बंगाली बाबू पर ही चल चुका हो तो चलो आज हम मिल कर तोम्बी की ही सौत बनने का वर माँगे !"—कहती-कहती वह हँस पड़ी। हँसती हुई ही फिर बोली—"हम पाँच ही तो ठहरीं ! मणिपुर के कई पुरुष पाँच-पाँच को तो बड़ी आसानी से सम्हाल लेते हैं। महाराजा भी बहुतों को सम्हाले हुए हैं। बगाली बाबू भी हमें सम्हाल लेगा। मगर इतनी प्रतिज्ञा करो कि हम सौतें आपस में कभी लड़ें नहीं। नहीं तो बेचारा बंगाली बाबू हमें छोड़ झट बगाल को भाग निकलेगा।"

इस बार तोम्बी भी हँसी। और थम्बाल उसका हाथ पकड़ मन्दिर की ओर खींचती हुई फिर बोली—"तू चिन्ता न कर छोकरी ! हम अपने लिए अलग-अलग वरों की माँग करेंगी।"

इसी क्षण मन्दिर की भीड़ में से अपने परिवार के लोगों के साथ राजकुमारी मुक्तावती उन्हें निकलती दिखाई दी। तोम्बी मुक्ता की सह-पाठिनी रह चुकी थी। उसने अपनी सखियों से उसकी ओर संकेत करते

मुसकाते हुए कहा—"वह है राजकुमारी मुक्तावती ! अभी क्वाँरी है। बताओ तुम लोग ! उसने किसको कैद करने का वर माँगा होगा आज ?"

सभी सखियों की आँखें कौतूहल के आवेग में उसपर जा लगीं। थम्बाल बोली—"क्या यही मुक्तावती है ? जैसे विधाता ने इसे रूप के कुंड मे भिगो-भिगो कर बनाया हो !" फिर एकाएक आँखें नचा कर— "हमें सब कुछ मालूम है तोम्बी ! दादा हमारे बड़े भाग्यवान हैं ! वर माँगा होगा हमारे दादा को कैद करने का ! और क्या ?"

"अच्छा, तनिक ठहरो तुम लोग ! उसे खींच कर लाती हूँ यहाँ। तुम सबसे परिचय करा दूँ !"—कह कर तोम्बी सना दौड़ पड़ी मुक्तावती की ओर, और उसे बड़े प्रेम से खींचते हुए ला कर अपनी सखियों से परिचय करा दिया। हास-परिहास का नया रंग फिर जम गया। लेकिन कुछ क्षण बाद ही मुक्ता का भाई वहाँ पहुँच कर उसे वापस ले गया।

वे पाँच कन्याएँ अब मन्दिर की भीड़ मे खो कर अदृश्य हो गईं। चन्द्रावत और शैलेन्द्र भी माँ को अपने बीच में करके कुछ देर बाद दर्शन कर आये। कुछ देर बाद ही भीड़ छँटने लग पड़ी। इम्फाल के यात्री अब एक दूसरे रास्ते से इम्फाल की ओर लौट चले। चोटी पर से सारा इम्फाल दिखाई दे रहा था। हरे-हरे वृक्षों और वेणु-कुंजो मे छिपे उसके सारे टोले-मुहल्ले लघु रूप मे परिवर्तित यो प्रतीत हो रहे थे जैसे माँ के स्नेहभरे आँचल में छिपे उसके बच्चे ! और इम्फाल का बाजार वृक्षों की छाया के अभाव मे पूरे लघु रूप में दिखाई दे रहा था। जैसे इम्फाल के अनावृत समतल वक्ष पर अनेक छोटी-बड़ी सुन्दर छातियाँ उभरी हुई हों ! दो सहायक नदियों के साथ इम्फाल नदी अपनी आँकी-बाँकी गति में इम्फाल की छाती पर खिंची टेढ़ी-मेढ़ी जल-रेखा-सी प्रतीत हो रही थी। और चारों ओर के पर्वत-प्राचीरों में घिरी मणिपुर की उपत्यका भी जैसे सिकुड़ कर आँखों में प्रविष्ट होना चाह

रही थी। और ढालों पर चचल चपल गति से उतरती यात्रियों की अटूट श्रृंखला यों दिखाई दे रही थी जैसे पर्वत की चोटी से मनुष्य की बहुरंगी अटूट धारा लुढ़कती बही जा रही हो !

शैलेन्द्र और चन्द्रावत भी अपने दल के साथ नीचे उतर पड़े। उतराई का मार्ग होने के कारण पग-पग पर साँस फूलने की मुसीबत से छुटकारा यद्यपि मिल चुका था, पर अब पैरों को फिसलने से बचाने के लिए उन्हें सन्तुलित रखने की नई मुसीबत थी। लेकिन फिर भी गति सबकी तेज हो चली थी। जैसे ऊपर का कोई अदृश्य चाबुक उन्हें तेज-तेज चलने पर मजबूर कर रहा हो ! कुछ देर बाद ही वे समतल-से मार्ग पर आ पहुँचे। होटल खुले थे, दुकानें सजी थीं। यात्रियों का दल चाय, चिउड़ा, मूढ़ी, केले, पपीते आदि वस्तुएँ खरीद-खरीद अपनी भूख शान्त करने लग पड़ा था। किसी बाजारू अथवा स्वादिष्ट चीज को न खाने का माँ का अखड व्रत चन्द्रावत को मालूम था। अतः माँ के आग्रह-अनुरोध पर वे दोनो होटल मे बैठ कर नाश्ता-पानी करने लगे। चन्द्रावत ने उन पचकन्याओं के हाथ भी कुछ रुपये जबरन थमा दिये ताकि वे भी अपने मन की चीजें खरीद कर खा सकें। मुहल्ले के बच्चों को वह मेले मे ही पैसे दे कर सन्तुष्ट कर चुका था।

(७)

"होली और 'हलंकार' का रंग समाप्त हो गया ! और वारुणी-यात्रा का रंग भी !"

चन्द्रावत ने हुक्के का एक कश ले मुँह से धुआँ फेंक कुछ ऐसे स्वर मे कहा मानो खुशी का आया हुआ दिन सहसा विदा हो पड़ा हो ! मानो सरस मित्रों की टोली दस-पाँच दिन जीवन मे उतर कर फिर अपना सारा सारस्य लिये दूर चल पड़ी हो !

लेकिन शैलेन्द्र ने सिगरेट का एक कश खींच कर चन्द्रावत के मन

में सहसा उभरी हुई उदासी को जैसे दूर करते हुए मुसकाकर उसे आश्वासन दिया—"समाप्त हो जाने दो इन रंगों को, पर दिल के रग को समाप्त कभी न होने दो!"

चन्द्रावत के मन को मानो सचमुच कुछ राहत मिली। मित्र के इस परामर्श और प्रोत्साहन पर उसके हृदय मे एकाएक नया रग उभर आया। मुक्तावती अपनी सारी मोहकता के साथ वहाँ आ खड़ी हुई। कल ही तो वारुणी पर्वत पर वह मिली थी। अपने चेहरे पर सकोच का माधुर्य लिये उसने चन्द्रावत को नमस्कार भी किया था। इस नमस्कार मे ही मानो उसका हृदय उतर कर चन्द्रावत के हृदय में जा पहुँचा था। जैसे चमेली का सौरभ हृदय मे प्रविष्ट हो उन्माद भर चुका हो! वही सौरभ अब पुनः उभर उठा।

चन्द्रावत कोहनी के बल तनिक करवट लेटे, हुक्के का पुनः एक हलका कश खीच, पाइप को ओठो से भिड़ाये हुए ही पागलो के लहजे मे जिज्ञासाभरे स्वर मे बोला—"प्रेम करना बुरा तो नहीं शैलेन?"

शैलेन्द्र हँसा। मुसकाते हुए बोला—"प्रेम को तो भगवान् कहा गया है! यदि प्रेम बुरा तो भगवान् भी बुरा!"

"पर भगवान् तो बुरा नहीं है शैलेन! सारी सृष्टि ही भगवान् है, भगवान् का रूप है! तो तात्पर्य यह कि सारी सृष्टि ही प्रेम है? प्रेम का ही पावन प्रतीक?"

"अवश्य!"—शैलेन्द्र ने दृढ़ता से जवाब दिया—"विना प्रेम के सृष्टि हो ही नही सकती! टिक ही नहीं सकती! और विना सृष्टि के भगवान् रह ही नहीं सकता! उसका अस्तित्व सिद्ध किया ही नहीं जा सकता!"

"तो तात्पर्य यह कि प्रेम के विना भगवान् का भी अस्तित्व नही?"

"अस्तित्व और आस्तिकता का मूल आधार ही प्रेम है। विना प्रेम

के अस्तित्व और आस्तिकता है ही नहीं ! सृष्टि ही नहीं ! प्रेम से घृणा करना स्वय सृष्टि के घृणा करना है । सृष्टि के अस्तित्व से घृणा करना है ।"

"तो तात्पर्य यह कि घृणा मे नास्तिकता है ? विनाश है ? प्रेम में आस्तिकता है ? निर्माण है ?"

"अवश्य !"—शैलेन्द्र ने पुनः दृढ़ता से जवाब दिया—"किन्तु पहले हमें गहराई से विचारना पड़ेगा कि घृणा क्या है ? प्रेम क्या है ? 'अस्ति' क्या है और 'नास्ति' क्या है ?"—कह कर वह एकाएक दार्शनिक की गंभीर मुद्रा में जटिल लहजे में बोला—"जहाँ घृणा है, वहाँ प्रेम भी है । जहाँ अस्ति है, वहाँ नास्ति भी है ।"

शैलेन्द्र के कहने की शैली पर चन्द्रावत एकाएक ठठा कर हँस पड़ा। बोला—"अब तुम सचमुच दार्शनिक बन गये दोस्त ! किसी वस्तु के प्रतिपादन करने की यही शैली होती है पहुँचे हुए दार्शनिकों की !"

"पर मै तो पहुँचा हुआ नहीं हूँ ! पहुँचने का प्रयास भर कर रहा हूँ ।"

"लेकिन ढंग बता रहा है कि किसी दिन पहुँचोगे जरूर ! सफलता मिलेगी अवश्य ! हर्बर्ट स्पेंसर बन कर रहोगे !"—कह कर वह फिर हँसा ।

शैलेन्द्र लेकिन हँसा नहीं । बोला—"रहने दो हर्बर्ट स्पेंसर को अपनी जगह । नाहक हँसने के बजाय जरा समझने का प्रयत्न भी तो करो ! जहाँ तुम्हें सत्य से प्रेम है वहाँ असत्य से घृणा भी है । जहाँ तुम्हें सत् के अस्तित्व में विश्वास है, वहाँ असत् के नास्तित्व में भी । असत्य से घृणा किये विना तुम सत्य से प्रेम नहीं कर सकते । 'असत्' अर्थात् स्व-विरुद्ध पक्ष के नास्तित्व अर्थात् उसके अनौचित्य में विश्वास किये विना तुम अस्तित्व अर्थात् स्वपक्ष के औचित्य में विश्वास नहीं कर सकते। अतः हर व्यक्ति आस्तिक भी है, नास्तिक भी! हर व्यक्ति में प्रेम

भी है, घृणा भी ! अर्थात् प्रेम और घृणा जुड़वाँ भाई-बहन हैं, सहोदर हैं। सृष्टि-चक्र को चालू रखने के लिए ये उभय तत्त्व आवश्यक हैं, अन्योन्याश्रित हैं। जैसे दिन के लिए रात और रात के लिए दिन !"

चन्द्रावत इस बार और जोर से हँसा। बोला—"विश्लेषण तो तुम्हारा निःसन्देह गहरा है, पर क्षमा करना कि उस गहराई में उतरने की क्षमता मुझमें नहीं है अभी ! सीधे प्रश्न का सीधे शब्दों में जवाब क्यों नहीं देते ?"

"अर्थात् ?"

"अर्थात्"—चन्द्रावत ने मुसका कर आहिस्ते से जवाब दिया—"तोम्बी सना जो तुमसे प्रेम करने लगी है और मुक्तावती मुझसे, अथवा मै मुक्तावती से, यह कोई बुरा तो नहीं ?"

"बुरा क्यो ? बुरा तो वह है कि जो किसी दूसरे को तकलीफ दे, अपने को तकलीफ दे ! किन्तु तोम्बी सना मुझसे प्रेम करने लगी है इस तथ्य मे प्रमाण ?'

"सब कुछ जान-बूझ कर मूर्खता का नाट्य कर रहे हो तुम ! अरे, क्या प्यार की अनुराग-भरी चितवन भी छिपाये छिप सकती है ?' फिर मुसकाते हुए—"सारे टोले-मुहल्ले में इस बात की काना-फूसी भी शुरू हो चली है कि बगाली बाबू तोम्बी सना का सुभद्रा-हरण करने के प्रयास मे हैं ! और उसके माँ-बाप अभी से काफी सतर्क भी हो चुके हैं !"—कह कर वह खूब जोर से हँसा।

शैलेन्द्र भी हँसा, लेकिन दूसरे ही क्षण कुछ सोच कर घबरा भी गया। जैसे उसके कीमती श्वेत वस्त्र पर कोई काला धब्बा अचानक आ लगा हो ! घबराये स्वर मे बोला—"सच चन्द्रावत ? तब तो बड़ी बुरी बात है ! व्यर्थ की बदनामी लोग मढे दे रहे हैं मुझ गरीब पर ! मैने तो स्वप्न में भी ऐसा नहीं सोचा ! केवल यही तो कि उस दिन तुम्हारे आग्रह पर उसके साथ जरा नाचा था ! और सो भी अटपटे ढंग से !

और मुफ्त में सबका उपहास-पात्र बन चला था! वारुणी की यात्रा में वह अधिक बार मेरी ओर ताका करती थी। कभी मैं भी ताक देता था। तो क्या इसी से मान लिया जाय कि वह मुझे खूब चाहने लगी है, और मैं उसे भगा ले जाना चाहता हूँ?"

इस सफाई और घबराहट पर चन्द्रावत और भी हँसा! व्यंग-भरे स्वर में बोला—"किस्मत के सिकन्दर हो भाई! पर सिकन्दर जैसी वीरता और निर्भीकता तुममें नहीं है! मुझे तो उतनी जोर की कवायद करनी पड़ी, और तुम जरा देर अटपटे ढँग से नाच कर ही बाजी ले गये! सच कहता हूँ, तोम्बी सना तुमपर हृदय से अनुरक्त है! अनुरक्त हो चुकी है, जैसे चित्रागदा अर्जुन पर हुई थी!"

शैलेन्द्र अचानक गुदगुदी-सी महसूस करते हुए जोर से हँस पड़ा। बोला—"अर्जुन धनुर्विद्या मे पारगत था और चित्रांगदा थी धनुर्विद्या की प्रवीणा। वह परास्त हो कर अर्जुन पर अनुरक्त हुई थी। किन्तु मैं तो हारा हुआ खिलाड़ी हूँ? बुरी तरह हारा हुआ?"

"स्त्रियाँ कभी परास्त हो कर हथियार डालती हैं, कभी विजयी बन कर!"—चन्द्रावत ने मुसकाते हुए कहा—"अर्जुन और चित्रांगदा के युग मे धनुर्विद्या का सबसे अधिक महत्त्व था, और आज के युग में वही महत्त्व है अंग्रेजी विद्या का! इस विद्या में तुम्हें यहाँ कौन परास्त कर सकता है शैलेन? तोम्बी सना भी इस विद्या के महत्त्व को खूब जानती है। इस विद्या की बदौलत ही तो उसका दादा चन्द्रावत मजिस्ट्रेट बन गया है! फिर यदि वह भी शैलेन्द्र मुखर्जी 'एम० ए०' पर इतनी आसानी से अनुरक्त हो गई हो तो आश्चर्य क्या शैलेन?"

शैलेन्द्र के हृदय के तार-तार रोमांसभरी आकांक्षा के आघात से एकाएक झनकार कर उठे! जैसे शान्त सरोवर हवा के आघात से उछल उठा! तोम्बी सना कोई सामान्य कन्या न थी। रूप और बल में जैसे स्वय चित्रांगदा की प्रतीक! सामान्य पढ़ी-लिखी होते हुए भी वह नित्य

नियमित रूप से व्यायाम किया करती। अंगों में सुपुष्टता और लावण्य मानो खेला करते। घर के काम-काज में भी वह आगे रहती। प्रतिदिन प्रातः अपना घर-द्वार लीपने के अतिरिक्त वह रसोई के ईंधन के लिए बड़े-बड़े कुन्दे कुछ मिनटों में ही फाड़ लेती। दस-बारह व्यक्तियों के अपने बड़े परिवार के लिए मिनटों में छाँट-कूट कर चावल तैयार कर देती। उसके घर की बगल से गुजरते समय एक दिन शाम को स्वयं शैलेन्द्र ने उसे धान कूटते देखा था। कितना सौन्दर्य उसे दीखा था उस क्षण उस श्रम-निरत तरुणी के अंगों के संचालन में! मानो स्वय श्रम का कलात्मक सौन्दर्य उसके अंगों में प्रविष्ट हो नृत्य कर रहा हो! किस भाँति वह अथक-अटूट ताल से मूसल को उठा-उठा कर ओखल में बजारती जा रही थी! और एक हाथ के थकते ही किस प्रकार वह मूसल मानो अपने-आप उसके दूसरे हाथ में आ जाता! शैलेन्द्र ने कुछ क्षण आँख बचाये इस दृश्य को देखा था। वह दृश्य अब भी उसके स्मृति-पट से मिट सका न था। और जब वह 'याङखम' (खड्डी) पर वस्त्र बुनने बैठती तो कुछ घंटों में ही गजों बुन कर सबको आश्चर्य में डाल देती!

शैलेन्द्र ने स्वयं एक दिन 'याङखम' पर बैठे उसे देखा था। और किस प्रकार वह स्वयंचालित यन्त्र की भाँति बड़े वेग से अपनी गोरी, गोल और गठीली बाँहों को सचालित किये जा रही थी! और उस क्षण 'याङखम' के 'खट्-खटाखट्' के अथक-अटूट शब्दों में कितना सुन्दर, कितना सरस सगीत उसे सुनाई दिया था! हर रोज वह मुहल्ले के दूसरे घरों के 'याङखम' के 'खट्-खटाखट्' शब्द अवश्य सुना करता, पर उनमें उसे उतना सुन्दर और मधुर संगीत सुनाई नहीं पड़ता। तोम्बी सना के घर की बगल से गुजरते समय अक्सर उसके मधुर कोमल कठ से निकलते सगीत का माधुर्य भी उसे मुग्ध किये बिना न रहता। और तब उसके हृदय में यह लालसा उठे बिना न रह पाती कि वह घटों वहाँ खड़ा-खड़ा उस माधुर्य को पीता रहे! अनुभव करता

रदे! पर लज्जावश एक मिनट भी वहाँ खड़े रहने का साहस और सौभाग्य वह नहीं पाता! लेकिन फिर भी उस तरुणी के स्वर का माधुर्य उसकी स्मृति के तारों में उतर-उतर कर उसके अन्तस् को अक्सर आन्दोलित किये विना न रह पाता! फिर आश्चर्य क्या यदि ऐसी तरुणी को अपने पर एकान्त अनुरक्त जान कर उसका मन एकाएक रोमांस के स्पन्दन से उत्फुल्ल हो उठा हो!

चन्द्रावत मुसकाते हुए बोला—"घबराने की जरूरत नहीं भाई! प्रेम और युद्ध के मैदान में सब कुछ जायज होता है। तुम अभी बता चुके हो प्रेम करना बुरा नहीं होता। और डरना या घबराना चाहिए बुरी बात से। अब तो इस प्रेम की पूजा करो! खूब खुशी मनाओ, जिस प्रकार मुक्ता के प्रेम को पा कर मैं खुशी मना रहा हूँ मन-ही-मन!"—कह कर वह हँस पड़ा।

शैलेन्द्र भी हँसा। बोला—"तुम्हारे मुख से अपने प्रति तोम्बी सना के प्रेम की पक्की खबर पा कर इस क्षण से ही मेरा मन भी खुश हो उठा है! खुशी मनाने लग पड़ा है!"

चन्द्रावत इस बार हृष्ट स्वर में खूब जोर से हँसा। आँखें नचाते हुए बोला—"अब सही रास्ते पर आये दोस्त!"

"मैं तो तब भी सही था। अब भी सही हूँ। गलत रास्ते पर कभी था ही नहीं!"

"फिर भटक गये न! सीधे शब्दों के बजाय पहेली में मत बोलो दोस्त!"

"क्योंकि प्रेम का प्रसग जो है दोस्त! और प्रेम स्वयं एक बहुत बड़ी पहेली है भइया!"

"तो तुम सीधे रास्ते नहीं न आना चाहते!"—चन्द्रावत जरा खीझ कर बोला।

और शैलेन्द्र ने अपनी उसी मुद्रा में जवाब दिया—"क्योंकि प्रेम

का मार्ग सीधा होता ही नहीं !"

"धत् तेरे की !"—चन्द्रावत ने नाराजी का नाट्य करते हुए हुक्के की नली नीचे फेंक दी।

"धत् तेरे की !"—शैलेन्द्र ने भी उसकी नकल उतारते हुए इस बार हँस कर जवाब दिया—"अगर प्रेम का मार्ग सीधा-सादा होता प्यारे, तो क्यों इस समय चन्द्रावत और शैलेन्द्र की अन्तर्ग्रन्थियाँ अन्तर्द्वन्द्वों के आघात से इस प्रकार आन्दोलित हो उठी हैं ? और क्यों हम अपने मनोद्वन्द्व को सीधे-सादे ढंग से प्रकट न कर अपने मित्र के समक्ष भी घुमा-फिरा कर प्रकट करना चाह रहे हैं ?"

"चन्द्रावत की हिचक क्षणमात्र में रफूचक्कर हो गई। वह खूब जोर से हँसा। हँसते हुए बोला—"अपने मित्र की प्रतिभा और परख का लोहा अब मै मान गया ! तो तात्पर्य यह कि हम दोनों के बीच कोई दीवार न रहनी चाहिए ! यही न, शैलेन ?"

"अवश्य !"—शैलेन्द्र ने अब खुले दिल से जवाब दिया—"यदि दीवार रहेगी तो उसे भेदने और छेदने के लिए टेढे-मेढ़े रास्ते का इस्तेमाल करना ही पड़ेगा !"

"ठीक कहा दोस्त ! मै मान गया !"—कह कर चन्द्रावत ने हुक्के की नली पकड़ ली। फिर आहिस्ते से पूछा—"सच बताना शैलेन ! तोम्बी सना तुम्हें पसद है न ?"

"मूर्ख ! अभी कुछ क्षण पहले तो बता दिया तुमसे !"

चन्द्रावत ने मानो सहसा स्मृति बटोरते हुए कहा—"हाँ ! याद आ गया ! यह जान कर तुम्हारा दिल नाच उठा है कि तोम्बी सना तुमसे प्यार करती है। लेकिन फिर भी पूछता हूँ, सच बताना, क्या सचमुच तुम्हारा हृदय भी तोम्बी सना की ओर खूब आकृष्ट हो चला है ?"

शैलेन्द्र क्षणभर चुप रहा। फिर बिना किसी संकोच के हृदय की

सचाई को प्रकट करते हुए बोला—"यदि सच पूछो चन्द्रावत, तो यह स्वीकार करने में मुझे तनिक भी सकोच नहीं कि तुम्हारी बात मजाक की ही क्यों न हो, पर मेरा हृदय उसे सत्य जैसा मान कर अप्रभावित नहीं रह सका !"

चन्द्रावत अर्द्ध गंभीर स्वर मे तनिक जोर दे कर बोला—"मजाक मैने बिलकुल नहीं किया शैलेन ! " फिर एकाएक स्निग्ध स्वर में मुसकराते हुए—"अरे, मेरे शैलेन में किस बात की कमी है कि कोई परम सुन्दरी मानिनी तरुणी भी उससे अप्रभावित रह जाय ? कालिदास ने कहा है, 'रत्न स्वय नहीं ढूँढता, लोग रत्न को ढूँढते हैं !' किन्तु तोम्मी सना सौभाग्यवती है कि विना ढूँढे ही रत्न उसके द्वार पर उपस्थित हो गया !"

शैलेन्द्र निःसंकोच हो हँस पड़ा । बोला—"तो इस उक्ति में निर्धोक विश्वास कर ही लेना चाहिये कि 'लव ऐट फर्स्ट साइट' ! मुहब्बत हो ही जाती है जव आँखें चार होती हैं ! क्यों, मित्र ?"

"कह तो दिया कि किस्मत के सिकन्दर हो तुम !"—चन्द्रावत ने हँस कर जवाब दिया—"लेकिन एक बात भइया ! इस प्रेम के मामले में सामान्य मानव बने रहना ही ठीक होता है ! दार्शनिकों की आकाशी उड़ान और अटपटे तर्क वहाँ शोभा नहीं देते !"

"अच्छा तो मेरा नेता बन जाना इस मामले में !"—शैलेन्द्र ने मुसकरा कर कहा—"राह दिखाते चलना । सच्चे सैनिक की तरह सेनापति का साथ दूँगा ! पीछे-पीछे चलूँगा ! हर आदेश स्वीकार करूँगा ! विश्वास दिलाता हूँ !"

चन्द्रावत फिर तनिक जोर से हँसा । लेकिन एकाएक गंभीर हो क्षणभर शैलेन्द्र के चेहरे को ताक कर वह बोला—"अभी-अभी प्रतिज्ञा कर चुके हो हर आदेश स्वीकार करने की ! यदि मित्र का अनुरोध न स्वीकार कर सको, सेनापति का आदेश मान कर ही यहाँ बसने का दृढ़

निश्चय कर लो।" फिर एकाएक तर्जनी तान कर मुसकाते हुए—"तोम्बी सना को ले कर बंगाल भागने नहीं दूँगा तुम्हें! याद रखो! यहीं, इम्फाल में ही मेरे साथ रहना पड़ेगा!"—कहते-कहते सचमुच उसके स्वर में उस क्षण किसी सेनापति की-सी दृढ़ता मुखरित हो उठी।

"बुरा कुछ नहीं! कोई आपत्ति नही! 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श मानने वाले शैलेन्द्र के लिए जैसा मणिपुर वैसा बंगाल! 'स्वदेशो भुवनत्रयम्'!"

सुन कर चन्द्रावत का हृदय उछल उठा। बोला—"कितना अच्छा रहेगा शैलेन, कि हम दोनों बन्धु यहाँ साथ-साथ रहेंगे! तुम जैसे विद्वान के लिए जीविका की समस्या यहाँ भी नहीं! कहीं भी नहीं! तो चर्चा करूँ महाराजा साहेब से तुम्हारे लिए?"

शैलेन्द्र कुछ देर चुप रहा। कुछ सोचता रहा। फिर तनिक अनिश्चित स्वर मे ही बोला—"जैसा उचित समझो तुम!"

(८)

चन्द्रावत का प्रयत्न व्यर्थ न गया। बल्कि नरेश ने इतनी उदारता दिखाई कि मणिपुर-स्टेट-दरबार के गोरे प्रेसीडेंट से उन्होंने स्वयं शैलेन्द्र के लिए सिफारिश की। गोरा आई० सी० एस० था। 'स्पेशल इन्टरव्यू' मे शैलेन्द्र की शिक्षा, ज्ञान और व्यक्तित्व से वह स्वयं भी कम प्रभावित न हुआ। और सबसे बड़ी बात यह कि दरबार का प्रथम सेक्रेटरी एक बंगाली था। अतः मणिपुरियो के विरोध के बावजूद स्टेट-हाई-स्कूल के प्रधानाध्यापक-पद पर शैलेन्द्र की नियुक्ति मे देर जरा भी न लगी।

शैलेन्द्र अब चन्द्रावत-परिवार का नियमित सदस्य बन गया। परिवार की संख्या दो से तीन हो गई। माँ के उदार हृदय में शैलेन्द्र और चन्द्रावत के लिए कोई भेद न रह गया। और जब से माँ को यह

मालूम हो गया कि दोनों पर प्रेम का नशा सवार हो चुका है, दोनों ही दो उपयुक्त तरुणियों के आकर्षण और प्यार का शिकार बन चुके हैं, तो उनके हृदय मे समान वात्सल्य की धारा भी उमड़ आई। और जब उन्हे यह मालूम हुआ कि शैलेन्द्र के माँ नहीं, बाप नहीं, मामा के घर ही पल-पुस कर वह बड़ा हुआ, तो मातृत्व के रिक्त स्थान के भरते भी देर न लगी।

शैलेन्द्र और तोम्बी सना मे जरा दूर-दूर से 'रोमांस' चलने लगा। तोम्बी सना के बोल-बतियान और आचार-व्यवहार में पहले जैसा चांचल्य अब न रह गया। ऊपर से वह अधिक सावधान हो चली, पर उसका अन्तस् अन्तर्द्वन्द्वों के उबाल से उत्फुल्ल हो उठा। उसका मन लालसाओं की लहरियों से आन्दोलित होने लगा। उसका हृदय यद्यपि बॅध चुका था, आत्म-समर्पण कर चुका था, किन्तु फिर भी अपने भावी जीवन-सहचर के व्यक्तित्व की बार-बार परीक्षा से वह विरत न रह सकी। शैलेन्द्र जब कभी उसके घर की बगल से गुजरता वह छिपी-आँखों एक कुशल जासूस की तरह उसकी चाल-ढाल पर गौर करती, पहिनावे पर, साज-सज्जा पर, पर आँखें चार होते ही झट वह ओझल हो जाती, अथवा उदासीनता का अभिनय कर देती।

तोम्बी सना का रग बिलकुल गोरा था। आँखों में मंगोलपन से आर्यत्व या नागापन का प्रभाव कहीं ज्यादा था। खिंची हुई आँखों की काली-काली पुतलियों में गजब का आकर्षण था! किन्तु चेहरे पर इन विभिन्न रक्तों का अनुपात भाँप सकना कम कठिन न था। भौंहें पतली थीं, धनुषाकार, और ओठों की पतली किनारियों पर हलकी-हलकी स्वच्छ लाली यों दिखाई देती जैसे अनार के पके ताजे दानों पर ढलमलाती हुई लाली! और सिर के बाल, बिलकुल काले-काले, तेल-कघी के परिष्कार से यों चमका करते जैसे घने-काले रंग में रँगे हुए रेशम के सूत! शैलेन्द्र भी अक्सर मन-ही-मन या चन्द्रावत के सामने उसके

रूप-रंग का विश्लेषण करता, और तब चन्द्रावत भी तटस्थ न रह पाता। वह भी निःसंकोच हो कर मुक्ता की विशेषताओं की व्याख्या में मुक्तकठ हो जाता। मुक्ता उसकी शिष्या रह चुकी थी। वह पढने में कितनी तेज थी, उसकी परख कितने कमाल की थी, इत्यादि गुणों की चर्चा के साथ उसके व्यक्तित्व की शिष्टता और गभीरता की सराहना किये बिना भी वह न रह पाता।

तोम्बी सना को शैलेन्द्र की बड़ी-बड़ी आँखें सबसे ज्यादा पसन्द थीं। और उसका चमकीला साँवला रग भी कम आकर्षक न था। वह मन-ही-मन सोचती—"कृष्ण भी तो काले थे, और राधा गोरी थी!" तो उन दोनों की जोडी राधा-कृष्ण की जोड़ी से कम सुन्दर न होगी। उसके घर के पास ही राधा-कृष्ण का मन्दिर था। उस युगल-जोड़ी के वह रोज दर्शन किया करती। पर अपनी इस कल्पित जोड़ी मे उसे कहीं अधिक आकर्षण, कही अधिक सौन्दर्य दिखाई देता।

वह सुन चुकी थी कि शैलेन्द्र जाति से ब्राह्मण है। मणिपुरी प्रथा के अनुसार मइतेइ-कन्या से ब्राह्मण वर का विवाह विहित है, पर ब्राह्मण-कन्या से मइतेइ वर का विवाह विहित नहीं है। तोम्बी सना जरा गर्व से सोचती—"मैं ब्राह्मण की पत्नी बनूँगी! मेरी सन्तान ब्राह्मण कही जायगी! अहा, मै मइतेइ-कन्या हूँ तो क्या, पर ब्राह्मण-पत्नी और ब्राह्मण-सतान की माँ कहलाने का गौरव तो प्राप्त कर सकूँगी!" लेकिन एक दिन अपने इस भावी सौभाग्य पर सोचते ही अपने मणिपुर की यह प्रथा भी उसे याद आई कि ब्राह्मण पति अपनी मइतेइ पत्नी के हाथ का पकाया भात नही खाता। यह याद आते ही सहसा चिन्ता की एक रेखा उसके हृदय मे उभर आई—"तो क्या शैलेन्द्र मेरे हाथ का पकाया न खायेगा? और तब वह दूसरी ब्राह्मणी पत्नी भी लायेगा?"—यह सोचते ही उसके मन मे सौत की एक प्रबल ईर्ष्या उभर आई। जैसे सूर्य-किरणों से चमकते स्वच्छ आकाश मे अचानक बादल का एक

६

खंड उभर आया ! किन्तु कुछ क्षण बाद ही उसे यह भी याद आया कि चन्द्रावत मइतेइ है और शैलेन्द्र ब्राह्मण। वह विना किसी हिचक के बड़े प्रेम से चन्द्रावत की माँ के हाथ का पकाया भात खा रहा है। फिर अपनी पत्नी तोम्बी सना के हाथ का भात खाने से ही वह क्यों परहेज रखेगा ? क्षण मात्र मे उसकी सौत की आशंका नष्ट हो चली। हृदय आश्वस्त हो चला। मानो चिन्ता का बादल झट आकाश के प्रकाश में विलीन हो चला।

लेकिन झट दूसरी शंका भी उसके उनमे उभर आई—"शैलेन्द्र ब्राह्मण है, पर यह कैसा ब्राह्मण जो छुआछूत का विचार भी नहीं रखता ? मइतेइ के हाथ का भी विना किसी बाधा-व्यवधान के खा लेता है ?" इस शका के उदित होते ही उसके मन मे अरुचि की एक क्षीण रेखा भी उभर आई। ब्राह्मण-पत्नी बनने की आकाक्षा का गौरव वहाँ पूरी तरह कायम न रह सका। जैसे गर्व के चमकीले आकाश मे पुनः बादल की एक क्षीण छाया छा गई। लेकिन फिर भी मन के आकर्षण और लगाव में जरा भी कमी न आ सकी। जैसे सन्तान का तनिक कुरूप चेहरा भी माँ के आकर्षण को कम नहीं कर पाता। किन्तु जब उसने सोचा कि क्रिया से जाति नहीं जाती, और क्रिया से जाति बनती भी नहीं, तो उसके मन मे उठी वह क्षीण छाया भी विनष्ट हो चली। जाति जन्म से बनती है, और शैलेन्द्र जन्म से ब्राह्मण है। यदि क्रिया से जाति बनने लगे तो मणिपुर के सभी मइतेइ ब्राह्मण न बन जायँ ! मइतेइयों और ब्राह्मणों के आचार-व्यवहार, खान-पान और वेश-भूषा में उसे तनिक भी अन्तर नहीं दिखाई दिया। लेकिन इस तथ्य के प्रकट होते ही पुनः एक अन्य शंका भी उसके मन को झकझोर गई— "आकृति-प्रकृति, खान-पान, आचार-व्यवहार और वेश-भूषा में मइतेइयों के समान होते हुए भी ये ब्राह्मण उनसे श्रेष्ठ क्यों ? उनसे भिन्न क्यों ?" लेकिन इस प्रश्न पर विचार करने की उसमें क्षमता न थी। अध्ययन

और अभिज्ञान न था। शंका झट उठी और अन्ध-संस्कार के अँधेरे में विलीन भी हो चली। जैसे स्वच्छ सरोवर में एक ढेले, के आघात से अचानक उठा हुआ कंपन झट विलीन हो चला।

× × ×

चन्द्रावत आज बहुत चिन्तित हो चला। चिन्ता का कारण सामान्य न था। शैलेन्द्र उसका अभिन्न था। शैलेन्द्र का स्वार्थ उसका स्वार्थ बन चुका था। शैलेन्द्र का हित-अहित, मान-अपमान उसका अपना हित-अहित और मान-अपमान था। उसी ने स्नेहमय आग्रह से उसे मणिपुर में टिकाया, टिकने का सुन्दर प्रबन्ध भी किया। अतः उसकी आत्मीयता और उत्तरदायित्व में और भी वृद्धि हो चली। शैलेन्द्र उसका था और वह शैलेन्द्र का था। क्योंकि सच्ची मित्रता की सुकोमल स्निग्ध डोर अन्य सभी सम्बन्धों की डोर से पक्की होती है। मजबूत होती है।

वह आज तोम्बी सना के पिता श्रीअचउ सिंह के पास तोम्बी सना और शैलेन्द्र के विवाह का पक्का प्रस्ताव ले कर पहुँचा था। दिल मे धड़कन अवश्य थी, पर अपने प्रस्ताव के ऐसे स्वागत की उमीद उसे न थी। शैलेन्द्र मे एक सुन्दर व स्पृहणीय जामाता के सभी गुण मौजूद थे। पर अन्य सभी सुन्दर गुणों के बावजूद श्रीअचउ सिंह की नजरों में एक परम अवगुण भी उसमे था जिसे वे किसी भी कीमत पर क्षमा करने को तैयार न थे। चन्द्र-मण्डल के मध्य की कालिमा उसके गुणों के बीच छिप कर उसकी स्पृहणीयता में रंचमात्र भी कमी न ला सकी, किन्तु शैलेन्द्र का एक ही अवगुण उनकी आँखों मे समस्त गुणों पर छा गया। वह स्पृहणीय कतई न था। उनकी नजरों मे जामाता तो क्या, सामान्य मानव के गुण भी उसमे न थे। और उनके विचार में उसका यह सबसे बड़ा अवगुण था बगाल और बगाली समाज में पैदा होना! बगाली होना!

श्रीअचउ सिंह के साथ हुई बहस के बारे में बड़े दुखी दिल से चन्द्रावत सोच रहा था। उनको बातें किसी विष-बुझे तीर से कम न थी। उनका घातक असर एक-दो तक ही सीमित रहने वाला न था। उस असर की व्यापकता की सभावना से चन्द्रावत काँप उठा था! काँप रहा था!

वह मणिपुर के हिन्दू समाज के सम्बन्ध में सोचने लगा। उसके रूप और सगठन के सम्बन्ध मे, सस्कृति और सभ्यता के सम्बन्ध मे। उसे शैलेन्द्र के वे उद्गार याद आ गये जो उसने यहा आते ही मणिपुर और मणिपुरी समाज के सम्बन्ध मे व्यक्त किये थे। मणिपुर के हिन्दू समाज को देख कर ही तो उसने कहा था—"रक्त की दीवार, जाति की दीवार, धर्म और सस्कृति की दीवार भी किसी दिन मानवमात्र को एक होने से रोक नहीं सकती!" इसे मानव-एकता की अद्भुत प्रयोगशाला उसने कहा था। लेकिन मानव-एकता की इस पवित्र प्रयोगशाला में घातक जहर के कीटाणु के प्रवेश की समस्या से चन्द्रावत विचलित हो उठा! अधीर हो उठा!

वह सोचने लगा—"मणिपुर के वर्तमान हिन्दू समाज के मुख्यतः दो अग हैं—ब्राह्मण और क्षत्रिय (मइतेइ)। ब्राह्मण मुख्यतः बगाल या मिथिला से आये। वे क्रमशः मइतेइ-कन्याओं से विवाह-सूत्र में बँधने लगे। अपने जातित्व की सुरक्षा के लिए, अपनी सख्या की अभिवृद्धि के लिए उन्होंने यहाँ नया नियम चालू किया—'ब्राह्मण-वीर्य से मइतेइ-कन्या में उत्पन्न सन्तान मइतेइ न हो कर ब्राह्मण होगी! और ब्राह्मण-कन्या से कोई मइतेइ पुरुष विवाह न कर सकेगा!' इसमें उन ब्राह्मणों का जातीय स्वार्थ अवश्य था। लेकिन इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं कि वे मणिपुरी समाज के एक अभिन्न अंग बन गये। न उनमें बंगालीत्व रहा, न मैथिलत्व। तो फिर उसी एक बंगाली को, उसी मणिपुरी समाज का एक अंग, एक सदस्य बनने देने में अब यह बाधा

क्यो ? यह आपत्ति क्यों ?"

फिर उसने मणिपुर के धर्म और सस्कृति के सम्बन्ध में सोचना आरम्भ किया—"धर्म और संस्कृति अपने-आप में अलग होते हुए भी एक-दूसरे पर बड़ा व्यापक प्रभाव डालते हैं। धर्म संस्कृति को प्रभावित करता है, और संस्कृति धर्म को। चैतन्य महाप्रभु बंगाली थे। उनका बगाली वैष्णव धर्म मणिपुरी हिन्दू समाज में प्रविष्ट हुआ। उसने यहाँ की संस्कृति को प्रभावित किया। यहाँ के जन्म-सस्कार से ले कर मृतक-संस्कार तक में उस धर्म की प्रधानता हो गई। वह धर्म यहाँ के जन-जन के मन में समा कर मानो स्वयं इस समाज का मन ही बन गया। और मन से ही संस्कृति पैदा होती है। तो तात्पर्य यह कि बगाल से आये वैष्णव धर्म ने केवल मणिपुर की संस्कृति को प्रभावित ही नही किया, बल्कि उसके गर्भ से एक नई मणिपुरी सस्कृति का जन्म भी हुआ। इस धर्म से, इस सस्कृति से प्रत्येक मणिपुरी हिन्दू को अटूट मोह है! स्नेह है! इस संस्कृति पर हर मणिपुरी हिन्दू को गर्व है! अहकार है! तो फिर, इसी धर्म और संस्कृति से जुड़े हुए एक हिन्दू के हृदय मे आज उसी बगाल से आये एक परम गुणवान हिन्दू के लिए, एक परम विशिष्ट मानव के लिए ऐसी घृणा क्यों ? वितृष्णा क्यों ?"

इस 'क्यों' का जवाब स्वयं अचउ सिंह ने दिया था।

चन्द्रावत का प्रस्ताव सुन कर, क्षण भर भी सोचे बगैर, हुक्के की नली से मुँह हटा कर, घृणा के आवेग में सिर को बार-बार हिलाते हुए स्वरो पर खूब जोर दे कर उन्होंने जवाब दिया—"अरे ए ए ए! मै अपनी कन्या दूँ एक बगाली को ओ ओ! क्या मणिपुर मे पुरुषों का अकाल पड़ गयाऽऽऽ ?"

अचउ सिंह जरा दूर के रिश्ते से चन्द्रावत के चाचा लगते थे। चन्द्रावत ने विनय-सहित, पर व्यंगभरे स्वर में जवाब दिया—"नहीं चाचाजी! अकाल क्यों पड़ेगा ? यह तो झूठ-मूठ बाहर के लोगों ने

समझ रखा है कि मणिपुर में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की सख्या से कई गुना अधिक है ! हमारे कई नासमझ मणिपुरी तक इस भ्रम में हैं कि एक पुरुष पर पाँच स्त्रियाँ ! लेकिन हाल की जन-गणना ने तो साफ कर दिया है कि कुल चार-पाँच लाख की जन-संख्या में स्त्रियों की दस-बीस हजार अधिक संख्या कोई अधिक तो नहीं ! फिर पुरुषों का यहाँ अकाल क्यों पड़ेगा चाचाजी ?"

इस व्यंगभरे उत्तर से चाचाजी जरा अप्रतिभ अवश्य हुए, लेकिन फिर भी प्रश्न-सूचक स्वर में वे बोले—"तो फिर ?"

और चन्द्रावत ने फिर उसी प्रकार व्यगभरे शान्त सबल स्वर में जवाब दिया—"तो फिर यही कि जिस प्रकार मणिपुर में पुरुषों का अकाल नहीं है, उसी प्रकार बंगाल में स्त्रियों का भी ! और शैलेन्द्र जैसे पढे-लिखे परम गुणवान के लिए तो और भी नहीं ! हजारों के दहेज के साथ रूप-गुण-सम्पन्न कुलीन बंगाली कन्याएँ उसकी योग्यता के बाहर नहीं ही हैं ! क्या बगाली समाज का रिवाज आपको नहीं मालूम चाचाजी ?"

चन्द्रावत के इस व्यग से श्रीअचउ सिंह एकाएक तिलमिला उठे। लेकिन फिर भी सम्हल कर बोले—"उम्र और रिश्ते में छोटे हो कर भी तुम मेरे आदर के पात्र हो चन्द्रावत ! मैं इस बात को कभी नहीं भूल सकता कि तुम हमारे मइतेइयों के गौरव हो ! लेकिन बंगाली समाज का रिवाज भी मुझे खूब मालूम है ! अच्छी तरह मालूम है !" फिर एकाएक कटु-व्यगभरे स्वर में—"और मुझे यह भी मालूम है कि बगाल की अनेक रूपवती कुलीन कन्याएँ दहेज के अभाव में पति न मिलने पर अन्त में चकलों की शरण भी लेती हैं। लेकिन मणिपुर की महिलाओं को ऐसा कभी नहीं करना पड़ता !"—यह कह कर वे एकाएक यों विहँस पड़े जैसे स्वयं शैतान उनके चेहरे पर चमक उठा हो ! मानो विजय की खुशी में ही तावड़तोड़ हुक्के के कश भी वे लेने लगे।

लेकिन चन्द्रावत को यह बात जरा भी पसन्द न आई। इस प्रकार के ओछे आक्षेप से वह मन-ही-मन खूब क्रुद्ध हुआ। लेकिन क्रोधावेग को दबा कर इस बार सरल ढंग से दुखभरे स्वर में वह बोला—"ऐसी कुछ दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ तो सभी समाजों में घटित होती हैं! पर एक क्रूर सामाजिक व्यवस्था की शिकार वे अभागी बहनें हमारे व्यंग की नहीं, सहानुभूति की पात्र हैं चाचाजी!"

और चाचाजी का शैतान भी जैसे रंचमात्र भी अप्रतिभ हुए बगैर झट जवाब देते बोला—"मैंने तो उन बहनों के लिए नहीं, उस समाज के लिए कहा है चन्द्रावत," फिर एकाएक स्वर पर खूब बल दे कर—"उ-उ-उस समाज के लिए चन्द्रावत, जो भारतवर्ष के सभी समाजों से अपने को श्रेष्ठ समझता है! अपने को सिरमौर मानता है! भारतवर्ष की सभी संस्कृतियो से अपनी संस्कृति को महान मानता है! जो शिक्षा-दीक्षा, सस्कृति-सभ्यता हर दृष्टि से अपने को बढा-चढ़ा मान कर अन्य समाजों एवं अन्य समाज के लोगो को अपने से हीन और घृणित मानता है!"—कह कर पुनः मानो विजय के अहकार मे बडे आवेश से वे हुक्का गुड़गुड़ाने लग पडे।

"लेकिन शैलेन्द्र से इस बात का क्या सम्बन्ध चाचाजी?"

"तो क्या हमसे सम्बन्ध है?"—वे पुनः व्यंगभरे कटु स्वर मे बोले—"क्योंकि तुम्हारा शैलेन्द्र भी बगाली है! आखिर वह भी तो उसी श्रेष्ठ बगाली समाज का सदस्य है जिसकी अभी-अभी तुमने भी चर्चा की है और मैने भी?"

इस चतुर वाचाल वृद्ध के समक्ष चन्द्रावत की बोलती ही जैसे बन्द हो गई। उसकी प्रतिभा और विद्वत्ता उसका साथ न दे सकी।

अचउ सिंह से चन्द्रावत की मनोदशा छिपी न रह सकी। एक तो विद्वान्, तिसपर मजिस्ट्रेट! उसे अपने समक्ष इस प्रकार एकाएक तर्क-द्वन्द्व में परास्त होते देख उनकी खुशी की सीमा न रही। इस क्षण

चन्द्रावत अपनी सारी विद्वत्ता, अभिज्ञता और ओहदे को लिये हुए भी उनकी आँखों मे मानो एक निरा बालक बन कर ही प्रकट हुआ।

उसे चुप देख इस बार वे स्नेह और आत्मीयता से भरे स्वर में उपदेश देते हुए उससे बोले—"बेटा चन्द्रावत ! सच कहता हूँ, जिस दिन तुम मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हुए मुझे बड़ी खुशी हुई ! बल्कि दोहरी खुशी ! एक तो मइतेइ होने के नाते, और दूसरे तुम्हारा चाचा होने के नाते ! लेकिन तुम क्या इतनी जल्दी भूल गये ? तुम्हारी स्मृति क्या इतनी क्षीण हो गई ? जरा याद तो करो कि दरबार के उस बंगाली सेक्रेटरी ने तुम्हारी नियुक्ति का कितना जबर्दस्त विरोध किया था ? यदि स्वयं महाराजा की सिफारिश न होती, और मणिपुर-स्टेट-दरबार का प्रेसीडेंट एक अंग्रेज के बजाय यदि कोई बंगाली होता, तो निश्चय मानो कि तुम इस पद पर कभी नियुक्त न होते ! न होते !! न होते !!!"

अन्तिम वाक्यांशों पर उन्होंने इतना जोर दे कर कहा कि उनकी नकार-ध्वनि से उनके दालान का कण-कण गूँज उठा।

किन्तु चन्द्रावत ने स्वस्थ स्वर में जवाब दिया—"लेकिन यह तो उस बंगाली सेक्रेटरी का दोष है चाचाजी ? शैलेन्द्र का नहीं ?"

"ना बाबा, ना !"—इस बार वे दाँये हाथ की हथेली को अपनी छाती के पास विशेष ढंग से बार-बार नचा कर बोले—"मैं किसी भी बंगाली को अच्छा नहीं मानता ! उनपर विश्वास नहीं करता ! वे कहीं भी रहेंगे, कहीं का भी दाना-पानी खा-खा कर मोटे होंगे, परिपुष्ट होंगे, लेकिन बंगाल और बंगाली को वे नहीं भूलेंगे ! बंगाल में रह कर वे चाहे भूखों मरें, कौड़ी-कौड़ी के मुँहताज बने रहें, पर जहाँ भी रहेंगे मुँह फुला-फुला कर बोलेंगे—'आमार बाङ्ला देश ! आमार सोनार बाङला देश !' और दूसरे प्रान्त व प्रदेश के दाना-पानी पर मोटे हो कर भी उससे घृणा करेंगे ! जिस पत्तल में खायेंगे उसी में छेद करेंगे ! बड़ी कृतघ्न जाति है यह बंगाली ! बड़ी नमकहराम ! ना बाबा,

ना !"—कहते हुए, उन्होंने इस बार दोनों हथेलियों को दो-दो बार नचा दिया। जैसे स्वयं घृणा का शैतान उन हथेलियों पर नाच गया!

उनके इस अभिनय पर चन्द्रावत को मन-ही-मन तनिक हँसी भी आई, लेकिन दूसरे ही क्षण उसका हृदय पुनः दुखी हो उठा। बोला—"लेकिन चाचाजी! केवल बगालियों को ही दोष क्यों दिया जाय जब कि स्वयं हमारा हृदय भी उन्हीं सकीर्णताओं से भरा है? अन्यथा अभी जो कुछ मैं सुन रहा हूँ, एक उदार मणिपुरी के मुँह से उसे कभी नहीं सुन पाता?"

अचउ सिंह क्षण भर के लिए अप्रतिभ अवश्य हुए, पर हार उन्होंने नहीं मानी। बल्कि इस बार व्यंग, तर्क और उदाहरणो के और भी सबल तीखे शस्त्रों का प्रहार करते हुए वे बोले—"वाह चन्द्रावत! अच्छी कही तुमने भी! यदि कोई चोर किसी के घर मे घुस कर उलटे घर वालो को ही पाठ पढ़ाने लगे; उनका गुरु व मालिक बनने का दभ और अहकार करे, तो क्या वे उसे गुरु और मालिक मान ले? उसके चरणों मे श्रद्धा-भक्ति से सिर झुका दे? क्या यही तुम्हारी समझ है? क्या यही तुम्हारा विवेक है? छी!"—कहते-कहते उनका मन मानो एकाएक एक नये सबल नशे से अभिभूत हो उठा।

उसी नशे के आवेश मे वे बगैर रुके फिर बोले—"एक तो बड़े चोर अग्रेज, जो हमारे घर मे चोरी-चालाकी से आ घुसे! और उनके साथ उनके गुलाम ये छोटे चोर बगाली भी! दरबार का दफ्तर देखो! सेक्रेटरी बगाली! छोटे-बडे क्लर्क बगाली! और पुलिस-विभाग को देखो, तो डी० एस० पी० बंगाली! इन्सपेक्टर बंगाली! मानो मणिपुर मे अग्रेजों के बाद बगालियों का ही राज्य हो! मानो यह बगालियों का ही एक निजी उपनिवेश हो!"

कहते-कहते उनका आवेश बढ़ता ही गया। और सहसा चन्द्रावत से कुछ जवाब देते न बना।

उन्होंने अपने हाथ और चेहरे को आवेश में नचाते हुए फिर कहा—"अगर कोई भी सरकारी जगह या ओहदा खाली हो तो ये बंगाली अफसर सिवा किसी बंगाली के किसी मणिपुरी को वहाँ घुसने न देंगे ! और जो कुछ थोड़े मणिपुरी वहाँ घुसे या बचे रह गये हैं उन्हें भी एक-एक कर निकाल बाहर करने की जालसाजी रचेंगे !"

फिर एकाएक वे अपने भतीजे रासबिहारी सिंह का प्रसंग ले कर बोले—"तुम्हीं बताओ चन्द्रावत, कि सरकारी नौकरी में घूस-रिश्वत की आदत से बचा हो कौन है, केवल एक चन्द्रावत सिंह को छोड़ कर ? ये बंगाली क्लर्क और अफसर तो सबसे बड़े घूसखोर हैं ! लेकिन रासबिहारी को झूठी घूसखोरी के अभियोग में फँसा कर उसकी नौकरी छीन ही ली बदमाशों ने ! एक मणिपुरी की 'सब-इन्सपेक्टरी' भी उस बंगाली 'डी० एस० पी०' से बर्दाश्त न हो सकी !"

कहते-कहते वे आवेश में अपने आसन से कुछ इंच ऊपर भी हो जाते। और चन्द्रावत मानो तर्क और जवाब से लाचार उनकी घृणा और वितृष्णा के सारे उद्गार वहाँ चुपचाप सुनता रहा। जैसे सागर की सवेग लहरों के समक्ष तैराक लाचार हो पड़ा हो !

सागर की लहरें अब भी शान्त न हो सकीं। गला खखार कर अचउ सिंह फिर बोले—"दफ्तरों में जाओ ! ये बंगाली अफसर और क्लर्क किसी भद्र मणिपुरी से भी गुलामों जैसा ही व्यवहार करेंगे ! अंग्रेज कभी धोखे से हमें इंसान समझ भी लें, मगर उनके गुलाम ये काले बंगाली हमें धोखे से भी इंसान न समझेंगे ! कैसी निर्लज्जता ! कैसा कमीनापन ! छी !"—कहते हुए मानो घृणा का एक लौंदा भी अपने मुँह से उन्होंने थूक दिया।

लेकिन अब तैराक भी जैसे सम्हल कर लहरों से लड़ने को तैयार हो उठा। चन्द्रावत से भी चुप न रहा गया। बोला—"हर समाज में सब प्रकार के लोग होते हैं। कुछ बंगालियों के व्यवहार के उदाहरण से

समस्त बंगालियों को ही अंग्रेजों का गुलाम और अभद्र करार देना कम-से-कम मुझे तो उचित नहीं लगता चाचाजी ! यदि वे स्वभाव से ही इतने अभद्र और संकीर्ण होते, दिल से अंग्रेजों के गुलाम होते, तो सारे भारत में उष्ण देश-भक्ति की लहरें वे न फैला पाते ? खुदीराम और गोपीनाथ साहा जैसे असंख्य क्रान्तिकारी वीरों और शहीदों को वे पैदा न कर पाते ? कोटि-कोटि कठों से ध्वनित हो कर सारे भारत को देशभक्ति के रस में आप्लावित करने वाले 'वन्दे मातरम्' जैसे सरस और सबल राष्ट्र-गीत का निर्माण वे न कर पाते ?"

चन्द्रावत के सबल और सतर्क उदाहरण सुन कर अन्नउ सिंह हुक्का पीते-पीते ही बिहुँस पडे। जैसे बुद्धि का शैतान पुनः तलवार ले कर उठ खड़ा हुआ। मुँह का धुआँ फेंक वे जवाब में पुनः पूरी तैयारी से बोले—"मै तुम्हारे जैसा विद्वान नहीं चन्द्रावत, मगर कुछ पढ़ा-लिखा अवश्य हूँ और काफी घूमा-फिरा भी ! मणिपुर के अमर शहीद श्री-टिकेन्द्रजित सिंह के चरण-चिह्नों का अनुसरण करते हुए मणिपुर से अंग्रेजों को भगाने के प्रयास मे कुछ दिन मैने भी दर-दर की खाक छानी थी ! जगह-जगह जा कर जानकारी हासिल की थी ! मै पूरे विश्वास के साथ कहता हूँ चन्द्रावत, कि बगाली चाहे अंग्रेजों के दफ्तर में हो, या साहित्य के उदार क्षेत्र मे, या धार्मिक आन्दोलन के पवित्र आँगन मे, अथवा देशभक्ति या राजनीति के विशाल मैदान मे, पर वह रहेगा हमेशा बगाली ही ! ओछा ही ! वह गैर-बगालियों को हर क्षेत्र मे ओछी आँखों से देखेगा ही ! बगालीपन और श्रेष्ठता का अहंकार उसके दिल से कभी भी दूर न होगा ! न होगा !! न होगा !!!"

लेकिन चन्द्रावत ने शान्त लहजे मे उन्हें जवाब दिया—"किन्तु तथ्य तो आपके इस मत के विपरीत है चाचाजी ? यों तो किसी की भी नीयत पर, किसी भी व्यक्ति या समाज पर कुत्सित-से-कुत्सित आरोप किये जा सकते हैं ! उसे बदनाम किया जा सकता है ! लेकिन तथ्य

आखिर तथ्य है ! स्वस्थ व निरपेक्ष दृष्टि से विचार करने पर आवेश-जन्य भ्रान्तियाँ अधिक देर तक नहीं रह पातीं चाचाजी !"

किन्तु चन्द्रावत के इस जवाब से उनके हृदय में शान्ति के बजाय क्रोध और अशान्ति की आग भभक उठी ! उन्हें लगा जैसे चन्द्रावत ने उनके मुँह पर ही उन्हें मिथ्यावाद व पर-निन्दा का अपराधी करार दिया है। उनके हृदय का शैतान पुनः दहाड़ उठा ! उनके झुर्रीदार चेहरे पर अपमान की लाली उभर आई ! और कंठ में विक्षोभ की लहर भी ! तीखे स्वर में वे बोले—"यह सब अंग्रेजी शिक्षा का कुफल है चन्द्रावत, कि बच्चे अपने गुरुजनों को उनके मुँह पर ही मिथ्या-वादी और मूर्ख करार दें ! और यदि···"

अपने उत्तर से चन्द्रावत भी सहसा कुछ अप्रतिभ हो चला था। लेकिन अपने चाचाजी के पहले वाक्य से ही कुछ और अप्रतिभ हो उन्हें बीच में ही रोकते हुए क्षमा-प्रार्थना के स्वर में वह बोला—"मैं क्षमा चाहता हूँ चाचाजी, यदि अनजाने मेरे मुँह से कोई अनुचित बात निकल गई ! विश्वास रखिये, मैं आपका बच्चा हूँ ! और आपमें मेरी श्रद्धा भी कम नहीं है !"

लेकिन इस क्षमा-प्रार्थना से जरा भी प्रभावित न हो आवेशभरे स्वर में वे बोलते गये—"और यदि तुम्हारी समझ में यह सच्ची और साफ बात भी नहीं आती तो मैं कहूँगा कि व्यर्थ ही तुमने इतना अध्ययन किया ! व्यर्थ ही तुमने इतना ऊँचा ओहदा हासिल किया ! और व्यर्थ ही हम महतेइयों का तुमपर इतना गर्व है ! दफ्तर का उदाहरण स्वयं मणिपुर का दरबार-दफ्तर है ! और विश्व-विख्यात बंगाली कथाकारों की कृतियाँ पढ़ो, तो देखो कि गैर-बंगालियों के लिए इन्होंने क्या लिखा है ! बिहार और यू० पी० के हिन्दुस्तानियों के लिए 'खोट्टा' शब्द के इस्तेमाल के साथ उन्हें दरबान से कभी अधिक नहीं माना ! उड़िया ब्राह्मणों में रसोइयों से अधिक की योग्यता इन्हें कभी दिखाई नहीं दी !"

इतना कहने के बाद उन्हें खाँसी आ गई। गला खखारते हुए फिर बोले—"और बंगाली पत्रकारों को लो! खों···खों···खों···पत्रकार भी एक प्रकार का, खों···खों···खों···साहित्यकार होता है! खों···"

कुछ मिनट खाँसी के आवेग से संघर्ष करते रहने के बाद उनका गला साफ हुआ। फिर बोले—"अभी हाल की घटना है। हम मणिपुरियों के सम्बन्ध में उस बंगाली पत्रकार ने अपने 'पत्र' में क्या लिखा? उस लेख को पढ़ कर किसी भी स्वाभिमानी मणिपुरी का खून खौल उठे बिना कैसे रह जायगा? अपमान की व्यथा उसे विचलित किये बिना कैसे रह जायगी? भारत के विभिन्न समाजों में मै जा चुका हूँ! मैं गर्व के साथ कह सकता हूँ कि मणिपुरी घरों की पवित्रता मुझे कहीं भी दिखाई न दी! हमारी बहन-बेटियाँ रोज प्रातः उठ कर घर-बाहर झाड़ू लगाती हैं, लीप-पोत करती हैं, और फिर स्नान द्वारा पवित्र हो कर ही चौके मे प्रवेश करती हैं! विना नहलाये-धुलाये वे किसी पुरुष को चौके में प्रविष्ट भी नहीं होने देती! और फिर रसोई के काम से निबट कर दुबारा स्नान, ठाकुर-तुलसी की पूजा, चन्दनादि का विलेप, तब कहीं वे स्वय भोजन करने बैठती हैं!"

इतना कहने के बाद एक बार मुँह मे आया थूक नीचे फेंक कर और नये सिरे से पुनः उठी खाँसी से गला साफ करते हुए वे फिर बोले—"कहो, किस समाज की स्त्रियों मे इतनी पवित्रता है भला? लेकिन हमारी बहन-बेटियो के बारे में उस कम्बख्त कमीने पत्रकार ने क्या लिखा? पढ़ कर यही तो प्रतीत होगा कि मणिपुरी स्त्रियाँ परम अपवित्र होती हैं? गन्दे डबरों में स्नान करती हैं? और शर्म तो इन्हें छू भी नहीं गई?

"यह सही है कि घूँघट की ओट में मुसकाने की प्रथा या आदत मणिपुरी महिलाओं में नहीं है। लेकिन हमारी स्त्रियाँ निर्लज्ज कतई नहीं! हमारी कर्मठ महिलाएँ घर-बाहर समान भाव से सम्हालती हैं।

बाजारों में बैठ कर अपने हाथ के बुने और बनाये कपड़े आदि विभिन्न चीजें बेचती हैं, सौदा कर आती हैं! जिसे अंग्रेजी में कहते हैं 'डिगनिटी ऑफ लेबर'! यह बात मणिपुरी समाज के हर तत्त्व और तबके मे मौजूद है! इसी कारण से मणिपुर निर्लज्ज स्त्रियों और निकम्मे पुरुषों का देश तो नहीं हो जाता चन्द्रावत?

"और फिर तुम धार्मिक क्षेत्र की ही बात ले लो! महाप्रभु चैतन्यदेव यदि बंगाली न होते, उनका धर्म कभी भी बंगाल मे समादृत न होता! न होता!! लेकिन यह तो हम मणिपुरियों के हृदय की विशालता व उदारता समझो कि इस विदेशी धर्म को भी स्वदेशी बना कर हम उससे आदर से चिपके हुए हैं! उसके प्रति बंगालियों से भी अधिक आस्था और विश्वास रखते हैं! खो...खों........" कहते-कहते उनके चैतन्यदेवीतिलकयुक्त ललाट पर इस क्षण सचमुच श्रद्धा और विश्वास का अहंकार उभर आया।

खाँसी के पुनः-उठे आवेग से छुटकारा पा कर वे फिर बोले—"यही बात परमहंस रामकृष्ण के सम्प्रदाय की भी है। विवेकानन्द स्वयं बंगाली थे। उन्होंने 'रामकृष्ण मिशन' को संगठित व संचालित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया। लेकिन उस 'मिशन' पर भी बंगालियों ने अपनी बपौती समझ कर कब्जा जमा लिया! उसे पढ़े-लिखे बंगाली बेकारों की एक दुकान बना डाला! कहीं कोई गैर-बंगाली इस 'मिशन' में प्रवेश अगर पा भी गया तो विशेष कारण से! और ऐसा किया गया दुकान को नकली व्यापकता का रूप देने के मतलब से!

"और राजनीति की बात ले लो! शायद ईस्वी सन् १८८० में रचा गया 'वन्दे मातरम्' गीत भी प्रथम-प्रथम बंगाल को ही एक राष्ट्र मान कर मुखरित हुआ था। उन दिनों बिहार-उड़ीसा भी बंगाल के अंग थे। उस गीत में 'सप्त-कोटि-कंठ-कलकल-निनाद-कराले' कह कर शेष भारत को परराष्ट्र माना गया! बाद में 'सप्तकोटि' की जगह "त्रिंश-

कोटि' यह शब्द इसलिए रखा गया कि शेष भारत ने उदारता के साथ 'बग-भग-आन्दोलन' को अपना आन्दोलन समझ कर उसमे योग दिया ! सारे भारत ने बड़ी उदारता से इस गीत को अपना 'राष्ट्रगीत' स्वीकार कर लिया ! लेकिन बदले में बगालियों और बगाली नेताओं ने शेष भारत को अपना शिष्य और पिछलग्गू माना ! और वही परपरा, वही मनोवृत्ति हर बगाली के मन से आज भी दूर न हो सकी ! फिर तुम कैसे कहते हो चन्द्रावत, कि इन बगालियो से हम फिर से रिश्ता-नाता जोड़ें ? अपनी कन्याएँ दे कर उनके गर्व और अहंकार को बढ़ायें ?"

तोम्बी सना की माँ इस बीच नये सिरे से चिलम भर कर हुक्के पर रख गई थीं । और तोम्बी सना तो इस प्रसग के छिड़ते ही सामने से अलग हो चुकी थी । पर वह आड़ से सब कुछ सुन रही थी । जैसे शराबी को आड़ मे शराब का स्वाद अच्छा लगता है । लेकिन यह शराब बड़ी जहरीली हो उठी थी । अतः वह क्षुब्ध मन से जैसे जहर की घूँट पीती हुई चुपचाप एक कोने मे बैठी थी ।

अचउ सिह अपने दिल का सारा मलाल निकाल मानो एकाएक थक कर हुक्के की शरण मे पूरी तरह जा पड़े । जैसे युद्ध से थका हुआ सैनिक पुनः बल वापस लाने के प्रयास में लग पड़ा हो !

लेकिन चन्द्रावत को यह सब सुन कर बड़ा दुख हुआ । बड़ी घृणा भी हुई । दुखभरे स्वर मे वह बोला—"मानता हूँ आपकी बात को चाचाजी ! लेकिन इतना मै शपथ खा कर कह सकता हूँ कि मेरा शैलेन इन दोषों से कोसों दूर है ! उसका हृदय अति उदार और अति विशाल है ! वर्षों से हम दोनों का साथ रहा है । लेकिन सच कहता हूँ कि उस जैसा भला और भद्र पुरुष बंगालियो मे तो क्या, मणिपुरियों मे भी मुश्किल से ही दिखाई देगा ! वह मनुष्यों मे हीरा है, हीरा ! रत्न है, चाचाजी !"—कहते-कहते चन्द्रावत के चेहरे पर सचमुच एकाएक

गर्व और गौरव की लाली उभर आई।

तोम्बी सना को भी तनिक राहत महसूस हुई। जैसे झुलसी और सूखती हुई बेल पर वर्षा की बौछार हो पड़ी हो! लेकिन अचउ सिंह ने जैसे फिर जहर का सबल तीर सन्धान किया। वे आगा-पीछा बिना सोचे ही सहसा कटु-व्यंग-भरे स्वर में फिर बोल पड़े—"तो रखो अपने इस हीरे और रत्न को छिपा कर किसी सन्दूक में अपने ही घर, ताकि कभी किसी जौहरी के हाथ उसे बेच कर लाखों कमा सको! मैं तो हर बंगाली को बंगाली मानता हूँ, चाहे वह किसी भी वेश में हो! किसी भी रूप में हो! मैंने तो विशेष कर तुम्हारा ख्याल करके ही उस दिन उसे 'थावल चोंडबा' में प्रविष्ट होने दिया! नहीं तो···" इतना कह कर वे मुँह पर घृणा-वितृष्णा का बोझ लादे ही पुनः हुक्का गुड़गुड़ाने लग पड़े। मानो हुक्के के धुएँ से दिल का जहर निकाल रहे हो!

तोम्बी सना के हृदय की आशालता पुनः सूख चली! उसकी जड़ में प्रतिशोध की आग भी जलने लग पड़ी। और चन्द्रावत को मानो अन्तिम और निश्चित उत्तर मिल गया। व्यर्थ की माथापच्ची करके अब और अपमानित होना उसने ठीक न समझा।

"अच्छा, तो मैं अब चला चाचाजी!"—कह कर असन्तुष्ट, निराश एवं क्षुब्ध मन से उसके उठ कर चल देने का प्रयास करते ही तोम्बी सना की माँ उसे रोकते हुए अत्यन्त स्नेहसने स्वर में बोलीं—"इबुङो! चाय तुम्हारे लिए बना रही हूँ! पी के जाना। नाराज न होओ! वे अब बूढ़े हो चले। कोई ऐसी-वैसी बात मुँह से निकल ही गई तो क्या? तोम्बी आखिर तुम्हारी भी तो बहन है! तुम्हारा भी तो अधिकार है उसपर! अभी तुम्हारे दोस्त को यहाँ आये हुए हुए ही कितने दिन? जरा धीरज धरो! तब तक इनका भी दिमाग जरा ठीक हो लेने दो!" —कह कर अपने पतिदेव की कोप-दृष्टि का जरा भी ख्याल न कर झट

अन्दर घर में प्रविष्ट हो वे 'फुंगा'[1] सुलगाने लग पड़ीं। तोम्बी सना का हृदय पुनः सजीव हो उठा! अपनी स्नेहमयी माँ के प्रति प्रेम और कृतज्ञता से आन्दोलित! वह झट 'फुंगा' के पास जा कर स्नेहसने स्वर मे बोली—"तुम बैठो इमाँ! मै चाय बनाती हूँ!"

चन्द्रावत उनका अनुरोध मान कर रुक गया। लेकिन चेहरा उसका अब भी लटका रहा। अपमान और निराशा के दुर्वह बोझ से दबा हुआ!

(९)

संयोग ही कहिये! जिस समय चन्द्रावत अपने चाचा अचउ सिह से विवाद में उलझा हुआ था, ठीक उसी समय शैलेन्द्र भी उसी प्रकार के विवाद में उलझ गया। स्थान और पात्र भिन्न थे, पर समस्या समान थी। ज्योंही अपने स्कूल का कार्य समाप्त कर वह घर की ओर चला कि दरबार के बगाली सेक्रेटरी श्रीअनिलकुमार घोष का एक निजी पत्र उसे प्राप्त हुआ। अनुरोध था कि स्कूल से सीधे बासे पर वापस न जा श्रीघोष के साथ ही वे आज शाम को चाय ग्रहण करें। उनके खानसामे के साथ ही शैलेन्द्र उनके बँगले की ओर रवाना हो पड़ा।

श्रीघोष के बँगले पर तीन जने अन्य भद्र बंगाली पहले से ही मौजूद थे। एक थे दफ्तर के बड़े बाबू श्रीहरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, दूसरे थे पुलिस इस्पेक्टर श्रीअघोरनाथ वसु तथा तीसरे थे पं० श्रीनरेन्द्रनाथ

---

१. मणिपुरी घरों में रसोई के चूल्हे से बिलकुल अलग एक लोहे का तिपाया या चौपाया चूल्हा भी होता है जिसे 'फुंगा' कहते हैं। सर्दियों में इसके आस-पास बैठ कर हाथ सेंकते हैं तथा हर मौसम मे हाथ-पैर धोने के लिए पानी गरमाते हैं, चाय के लिए भी।

'तर्करत्न' जो श्रीघोष के कुल-गुरु एवं हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के मामा थे। अभी तीन दिन पहले नवद्वीप से पधारे थे। श्रीघोष ने तर्करत्न से शैलेन्द्र का परिचय कराया। शैलेन्द्र ने बड़े आदर से सबके साथ उन्हें भी हाथ जोड़ नमस्कार किया। शेष दो जने उसके परिचित ही थे। लेकिन सबके व्यवहार से उसे ऐसा लगा मानो आज वह सबका परम स्पृहणीय अतिथि हो! श्रीघोष ने उसकी प्रशंसा में कंजूसी तो क्या, अतिशयोक्ति से भी काम लिया। और बड़े बाबू श्रीहरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय तो इस तरह उसे बार-बार स्पृहणीय आँखों से यों निहारने लगे जैसे सौदागर किसी पसन्द के सौदे को भी गहरी आँखों से बार-बार तौलना चाहता हो!

बैठकखाने के ठीक बीच में, अंडाकार गोल मेज के चारों ओर बिछी कुर्सियों पर वे बैठे थे। चाय के आयोजन में भी आज कुछ विशेषता थी। प्लेटों में अलग-अलग घी में ताजा-ताजा तले हुए चिउड़े और बंगाली 'सदेश' के अतिरिक्त रुइ (रहू) माछ की पकौड़ियाँ भी थीं। सरसों के तेल में तले हुए 'रुइ' माछ के टुकड़ों के अलावा एक-एक कटोरी में शोरबादार माछ भी। शोरबादार माछ की जरूरत इसलिए पड़ी कि इस अल्पाहार में 'लूची' (बंगाली पूरी) भी परोसी गई थी। लेकिन तर्करत्न महोदय मत्स्य-भक्षण से परहेज न रखते हुए भी ऐसे आधुनिक सहभोजों से परहेज अवश्य रखा करते। संस्कृत के कर्म-कांडी विद्वान थे! युग भी अभी रूढ़ियों की क़ैद से निकलने को छटपटा ही रहा था! फिर भी वे अपेक्षाकृत उदार थे। सहभोज में दो जने जाति से कायस्थ थे, (यद्यपि पाचक ब्राह्मण था) जिन्हें वे बर्दाश्त कर रहे थे। अतः वे केवल वहाँ साक्षी या दर्शक के रूप में ही मौजूद थे।

चक्रवर्ती महाशय को आज के उन मत्स्य-खंडों में बड़ा स्वाद आ रहा था। प्रशंसा में सबसे आगे वे ही थे। अंग्रेजी पढ़े-लिखे होने के

बावजूद संस्कृत के समयोचित पद्य उन्हें कम याद न थे। मत्स्य की प्रशंसा में इस समय भी उनके मुख से एक संस्कृत श्लोक निकल ही पड़ा—

"केचिद् वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु
केचिद् वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु।
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षाः
जम्बीरनीरपरिपूरितमत्स्यखण्डे[1]।"

लेकिन इस श्लोक के पढ़ते ही उन्हें झट जम्बीर—(नीबू)—नीर की याद भी आ गई। बोले—"घोष मोशाइ! इस साज-सरंजाम पर एक जम्बीर-नीर की ही त्रुटि क्यों?"

और घोष महोदय ने एक सुसंस्कृत आतिथेय होने के नाते भूल जाने का नाट्य करते हुए झट अपनी पुत्री को आवाज दी—"ओ माँ! नींबू के कुछ खंड भी तो दे जा!"

नीबू के खंडो से भरा एक प्लेट भी आ गया।

चटर्जी खुश हो उठे। एक टुकड़े को कटोरी और प्लेट में निचोड़ते हुए बोले—"अवश्य इस श्लोक की रचना किसी बंगाली ने की होगी! सिवा बंगाली के मत्स्य-स्वाद के रहस्य को कोई दूसरी जाति क्या जाने भला? क्यों, मामा मोशाइ?"

और तर्करत्न महोदय ने केवल मुसका कर उनके इस मन्तव्य की पुष्टि कर दी।

"और 'रुइ माछ' की तो शास्त्रों ने भी खूब प्रशंसा की है?"—

---

१. "कोई अमृत का निवास स्वर्ग में बताते हैं, तो कोई नारियों के अधर-पल्लवों में! किन्तु सभी शास्त्रों के विचार में प्रवीण हम, यह उद्घोष करते हैं कि नींबू के रस से परिपूरित मछली के टुकड़े में ही अमृत का निवास है!"

घोष महोदय ने तर्करत्नजी से प्रश्न किया।

और तर्करत्नजी ने सिर हिला कर समर्थन करते हुए मनुस्मृति का यह वाक्य भी पढ़ दिया—"पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः।"[१]

चटर्जी महाशय फिर खुश हो पड़े। बोले—"मनु महाशय भी अवश्य बंगाली रहे होंगे! अन्यथा 'रुइ माछ' के माहात्म्य को वे कैसे जान सके होते? और यह भी सत्य कि 'रुइ माछ' को खा कर ही समस्त भारतवर्ष के लिए 'मनुस्मृति' की रचना की प्रतिभा उन्हें प्राप्त हो सकी होगी!"

"अवश्य! अवश्य!"—कह कर घोष और वसु ने सम्मति जताई।

तर्करत्नजी ने मुसकाकर ही समर्थन किया, किन्तु शैलेन्द्र केवल श्रोता बना रहा।

वसु महाशय ने अनुरोध किया—"इस सम्बन्ध में शैलेन बाबू भी तो अपना मन्तव्य प्रकट करें?"

लेकिन शैलेन्द्र ने असमर्थता प्रकट की—"मेरा तो अघोर बाबू, इस सम्बन्ध में अध्ययन और अनुसन्धान बिलकुल है ही नहीं!"

लेकिन वसु महाशय को यह जवाब जँचा नहीं। बोले—"बंगाली होना ही क्या इस सम्बन्ध मे अध्ययन और अनुसन्धान के लिए कम है शैलेन बाबू? और आप तो विद्वान् भी हैं!"

"सो तो यहाँ सभी विद्वान् हैं?"—शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए जवाब दिया—"और बंगाली भी? फिर मेरा मन्तव्य जानने की जरूरत ही क्या जब आप जानते ही हैं कि वह आप लोगों के मन्तव्य से भिन्न न होगा? उसे भिन्न होना भी न चाहिये?"

---

१. पाठीन और रहू माछ देव-कर्म और पितृ-कर्म में विहित हैं, (भोजन में भी)।

शैलेन्द्र के इस जवाब पर सब हँसे। "यही तो चाहिये! यही तो चाहिये!"—कहते हुए सबने खुशी भी जाहिर की। लेकिन इसके भीतर निहित व्यंग को वे सहसा समझ न सके।

अब तर्करत्नजी शैलेन्द्र को एक बार गहरी आँखों से, मानो परीक्षा कर जिज्ञासा-भरे स्वर मे बोले—"शैलेन बाबू ने अभी गृहस्थ-धर्म मे प्रवेश तो नहीं किया?"

"नहीं!"—शैलेन्द्र की ओर से श्रीघोष ने ही जवाब दिया—"किन्तु अब उसका भी आयोजन हो ही जाना चाहिये! हमारे आधुनिक बगाली समाज का आदर्श है गृहस्थ-धर्म मे तब प्रविष्ट होना चाहिये जब गृहस्थी चलाने की क्षमता और योग्यता प्राप्त कर ली जाय। शैलेन बाबू अब इस दिशा मे भी पूर्ण समर्थ बन चुके हैं!"

"तब तो शुभस्य शीघ्रम्!"—तर्करत्नजी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"ऐसे सुयोग्य पात्र के लिए अपने बगाली समाज में सुयोग्य पात्रियो का अभाव तो नहीं?"

सुन कर शैलेन्द्र के चेहरे पर सकोच की लाली उभर आई। वह चुपचाप सिर नीचा किये गरमागरम चाय की चुस्कियाँ लेता रहा।

श्रीघोष ने ही फिर जवाब दिया—"हमारा बगाली समाज आज स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे भी भारत के अन्य सभी समाजों से आगे है! परन्तु खेद कि हमारे शिक्षित बगाली युवक और उनके अभिभावक दहेज आदि के अनुचित लोभ मे इन शिक्षित कन्याओं की शिक्षा का, उनके मूल्य का समादर नहीं कर पाते! परिणामतः सुयोग्य दाम्पत्य के अभाव में इन कन्याओ का जीवन ही विफल बन जाता है! वे आजीवन कौमार्य अथवा अनुचित दाम्पत्य के लिए बाध्य बन जाती हैं! यह कम खेद का विषय नहीं है, तर्करत्नजी!"—कहते-कहते मानो सचमुच उनके स्वर में कारुण्य की एक व्यथा उभर आई।

घोष महोदय के इस उद्‌गार का सभी ने मुक्तकंठ से समर्थन

किया। और जवाब में तर्करत्नजी बोले—"इस करुणामय वैफल्य को सफल बनाने के लिए हमारा लक्ष्य और आदर्श होना चाहिये 'योग्यं योग्येन योजयेत्!' और समाज के सुशिक्षित युवकों का आदर्श भी यही होना चाहिये कि वे दहेज के अनुचित लोभ में न पड़ें! कन्या की योग्यता का अधिक आदर करें!"

सबने तर्करत्नजी के इस मन्तव्य का भी मुक्तकंठ से समर्थन किया। लेकिन शैलेन्द्र के चेहरे पर संकोच का बोझ बढ़ता ही गया।

घोष महोदय ने फिर कहना शुरू किया—"और शैलेन बाबू जैसे शिक्षित चरित्रवान युवक से हमें आशा रखनी ही चाहिये कि वे इस आदर्श का अधिक आदर करेंगे! और जैसा कि तर्करत्नजी जैसे परम पूज्य विद्वान् के मुख से 'शुभस्य शीघ्रम्' यह परम मांगलिक वाक्य निकल पड़ा, तो अब केवल शैलेन बाबू की ही स्वीकृति अपेक्षित है! एक परम कुलीन शिक्षित एवं रूपवती बंगाली कन्या इस शुभ कर्म की अपेक्षा में है! और कन्या के पिता भी इस क्षण यहीं मौजूद हैं! और उचित दान-दहेज देने के लिए भी तैयार हैं!"

तर्करत्न ने समर्थन किया और अघोरनाथ वसु ने भी। लेकिन चट्टोपाध्याय इस बार सतृष्ण नेत्रों से एक बार शैलन्द्र के संकोच-विनत चेहरे को निहार कर चुप ही रहे। और शैलेन्द्र के मन में अब जरा भी सन्देह न रहा कि उसके श्वसुर-पद के सुयोग्य उमीदवार कौन हैं! लेकिन फिर भी किसी ओर बगैर ताके वह चुपचाप अपने-आप में मशगूल रहा।

घोष महोदय ने फिर कहा—"हरेन बाबू परम प्रख्यात 'राढ़' वंश के कुलीन ब्राह्मण हैं! अपनी कन्या इन्दुमती को 'इंटरमीडियट' तक की शिक्षा दिला कर एक सुयोग्य पिता के उत्तरदायित्व का निर्वाह भी किया ही है! आयुष्मती इन्दु जिस प्रकार आकृति से लाखों में एक है, उसी प्रकार प्रकृति से भी! और गृह-संचालन की दक्षता भी उसमें

कम नहीं है। इस प्रकार इन्दुमती बंगाली कन्याओं में रत्न है, रत्न, तर्करत्नजी !"

तर्करत्नजी ने परम हृष्ट स्वर में समर्थन किया—"और मनु ने भी कहा है 'कन्यारत्न दुष्कुलादपि'। अर्थात् हीन कुल में उत्पन्न कन्या-रत्न भी ग्राह्य है! किन्तु यहाँ तो स्वर्ण में सुगन्ध! कन्या-रत्न भी, और सो भी एक परम पवित्र कुल की! उच्च घराने की!"

हरेन चटर्जी का चेहरा इस क्षण एकाएक सफल पितृत्व और कुलीनता के गर्व से उद्भासित हो उठा। उन्होंने छिपी आँखों से शैलेन्द्र को निहारा भी, लेकिन उसने उनकी ओर तनिक भी ध्यान न दिया।

तर्करत्नजी एक बार सबकी ओर आँखें दौड़ा कर शैलेन्द्र की ओर नजर गड़ा कर अब अनुरोधभरे स्वर मे बोले—"तो अब शैलेन बाबू भी तो कुछ बोलें? अपनी शुभ सम्मति से हम लोगो को कृतार्थ तो करें?"

तर्करत्नजी के इस आमन्त्रण पर शैलेन्द्र भी अब निष्क्रिय न रहा। गरदन सीधी कर एक बार स्वस्थ नेत्रों से उसने सबकी ओर देखा। और सबकी आँखें भी इस बार बड़ी उत्सुकता से उसकी ओर जा लगीं।

शैलेन्द्र ने गंभीर, पर व्यंगभरे स्वर मे विना किसी हिचक के जवाब दिया—"मेरे सम्बन्ध में अब तक जो भी उच्च भाव यहाँ प्रकट किये गये हैं, उनके योग्य न होते हुए भी मै परम कृतज्ञ हूँ आप लोगों का! किन्तु···"

"नहीं नहीं!"—बीच में ही तर्करत्नजी ने प्रतिवाद करते हुए कहा—"आपकी योग्यता तो निर्विवाद है! सबके लिए स्पृहणीय!"

"सज्जन और सुयोग्य पुरुष मुँह पर अपनी स्तुति पसन्द नहीं करते तर्करत्नजी!"—श्रीघोष ने भी अनुमोदन किया।

लेकिन शैलेन्द्र ने इन स्तुति-वाक्यों पर जरा भी ध्यान न दे कहना जारी रखा—"किन्तु बड़े खेद के साथ अपनी इस कमी को भी स्वीकार करना पड़ रहा है कि एक कुलीन एवं परम प्रख्यात पवित्र राढ़वंशीय ब्राह्मण-कन्या के योग्य मै अब नहीं रहा !"

"क्यो ? क्यों शैलेन बाबू ?"—श्रीअनिल घोष ने आश्चर्य-भरे घबराये स्वर में प्रश्न किया। और दूसरे लोग भी आश्चर्यभरी आँखों से उसे देखने लगे।

शैलेन्द्र ने बेधड़क जवाब दिया—"क्योंकि, शायद आप लोगों को मालूम नहीं कि मै जब से इम्फाल आया, तभी से अपने मइतेइ मित्र के घर का भात विना किसी बाधा-व्यवधान के खाता आ रहा हूँ !"

"तो इससे आपकी योग्यता में कमी कैसे आ गई ?"—अनिल घोष ने निश्चिन्तता की एक साँस लेते हुए प्रश्न किया।

"क्योंकि अब मै स्वयं कुलीन नहीं रहा ! पवित्र नहीं रहा ! और न ब्राह्मण ही !"

श्रीअनिल घोष ने तर्करत्नजी की ओर प्रश्न-सूचक नेत्रों से निहारा। सकेत समझ कर तर्करत्नजी ने मानो शंका निर्मूल करते हुए झट समाधान किया—"यह तो कोई बात नहीं ! ब्राह्मणत्व और कुलीनता कोई वैसी क्षुद्र वस्तु नहीं शैलेन बाबू, कि किसी का भात खाते ही नष्ट हो जाय ! 'मइतेइ' व्रात्य (पतित) क्षत्रिय अवश्य हैं, किन्तु यत्किंचित् प्रायश्चित्त कर लेने से ही काम चल जायगा !"

तर्करत्न की इस व्यवस्था पर सिवा शैलेन्द्र के सबको सन्तोष हुआ। शैलेन्द्र अपने मइतेइ मित्र के घर रह रहा है यह सबको मालूम था, लेकिन इस बात पर शायद अब तक किसी ने भी ख्याल न किया था कि वह मइतेइ का छुआ भात भी खा रहा है। मइतेइ अपने-आप में उन लोगों के लिए भी अछूत न थे, किन्तु मइतेइ का पकाया भात खाने वाला ब्राह्मण शास्त्र-दृष्टि से पतित अवश्य हो सकता है यह

सोचते ही हरेन चटर्जी जरा घबराये ! घोष और वसु जाति से कायस्थ थे। और बंगाल की मान्यता के अनुसार सवर्ण शूद्र भी। लेकिन स्वयमेव अपने-आपको जाति-च्युत घोषित करने वाले इस ब्राह्मण-कुमार के साथ बैठ कर इतमीनान से चाय-पानी करने की दोष-भागिता से वे स्वयं भी मन-ही-मन सशंक हो उठे ! क्योंकि स्वयं धर्मशास्त्र के व्यवस्थापक तर्करत्नजी वहाँ साक्षी के रूप में मौजूद थे।

लेकिन तर्करत्नजी स्वभाव से काफी उदार ठहरे ! इसलिए ही तो वे दो कायस्थों के साथ दो ब्राह्मणों को एक मेज पर ही नाश्ता-पानी करते देखना बर्दाश्त कर रहे थे ! और जब उन्होंने ब्राह्मणत्व और कुलीनता वापस लाने के निमित्त यत्किंचित् प्रायश्चित्त की ओर संकेत किया तो हरेन्द्र चट्टोपाध्याय और अनिल घोष दोनों ही खुश हो पड़े !

लगभग एक साथ ही वे दोनों बोल पड़े—"क्यों नहीं ? जब बिलायत जा कर म्लेच्छों का छुआ-पकाया खा कर भी अनेक बंगाली प्रायश्चित्त से परिशुद्ध हो स्वजाति में प्रविष्ट हो सकते हैं, तो यह तो उसकी तुलना में कुछ भी नहीं ! एक हिन्दू क्षत्रिय का छुआ-पकाया खाने का दोष तो कोई बड़ा दोष नही !"

लेकिन शैलेन्द्र को मन-ही-मन हँसी आई। हँसी को दबा कर गंभीर स्वर में उसने प्रश्न किया—"किन्तु मैं तो इसे पाप या अपराध मानता ही नहीं तर्करत्न महाशय, कि प्रायश्चित्त करने की जरूरत ?"

उसके इस प्रश्न से तर्करत्नजी जरा अप्रतिभ अवश्य हुए, किन्तु फिर भी उदारताभरे स्वर में बोले—"हाँ, कोई बड़ा पाप या अपराध तो नहीं किया आपने, किन्तु सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन तो किया ही है ? क्योंकि यह तो मानना ही पड़ेगा कि आप बंगाली भी हैं, और ब्राह्मण भी ?"

"और यदि मैं अपने-आपको न बंगाली मानूँ, और न ब्राह्मण, तो ?"

शैलेन्द्र के मुख से अनजाने, आवेश में ही यह उद्दण्डताभरा प्रश्न निकल पड़ा। ऐसे प्रश्न के लिए वहाँ कोई भी तैयार न था। मानो अचानक अनजाने वहाँ बम का विस्फोट हो गया! किसी पढ़े-लिखे बंगाली और ब्राह्मण के मुख से ऐसी बात सुन कर उसके सही दिमाग होने में किस बंगाली को सन्देह न होगा? अनेक मणिपुरियों का विरोध होते हुए भी श्रीअनिल घोष ने उसे बंगाली मान कर ही तो उस सम्मानित पद पर उसकी नियुक्ति में सहायता की थी! उन दिनों वहाँ कोई कालेज न था। अतः हाई स्कूल ही शिक्षा की सर्वोच्च संस्था होने के कारण उसके प्रधानाध्यापक-पद पर एक बंगाली की नियुक्ति ने सभी बंगालियों में हर्ष और गर्व की बाढ़ ला दी थी। लेकिन यह क्या? इस परम अकृतज्ञ बंगाली ने बंगालियों के सामने ही उस सामूहिक हर्ष और गर्व को इस एक ही वाक्य के आघात से बिलकुल धूलिसात् कर दिया! और उस क्षण हरेन्द्र चट्टोपाध्याय का चेहरा तो देखने ही योग्य था! कहाँ एक योग्य वर के योग्य श्वसुरत्व की आकांक्षा एवं आशा का उल्लास! और कहाँ एकाएक उसके मूल मे ही यह कुठाराघात! जो आँखें कुछ देर पहले स्नेह और आत्मीयता से भरी-भरी दीख रही थीं, वे ही अब एकाएक घृणा और वितृष्णा से भर उठीं। शैलेन्द्र की ओर ताकना भी वे अब जैसे बर्दाश्त न कर सकीं।

सहसा किसी से कोई उत्तर देते न बना। सबको चुप हुए देख अब अघोरनाथ से अधिक देर चुप न रहा गया। उसने व्यंगभरे स्वर में प्रश्न किया—"तो यदि आप बंगाली नहीं हैं, ब्राह्मण भी नहीं, तो हैं कौन? जरा सुनूँ तो?"

और शैलेन्द्र ने जरा भी अप्रतिभ हुए विना दृढ़ स्वर में जवाब दिया—"मैं अब मणिपुरी हूँ! मैं अब मइतेइ हूँ, अघोर बाबू!"

मानो फिर एक बम का धड़ाका! शैलेन्द्र के स्वरों में नव-दीक्षित व्यक्ति की दृढ़ता और उत्साह बोल रहा था। लेकिन साथ ही

उसमें परित्याग की एक कटुता भी थी। जिस प्रकार कोई हिन्दू या मुसलमान एकाएक इस्लाम या हिन्दुत्व को गले लगा कर अपने परित्यक्त समाज के बीच ही उसे गर्व से उद्घोषित कर दे, तो उस समाज की सहानुभूति या आत्मीयता का पात्र वह नहीं रह जाता, वही स्थिति इस समय शैलेन्द्र की भी हो चली। वह स्वयं कुलीन ब्राह्मण था ! कुछ क्षण पहले तक अपने समाज का एक परम स्पृहणीय रत्न ! लेकिन क्षण भर बाद ही जब खुले-आम इन सबसे नाता तोड़ने का उद्घोष उसने कर दिया तो उन सभ्य-सुसस्कृतों के चेहरे पर परित्यागजन्य वितृष्णा और वेदना के उभरते देर न लगी।

लेकिन फिर भी अनिल घोष जरा सम्हल कर, वितृष्णा की एक हँसी हँस कर व्यगभरे गभीर स्वर मे बोले—"तो शैलेन बाबू पर मणिपुर का जादू बहुत जल्द चल गया! हरेन बाबू को इसी इम्फाल मे रहते बीस वर्ष से भी अधिक हो चुके, और दस वर्ष से अधिक मुझे भी, और अघोर बाबू को भी पाँच-छह से कम न हुए होगे, और अनेक बगाली भद्र लोगों की तो दो-दो और तीन-तीन पीढ़ियाँ यहाँ गुजर चुकीं! किन्तु हर्ष की बात कि किसी पर भी अब तक मणिपुर का जादू न चल सका ! किन्तु बगाली होने के नाते यह देख मुझे कम आश्चर्य और ग्लानि नहीं हुई कि शैलेन बाबू जैसे शिक्षित व उच्च-पदस्थ बगाली केवल दो मास में ही इस जादू के बुरी तरह शिकार हो गये ! उनके हृदय में बंगाल और बंगाली समाज के लिए तनिक भी मोह न रह गया ! छी !"

अनिल घोष के स्वरों में भी वही शैतान बोल उठा जो अचउ सिंह के स्वरों में झंकृत हुआ था। और तब हरेन्द्र चटर्जी भी सारी सभ्यता को तलाक दे कर उबल पड़े—"और हम लोगों के मुँह पर ही छाती फुला-कर ऐसा कहते इन्हें तनिक भी लज्जा न आई ! छी !"—जैसे शैतान और भी उद्दड हो उठा।

लेकिन इंसान मानो शैतान के समक्ष अडिग बना रहा। इस व्यग और छी-छी के उद्गार से तनिक भी विचलित न हो शैलेन्द्र ने शान्त पर दृढ़ स्वर में जवाब दिया—"किन्तु मैने तो अपने पूर्वज बगाली ब्राह्मणों के आचरण का ही अनुसरण किया है अनिल बाबू ? कोई अनुचित कर्म तो किया नहीं कि लज्जित होने की जरूरत ? अथवा इस छी-छी की जरूरत ?"

"अर्थात् ?"—आश्चर्य और वितृष्णा से अपने नेत्र और मुँह को फैला कर अनिल बाबू ने व्यगभरे स्वर में प्रश्न किया।

किन्तु शैलेन्द्र ने शान्त स्वर में ही जवाब दिया—"अर्थात्, जिस प्रकार सदियों पहले अनेक बगाली ब्राह्मण यहाँ आ-आ कर मणिपुरी समाज मे घुल-मिल गये, इस समाज का ही अंग बन गये, उसी प्रकार यदि मैने भी अपने उन्हीं पूर्व पुरुषों का अनुसरण कर इस समाज में मिल जाने का निर्णय कर ही लिया तो अनुचित क्या हो गया अनिल बाबू ?"

लेकिन अनिल बाबू के कुछ कहने से पहले ही झट मुँह बनाते हरेन बाबू बोल उठे—"किन्तु वे लोग 'मइतेइ' तो नहीं बन गये ? ब्राह्मणत्व को तिलांजलि तो नहीं दे डाली ?"

और शैलेन्द्र ने जरा भी अप्रतिभ न हो कर मुसकाते हुए जवाब दिया—"तो उन लोगों से जो त्रुटि रह गई उसे मैं और मुझ जैसे बगाली ठीक करेंगे ! उनकी तनिक-सी भूल को हम सुधार देंगे !"

तर्करत्नजी ने मुँह और आँखें फैला कर आश्चर्य प्रकट किया—"अच्छाऽऽऽ ! उनके आचरण का अनुसरण भी ! और भूल का सुधार भी !"

हरेन चटर्जी ने फिर असन्तुष्ट एवं वितृष्ण स्वर में व्यंग किया—"देखिए मामाजी ! अपने पूर्वजों के आचरण का अनुसरण भी और उनके आचरण का मजाक भी ! उनकी भूल का सुधार करेंगे भला

आजकल के ये उद्दड छोकरे !"

शैलेन्द्र ने चटर्जी की बात पर तनिक भी ध्यान न दे तर्करत्न को शान्त स्वर में जवाब दिया,—"उस समाज से पृथक् रह कर तो उसके प्रति की गई भूल का सुधार नही किया जा सकता तर्करत्नजी ? उन्होंने मणिपुरी समाज को अपना कर भी यहाँ वर्ण-भेद और जाति-भेद को प्रोत्साहित किया। मै उसी भेद को मिटाना चाहता हूँ ताकि यहाँ ब्राह्मणों और मइतेइयों का पारस्परिक जातिजन्य विद्वेष कायम न रह जाय ! भविष्य में जाति-वाद का जहर इनमें फैल न सके !"

"तो आप 'मणिपुरी मनु' बनना चाहते हैं शैलेन बाबू ?"—तर्करत्नजी ने मुसकाते हुए पुनः व्यग कसा, और दूसरों ने ज़ोर से हँस कर उनका अनुमोदन किया।

और शैलेन्द्र ने भी व्यग मे ही जवाब दिया—"मनु नहीं तर्करत्नजी, मनु का पुत्र 'मानव' ! केवल एक 'मणिपुरी मानव' !"

अब अनिल बाबू ने भी आँख-मुँह फैला कर व्यग कसा—"अच्छाऽऽऽ ! उद्देश्य तो आपका बड़ा महान है शैलेन बाबू ! और इसी लिए आपने बग और बगाली समाज से इतनी जल्दी सम्बन्ध-विच्छेद का निर्णय भी कर लिया ? किन्तु इतना क्या मै पूछ सकता हूँ आपसे कि बगाली क्या मनु की सन्तान से पृथक् हैं ? वे क्या मानव नहीं हैं !"

बीच मे ही अघोरनाथ ने व्यग साधा—"किन्तु वे मणिपुर के मानव तो नहीं ? और शैलेन बाबू बनना चाहते हैं 'मणिपुरी मानव' !"

लेकिन शैलेन्द्र ने अघोरनाथ के व्यग की ओर ज़रा भी ध्यान न दे अनिल घोष को जवाब दिया—"विश्व के समस्त मानव ही मनु की सन्तान हैं अनिल बाबू ! और मैं समझता हूँ कि न बगाल विश्व से अलग है, और न बंगाल के मानव विश्व-मानव से !"

"तो फिर ?"—अनिल बाबू ने भौहों पर बल देते पुनः प्रश्न

किया।

और शैलेन्द्र ने तनिक सोच कर जवाब दिया—"तो फिर यही कि मैं मणिपुर में केवल 'मणिपुरीवाद' का समर्थक हूँ, 'बगालीवाद' का कतई नहीं!"

"अर्थात्?"—अनिलघोष ने उसी प्रकार भौहों पर बल दे व्यंग-भरे लहजे में फिर पूछा।

लेकिन शैलेन्द्र ने सरल स्वर में जवाब दिया—"अर्थात् कि यहाँ के हर बगाली को चाहिए कि वह अपने-आपको मणिपुरी समाज का अभिन्न अग समझे! वह अपने को मणिपुरी मान कर ही यहाँ अपने दैनिक आचरण का निर्धारण करे!"

"अर्थात् वह अपनी जननी-जन्मभूमि को बिलकुल भुला दे? अपनी शस्यश्यामल बगभूमि, परमोच्च बग-सस्कृति, अति-श्रेष्ठ बग-समाज, परम ललित बंग-वाणी, अति समृद्ध बङ्ग-वाङ्मय, इन सबसे नाता तोड़ कर उस समाज से नाता जोड़ ले जहाँ यह सब कुछ नहीं? वाह! अच्छा कहा मोशाइ आपने भी!"—कहते-कहते अनिल बाबू के प्रशस्त ललाट एव सुन्दर गोरे मुख पर और भी अरुचि और वितृष्णा की रेखाएँ उभर आईं। मानो सकीर्णता का पढ़ा-लिखा शैतान अपनी घृणा में आप कुरूप बन गया!

शैलेन्द्र ने यह लक्ष्य किया। लेकिन उनकी इस भावुकता और मुख-मुद्रा से रंचमात्र भी प्रभावित हुए बिना इस बार तर्क के सबल शस्त्र प्रहार करते हुए व्यगभरे स्वर में वह बोला—"हमें जरा स्वस्थ मन से यह सोचना चाहिए कि भावुकता अकेले बंगालियों की ही सम्पत्ति नहीं है अनिल बाबू! मैं बड़े विश्वास से कह सकता हूँ कि भावना के आवेश में कोई पढ़ा-लिखा भावुक मणिपुरी भी अपनी मातृभूमि, मातृभाषा, साहित्य, सस्कृति और अपने समाज के प्रति इस प्रकार के भक्तिभरे शब्दों का प्रयोग मुझे में कर सकता है। किन्तु

भावुकता आखिर भावुकता है, और यथार्थ यथार्थ ! अब जरा...”

हरेन्द्र चट्टोपाध्याय ने बीच मे ही उसे टोकते हुए व्यंग कसा—“तो मणिपुरियों की तरफ से आप ही कुछ ऐसा कह न जाइए ! नया मियॉ 'अल्ला-अल्ला' अधिक करता है ! और आप ठहरे खूब अधिक पढ़े-लिखे बिलकुल नये मणिपुरी !”

लेकिन शैलेन्द्र ने उनके इस व्यग पर भी तनिक भी ध्यान न दे अनिल घोष से फिर कहा—“अब जरा यथार्थ पर भी विचार किया जाय अनिल बाबू ! मैं भी बंगाली समाज मे पैदा हुआ हूॅ। अतः बगालियों की...”

“तो आप अपने को बगाली मानते क्यो नही ?”—हरेन बाबू ने मेज पर हाथ पटक कर पुनः उसे बीच मे ही टोका। लेकिन शैलेन्द्र ने इस बार भी उनकी बात का जवाब न दिया। इस बार-बार की उपेक्षा से वे मन-ही-मन खूब चिढ़ कर आखिर चुप हो गये।

शैलेन्द्र ने कहना जारी रखा—“अतः मै बंगालियों की मनोवृत्ति से अपरिचित नहीं हूॅ। और कलकत्ते मे भी वर्षों रह चुका हूॅ। सच बताइए अनिल बाबू, कि कलकत्ते मे मारवाड़ियो और गैर-बगालियो के बाहुल्य तथा मारवाड़ियों की समृद्धि को क्या कोई बगाली फूटी आँखों भी देखना पसन्द करता है ? क्या यह सच नहीं कि यदि बगालियों का वश चले तो वे हर गैर-बगाली और हर मारवाड़ी को वहॉ से मार खदेड़े ? मार भगावें ?”

“इस दृष्टान्त से आपका तात्पर्य ?”—श्रीघोष ने जरा शंका-भरे स्वर में प्रश्न किया।

और शैलेन्द्र ने बेहिचक जवाब दिया—“तात्पर्य स्पष्ट है अनिल बाबू ! यदि इन मणिपुरियों का भी वश चले तो वे भी आज हर बंगाली को मणिपुर की धरती से मार भगावें ! इन दो-तीन महीनों में ही मणिपुरी मनोवृत्ति से मैं बखूबी परिचित हो चुका हूॅ ! और इस

तथ्य और सत्य पर अविश्वास करना भविष्य में यहाँ के बंगालियों के लिए भला न होगा यह मैं पूरी ईमानदारी के साथ कह रहा हूँ अनिल बाबू !"

अनिल घोष के दिल में एक हलकी-सी धड़कन पैदा हो चली। और मन-ही-मन हरेन बाबू भी विचलित हुए बिना न रह सके।

लेकिन अनिल घोष ने झट सम्हल कर उससे व्यंग भी किया—"हम लोग यहाँ वर्षों से रहते हुए भी इस मनोवृत्ति से परिचित न हो सके, पर आपने इन दो-तीन महीनों मे ही गजब की जानकारी हासिल कर ली शैलेन बाबू ! आपकी प्रतिभा को बधाई अवश्य दूँगा ! किन्तु आपकी चमत्कारी प्रतिभा से मैं क्या इतना जान सकता हूँ कि मणिपुरियों के हृदय मे यह घृणा-वितृष्णा बंगालियों के लिए ही क्यो ? इसी इम्फाल के बाजार मे व्यापार से मोटे हो रहे मारवाड़ियों के लिए क्यों नहीं ? और अन्य समाज के लोगों के लिए क्यों नहीं ?"

और शैलेन्द्र ने झट जवाब दिया—"क्योंकि बगाली यहाँ के शासन-क्षेत्र पर छाये हुए हैं और मारवाड़ी केवल व्यापार के क्षेत्र पर ! बगाली, शासन के रोब और जातीय श्रेष्ठता के अहकार में उनसे समानता का व्यवहार करना नहीं चाहते। और घृणा-वितृष्णा यद्यपि शोषक मारवाड़ियों के लिए भी यहाँ कम नहीं है, किन्तु शासक-मनोवृत्ति का रोब या रोग उनमें नहीं है। जातीय श्रेष्ठता के रोब में वे पागल नहीं हैं। मणिपुरियों से समानता का व्यवहार करना वे जानते हैं। क्योंकि वे व्यापारी हैं।"

शैलेन्द्र के इस उत्तर ने कुछ क्षण के लिए अनिल घोष को निरुत्तर कर दिया। वे सहसा गभीर हो मानो कुछ सोचने लगे। दूसरे भी सहसा कुछ बोल न सके।

शैलेन्द्र ने कहना जारी रखा—"और भी सुनिए ! जरा छाती पर हाथ रख कर गहराई से सोचिए कि सन् १६०५ में बंग-भंग-आन्दोलन

में सारा बंगाल और सारा भारत क्यो कर अंग्रेजी शासन और अग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ? और आज भी सारे भारत मे क्यों कर अंग्रेजी शासन और अग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन चालू है? उत्तर स्पष्ट है! क्योकि अग्रेज शासक हैं। वे विदेशी हैं। वे भारत को अपना देश नहीं मानते। वे शासक मनोवृत्ति के अहकार मे भारत की, भारतीयो को, भारतीय सस्कृति और सभ्यता को अपने से हेय मानते हैं! घृणित और जघन्य मानते हैं!"

वे सब चुपचाप सुनते रहे और शैलेन्द्र बोलता गया—"भारत में सर्वप्रथम बंगाल का अग्रेजों और अग्रेजी शासन से सपर्क हुआ। लार्ड मेकाले की योजना के अनुसार सर्वप्रथम बगालियों को ही क्लर्की की नौकरी के लिए अग्रेजी पढ़ने का अवसर मिला। और ज्यो-ज्यो अग्रेजी शासन भारत मे बढ़ता गया, त्यो-त्यो बगाली क्लर्कों की यह फौज भी अपने गोरे प्रभुओ के पीछे-पीछे चल पड़ी। बड़े साहब तो बडे साहब रहे, और हम बगाली छोटे साहब बन कर उन विदेशी बड़े साहबो की छत्र-छाया मे अपने ही देशवासियो पर शासन का, अपनी जातीय श्रेष्ठता का रोब बड़ी निर्लज्जता से बघारने लगे! अपने मिथ्या अहंकार का प्रदर्शन करने लगे! और इस प्रकार बगाल से बाहर जहाँ कही भी हम गये वहाँ के निवासियों की नजरो मे घृणित बन कर अपनी मिथ्या शान-शौकत के अभिमान मे झूमने लगे!"

इस बार लेकिन अनिल घोष बिलकुल आपे से बाहर हो उठे। बगैर किसी लाग-लगाव के अति तीखे स्वर मे वे बोल उठे—"आपको यथेच्छ अधिकार है बगाली समाज से पृथक् होने का शैलेन बाबू, लेकिन इस प्रकार समस्त पढ़े-लिखे बगालियों को अंग्रेजो का गुलाम और क्लर्की सेना कह कर उनका अपमान करने का अधिकार आपको कतई नहीं है! इस सत्य को जितना शीघ्र आप हृदयंगम कर लें उतना ही ठीक! हम यहाँ मणिपुर-नरेश के नौकर हैं, अग्रेजों के नहीं! मणिपुर

और मणिपुरी समाज के सम्बन्ध में समुचित जानकारी के विना मैं इस उच्च उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर आसीन नहीं हूँ, इसे भी यदि आपने पहले ही विचार लिया होता तो आज के इस लंबे वितडावाद की जरूरत न होती शैलेन बाबू !" फिर एकाएक हाथ जोड़ वितृष्णा-भरे स्वर मे—"अच्छा, तो अब हमे अवकाश दें आप ! आपके सम्बन्ध मे मेरी जो व्यक्तिगत धारणा थी वह बिलकुल निर्मूल साबित हुई ! इसका मुझे कम कष्ट नहीं है ! अच्छा, नमस्कार !"

श्रीअनिल घोष ने ही शैलेन्द्र को आमन्त्रित किया था। पर एक उच्च शिक्षित आतिथेय हो कर भी सकीर्ण भावुकता की अतिशय उत्तेजना में सामान्य शिष्टाचार का भी वे ध्यान न रख सके। जैसे किसी श्रद्धालु ने किसी परम पूज्य साधु को अपने घर निमन्त्रित करके सहसा उसे चोर समझ कर अर्धचन्द्र दे दिया हो ! शैलेन्द्र भी झट उठ खड़ा हो हाथ जोड़ 'नमस्कार' कह कर विदा हो पड़ा। और चलते-चलते ही अपनी पीठ पीछे उसे यह ध्वनि भी सुनाई देने लगी कि—"पागल है, पागल ! पढ़ा-लिखा मूर्ख ! यह तो अच्छा हुआ हरेन बाबू, जो समय से पहले ही सत्य प्रकट हो गया ! नहीं तो इन्दु बेचारी···"

अँधेरा हो चुका था। मारे क्रोध और विक्षोभ के शैलेन्द्र लबे-लबे डग भरता काफी आगे बढ़ चुका था। इससे आगे वह कुछ सुन न सका।

(१०)

आज दोनों मित्रों की मनोदशा समान थी। जिस समय चन्द्रावत अचउ सिंह के घर से असफल हो वापस आया उसके डेढ़-दो घटे बाद शैलेन्द्र भी आ पहुँचा। दोनों मित्रों में देखा-देखी जरूर हुई, लेकिन आज की इस देखा-देखी में अन्य दिनों का उल्लास न था। उल्लास का हलकापन न था। अपनी जात-बिरादर में जिस कारण वे

अपमान की कड़वी घूँट पीने को आज बाध्य हुए थे वह कारण ही मानो स्नेह का सबल सूत्र बन कर उनके हृदयों को और भी मजबूती से बाँध चुका था। किन्तु बाहर से वे फिर भी दूर-दूर रहे। खुल कर बोलने या हँसने का सामर्थ्य गहरी व्यथा और वितृष्णा के बोझ से दब कर जैसे सो गया था।

इस भारीपन के बीच ही आज रात का भोजन भी संपन्न हुआ। भोजन के बाद आज अन्य दिनो की भाँति विविध विषयों पर चर्चा न हो सकी। ऊपर-ऊपर से एक-दो बातें करके ही वे मच्छरदानियो की मजबूत किलेबन्दी के अन्दर अपने-अपने पलंग पर लेट गये। अन्तर्द्वन्द्वों के थपेड़े खा-खा कर अन्तस् उनका और भी उत्तप्त होने लगा। उस ताप मे विचारों का जोर और भी बढ़ चला। उस जोर की जजीर में बँध कर उनके मन और मस्तिष्क की गति जैसे और भी तेज हो चली। मानो वह निद्रा की मीठी-मीठी पहुँच के बहुत आगे बढ़ चली।

चन्द्रावत को इस क्षण भी अचउ सिंह की बातें याद आने लगीं। वे विष-बुझे तीखे तीर की तरह अन्तस् को छेदते हुए मस्तिष्क में पहुँच जातीं। जोर की खलबली मचा कर फिर निकल जातीं। वह सोच रहा था उनके उस अभियोग के सम्बन्ध में—"बगाली चाहे अंग्रेज के दफ्तरों मे हो, या साहित्य के उदार क्षेत्र मे, या धार्मिक आन्दोलन के पवित्र आँगन में, अथवा देशभक्ति या राजनीति के विशाल मैदान में, वह रहेगा हमेशा बंगाली ही! वह गैर-बगालियो को हर क्षेत्र मे ओछी आँखों से देखेगा ही! बंगालीपन और श्रेष्ठता का अहकार उसके दिल से कभी दूर न होगा!"

वह बार-बार अपने-आपसे पूछने लगा—"क्या सचमुच इस अभियोग में सचाई है? क्या सचमुच हर क्षेत्र में हर बगाली व्यवहारतः संकीर्ण ही होता है?"

मन में इस प्रश्न के उठते ही पक्ष और विपक्ष के कतिपय उदाहरण उसकी स्मृति में उपस्थित हो उठे। उदाहरण बिलकुल ताजे थे। बगाल की एक सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका मे सारे भारत की 'राष्ट्रभाषा' के सम्बन्ध में एक विवादपूर्ण विस्तृत लेख उसने पढ़ा था। बंगाल के प्रख्यात शिक्षा-शास्त्रियों एव राजनीतिज्ञों ने अनेक युक्तियों एव तर्कों से स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा के रूप मे 'बॅगला भाषा' की वकालत की थी। उसका दावा पेश किया था। भारत की अन्य सभी भाषाओं से बग-भाषा को सुललित, सुमधुर, सुसमृद्ध घोषित करते हुए उन्हें अपने पक्ष के औचित्य मे जैसे कोई भी द्विधा-बाधा न थी। कोई भी सन्देह न था। और इसी भावना से प्रेरित हो कर मणिपुर के बगाली अधिकारी मणिपुर मे बग-भाषा और बग-लिपि के प्रचार और प्राधान्य की वकालत कर रहे थे। मणिपुरियों ने बॅगला लिपि को सैकड़ों वर्ष पहले ही अपना लिया था। धार्मिक कीर्तन के पद भी वे बॅगला भाषा मे ही गाया करते हैं। पर बँगला-भाषा को वे 'मातृभाषा' या 'राजभाषा' के रूप में अपनाने को तैयार कतई न थे। बल्कि प्रतिक्रिया रूप मे अब उनमे भी अपनी विस्मृत प्राचीन लिपि को ही बंग-लिपि के स्थान पर अपनाने की भावना भी उभरने लग पड़ी थी। चन्द्रावत के सामने यह तथ्य स्पष्ट हो पड़ा।

लेकिन बगालियों में भारत की राष्ट्रभाषा के विवाद पर चन्द्रावत को वह दूसरा पक्ष भी याद आ गया जिसमें एक सुप्रसिद्ध बगाली विद्वान ने अनेक तर्कों व युक्तियों से बॅगला के इस दावे का खण्डन और विरोध भी किया था। इस विद्वान ने राष्ट्रभाषा-पद के लिए 'हिन्दी' का समर्थन करते हुए इस सम्बन्ध में स्वर्गीय केशवचन्द्र सेन एव 'वन्दे मातरम्' के अमर गायक श्रीबंकिमचन्द्र के वाक्य हूबहू उद्धृत किये थे जिनमें हिन्दी के माध्यम से ही समस्त भारत को एकता व देशभक्ति के सबल व सुमधुर बन्धन में बाँधने का सुझाव पेश

किया गया था। और इस दृष्टि से भारत के हर कोने में वर्तमान या भविष्य मे राष्ट्रभाषा 'हिन्दी' के प्रचार का प्रयत्न करने वालो को सच्चे 'भारतबन्धु' के नाम से याद किया गया था।

चन्द्रावत अब सोचने लगा—"तो फिर समस्त बगालियों और बंगाली जाति के विरुद्ध अचउ सिह के सारे अभियोग भी, उन जैसे मणिपुरियों में, क्या उसी भावुकतामय संकीर्णता के द्योतक नहीं हैं जिससे ग्रस्त हो कर उन बंगाली शिक्षा-शास्त्रियों व राजनीतिज्ञों ने हिन्दी अथवा भारत की अन्य भाषाओं को 'बॅगला' से हीन व अग्राह्य घोषित किया है ? और संकीर्णता से ग्रस्त हो कर ही तो अचउ सिंह ने बंकिम जैसे उदार और महान देशभक्त तक की नीयत पर आक्षेप किया है। सन्देह प्रकट किया है। यदि बकिम मे बगालीपन की अनुदारता होती तो वे 'हिन्दी' की असमृद्धि पर दुख के आँसू क्यो बहाते ? वे 'हिन्दी' के माध्यम से हो भारत की सांस्कृतिक और राजनीतिक एकता पर जोर क्यो देते ? इस दिशा मे प्रयत्न करने वालों को वे सच्चे 'भारतबन्धु' के नाम से याद क्यों करते ? और उनके कठ और कलम से निकली सबल सरस और सुकोमल वाणी भारत के जन-जन के मन को देशभक्ति की उदात्त भावनाओं से आप्लावित कैसे कर पाती ? और यदि बंगाल की भूमि मे ही, उसकी जल-वायु मे ही अनुदारता के कीटाणु भरे होते तो विश्व-मानव के मन को उद्वेलित करने वाले शरत् और रबीन्द्र जैसे साहित्यकार वहाँ पैदा न होते ! विदेशों मे भारत की उदात्त संस्कृति और भारतीयता की दुन्दुभी बजाने वाले विवेकानन्द जैसे सन्त वहाँ उत्पन्न न होते !"

कलकत्ते मे रहते समय अनेक उच्च-शिक्षित बगालियों के मुँह से भी घृणित लहजे में वह स्वय अनेक बार 'हिन्दी' को 'दरबानों की भाषा' कहते सुन चुका था। ऐसी अनेक क्षुद्रताओं को वह अनेक बार सुन चुका था, आचरण में परख भी चुका था। लेकिन इसे वह बंगाल की सच्ची

संस्कृति का स्वरूप कभी स्वीकार न कर सका था। उसके नेत्रों के समक्ष मानो शैलेन्द्र स्वयं उदाहरण रूप मे प्रकट हो-हो कर उसे बंग-भूमि, बग-समाज, एव बग-सस्कृति की मूलभूत उदारता और उच्चता में विश्वास दृढ़ करा देता। उसके मन में उठी भ्रान्तियों को एकाएक दूर कर देता। किन्तु इस क्षण अत्यन्त दुख-भरे स्वर में उसका हृदय बार-बार बोलता रहा—"सर्वत्र शैलेन्द्र जैसे लोग ही क्यों पैदा नहीं होते? मानव की यही उदारता सबके हृदयों को क्यों नहीं मुखरित किया करती? क्यों नहीं हृदय की ईमानदारी के साथ कोटि-कोटि कंठों से यह विश्वास-भरा स्वर मुखरित हुआ करता कि—'रक्त की दीवार, जाति की दीवार, धर्म और सस्कृति की दीवार भी किसी दिन मानवमात्र को एक होने से रोक नहीं सकती!'"

यह सोच कर उसके मन मे अपने शैलेन्द्र के लिए श्रद्धा, आदर और आत्मीयता का भाव और भी बढ़ चला। वह भाव-विह्वल हो-हो कर सारी रात इस समस्या पर सोचता रहा। करवटें लेता रहा। गरम व ठढी साँसों से अपने मन के भाव व्यक्त करता रहा।

इसी प्रकार शैलेन्द्र भी करवटें ले-ले कर सोचने लगा था—"शिक्षा और सस्कृति का उद्देश्य तो मनुष्य को ऊँचा उठाना है, उदार बनाना है! किन्तु कितने खेद की बात कि परिणाम विपरीत देखा जाता है! हर शिक्षित बगाली को अपने रवीन्द्र पर गर्व है, शरत् पर गर्व है, वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र वसु पर गर्व है, परमहंस रामकृष्ण और विवेकानन्द पर गर्व है! और यह गर्व इसलिए है कि इनकी कीर्त्ति बंगाल की लघु सीमा को चीर कर दिग्दिगन्त में जा फैली है! अपनी कीर्ति के विस्तार के साथ रामकृष्ण, विवेकानन्द, रवीन्द्र, शरत् और जगदीश का व्यक्तित्व भी इस लघु सीमा से आविष्ट नहीं रह सका! विश्व-मानव के विशाल मन से जुड़ कर वह (व्यक्तित्व) स्वय भी विशाल बन गया! फिर इन विश्व-मानवों को 'मेरे बंगाली', 'हमारे

बगाली' कह-कह कर इस लघु और क्षुद्र सीमा में कैद कर रखने का प्रयास आखिर किस क्षुद्रता और लघुता से कम है! इन विश्व-मानवों को इतना लघु और क्षुद्र बनाने का प्रयास किस घृणित विश्वासघात से कम है !"

सोचते-सोचते ही उसका मन व्यथा और वितृष्णा से पुनः भर उठा। मानो स्वयं शिक्षा और उसकी सस्कृति से भी घृणा हो चली। और उसी क्षण उसके मानस-पट पर चन्द्रावत की बूढ़ी माँ, अपने झुर्रीदार चेहरे पर मानवता की समस्त उच्चताओं और वात्सल्य की समस्त कोमल उदारताओं को लिये आ खड़ी हुई। माँ के चरणों में शैलेन्द्र का हृदय सहसा झुक चला। हृदय मे भावना का बवडर सहसा उठ खड़ा हुआ। वह बवडर मानो आँसू बन-बन कर आँखों मे छलकने लगा। चन्द्रावत उनका एकमात्र औरस पुत्र होने के नाते स्वभाव से ही उनके अखड वात्सल्य और स्नेह का अधिकारी था। किन्तु शैलेन्द्र तो उनका कोई आत्मीय न था! सिवा पुत्र का मित्र होने के कोई रक्त-मास का रिश्ता-नाता उससे न था! लेकिन फिर भी उनकी सरल शुभ्र आँखो में वह अपने प्रति भी उसी अभिन्न अखड स्नेह और वात्सल्य का दर्शन किया करता! सोच कर शैलेन्द्र का हृदय श्रद्धा, भक्ति और कृतज्ञता से विह्वल बन जाता। परायों से प्राप्त निष्कपट स्नेह में हृदय को उच्छ्वसित करने का सामर्थ्य बहुत अधिक होता है। इस उच्छ्वास से अभिव्यक्त आत्मीयता बड़ी कीमती होती है।

शैलेन्द्र सोचने लगा—"माँ के लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। उन्होंने जीवन मे किसी स्कूल-कालेज का मुँह नहीं देखा। और संस्कृति क्या है, सस्कृति का मानव-जीवन से सम्बन्ध क्या है, इस विषय पर किसी का व्याख्यान सुनने का अवसर भी शायद कभी उन्हें मिला न हो! और स्वयं 'संस्कृति' शब्द को भी शायद उन्होंने जीवन में कभी सुना न हो! किन्तु फिर भी जिस उदारता और महान सस्कृति से उनका सारा

व्यक्तित्व आविष्ट है, यह कैसे संभव हो सका? माँ का मणिपुरी वैष्णव धर्म में अखंड विश्वास है। पर यह विश्वास तो औरों के हृदयों में भी है! अतः इस धर्म से या धार्मिक विश्वास से इस उदार संस्कृति का सम्बन्ध या उद्गम जोड़ा नहीं जा सकता। अन्यथा माँ की ही उदारता मणिपुर के जन-जन मे अभिव्याप्त होती! प्रतिक्रिया-रूप में यहाँ भी बगालियों के प्रति आज उठ-रही घृणा और कटुता की संकीर्णता कहीं भी दिखाई न देती!"

अब एकाएक माँ का अद्भुत और उदार जीवन उसके मानस-पट पर चलचित्र की तरह उभरने और विलीन होने लग पड़ा। माँ के जीवन से सम्बन्धित एक परम अद्भुत, परम करुणाभरी घटना उसे याद आई।

चन्द्रावत और शैलेन्द्र उस दिन सन्ध्या की चाय पर बैठे थे। चाय के साथ उस दिन तले हुए चिउड़े के अलावा आलू-गोभी की गरमा-गरम पकौड़ियाँ भी थीं। माँ पकौड़ियाँ छान-छान कर बड़े आग्रह से उन दोनो को परोसे जा रही थीं। रसोई-घर में ही 'फुंगा' के पास बैठे होने के कारण शैलेन्द्र से यह छिपा न रह सका कि माँ ने अपने लिए एक टुकड़ा भी नहीं बचा रखा। और पकौड़ियाँ बनी थीं खूब स्वादिष्ट!

सो, शैलेन्द्र ने खाते-खाते ही जरा घबरा कर चन्द्रावत से पूछा—"अरे! पकौड़ियाँ तो सब हम खा गये, और माँ ने अपने लिए एक टुकड़ा भी नहीं रखा!"

और चन्द्रावत ने उसकी बेचैनी दूर करते, मुसकाते हुए जवाब दिया—"घबराने की जरूरत नहीं भाई! माँ यह सब नहीं खातीं!"

"क्यों?"

"क्योंकि कोई भी स्वादिष्ट और अच्छी चीज वे जीभ से नहीं लगातीं!"

"क्यों ?"

शैलेन्द्र को और भी आश्चर्य हुआ। कौतूहल का आवेग और भी बढ़ चला।

अब चन्द्रावत को स्पष्ट करना पड़ा। पर अब उसके चेहरे पर मुसकान टिकी न रह सकी। स्वर मे उदासीनता आ गई। उसने कहना शुरू किया—

"यह घटना उस समय की है शैलेन, जब चन्द्रावत इस पृथ्वी पर आया भी न था। लेकिन सुन चुका हूँ कि घर में गरीबी भरपूर आ चुकी थी। उसकी क्रूरता मे कोई कमी न थी। पिता अकर्मण्य थे। माँ दूसरे सम्पन्न घरो मे धान कूट कर अथवा यदा-कदा कुछ कपड़े बुन कर कुछ कमा लेती। लेकिन वह कमाई निर्वाह के योग्य न होती। गँजेड़ी पति और दो नन्हे बच्चों का भरण-पोषण ठीक से न कर पाती।"

शैलेन्द्र बडे ध्यान से सुनने लगा और चन्द्रावत ने उसी तटस्थ भाव से कहानी कहना जारी रखा—"फिर एक बार कोढ़ मे खाज की तरह मलेरिये ने सारे परिवार को धर दबाया। मलेरिया के देवता तो ऐसे घरों पर ही अधिकतर बरसते और सफल होते हैं जहाँ पेट सदा सुपुष्ट भोजन के लिए तरस रहा हो! इस प्रकार दिन-दिन के अल्पाहार और अनाहार से माँ का बचा हुआ रक्त-मांस भी मलेरिया की भेंट हो चुका था। रक्त-मांस-विहीन ककाल मे काम करने की शक्ति कहाँ! दोनो छोटे बच्चे एक-एक कर चल बसे! और उनमे से बड़ा तो किसी अच्छी स्वादिष्ट चीज खाने की रट लगाये-लगाये ही चल बसा।"—कहते-कहते इस बार चन्द्रावत की तटस्थता कायम न रह सकी। आँखें गीली हो चलीं। स्वर व्यथा के बोझ से भारी हो चला। और शैलेन्द्र की आँखों से तो आँसुओं की कई बूँदें भी लुढ़क पड़ी।

लेकिन चन्द्रावत झट सम्हल कर कथा का शेषांश पूरा करते हुए बोला—"तभी से माँ ने जीवन भर के लिए व्रत अपना लिया कोई

अच्छी या स्वादिष्ट चीज न खाने का। देखते ही तो हो शैलेन, कि अब किसी बात की कमी नहीं रह गई! लेकिन फिर भी उन्होंने अपने व्रत में व्याघात नहीं आने दिया। हमें हर अच्छी चीज वे बना कर खिलायेंगी, मन-ही-मन खुश होंगी, लेकिन कितना भी आग्रह किया, अनुरोध किया, एक-दो बार भूख-हड़ताल भी की, पर सब व्यर्थ! वे अडिग रहीं! मेरे इन प्रयत्नों का उनपर जरा भी प्रभाव न पड़ा!" कहते-कहते चन्द्रावत झट रसोई-घर से बाहर निकल गया।

शैलेन्द्र भी एक क्षण माँ को श्रद्धाभरी आँखों से देख बाहर हो गया, पर माँ की समझ में कुछ न आ सका। क्योंकि उनके वार्तालाप का माध्यम अभी बँगला या अँग्रेजी होती। लेकिन उनके आँसूभरे नेत्रों ने उन्हें आश्चर्य और आशंका में अवश्य डाल दिया। उनके झट कमरे से निकल जाने के कारण वे कुछ पूछ न सकीं।

इस परम वत्सला वृद्धा के जीवन की एक और अद्भुत बात शैलेन्द्र को फिर याद आई। जिस दिन प्रधान अध्यापक-पद पर शैलेन्द्र की नियुक्ति हुई, वह बड़ी श्रद्धा से माँ के लिए एक जोड़ी सादी 'फनिक्' और 'इनफी' बाजार से खरीद ले आया। चन्द्रावत हँस कर शैलेन्द्र से बोला—"यदि इस 'मिशन' में तुम सफल हो गये दोस्त, तो सबसे पहले मैं तुम्हें दाद दूँगा! मैं तुम्हें बधाई दूँगा! क्योंकि तब रास्ता मेरे लिए भी साफ हो जायेगा!"

शैलेन्द्र की समझ में यह बात न आई। प्रश्नभरी आँखों से वह चन्द्रावत को देखने लगा।

चन्द्रावत ने पुनः हँस कर स्पष्ट किया—"आश्चर्य कि इतने दिन यहाँ रह कर भी तुम माँ के स्वभाव से परिचित न हो सके! तुम्हें शायद पता नहीं कि माँ अपने इस इकलौते पुत्र की कमाई का भी एक पैसा अपने पर इस्तेमाल नहीं करतीं! यदि मैं उनके लिए स्वयं कोई वस्त्र ला कर दूँ तो मेरा मन रखने के लिए रख अवश्य लेंगी, पर

स्वयं इस्तेमाल न करेंगी। किसी गरीब-गुरबा के सिवा किसी अन्यके भाग्य में वह बदा न होगा। इस लिए मुझे तो कम खुशी न होगी यदि उनका धर्मपुत्र ही इस 'मिशन' में सफल हो जाय!"

शैलेन्द्र आश्चर्य-चकित निराश नेत्रों से उसे देखने लगा।

चन्द्रावत ने फिर कहा—"निराश होने की जरूरत नहीं शैलेन! तुम्हारा मन रखने के लिए वे रख अवश्य लेंगी! इतने से ही हमे सन्तोष करना चाहिए कि कम-से-कम माँ के वात्सल्य की स्निग्ध छाया मे बैठने का सौभाग्य तो हमे मिल रहा है! आगे हमारी धृष्टता होगी यदि..." कहते-कहते चन्द्रावत का स्वर उच्छ्वसित हो उठा। अचानक भर-आई आँखें उसने झट शैलेन्द्र से अलग कर लीं।

आगे हुआ भी वही। माँ ने इस मामले मे भी शैलेन्द्र और चन्द्रावत मे भेद करना ठीक न समझा। तो इस क्षण रह-रह कर शैलेन्द्र उच्छ्वसित हो मन-ही-मन बोलने लगा—"माँ! तुम सचमुच अखिल मातृत्व की प्रतीक हो माँ! 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' का आदर्श हो तुम! तुम पृथ्वी की प्रतीक हो माँ, जो प्राणिमात्र को विना किसी प्रतिदान की आशा के अहर्निश अपने रसों से परिपुष्ट किया करती है! जहाँ मानवमात्र अथवा प्राणिमात्र के लिए भेद-भाव की गुजाइश नहीं! वह किसी जाति को नहीं देखती! किसी रक्त को नही देखती! रूप और रंग को नहीं देखती! धर्म को नही देखती! वह समान भाव से सबकी है, जिसने भी उसे अपना लिया, अपना मान लिया! वह उसकी भी है और उन सबकी भी जो उसका मान नहीं करते! सम्मान नहीं करते! माता पृथ्वी के अखड वात्सल्य को आपस मे खडित करने वाले उसकी तुच्छ सन्तान ही तो हैं माँ! किन्तु माँ पृथ्वी, अपनी सन्तान मे कोई भेद-भाव नही करती माँ!"

कुछ देर बाद उसका हृदय भावना के आकाश से यथार्थ के धरातल पर उतर आया। वह पुनः सोचने लगा—"जाति, धर्म, सभ्यता,

संस्कृति, भाषा, इन सबका सम्मिलित अथवा पृथक् अभिमान ही किसी समाज अथवा राष्ट्र का आधार माना जाता है, और इसी अभिमान के उदर से जातिगत, धर्मगत, राष्ट्रगत एवं संस्कृति और सभ्यतागत संकीर्णताओं और क्षुद्रताओं का जन्म होता है। किन्तु इस अभिमान का स्वरूप सदा एक-सा नहीं रहता। धर्म बदलता है, जाति बदलती है, सभ्यता और संस्कृति भी। और इनके मापने और समझने का ढंग भी। और इन सबके बदलने से अभिमान का रूप भी बदलता है! मान्यताएँ भी बदलती हैं! उदाहरण के तौर पर—

"विद्वानों के मतानुसार दस लाख वर्ष पहले तक यह सारी मणिपुर उपत्यका अपने गर्वोन्नत पर्वत-प्राचीरों के साथ ही समुद्र के गर्भ में विलीन थी। पृथ्वी का कोई पता न था। धर्म, जाति, सभ्यता और संस्कृति भी न थी। उस विशाल सागर की लोल-लोल लहरों की प्रचंड हुंकार और नर्तन के सिवा और कुछ नहीं था यहाँ!

"किन्तु कालान्तर में समुद्र सूखने लगा। पृथ्वी ऊपर आने लगी। मानो उसकी रीढ़ की हड्डियों की तरह उपत्यका के प्राचीर इन पर्वतों ने ही पहले अपना रूप दिखाया। इनमें ही पहले-पहल जीवन आया। अनेक प्राणियों के पश्चात् जाने कहाँ से मनुष्यों का भी प्रादुर्भाव या आगमन हुआ। नागाओं एवं कूकियों की विभिन्न जातियों से पर्वतों के समस्त गुफा-गह्वर सप्राण हो उठे! और इन्हीं आदिम मानवों के मन से यहाँ आदिम संस्कृति और सभ्यता का जन्म हुआ। उन्हीं से जातीय धर्म का भी जन्म हुआ, जातीयता का भी।

"और इसी आधार पर विभिन्न जातियों में[1] बँटी हुई ये आदिम

---

१. नागा पर्वत-माला में नागाओं की एक दर्जन से भी अधिक जातियाँ हैं जिनकी बोली और आकृति-प्रकृति में परस्पर अन्तर है। मणिपुर-राज्य के अन्तर्गत नागाओं की जातियाँ ये हैं—"ताङ्खुल,

पर्वतीय जातियाँ अपने आदिम अभिमान से, आदिम रीति-रिवाजों के मोह से चिपकी हुई भी बदलती रही और बदलती जा रही हैं। आज ईसाई 'मिशनरियो' के संपर्क, समाधात और प्रयास से उनका धर्म भी बदल रहा है, संस्कृति और सभ्यता भी बदल रही है।

"इन पर्वत-प्राचीरो पर मानव और मानव-सस्कृति की ध्वनि तो आरम्भ हुई, पर उपत्यका का विशाल गर्भ फिर भी हजारो वर्षों तक जलमग्न बना रहा। मानो एक विशाल सरोवर के रूप मे तटवर्ती मानवों की ध्वनि से प्रतिध्वनित होता रहा। लेकिन प्रकृति का प्रयास भी जारी रहा। क्रमशः उस सागर-सरोवर का जल भी सूखना शुरू हुआ। और तब मणिपुर की सृष्टि भी आरम्भ हुई। मणिपुरी पुराण के अनुसार 'लाइपुमथाउ' नामक नौ देवता यहाँ स्वर्ग से पधारे। क्योंकि 'लाइनूरा' नाम से प्रख्यात सात देवियों ने उन्हें रिझा लिया था। वे उनके आकर्षण मे बँध कर वहाँ आ चुके थे। और तब उन्ही देवी-देवताओं के सम्मिलित प्रयास से सरोवर के सूखते जल में प्रथम-प्रथम मिट्टी के सुदृढ़ स्तूप निर्मित हुए और फिर उन्ही स्तूपों पर घर-बार का कारोबार भी शुरू हो गया। मानव की एक नई सस्कृति का उद्गम आरम्भ हो गया।

"उपत्यका का रूप-रग बदलने लगा। धरती सूख-सूख कर शस्य-श्यामल बनने लगी। और तब मानव की अनेक जातियाँ इस शस्य-श्यामल भूमि मे बसने का लोभ रोक न सकीं। आस-पास के पहाड़ों से कुमुल, लुयाङ, मइराङ, मइतेइ आदि जातियाँ आ-आ कर बसने लगीं। और कालान्तर मे मइतेइयों का प्राबल्य होने के कारण ये सारी

कबुई, माव, अनान, मयोन, चीरू, कोम आदि। मणिपुर-राज्य मे कूकियों की मुख्य जातियाँ हैं—म्हार, मिजो, पाइते, वाइफेइ, शकाजम, राङते, गाङते, जउ, शिमते आदि।

विभिन्न जातियाँ ही 'मइतेइ' बन गई ! 'मइतेइ' के नाम से प्रख्यात हुई !

कुछ जातियाँ यहाँ पड़ोस के 'बर्मा' से आई । अन्यथा इस मइतेइ जाति में उशम्, वथम्, चिगामुबम, नांदेइबम्, कवरम्बम् आदि बर्मी उपाधियाँ आज भी मौजूद न होतीं ! कुछ जातियाँ 'शान' देश से भी आई । अन्यथा शेङमाइ, फक्येङ, खुरखुल आदि शान उपाधियाँ आज भी मइतेइयों मे न पाई जातीं ! और शुशा, कमे आदि चीनी उपाधियों के अतिरिक्त लुआङ, अशाम्बम्, आराम्बम्, खुमुकचम् आदि तिब्बती उपाधियाँ भी इस समाज में चीनी एव तिब्बती जातियों के आगमन और सम्मिलन का अकाट्य साक्ष्य प्रदान कर ही रही हैं !

"तो, इन सभी जातियों के सम्मिश्रण से एक मिश्रित 'मइतेइ' जाति, सभ्यता और सस्कृति का जन्म हुआ । लेकिन फिर भी यह सस्कृति-सभ्यता अपरिवर्तित न रह सकी । घोर परिवर्तन हो कर रहा । अब आर्य जातियो का आगमन भी आरम्भ हुआ । महाभारत के प्रख्यात योद्धा महावीर अर्जुन के आगमन एव यहाँ के तत्कालीन राजा चित्रवाहन की कन्या 'चित्रांगदा' से उसके विवाह की बात भी काफी प्रख्यात है । ईस्वी सदी के आरभ से पहले ही पचाल की ओर से प्रथम-प्रथम आर्य राजा 'ध्वजराज' का यहाँ प्रवेश हुआ । और बाद में 'तुमन' नामक किसी मैथिल आर्य राजा का भी । और इस राजा के साथ ब्राह्मणों का दल भी अपने वैदिक विधि-विधान और कर्मकांड के साथ यहाँ आ पहुँचा । ये लोग 'पुरोईतो' नाम से प्रख्यात हुए । वैदिक विधि-विधान और वर्ण-व्यवस्था ने इस समाज की संस्कृति और सभ्यता मे आमूल-चूल परिवर्तन ला दिया । ब्राह्मण, क्षत्रिय और अछूत (दास) इन तीन भागों मे समाज विभक्त हुआ ।

"परिवर्तन का फिर एक जबर्दस्त दौर आया । सस्कृति और सभ्यता ने पुनः एक नयी करवट ली । अँगड़ाई ली । ईस्वी सन् १७१४ ई० मे

'गरीब नेवाज' के नाम से प्रख्यात मणिपुर-नरेश 'पामहेइबा' ने यहाँ वैष्णव धर्म को प्रबल सरक्षण प्रदान किया। प्रथम-प्रथम शान्तिदास, बक्रीदास आदि रामानन्दी वैष्णव प्रचारकों का यहाँ खूब जोर रहा। और फिर सन् १७६४ ईस्वी में पामहेइबा के पौत्र राजा 'भाग्यचन्द्र' के समय में तो श्रीसर्वानन्द ठाकुर के नेतृत्व में बगाल के चैतन्यदेवी वैष्णव धर्म का प्रभाव यहाँ इतने जोर से बढ़ा कि आज तक सारे मणिपुरी हिन्दू समाज पर छाई हुई राधा-कृष्ण की महिमा और लीला की अखंड भक्ति में रंचमात्र भी कमी न आ सकी। सारी शैव सस्कृति, धर्म और शैव नृत्य को वैष्णव धर्म और संस्कृति के रंग मे रँग डाला गया।"

शैलेन्द्र इस बीच मणिपुरी इतिहास और समाज के संगठन पर बहुत कुछ अध्ययन कर चुका था। इस क्षण उपरोक्त तथ्यों से गुजरते हुए वह मन-ही-मन विश्लेषण करते हुए बोला—"तो इस प्रकार यह समाज अब तक सस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से कई अवस्थाओं से गुजर चुका है—

"(१) 'आदिम साम्यवादी संस्कृति' जब कि धर्म का उदय हुआ न था और समाज 'मातृ-सत्ता' की अवस्था मे था, अर्थात् समाज पर माताओं का प्राबल्य या अधिकार था। अन्यथा मणिपुरी पुराण मे मणिपुर की सृष्टि के प्रसग मे सबसे पहले 'लाइनूरा' नामक सप्त-देवियो की चर्चा न होती! और आज 'पितृ-सत्ता' के रहते भी किसी-न-किसी रूप में समाज पर आज भी 'मातृ-सत्ता' और 'मातृ-सस्कृति' की प्रबलता मौजूद न होती!

"(२) 'पितृसत्ता' का आरम्भ यहाँ आर्यों के आगमन के बाद हुआ होगा। और वर्ण-व्यवस्था का आरम्भ भी। पितृसत्ता ने पहले 'दास्यवाद' में प्रवेश किया होगा। दासों की पूँजी और श्रम पर ही शासक-वर्ग का जीवन और विलास-वैभव निर्भर रहा होगा। अन्यथा

पराजित 'नागा' और 'कूकी' यहाँ आज भी अछूत न होते ? और समाज में आर्य-संस्कृति के प्राबल्य के साथ ही शिव-पूजा की प्रथा भी चली होगी। अन्यथा मणिपुरी पुराण में मणिपुर-सृष्टि के प्रसंग में शिव द्वारा त्रिशूल के प्रहार से पर्वत भेद कर जल बहाने और मणिपुर-उपत्यका को निवास-योग्य बनाने की कथा न होती ?

"(३) 'दास्यवाद' के शैथिल्य के बाद संगठित राज्य व सामन्तवाद का जोर बढ़ा होगा जो अब तक यहाँ कायम है। 'शिवोपासना' के बाद रामानन्दियो के आगमन के साथ 'रामोपासना' का प्राबल्य हुआ, और उसके बाद कृष्णोपासना का।"

उस समाज के इस ऐतिहासिक विश्लेषण के बाद उसे पुनः कई तथ्य दिखाई दिये। काल के प्रबल प्रवाह मे न केवल इस समाज का रूप बदलता रहा, अपितु इस प्रदेश के नाम में भी परिवर्तन होते रहे। आस-पास के प्रदेशों के लोग इसे विभिन्न कालों में विभिन्न नामों से याद करते रहे। प्राचीन असम- (आसाम) वासी उसे 'मागालु' कहा करते, और 'काछाड़' के लोग 'मागलि' एव आसाम के अहोम लोग 'मेखालो' तथा शान देश के लोग 'का-से' तथा बर्मा के लोग 'का-थे' कहा करते। और स्वय मणिपुरी भाषा मे इसका नाम 'मैत्राबाक' अर्थात् 'मइतेइयों का राज्य अथवा देश' है।

तो, इस प्रकार सक्षेप में मणिपुरी इतिहास पर विचार करने के बाद वह तनिक उत्साहित हो मन-ही-मन फिर बोला—"मनुष्य बड़ा प्रबल है ! सबसे प्रबल ! प्रकृति से भी ! उसमें निर्माण और परिवर्तन की विशाल क्षमता है ! परिवर्तन को कोई विनाश कहता है, कोई निर्माण का ही दूसरा रूप या पूर्वरूप ! तो तात्पर्य यह कि मनुष्य के चाहने और दृढ़ सकल्प के साथ प्रयत्न करने पर मनुष्य बदल सकता है ! मनुष्य की प्रकृति बदल सकती है ! उसकी मान्यताएँ बदल सकती हैं ! जाति, समाज, राष्ट्र, धर्म, संस्कृति सब कुछ बदल सकता है !

इसकी संकीर्णताएँ और क्षुद्रताएँ बदल सकती हैं !"

उसने फिर सोचा—"आज का मणिपुरी समाज वही नही जैसा वह आर्यो एवं आर्य-संस्कृति के आगमन से पहले था ! आज का यूरोप भी वही नही जैसा वह प्रथम विश्व-युद्ध से पहले था ! आज का भारत भी वही नही जैसा वह अंग्रेजों, मुसलिमों एव शक-हूँण-यवनों के आगमन से पूर्व था ! और आज का संकीर्ण बगाल भी वही नहीं जैसा वह अंग्रेजों और मुसलिमों के साम्राज्य से पहले रहा होगा !"

यह सोचते ही उसके मन मे उत्साह और सबल सकल्प का प्रबल स्रोत उमड़ आया। वह बिछौने पर पड़ा न रह सका। आवेश में झट उठ कर वह बैठ गया और बार-बार अपनेको सबोधित कर बोलने लगा—"निराश न हो शैलेन, निराश न हो ! निराशा मृत्यु है शैलेन, मृत्यु ! युद्ध कर, युद्ध कर मानव की इन समस्त क्षुद्रताओं के विरुद्ध ! कमर कस कर तैयार हा जा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के ऊँचे आदर्श के प्रचार के निमित्त !"

और फिर एकाएक माँ को उद्देश कर दोनों हाथ सिर से सटा श्रद्धा-भरित स्वर मे वह बोला—"मानव की मौलिक उच्चता मे विश्वास दृढ़ करने वाली माँ ! मुझे बल दो ! प्रेरणा दो सघर्ष के लिए ! मेरी माँ ! सबकी माँ ! पृथ्वी-स्वरूपे माँ !"—कहते-कहते भाव-विह्वल हो वह एकाएक मौन हो पड़ा।

लेकिन नींद न आ सकी। मणिपुरी समाज की विशेषताओ से उसका मन पुनः उलझ गया। मणिपुर की महिलाएँ भारत के अन्य प्रान्तों की महिलाओं से सामाजिक रूप से उसे काफी आगे दीखीं। भारत के अन्य प्रान्तों की तरह यहाँ की ऊँची जाति की महिलाएँ बलात् वैधव्य की क्रूरता की कड़ियों मे जकड़ी नहीं जातीं ! उन्हें तलाक तक देने का अधिकार है ! पुनर्विवाह का भी ! पर्दे की पाखंडमय मर्यादा भी नहीं ! और जीविका के लिए नृत्य-संगीत का पेशा अपना कर भी वे

समाज द्वारा अकुलीनता या वेश्यात्व के कलंक से लांछित नहीं की जातीं ! और इन उन्मुक्तताओं के रहते भी उनके आचार में असंयम नहीं ! अमर्यादा नहीं !

यह सोचते ही उसका मन उस समाज के प्रति पुनः आदर से भर उठा। और कुछ क्षण बाद उस समाज का कलामय जीवन भी उसके मानस-पट पर उभर उठा। उसने इस बीच कई बार स्त्रियों के नृत्य देखे थे, पुरुषों के भी। और स्त्री-पुरुषों के सामूहिक नृत्य भी। 'मणिपुर लाइशेम्बा' (मणिपुर की सृष्टि) नामक नाटक वह देख चुका था। रास-नृत्य की वह मनोहारी छटा उसके मन से अब भी मिटी न थी। मुरली की मीठी-मीठी ध्वनि मे राधा-कृष्ण के युग्म-नृत्य और उनके साथ गोपियों के सामूहिक नृत्य का दृश्य भी मन से मिटा न था। उस रास-नृत्य में बदन में लहँगा-चोली एवं सिर पर झीनी-झीनी चुंदरी मे छिपे उनके मुखों की भंगियों मे कितनी कला थी ! कितना सारस्य ! कितना आकर्षण ! और मणिपुर की आदि माताओं एव आदि पिताओं का द्वन्द्व-नृत्य भी कितना सुन्दर था ! कितना मनोहारी ! और जब कि भारत के अन्य सभ्य भागो मे कुलीन स्त्रियाँ आधुनिक युग मे ही रंग-मच पर आने का कुछ साहस कर सकी हैं, मणिपुर की महिलाएँ युग-युग से इस अधिकार का उपभोग या उपयोग करती आ रही हैं !

जब एक बार उसके मन पर नृत्य का प्रसग उभर आया, तो दूसरे अनेक नृत्य भी उभरे विना न रह सके। मणिपुर के कुछ हिन्दू अपने को गन्धर्वों की सन्तान मान कर अपनी इस जातीय कला पर आज कम गर्व नहीं करते। शैलेन्द्र मणिपुर का सबसे प्राचीन नृत्य 'लाइ हराउबा' देख चुका था। चन्द्रावत ने मणिपुरी नृत्यों का विश्लेषण करते हुए उसे बताया था—"भरत-नाट्यम् के 'कथक-नृत्य' में लय की प्रधानता होती है, 'कथकली' में मुद्रा व मुखाभिव्यक्ति की, पर मणिपुरी नृत्यों में प्रत्येक अंग के संचालन का अधिक महत्त्व है। आंगिक अभिनय हमारे

नृत्यों की मूल विशेषता है शैलेन!" और तब मणिपुरी नृत्य के इतिहास में प्रविष्ट होते हुए उसने कहा था—"ईस्वी सन् दूसरी शताब्दी में मणिपुरी राजा 'खवाइ तोम्पोक' ने ढोल तबला आदि वाद्यों का मणिपुरी नृत्य और संगीत मे प्रवेश और प्रचार कराया। पर हमारे नृत्यों में 'मृदग' की प्रधानता बगाल के गौडिया वैष्णव धर्म के प्रवेश और प्रचार के समय से हुई।" फिर एकाएक मुसकाते हुए—"हम तुम्हारे बंगाल के कम ऋणी नही हैं शैलेन! पर खेद कि इस ऋण को भूल कर अब लोग बगालियों से घृणा करने लगे हैं!"—कहते-कहते उसके चेहरे से अचानक मुसकान की रेखा मिट कर व्यथा उभर आई थी।

शैलेन्द्र इस क्षण चन्द्रावत का वह वाक्य याद कर पुनः दुखी हो उठा। लेकिन इस क्षण भी इस घृणा के लिए अनिल घोष जैसे बंगाली ही उसे अधिक जिम्मेदार प्रतीत हुए। इस समस्या को झट भूल कर वह पुनः नृत्यों के सम्बन्ध मे सोचने लगा। चन्द्रावत ने विभिन्न मासो मे स्त्रियो द्वारा नाचे जाने वाले नृत्यो के नाम गिनाते हुए कहा था—"कार्तिक मे 'महारास' नृत्य तो मणिपुर को मानो वृन्दावन ही बना देता है शैलेन! और माघ के महीने मे 'कुज-रास' की मिठास मे यह सारा समाज यो खो जाता है जैसे वेदान्ती परब्रह्म के तादात्म्य-रस मे! फाल्गुन का 'वसन्त-रास' अपने सारस्य की उपमा नहीं रखता! और श्रावण के 'झूलन-यात्रा' नामक नृत्य का तो कहना ही क्या! और 'नर्तक-रास' तो वर्ष के किसी भी मास मे नाचा जा सकता है। और जब तुम फाल्गुन के महीने में लाठी लिये बालको द्वारा 'उत्कल-रास' का नाच देखो तो शायद तुम भी बालक बनने को मन-ही-मन मचल उठो! फाल्गुन के महीने मे ही 'सनामही' को प्रसन्न करने के उद्देश्य से गृहस्थों द्वारा 'जगोइ-साबा' का आयोजित नृत्य भी कम आकर्षक नहीं होता! और चैत्र में पुरुषों द्वारा किये 'भारत-युद्ध' का भयानक नृत्य तो तुम देख ही चुके हो!"

और कुछ दिन पूर्व मुहल्ले के विशाल मडप में गौरांग-लीला के दृश्य देख कर तो वह स्वय दंग रह गया था ! वहाँ तो जैसे पूरा बगाल आ गया था। पर दर्शक और अभिनेता मणिपुरी थे। गौरांग महाप्रभु के उस लीलामय नाटक की भाषा भी 'बँगला' थी और ढग भी बगाली। और उन मणिपुरियों के मुख से बँगला भाषा का अजीब उच्चारण सुन-सुन कर तो वह मन ही-मन हँसा भी खूब था। चन्द्रावत से उसने मीठी चुटकियाँ भी खूब ली थीं। लेकिन स्वयं बहुत कुछ नास्तिक होते हुए भी उस दृश्य से वह कम प्रभावित न हुआ था जब गौरांग की दोनों माताओं के विरह और वात्सल्य की उमड़ती धारा में दर्शकों के हृदय बह कर आँखों मे उतर आये थे !

अब वह फिर सोचने लगा—"बंगाल से आये धर्म मे इतनी दृढ़ भक्ति और आस्था रखते हुए भी क्यों वे आज उसी बगाल से आये बंगालियों को फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहते ?" और उसके हृदय ने ही उसे फिर जवाब दिया—"इस 'क्यों" का जवाब तुम ढूँढ़ो अनिल घोष जैसे पढ़े-लिखे बगालियो के विकृत अहकार और व्यवहार मे, और कुत्सित अनुदारता मे शैलेन ! अन्यथा बगाल से बाहर तुम पढे-लिखे बगाली आज इतने घृणापात्र न बन गये होते ! इतने अप्रिय न होते ! न होते !! न होते !!!"

हृदय की इस ध्वनि से अत्यन्त दुखी हो वह पुनः माँ को उद्देश कर श्रद्धाभरित स्वर में बोला—"मानव की मौलिक उच्चता में विश्वास दृढ़ करने वाली माँ ! तुम मानव के समस्त ओछेपन के विरुद्ध सघर्ष के लिए मुझे प्रेरणा दो ! शक्ति दो माँ ! पृथ्वी-स्वरूपे माँ !" कहते-कहते वह पुनः भावना-विह्वल हो उठा।

दूसरे दिन शैलेन्द्र की नींद जरा देर से खुली, चन्द्रावत की भी। रविवार था। छुट्टी का दिन होने के कारण जल्दबाजी न थी। नाश्ता-पानी से निबट कर खूब इतमीनान से दोनों मित्र आज बातों में उलझ पड़े। कल रात का भारीपन मानो रात के उदर मे ही विलीन हो चुका था।

हुक्का गुडगुड़ा कर मुँह से धुआँ फेंक चन्द्रावत ने आहिस्ते से पूछा—"तुम अपने लिए किस ढग का घर पसन्द करोगे शैलेन ?"

"अर्थात् ?"

चन्द्रावत का प्रश्न ठीक से न समझ सकने के कारण शैलेन्द्र ने जरा भौहो पर बल देकर स्पष्टीकरण चाहा।

और चन्द्रावत ने मुसकाते हुए स्पष्ट किया—"अर्थात् कि, तुम मणिपुर-निवासी बनने का निश्चय कर चुके हो, और स्थायी निवास के लिए पृथक् घर की आवश्यकता तो होती ही है ?"

"तो अभी जल्दी क्या है ? अभी मै पानी में भीग तो नहीं रहा ?"

चन्द्रावत ने मुसकाते हुए कहा—"तुम्हें जल्दी न हो, लेकिन मै जो तुम्हारा घर बसाने की जल्दी में हूँ !"

"क्यों, क्या मै भार बन रहा हूँ ?"

"हाँ ! तुम भार न बनो, पर तुम्हारा घर बसाने की चिन्ता अवश्य मन पर भार बनी हुई है !"

इस बार पूरी तरह आशय समझ कर शैलेन्द्र ने तनिक लज्जित स्वर में जवाब दिया—"धत् मूर्ख ! पहले अपना तो बसाओ !

"मूर्ख ! मेरा तो बसा ही हुआ है ?"

"पर शास्त्र में तो कहा है—'गृहिणी गृहमुच्यते !' फिर बिना गृहिणी के गृह कैसा ? घर बसना कैसा ?"

दोनों मित्र अभी दालान में एक ही पटिया पर सट कर बैठे हुए थे। चन्द्रावत ने हुक्के का एक हलका कश ले कर शैलेन्द्र को तर्जनी से ख़रोंचा मार कर मुसकराते हुए कहा—"पहले मित्र का घर तो बस जाय! चन्द्रावत इतना स्वार्थी नहीं कि पहले अपनी ही चिन्ता करे!"

शैलेन्द्र ने हुक्के की नली चन्द्रावत के हाथ से ले ली। जरा हलका कश ले कर आहिस्ते से बोला—"नहीं! पहले मुक्ता को यहाँ आ जाने दो! बस जाने दो! तब!"

"उतना लम्बा इन्तजार नहीं करते! शास्त्र में कहा है—'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'! कल्याण के कार्यों में बड़े विघ्न हुआ करते हैं!" चन्द्रावत ने अब एकाएक फुसफुसा कर कहना शुरू किया—"सुनो शैलेन! मुक्ता के माँ-बाप तो चन्द्रावत को दामाद बनाने में कोई आपत्ति नहीं देख रहे। अतः चन्द्रावत आश्वस्त है! जल्दबाजी की उमे जरूरत नहीं! लेकिन चन्द्रावत को यह भी पक्का मालूम हो चुका है कि शैलेन बाबू का घर अब सीधी राह बसता नहीं दीख रहा! अतः उन्हें अर्जुन बनना ही पड़ेगा! सुभद्रा-हरण करना ही पड़ेगा!"—कहते-कहते चन्द्रावत मुसकरा पड़ा।

शैलेन्द्र के दिल में गुदगुदी-सी उठी और विलीन हो गई। लेकिन जवाब कुछ सूझा नहीं। चुपचाप वह मित्र के मुँह को देखने लगा।

चन्द्रावत हुक्के की नली उसके हाथ से ले कर फिर चुपके-चुपके बोला—"मणिपुर में लगभग पचास प्रतिशत प्रेमी 'सुभद्रा-हरण' की ही शरण लेते हैं शैलेन! माँ-बाप ने जरा भी ऐंठ दिखाई, पर यदि मियाँ-बीबी आपस में राजी हों तो वे काजी का जरा भी भय नहीं मानते! मुझे मालूम है कि तोम्बी सना तुम पर मर रही है! सिर्फ इशारे भर की देर है! माँ-बाप लेकिन बाधक हैं। अतः सुभद्रा के लिए नये घर की जरूरत तो है ही? अपने भइया के घर में ही बहू

बन कर प्रविष्ट होना उसके लिए शोभाजनक तो नहीं भाई ?"

और शैलेन्द्र इस बार ठहाका मार कर हँस पड़ा। बोला—"और तुम इस 'सुभद्रा-हरण' मे सुभद्रा के बड़े भइया कृष्ण का 'पार्ट' अदा करना चाहते हो ? क्यो ?"

"तो बुरा क्या है ? 'महाजनो येन गतः स पन्थाः !' मणिपुर के प्रेमी तो…"

बात आगे न बढ़ सकी। माँ, पड़ोस के एक घर से वापस आ कर एकाएक अत्यन्त बेचैनीभरे स्वर मे बोली—"हाय हाय ! बड़ा अन्याय इबुङो !"

"क्या है इमाँ ?"—चन्द्रावत ने माँ के परेशान चेहरे को देख कर आदर और स्नेह से भरे स्वर मे पूछा।

माँ बोलती गई—"अभी आ रही हूँ तोम्पोक की माँ के पास से ! उस दुखिया का दुख देख कलेजा काँप उठा इबुङो ! मै तो माँ हूँ ! कैसे किसी माँ के दिल को, उसके दर्द को समझ न पाऊँ ? एक तो बेदर्द विधाता का अन्याय ! और तिस पर 'ब्रह्म-सभा' का यह अत्याचार !"

अब सारा मामला चन्द्रावत की समझ मे आ गया। पड़ोस के ही एक मइतेइ लड़के की अभी हाल मे मृत्यु हुई थी। लड़का पढ़ने-लिखने मे इतना तेज कि मुहल्ले का हर व्यक्ति उससे प्रभावित ! उसकी मृत्यु पर चन्द्रावत को भी कम दुख न हुआ था। पर इस समय उसे अधिक दुख हुआ उस गरीबनी माँ की दुर्दशा जान कर ! मनोव्यथा याद कर ! लेकिन फिर भी वह चुप रहा। शैलेन्द्र भी चुपचाप सुनता रहा।

माँ बोलती गई—"कथा-पुराण मे सुन चुकी हूँ कि राजा भगवान का अंश होता है ! मगर जब राजा ही अत्याचार पर उतर आये तो फरियाद की जाय किसके द्वारे ? इसी मणिपुर मे पैदा हुई ! बाल

सफेद हो चले ! बहुत कुछ देखती आ रही हूँ ! ब्रह्म-सभा पहले भी थी। मगर ऐसा ढोंग और पाखंड तो न था ! ऐसी बेदर्दी तो न थी !"

चन्द्रावत ने जवाब दिया—"हाँ इमाँ ! राजा-दैव सभी दुर्बल को ही सताते हैं !"

लेकिन माँ इस जवाब पर तनिक भी ध्यान न दे बोलती रहीं—"ऐ ! कितना अन्याय ! किसी का इकलौता बेटा मर जाय, और कोई श्राद्ध का कर लिये बिना उसका श्राद्ध न होने दे ! इसी को कहते हैं जले पर नमक छिड़कना ! किसी का घर भले ही उजड़ जाय मगर फिर भी उसमें आग लगा कर उसे राख जरूर बना दिया जाय ! बेचारी गरीबनी, किस तरह मेहनत-मजूरी कर के बेटे को पाल-पोस रही थी ! कितनी लालसा से पढ़ा-लिखा रही थी ! विधाता वाम हो गया ! बता दो चाँदा, अब कहाँ से लाये इस मँहगी के जमाने में तिरासी रुपया, बारह आना, तीन पाई ब्रह्म-सभा के लिए ? अगर न लाये, तो कैसे अपने इकलौते बेटे को गति दिये बिना रह जाय ? जिसके लिए इहलोक में इतना किया, उसका परलोक कैसे बिगड़ता देख सके बेचारी ?"

कहते-कहते माँ का स्वर सहसा भारी हो चला। आँखें भी गीली हो चलीं। चन्द्रावत भी विचलित हुए बिना न रहा। और शैलेन्द्र, अब भी मणिपुरी भाषा का जानकार न बन सकने के कारण चुपचाप माँ का मुँह देखता रहा। पर उसे समझने में कोई बाधा न रही कि प्रसंग करुणाजनक है ! किसी करुणाजनक घटना से प्रसंग का सम्बन्ध है !

"तो अब क्या किया जाय इमाँ ?"—चन्द्रावत ने लाचारी के स्वर में पूछा।

माँ कुछेक क्षण चुप रहीं। फिर बोलीं—"रो-रो कर निहोरा कर रही थी बेचारी ! मेहनत-मजूरी करके ऋण वह जरूर चुका देगी !

तो चाँदा, तू ही कोई इन्तजाम कर न दे उसके लिए! श्राद्ध तो हो ही जाना चाहिए! अहा, कितना सुन्दर! कितना मीठबोला बच्चा! उस गरीबनी की तो दुनिया ही उजड़ गई!"—कहते-कहते पुनः माँ का गला रुँध गया।

इतने मे एक नये व्यक्ति का प्रवेश हुआ। उम्र चालीस के करीब। गोरे सुन्दर चेहरे पर आर्य-मंगोल रक्त की मिली-जुली रेखा भी। पहनावा बिलकुल स्वच्छ-सफेद धोती, कुर्ता और चादर का। गले में तुलसी-काठ के बारीक दानो की माला के अतिरिक्त नाक के अर्द्धांश से आरंभ हो कपाल के बीचोंबीच ऊपर को उठी गोपीचन्दन की दो खडी रेखाएँ, और कपाल पर अगल-बगल राधाकृष्ण के नाम की अनेक छापे।

चन्द्रावत ने झट उठ खड़े हो कर, फिर झुक कर दाये हाथ से धरती छूते हुए आगन्तुक का अभिवादन किया। और आगन्तुक ने दायाँ हाथ उठा कर "मगल ओयु, मंगल ओयु" कह कर आशीर्वाद दिया। और माँ ने झट दूसरी पटिया ला कर फर्श पर फैला दी। पटिया पर उनके बैठ जाने के बाद झट भरा हुआ हुक्का भी आ गया। मइतेइ-घर का हुक्का होने के कारण केले के पत्ते की नली उसमे डाल दी गई।

हुक्का पीते-पीते ही आगन्तुक ने मुसकाते हुए शैलेन्द्र से पूछा—"कहिए शैलेन बाबू! मणिपुर पसन्द तो आ गया?"

"खूब!"—शैलेन्द्र ने भी मुसकरा कर हृष्ट स्वर मे जवाब दिया।

"इबुङो!"—और उधर से माँ ने मानो फिर से याद दिलाते हुए चन्द्रावत से कहा—"रुपया दे दो तो मै अभी उस गरीबनी को दे आऊँ! श्राद्ध की आशा मिल जाने पर ही तो वह श्राद्ध की तैयारी कर सकेगी?"

"किसका श्राद्ध?"—आगन्तुक ने आश्चर्य से आँखें फैला कर

हुक्का गुड़गुड़ा कर मुँह से धुआँ फेंकते हुए पूछा।

"हमारे पड़ोस में एक बड़ी करुणापूर्ण मृत्यु हुई है पंडितजी!"—चन्द्रावत ने दर्दभरे स्वर में जवाब दिया—"वही जो लड़का था न, तोम्पोक, अपने पिता की एकमात्र निशानी, और अपनी दुखिया माँ के जीवन का एकमात्र सहारा, वह चल बसा! गरीबनी के पास ब्रह्म-सभा की लम्बी 'फीस' देने के पैसे कहाँ? मेरी माँ के आगे आज रोई-कलपी, तो उन्हें दया आ गई! आपके आने से कुछ क्षण पहले उसी बारे में चता रही थीं! फिर उसी की याद अभी दिला रही हैं ताकि श्राद्ध की तैयारी मे विलंब न हो जाय!"

"अच्छाऽऽऽ! तो यह बात!"—हुक्का गुड़गुड़ाते कृष्णमाधव शर्मा के चेहरे पर आश्चर्य और घृणा की एक रेखा उभर आई। व्यग और वितृष्णा की सूखी हँसी हँस कर वे बोले—"भाई चन्द्रावत! सच पूछो तो अब यह 'ब्रह्म-सभा' न रह कर 'प्रेत-सभा' बन गई! जो प्रेतों के श्राद्ध-कर्म पर इस वेदर्दी से 'टैक्स' लगाये उसे 'प्रेत-सभा' नहीं तो और क्या कहा जाय? जब चीटी की मृत्यु-वेला निकट आती है, उसे पंख उग आते हैं! सो, मेरी इस बात को तुम गाँठ बाँध लो चन्द्रावत, कि प्रेत-सभा के इन प्रेतो की विनाश-वेला भी अब निकट है! इसी से ऐसी खुराफात इनके दिमाग को कुरेदे जा रही है! इसी से तो शास्त्र में कहा है—'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'!"

"लेकिन गुरुजी!"—चन्द्रावत ने उत्साहित हो विनयभरे स्वर में पूछा—"आप भी तो शास्त्रों के ज्ञाता हैं? वर्षों बनारस मे रह कर संस्कृत का, हिन्दू धर्म-शास्त्रों का अध्ययन आपने किया है? भारत के विभिन्न प्रदेशों का पर्यटन भी? तो, आपकी दृष्टि में ब्रह्म-सभा का यह कार्य अन्याय है! शास्त्र-विरुद्ध है! लेकिन आश्चर्य कि शास्त्र की दुहाई दे कर ही ब्रह्म-सभा की यह सारी खुराफात चालू है! आश्चर्य!"

पंडितजी ने व्यंगभरे स्वर में जवाब दिया—"आश्चर्य करने की

आवश्यकता नहीं भाई ! अपना उल्लू सीधा करने के लिए शैतान भी शास्त्र की शरण लेता है । तुमने हिन्दू-धर्म-शास्त्रों का अध्ययन नही किया । जान कर शायद और भी आश्चर्य करो कि शास्त्रों मे ऐसे असख्य वचन भरे पड़े हैं जिनका सहारा ले कर नीच-से-नीच कर्म को भी शास्त्र-सम्मत साबित किया जा सकता है ! शास्त्र-विहित' ठहराया जा सकता है !"

"तो तात्पर्य यह कि शास्त्र भी एक पहेली के सिवा और कुछ नहीं ?"

"पहेली तो है ही ! तभी तो धर्मराज युधिष्ठिर ने यक्ष से कहा था—'धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायाम् ।' अर्थात् धर्म का असली रूप गुफा के अन्धकार मे छिपा है । यदि धर्म का कोई एक निश्चित रूप होता तो अठारह स्मृतियो की पृथक्-पृथक् रचना की आवश्यकता न पड़ती ? किसी एक ही स्मृति से धर्म के मुख्य रूप का ज्ञान हो जाता ? किन्तु जब तुम स्मृतियो का अध्ययन करो तो पहेलीपन स्पष्ट हो जायगा ! एक स्मृति जिस कार्य को गर्हित कहती है, उसी को दूसरी स्मृति सही और सम्मत मानती है !"—कह कर प० कृष्णमाधव शर्मा ने एक ही विषय पर स्मृतियों के ऐसे अनेक वचन सुना डाले जिनमें परस्पर विरोध था । स्पष्ट असंगतियाँ थीं ।

चन्द्रावत की मानो आँखें खुलीं । वह कालेज का एक अत्यन्त मेधावी छात्र रह चुका था । पर अंग्रेजी पढे-लिखे अन्य अनेक मेधावियों की तरह अपने धर्म पर उसकी भी श्रद्धा अन्ध-श्रद्धा के सिवा और कुछ न थी । मणिपुर के अन्य सभी हिन्दुओं की तरह वह भी 'महाप्रभु गौरांग' के वैष्णव धर्म का श्रद्धालु अनुयायी था । और मजिस्ट्रेट बन जाने पर भी उसकी वेश-भूषा गौरांग-मर्यादा का रचमात्र भी उल्लंघन न कर सकी ।

पं० कृष्णमाधवजी की बातें सुन लेने के बाद शंका-भरे स्वर मे

उसने फिर पूछा—"तो यदि शास्त्र पहेली है, तो शास्त्र के आधार पर टिका हुआ धर्म भी पहेली ? फिर इस पहेली में फँसे रहने से लाभ, गुरुजी ?"

"संसार में रहने के लिए किसी-न-किसी पहेली में फँसे रहना ही पड़ेगा चन्द्रावत ! बिलकुल नास्तिक बन जाने पर भी इस पहेली से निस्तार नहीं ! किसी-न-किसी विश्वास, आस्था और मर्यादा का सहारा हमें चाहिए ही ! ये तीनों मिल कर ही किसी धर्म या सम्प्रदाय, अथवा वाद या आदर्श का रूप ग्रहण करते हैं। जीवन के दुर्गम पथ से गुजरने के लिए इन तीनों के रथ का हमें आश्रय लेना पड़ेगा ही !"

कहते-कहते उनके स्वर में एकाएक अपने धर्म और संस्कृति के प्रति श्रद्धा और आस्था उमड़ पड़ी। बोले—"यदि हिन्दू धर्म का सांगोपांग अध्ययन तुम कर सको तो तुम्हें इस तथ्य पता लग जायगा कि इस धर्म में यदि पराकाष्ठा की कठोरता और कट्टरता है तो असीम उदारता भी ! अन्यथा प्राणिमात्र को 'एक आत्मा' के रूप में देखने वाले अद्वैत वेदान्त जैसे दर्शन की रचना न हुई होती ! अपनी उज्ज्वल परंपरा के रूप में उपनिषदों की अद्वैतवादी रचनाएँ हमें प्राप्त न होतीं !"

चन्द्रावत का हृदय जैसे खिल उठा। सन्देह का अंकुर जन्म लेते ही जैसे विनष्ट हो गया।

और उधर से माँ ने पुनः याद दिलाई रुपयों की—"तो चाँदा, जा के उससे कह दूँ कि श्राद्ध की तैयारी में वह लग जाय ? रुपये की चिन्ता अब वह न करे ?"

"हाँ इमाँ ! जा के कह दो ! रुपये मैं दे दूँगा !"

माँ खुश हो उठीं ! सन्तुष्ट मन से तोम्बोक की माँ के घर की ओर उनके पैर बढ़ाते ही कृष्णमाधव शर्मा ने रोका उन्हें—"जरा सुन लीजिए आप भी ! माना कि आपकी मदद से अथवा ऋण के रुपये से उस बालक की आत्मा की सद्गति हो जायगी ! परन्तु इस बात पर भी

तनिक सोचा है कि, इसी मणिपुर मे सैकडों-हजारों गरीब मृतकों की आत्माएँ अभी इसलिए प्रेत-योनि मे भटक रही हैं कि ब्रह्म-सभा का कर चुकाने के लिए तिरासी रुपये बारह आने तीन पाई नगद का जुगाड़ उनके घरवालों से नही हो सका ? तो यदि मणिपुर के आकाश में प्रेतो की इतनी बड़ी फौज मॅडरा ही रही है तो उनकी संख्या में एक की कमी कर देने से सिवा पाप के पुण्य आपको न होगा ! या तो बढ़ने दीजिए इन प्रेतो की सख्या खूब, ताकि वे मिल कर पूरे जोर से किसी दिन ब्रह्म-सभा के समस्त प्रेतों से प्रतिशोध ले सकें ! बदला ले सकें ! अथवा मदद ही करनी हो तो कोई ऐसा उपाय सोचा जाय, जिससे उन सभी प्रेतात्माओं का एक साथ उद्धार हो सके !"

पडितजी की बात पर माँ जरा नाराज हो कर बोली—"एक अभागे का उद्धार तो पहले हो लेने दीजिए ! फिर बाद मे दूसरो के बारे मे सोचते रहिएगा !"

पडितजी ने दृढ़ता से प्रतिवाद किया—"नही ! जब होगा तो सब-का एक साथ, नही तो किसी का भी नहीं ! यह कहाँ का न्याय है कि कोई एक गरीब तो किसी दयावान की दया पा कर प्रेत योनि से उद्धार पा ले, और उसके दूसरे गरीब भाई प्रेत-योनि की जजीर मे ही जकड़े रह जायँ ? यह तो सरासर अन्याय है, चाँदा की माँ ?"

दोनों माँ-बेटे आश्चर्य-चकित नेत्रो से पडितजी के मुँह को निहारते रहे।

कृष्ण माधव शर्मा इस बार खूब दृढ़ स्वर मे बोले—"श्रीमान् चन्द्रावत ! तुम हो क्षत्रिय, और मै हूँ ब्राह्मण ! धिक्कार है उस क्षत्रियत्व को, और उस ब्राह्मणत्व को भी, जो निरीह जनता पर होते अत्याचार की ओर से आँखें फेर ले ! उसे चुपचाप बर्दाश्त कर ले ! किसी एक अभागे पर दया दिखाने के बजाय बेहतर है सभी अभागों के उद्धार के संग्राम में सम्मिलित होना ! बोलो, तैयार हो मोर्चे पर

उतरने के लिए ? तुम जैसा तेजस्वी और प्रतिभावान युवक यदि साथ दे सके तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि मणिपुर की सारी भूमि से ब्रह्म-सभा के सारे अन्याय-अत्याचार को. जड़-मूल से उखाड़ फेंका जाय !...बोलो, तैयार हो ?"

चन्द्रावत का नया खून उबल उठा। बोला—"जब ब्राह्मण युद्ध-भूमि के लिए तैयार है तो क्षत्रिय का पीछे रह जाना धर्म तो नहीं गुरु-जी ? बताइए रास्ता ! हर तरह से मैं तैयार हूँ साथ देने को आपका !"

पडितजी चन्द्रावत पर विश्वास करते थे। किन्तु फिर भी किंचित् शका शेष रह गई। बोले—"तुमसे मुझे इसी बात की आशा थी चन्द्रावत ! और इस उद्देश्य से ही मै तुम्हारे पास अभी आया था। किन्तु समस्या के इस पहलू पर भी सोच अवश्य लो कि लोहा आखिर लेना है किससे ! समझे ? ब्रह्म-सभा से मोर्चा लेने का साफ मतलब है स्वयं मणिपुर-नरेश से मोर्चा लेना ! और तुम ठहरे नरेश के प्रियपात्र सेवक ! फिर मैदान मे आने से पहले एक बार अच्छी तरह सोच लो तुम !"

"और आप भी तो मणिपुर-नरेश के प्रियपात्र पुरोहित ठहरे ! और यदि विश्वास न हो तो लीजिए आप !"—कह कर वह झट उठ कर चला गया अन्दर अपनी मेज पर और तीन-चार मिनट के भीतर एक लिखित कागज पडितजी के हाथ थमाते हुए—"यह लीजिए, नौकरी से मेरा त्यागपत्र !...त्याग का माद्दा केवल ब्राह्मणों मे ही नहीं, क्षत्रियों में भी होता है गुरुजी !"—कहते-कहते चन्द्रावत के चेहरे पर सन्तोष और उल्लास की अभिनव आभा चमक उठी।

लेकिन माँ की समझ में साफ कुछ आया नहीं। वे तनिक आशका और आश्चर्य की आँखों से बकर-बकर ताकती वहाँ बैठी रहीं।

(१२)

प० कृष्णमाधवजी के चले जाने के बाद चन्द्रावत ने सारी बातें स्पष्टता से शैलेन्द्र को समझा दी। सुन कर शैलेन्द्र आश्चर्य-चकित रह गया! दंग रह गया! कुछ बोल न सका। सहसा पक्ष या विपक्ष मे कोई राय जाहिर न कर सका। किन्तु चन्द्रावत के चेहरे पर इस महान त्याग और बलिदान का अहंकार साकार हो उठा था। उस अहकार के उदर से सन्तोष की उठती हुई लहरें जैसे दहकती हुई किरणे बन-बन कर उसके चेहरे को चमका रही थीं। ओठो पर मुसकान की मानो मीठी-मीठी आभा बन-बन कर फिर वाणी मे बिखर रही थी। असाधारण त्याग और बलिदान का आनन्द सामान्य आनन्द नही होता!

आज चन्द्रावत को भोजन मे मानो सब दिन से अधिक स्वाद आया। भोजन मे माछ भी बना था। माछ की जाति 'डातिन' थी जिसे हिन्दी में 'रहू' कहते हैं। शैलेन्द्र को भोजन मे जरा सुस्त होते देख चन्द्रावत ने उलहना-भरे स्वर मे कहा—"आज तुम भोजन में मन्द क्यो पड़ गये दोस्त? यह तो तुम बगालियो का परम प्रिय 'रुइ माछ' है भइया! बना तो खूब अच्छा है, लेकिन तुम्हारी मन्दी को देख भय है कि कहीं मै स्वय मन्द न पड जाऊँ!"

जवाब मे माछ का एक टुकड़ा मुँह में डाल कर धीरे-धीरे स्वाद लेते हुए शैलेन्द्र ने कहा—"माछ मानो मणिपुर का जीवन है चन्द्रावत! यदि बगाल के वैष्णव धर्म ने 'जलेर फल' (जल-तरोई) नाम दे कर माछ से समझौता न किया होता, तो सच कहता हूँ बगाल, आसाम और मणिपुर के मत्स्य-बहुल प्रदेशों में इस धर्म की जड़ कभी जम न पाती!"

"परिस्थिति से समझौता सबको करना पड़ता है! धर्म को

भी !"—चन्द्रावत ने हँस कर जवाब दिया।

"केवल चन्द्रावतसिंह को छोड़ कर किन्तु !"—शैलेन्द्र ने मानो व्यंग किया।

लेकिन चन्द्रावत सिंह ने इस व्यंग पर तनिक भी ध्यान न दे कहना जारी रखा—"जग-जाहिर है कि बिना हिंसा के मांस प्राप्त नहीं होता। पर अहिंसा-प्रधान बौद्ध-धर्मी जनता में मत्स्य-मांस की खपत कहीं ज्यादा है। अतः इस हिंसा को अहिंसा साबित करने के लिए बौद्ध विद्वानों को 'त्रिकोटि-परिशुद्ध' या 'पंचकोटि-परिशुद्ध' का जाल ठीक उसी प्रकार बुनना पड़ा जिस प्रकार कि समस्त संसार की सरकारों को अपनी हिंसा और अन्याय को सही साबित करने के लिए आइन-कानून का जाल बुनना पड़ता है ! धर्म और धर्मशास्त्र की व्याख्या तक बदलवानी पड़ती है !"—कह कर वह खूब जोर से हँसा।

इस बार हँसी में शैलेन्द्र ने भी साथ दिया।

चन्द्रावत ने मानो खूब खुश हो माछ के एक और टुकड़े का स्वाद लेते हुए कहा—"तुम्हें तो शायद मणिपुरी माछों के नाम भी अभी मालूम न होंगे शैलेन ! लेकिन 'खरेङ' तुम कई बार खा चुके हो जो स्वाद में 'ङातिन' से भी बढ़ कर होता है ! पर कमजोर कोठी के आदमी उसकी गरिष्ठता से डर कर उसे खाने से घबराते हैं। वैसे ङाचउ, ङाकरो, ङातोल, पेम्बा, पोरोङ, ङमू, उकाबी, ङाशेप आदि अनेक प्रकार के माछ हैं, पर स्वाद में उतने अच्छे नहीं होते !"

शैलेन्द्र ने तनिक हँस कर व्यंग कसा—"स्वाद में अच्छे हों या नहीं, किन्तु तुम्हारे मुँह से उनके नाम सुनने में मुझे कम स्वाद नहीं आ रहा ! मणिपुरी भाषा में 'ङा' शब्द माछ के लिए है, किन्तु लगभग हर जाति के माछ में 'ङा' शब्द का संयोग सुनने में किसी अनुप्रास से कम मधुर नहीं लगता !"

सुन कर चन्द्रावत भी हँसा।

इस प्रकार रात का भोजन समाप्त हुआ। लेकिन शैलेन्द्र पहले की भाँति चन्द्रावत के हास-परिहास मे आज खुल कर साथ न दे सका। उसे चन्द्रावत मे कुछ उस प्रकार का पागलपन प्रतीत हो रहा था जैसे अपने ही हाथों घर में आग लगा कर उसमे खूब खुशी से हाथ सेका जाय! खूब खुशी मनाई जाय! इष्ट-मित्रों को भी उस खुशी मे शामिल होने को निमन्त्रित किया जाय! एक निर्धन मइतेइ बालक के लिए यह त्याग सामान्य त्याग न था! यह कुर्बानी मामूली कुर्बानी न थी! दोनो माँ-बेटों के जीवन भर का सघर्ष जब सफल हुआ तो अन्याय के विरोध में एकाएक उस सुन्दर फल को अवहेला से ठुकरा कर इस प्रकार प्रसन्न हो उठना कोई मामूली उन्माद तो नही!

लेकिन यह उन्माद अपनी समस्त उज्ज्वलता के साथ अब शैलेन्द्र के मन की आँखो के आगे प्रकट हुआ। बिछौने पर पडा-पडा वह सोचने लगा—"कोई भी असाधारण बलिदान विना उन्माद के नही हो सकता! उन्माद मे यदि मानव असाधारण नीचता और क्रूरता का कार्य कर बैठता है तो असाधारण उज्ज्वलता का भी! असाधारण महानता का भी! उन गरीब बेबस मृतको की मूक आवाज मानो सारे मणिपुर के दलितो और बेबसो की आवाज है! उस आवाज ने चन्द्रावत के परम मानव हृदय को झकझोर दिया है! हिला दिया है! इस क्षण वही हृदय मानो दलितो की समस्त शक्ति को बटोर कर ताल ठोक कर मैदान में कूद पड़ा है! मानो मणिपुर की समस्त शोषक शक्ति को चुनौती देता हुआ सघर्ष की तैयारी मे जुट पड़ा है!"

सोचते-सोचते शैलेन्द्र के मानस-मच पर चन्द्रावत अब समस्त दलितों मे छिपी अगाध शक्ति को बटोरे हुए एक महाशक्ति-सम्पन्न महा-मानव के रूप में प्रकट हुआ। इस क्षण वह स्वय अपनी आँखों में अपने मित्र के समक्ष अति लघु और क्षुद्र प्रतीत हुआ। स्वयं मणिपुर-नरेश इस महामानव के समक्ष अति लघु प्रतीत हुए। अपनी सुविधाओं

एवं शान-शौकत की सुरक्षा के निमित्त ही जो अंग्रेजों के हाथ का खिलौना बना हुआ है, अपने झूठे राजत्व का रोब और दबदबा कायम रखने के निमित्त ही जिसका सारा अन्याय-अत्याचार आज दलित-निरीह जनता पर बरस रहा है, वह 'नरेश' हो कर भी कितना छोटा है! कितना ओछा! और एक वह है, जो इस अन्याय-अत्याचार के विरोध में अपनी सारी सुख-सुविधाओं को ठुकरा कर एकाएक फक्कड़ और फकीर बन गया है! विना किसी हिचक के निर्भीक हो समस्त राज-शक्ति से लोहा लेने को तैयार हो चला है! निर्धन हो कर भी कितना महान है वह! एक, अपने समस्त फक्कड़पन और फकीरपन के साथ आज हिमालय की सर्वोच्च चोटी की तरह आकाश में सिर ऊँचा किये खड़ा है! और दूसरा, अपने समस्त शान-शौकत व राजत्व का अहकार और अभिमान लिये हुए भी बिलकुल बौना बना हुआ है! धरती की धूल चाट रहा है!

अगूर पाने की क्षमता के अभाव मे 'अगूर खट्टे हैं' कहने वालो की कमी इस ससार मे नहीं है, किन्तु मीठे मीठे अगूरो को पा कर उन्हें दूसरो के लिए स्वेच्छा से त्यागने वालो का अभाव अवश्य है! राजा का कृपा-पात्र बन कर यह निर्धन महतेइ एकाएक शासक बना! शासको की शान-शौकत की सुविधा और सौभाग्य उसे प्राप्त हुआ! और राजा की वात्सल्यमयी उदारता ने राजकुमारी 'मुक्तावती' जैसी नारी से विवाह कराने का सकल्प कर उसे हर प्रकार से ऊँचा उठाने का प्रयास किया! किन्तु समस्त सुख-सभावनाओं को ठुकरा कर इस प्रकार फकीर बन जाने वाले इस मानव के लिए शैलेन्द्र के मन मे दुःख भी हुआ, मित्रत्व के नाते अहंकार भी। सुप्रख्यात अंग्रेज नाटककार, बर्नार्ड शॉ की वह उक्ति इस क्षण उसे याद आ गई कि, 'ससार मे दो प्रकार के मनुष्य हैं, समझदार और नासमझ। समझदार अपने-को संसार के अनुकूल बना लेता है, और नासमझ ससार को ही

अपने अनुकूल बनाना चाहता है। पर ससार की समस्त प्रगति और परिवर्तन इन नासमझों पर ही निर्भर करते हैं!'

अब वह एकाएक मन-ही-मन भावना-भरे स्वर में बोला—"चन्द्रावत! मेरे मित्र! तुम सचमुच महान हो! अति महान! मित्रत्व का अहंकार करने का अधिकार मुझे अवश्य है, पर इस ऊँचाई पर पहुँचने का सामर्थ्य शायद मुझमे नहीं है! मुझे बल दो, प्रेरणा दो, कि तुम्हारा सच्चा मित्र और साथी बन सकने का सामर्थ्य मै प्राप्त कर सकूँ! सच्चे दिल से हर मोर्चे पर तुम्हारा साथ दे सकूँ! बर्नार्ड शॉ के शब्दों मे तुम वही नासमझ महामानव हो चन्द्रावत, जिसकी इस नासमझी में ही मणिपुर की दलित जनता की आशा और सौभाग्य का सुबीज सन्निहित है! मुझे भी इसी नासमझी के पथ पर चलने की प्रेरणा दो मेरे मित्र! मेरे गुरु! मेरे सखा! मेरे सहोदर-सम प्रिय!"—कहते-कहते उसका हृदय उच्छ्वसित हो पड़ा। आँखो मे भावना के आँसू उमड़ पड़े।

उसने अब वितृष्ण हो भावना-भरे स्वर मे मन-ही-मन फिर बोलना आरंभ किया—"वाह रे मोशाइ अनिल घोष! तुमने बच्चू, मणिपुरी समाज को गहराई से समझ और परख चुके होने का अहकार व्यक्त किया था! तुमने व्यंग- और घृणा-भरे स्वर में कहा था—'क्या हम बगाली अपने अति सुसस्कृत बग-समाज से नाता-रिश्ता तोड़ कर उस मणिपुरी समाज से सम्बन्ध जोड़ें जहाँ बंग-समाज की उच्चता का कोई चिह्न नहीं?' काश, तुमने चन्द्रावत को समझने और परखने का प्रयास किया होता! उस चन्द्रावत को घोष, जिसके व्यक्तित्व मे, जिसके इस असाधारण बलिदान और सकल्प में, मणिपुरी समाज की समस्त उच्चताएँ आज व्यक्त हो उठी हैं; जिसके त्याग मे समस्त मानव जाति का उच्चत्व बोल उठा है; और जिसकी आत्मा आज बंगाल के खुदीराम वसु गोपीनाथ साहा आदि अमर शहीदों की आत्माओं से तादात्म्य लाभ करने के पथ पर पैर बढ़ा चुकी है! और तब तुम समझते

कि मणिपुर क्या है? मणिपुरी समाज क्या है? इस समाज की सस्कृति मे श्रेष्ठता क्या है?"

"मोशाइ अनिल घोष!"—शैलेन्द्र पुनः घृणाभरे स्वर में मन-ही-मन बोला—"अन्य समाज को असंस्कृत एवं घृणित बताने से पूर्व यदि तुमने अपने-आप के बारे मे, अपने निज के अपराधों के सम्बन्ध में भी सोचा होता? क्या यह सच नही कि तुम जैसे लोगो की हीन प्रवृत्ति ने ही बगालियों को अन्य सभी समाजों की आँखों में अवांछित एवं घृणित बना डाला है? अपने मिथ्या बगालीपन पर मिथ्या अहंकार करने के बजाय क्या ही अच्छा होता यदि स्वय तुमने औरों के बीच बगाल की उच्चता और उदारता का आचरण किया होता! उनके हृदय को जीत उन्हें अपना बना लिया होता अथवा स्वय तुम उनके बन गये होते! इस प्रकार ही तुमने बगाल की श्रेष्ठ सस्कृति का सच्चा प्रतिनिधित्व किया होता! इस प्रकार ही तुम बगाल और बगालियो के सच्चे हित-चिन्तक बन पाते! लेकिन तुम जैसे लोग कर रहे हैं ठीक इसके विपरीत! नही नहीं, तुम जैसे लोग सच्चे बगाली कभी नहीं!! कभी नही!!!"—कहते-कहते उसके शब्द आवेश मे ओठों से बाहर भी आ गये। किन्तु फिर भी वे किसी अन्य के कानों मे जाने योग्य न थे।

अब अचानक शैलेन्द्र की आँखों मे बंगाल एवं भारत के उन शतशः विप्लवी वीरों के गर्वोन्नत चित्र उभर आये जो सिर पर कफन बाँधे महाशक्ति-सम्पन्न ब्रिटिश शासन को चुनौती दिये जा रहे हैं! शैलेन्द्र मन-ही-मन फिर बोल उठा—"वस्तुतः वे वीर ही सच्चे अर्थों में भारत और बगाल की सच्ची आत्मा और सची सस्कृति के प्रतीक हैं! जीवन्त प्रतिरूप! और मेरा चन्द्रावत भी इसी सच्ची आत्मा और इसी सची सस्कृति का प्रतीक है! जीवन्त प्रतिरूप! मेरे चन्द्रावत की ही तरह उन विप्लवियों ने भी तो सुख-सुविधाओं के जीवन और उस जीवन की समस्त आशाओं को ठुकरा कर काँटों का गर्वोन्नत ताज अपने

सिर पर धारण किया है ! आह, यदि मै भी इस ताज को पहन कर इस गर्वोज्ज्वल पथ का एक पथिक बन सकूँ ! निर्भीक और निर्धोक आगे बढ़ता चलूँ ! तभी मै सच्चे अर्थों मे बंगाल, भारत एवं समस्त विश्व-मानव की समुन्नत आत्मा व सर्वोच्च संस्कृति के प्रतिनिधित्व और उत्तराधिकार का अधिकारी बन सकूँगा !" और इस निश्चय के बाद शैलेन्द्र ने भी अपने पद और सेवा से त्याग-पत्र दे कर उस सघर्ष में शामिल होने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

उधर चन्द्रावत का मन भी अन्तर्द्वन्द्वो की लपेट में खूब उलझ चुका था। आज जिस काम को भावावेश मे वह कर चुका था, उसके लिए पश्चात्ताप का कोई चिह्न भी उसके मन मे न था। किन्तु जिस ऊँचे लक्ष्य के लिए यह असाधारण बलिदान उसने किया था, उस तक पहुँचने और अपना सकल्प पूरा करने के उपायो पर वह सोच अवश्य रहा था। यह त्याग महज एक आरभिक कदम था, साधन था, साध्य कतई नहीं ! जिस उच्च आवेश मे मजिस्ट्रेट-पद के समस्त सौभाग्यों—सुविधाओं और शान-शौकत के रौबीले आवरण को अचानक उतार कर उसने फेंक दिया था उस आवेश की उष्णता को अन्त तक कायम रखने के सम्बन्ध में वह सोच अवश्य रहा था। आवेश मे एका-एक शहीद बन जाना आसान है, पर जीवन भर शहीद बने रहना कम आसान नहीं है ! और जीवन भर शहीद बने बिना उस प्रबल शोषक शक्ति से लड़ना और जूझना तो कतई आसान नहीं !

चन्द्रावत को अब स्पष्ट दिखायी दे गया कि मणिपुर-नरेश से जूझना केवल उन्हीं से जूझना नहीं है, बल्कि स्वय महाशक्ति-सपन्न ब्रिटिश साम्राज्य और साम्राज्यवाद से भी जूझना है। मणिपुर की राज-शक्ति तो उस विशाल साम्राज्य-शक्ति की ही एक कणिका-मात्र है ! एक तुच्छ अश ! एक छोटा-सा अग ! किन्तु किसी भी अंग पर किया गया आघात सारे अगी को, उसके अंग-प्रत्यग को हिला देता है, दर्द महसूस

करा देता है ! इसलिए यह सर्वथा असंभव है कि अपने इस छोटे-से अंग पर किये गये आघात को ब्रिटिश सरकार महसूस न करे ! वह उदासीन बनी रह सके ! चुपचाप बर्दाश्त कर सके !

यह सोचते ही अब चन्द्रावत के सामने अपनी सारी गरिमा के साथ समस्त ब्रिटिश शक्ति मानो दुर्जय प्रतिद्वन्द्वी के रूप में प्रकट हुई ! और मणिपुर-नरेश उसी दुर्जय शक्ति के एक क्षुद्र परिपोषक तत्त्व के रूप मे ! अब उसे राई-रत्ती भी सन्देह न रह गया कि ब्रह्म-सभा के अन्याय-अत्याचार के विरोध में किया जाने वाला संघर्ष इसी प्रबल प्रचंड ब्रिटिश शक्ति के विरोध में किया जाने वाला सघर्ष होगा ! और उसे यह भी स्पष्ट दिखाई दे गया कि यह संघर्ष सारे भारत मे अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध किये जा रहे संघर्ष का ही पूरक होगा ! उसी का एक अभिन्न परिपोषक तत्त्व ! यह सोचते ही उसके मन मे अतिशय उत्साह का सचार हुआ। उसके मन से एकाकीपन का भाव जैसे नष्ट हो गया। उसे स्पष्ट यह भान हो गया कि मणिपुर की जनता के इस सघर्ष के पीछे भारत की कोटि-कोटि जनता का साथ और सहारा होगा ! सहानुभूति होगी ! सघर्ष में सहानुभूति भी कम मूल्यवान नहीं होती ! उसके मन ने उसे बारंबार प्रोत्साहित करना शुरू किया—"संकल्प और उत्साह के साथ इस सघर्ष में पूरे जोर के साथ जुट जा चन्द्रावत ! तू अकेला नहीं है ! मणिपुर की जनता अकेली नहीं है ! समस्त भारत उसके साथ है ! विश्व की समस्त शोषित जनता उसके साथ है ! करोड़ों-अरबों शोषित जनता की छिपी या खुली सहानुभूति उसके साथ है !"

अब चन्द्रावत का हृदय दुर्जय उत्साह और साहस से भर उठा ! ब्रिटिश साम्राज्य की दुर्जय शक्ति अब उसके मन में अजेय बनी न रह सकी। पं० कृष्णमाधव का वह वाक्य उसे याद आ गया—"तुम जैसा तेजस्वी और प्रतिभावान युवक यदि साथ दे सके, तो इसमें जरा भी

सन्देह नहीं कि मणिपुर की सारी भूमि से ब्रह्म-सभा के सारे अन्याय-अत्याचार को जड़-मूल से उखाड़ फेंका जाय!" उसकी अपनी तेजस्विता और प्रतिभा अब उसे अपने तक ही सीमित दिखाई न दी। उसे लगा जैसे मणिपुर की सारी धरती और आकाश इस युवा-शक्ति और प्रतिभा से ओत-प्रोत है! मणिपुर की समस्त युवा-शक्ति को संघटित करने की जरूरत है अब! प्रतिद्वन्द्वी की दुर्जय शक्ति के विरुद्ध इस सघटित दुर्जय शक्ति को जगाने की जरूरत है अब! उसका सही और समुचित उपयोग करने की आवश्यकता है! तब एक ब्रह्म-सभा तो क्या, उसकी समस्त पोषक-शक्ति को, समस्त अत्याचारो को, उसकी समस्त सत्ता को, मणिपुर की धरती से जड़-मूल से उखाड़ फेका जा सकता है!

यह सोचते ही उसे मणिपुर की समस्त भूमि से ब्रिटिश साम्राज्य का मूल भी उखड़ता दिखाई दे गया। और तब उसके मन के कोने-कोने मे आशा और उत्साह की परम तृप्ति का उल्लास मुखरित हो उठा। इस अत्यन्त उच्च परिणाम की तुलना मे जैसे उसका अपना त्याग अब नगण्य प्रतीत हुआ। और तब अपने-आप से वह मन-ही-मन बार-बार कहने लगा—"इस परम उच्च परिणाम की शुभ आशा मे शहीदों का जीवन जी चन्द्रावत! अपने त्याग और बलिदान पर रच मात्र भी अहकार किये बिना अपने देश की धरती से समस्त अन्याय-अत्याचार को मिटाने के प्रयत्न मे जी-जान से जुट जा चन्द्रावत! अपने स्वार्थ को समस्त दलितों के स्वार्थ में मिला कर मैदान मे आ जा चन्द्रावत! तू अकेला नहीं है! तेरा स्वार्थ और व्यक्तित्व अकेला नहीं है!"

कुछ देर अपने पलग पर करवटें ले-ले कर इस आशा, उत्साह और परितृप्ति के नशे में, अनिर्वचनीय उल्लास मे वह झूमता रहा! फिर उसे याद आया ब्रह्म-सभा का इतिहास और इस इतिहास के जनक परम प्रतापी मणिपुरी राजा "पाम-हेइबा" का व्यक्तित्व! वह

सोचने लगा—"ईस्वी सन् १७१४ में पाम-हेइबा मणिपुर की राज-गद्दी पर आसीन हुआ। उसने अनेक सामाजिक सुधार किये। प्रजा को समुचित न्याय देने एव संघटित न्याय-व्यवस्था के लिए उसने ब्रह्म-सभा की स्थापना की। किन्तु किसी अच्छे उद्देश्य से आरभ किया गया कार्य या बनाई गई संस्था भी बेईमानों के हाथ पड़ कर कितनी अहित-कारी हो सकती है, ब्रह्म-सभा स्वयं इसका प्रबल उदाहरण है! प्रबल प्रमाण बन गया है!"

यह सोचते ही कृष्णमाधव शर्मा के वे व्यग-वाक्य भी उसे याद आ गये जो शास्त्रों के दुरुपयोग के बारे मे उन्होंने कहे थे—"अपना उल्लू सीधा करने के लिए शैतान भी शास्त्र की शरण लेता है! और शास्त्रो मे ऐसे असख्य वचन भरे पड़े हैं जिनका सहारा ले कर नीच-से-नीच कर्म को भी शास्त्र-सम्मत साबित किया जा सकता है! शास्त्र-विहित ठहराया जा सकता है!" और यह याद आते ही वह फिर सोचने लगा—"तो जिस प्रकार शास्त्र की आड़ मे अपना उल्लू सीधा किया जा सकता है, उसी प्रकार इतिहास की आड़ मे भी! जिस प्रकार शास्त्र को स्वार्थियो ने पहेली बना रखा है, उसी प्रकार इतिहास को भी!" और इसी प्रसंग मे उसे एक विद्वान् लेखक का यह कथन भी याद आ गया कि "यदि इतिहास की सकुचित या सांप्रदायिक व्याख्या की जाय तो वह एक पढे-लिखे महामूर्ख द्वारा कही कहानी के सिवा कुछ नहीं रह जाता!"

यह याद आते ही उसे मणिपुर के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों से लिखे इतिहास का प्रसंग भी याद आ गया। वह सोचने लगा—"इतिहास शब्द का अर्थ तो यह है कि 'ऐसा ही हुआ! अर्थात् निश्चित रूप से यह सत्य है! अकाट्य सत्य!' लेकिन सत्य के साथ इतिहासकारों की सभी बातें मेल नहीं खातीं! अनेक इतिहासकार मणि-पुरियों को 'नागा-कूकी' जाति का मानते हैं। किन्तु मणिपुर-नरेश के

संरक्षण में लिखे जा रहे इतिहास मे इस बात को परम असत्य मान कर अतिशय क्रोध प्रकट किया गया है ! और वर्तमान राज-वंश का सम्बन्ध सीधे अर्जुन-पुत्र बभ्रुवाहन से जोड़ा गया है ! जाति रूप से नागा-कूकी अछूत हैं, अस्पृश्य हैं। अतः इस पवित्र राज-वंश का नागाओं से सम्बन्ध जोड़ा जाना राज-वश की दृष्टि मे घोर अपराध माना गया है! पर खेद कि वे इतिहासकार मणिपुर-नरेश की प्रजा नहीं हैं ! और उनका रंग बिलकुल गोरा है ! मणिपुर-नरेश के क्रोध की पहुँच से वे बाहर हैं ! बहुत दूर, बहुत बाहर !"

वह फिर जरा गहराई से सोचने लगा—"किन्तु मणिपुर-इतिहास के परम प्रतापी राजा 'पाम-हेइबा' का नाम ही क्या साक्ष्य नहीं दे रहा कि वर्तमान राज-वंश 'नागा' है ? नागा जाति का है ? अर्जुन-पुत्र बभ्रुवाहन से सम्बन्ध जोड़ने को इन विद्वानो ने 'जाली' बताया है। असत्य कहा है। क्योकि उनके मत मे महाभारत-वर्णित 'मणिपुर' वर्तमान मणिपुर न हो कर उडीसा या कलिग की राजधानी के सिवा और कुछ न था। लेकिन जो भी हो, स्वयं 'पाम-हेइबा' यह नाम क्या बता रहा है ? और केवल सौ वर्ष से भी कम पहले 'थागल' नामक नागा-सरदार को मणिपुरी हिन्दू-समाज में मिला कर सेनापति-पद पर प्रतिष्ठित करने की ऐतिहासिक घटना क्या बता रही है ?"

लेकिन इन प्रश्नों पर सोचते-सोचते उसे हँसी भी आ गई। यह कहावत भी याद आई कि "जब दिल मे दगा हो तो दलील की कमी नहीं रहती !" पाम-हेइबा को अछूत नागा-रक्त से पृथक् करने की दलील भी ढूँढ़ ही ली गई ! बताया जाता है कि राजमहल के घातक षड्यन्त्र से बचाने के निमित्त पाम-हेइबा की माँ ने उसे प्रसव करते ही अपने एक विश्वस्त नागा-सरदार के यहाँ भेज दिया। नागाओं में ही वह पल-पुस कर बड़ा हुआ। नागाओ का दिया हुआ नाम उसने 'राजा' बनने के बाद भी कायम रखा।

लेकिन यह सोचते ही पाम-हेइबा के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भी उसके हृदय मे शका और वितृष्णा पैदा हो चली। वह बार-बार सोचने लगा—"नागाओं में वह पला-पुसा, परिपुष्ट हुआ !.उनका दिया नाम आदर से आजीवन धारण किये रहा ! किन्तु राजा बन जाने के बाद वह नागाओ से पृथक् क्यो हो गया ? उन्हें अस्पृश्य और अछूत क्यों बनाये रखा ? उसने क्यों नहीं उन्हें भी हिन्दुत्व की सवर्णता में प्रविष्ट किया ?"

इस प्रकार के अनेक प्रश्न उसके मन मे उठने लगे। अनेक प्रकार के उत्तरो से निरुत्तर हो-हो कर विलीन भी होने लगे। लेकिन उसके मन मे यह बात पैठ कर जम गई कि, "वास्तव में ये नागा अछूत नहीं हैं ! अस्पृश्य नही हैं ! ये जबरन अछूत बना दिये गये हैं ! और न मणिपुरी हिन्दू समाज ही इनके रक्त से अछूता है ! और मणिपुर का राज-वश भी अपने रक्त की उच्चता और पवित्रता के सम्बन्ध में केवल मिथ्या-भावना का ही बोझ लादे हुए है !'

लेकिन इन तर्क-वितर्कों के बाद उसके मानस मंच पर एकाएक मुक्तावती आ प्रकट हुई। उसके अगो मे वही कमनीयता थी ! चेहरे पर चरित्र का वही चमकता तेज ! और आँखों मे सलज्ज स्वाभिमान की वही मनोहर चितवन ! चन्द्रावत इस क्षण भी इस व्यक्तित्व से प्रभावित हुए विना न रहा। वह कुछ क्षण मोह और आसक्ति की सतृष्ण आँखों से उसे देखता रहा। फिर एकाएक ठढो लंबी साँस ले कर अत्यन्त व्यथा-भरे स्वर में वह मन-ही-मन बोला—"मुक्ते ! अब मैं तुम्हारे योग्य रह नहीं गया ! तुम्हारा जीवन-सहचर बनने की उस योग्यता को मैं स्वयं ठुकरा चुका हूँ जिससे प्रभावित व आकृष्ट हो कर ही तुम्हारे माँ-बाप ने सम्बन्ध तय किया था ! पर, मै तुम्हें भूलूँगा नहीं ! शायद तुम्हारी स्वाभिमान-भरी चितवन और गर्वभरे व्यक्तित्व की पवित्र स्मृति मेरे सघर्ष में सहायक होगी ! विदा दो मुक्ते ! विदा !"—कहते-कहते उसका

स्वर व्यथा मे विलुंठित हो उठा ! दिल के रेशे-रेशे मे करुणा-भरा दर्द उभर आया !

(१३)

'निखिल-मणिपुर-महासभा' का जन्म तो वर्षों पहले हो चुका था, पर उसमें जीवन की कमी थी। सस्था बीमार बन कर कराह रही थी। मणिपुरी समाज के किसी काम की न थी। जिस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म तो सन् १८८५ ई० मे हुआ, किन्तु उसमें जीवन आ सका वर्षों बाद लोकमान्य तिलक एव गॉधी के सजीव व्यक्तित्व के सपर्क और संचालन से। उसी प्रकार अब पं० कृष्णमाधव और चन्द्रावत के सपर्क, त्याग और सकल्प की औषध ने 'निखिल-मणिपुर-महासभा' में भी जैसे एकाएक जीवन भर दिया। जीवन की स्फूर्ति से वह सस्था मानो एकाएक खड़ी हो दहाड़ उठी। उसकी आवाज एकाएक मणिपुर के कोने-कोने मे गूॅज उठी। इम्फाल एवं मणिपुर के कतिपय गॉवों के घर-घर से लोग उस ओर चल पड़े जहॉ महासभा के सम्मेलन का आयोजन आज हो रहा था।

सम्मेलन आरभ होने से बहुत पहले ही चन्द्रावत और शैलेन्द्र प० कृष्णमाधवजी के घर जा चुके थे। कृष्णमाधवजी ने बड़े आदर से उन दोनों का स्वागत किया। झट दालान मे एक दूसरी पटिया बिछ गई। भरा हुआ नया हुक्का भी आ गया।

प० कृष्णमाधवजी के घर आने का शैलेन्द्र का यह पहला मौका था। स्वागत-शिष्टाचार के बाद कृष्णमाधवजी तनिक मुसकाते हुए बोले—"चन्द्रावतजी का संस्कार तो आप लोगों के संपर्क से बहुत कुछ बदल गया शैलेन बाबू ! उन्होंने अपना घर आप लोगो के तरीके पर ही बनवाया। किन्तु खेद कि मै वर्षों बनारस रह कर भी वहॉ का गृह-संस्कार अपने साथ न ला सका ! देखिए न, इस घर को देख

र ही मेरी बात की सचाई का सबूत ले लीजिए !"

पडितजी की बात पर दोनों मित्र खूब हँसे ।

शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए जवाब दिया—"किन्तु मुझे तो मणिपुरी घर देखने में बड़ा सुन्दर लगता है पंडितजी ! फिर बाहर से किसी गृह-संस्कार को साथ लाने की जरूरत क्या ?"

"बाहर से ही सुन्दर दीखता है शैलेन बाबू, भीतर से नहीं ! शायद किसी ठेठ मणिपुरी घर को अभी आपने भीतर से नहीं देखा ! आइए, आज देखिए जरा !"—कहते हुए वे शैलेन्द्र को आग्रह-पूर्वक अपने घर के भीतर ले गये ।

बाहर से वह घर को पहले ही देख चुका था। मकान बाँस और फूस का हो कर भी बाहर से खूब सुन्दर था । चौड़ाई के अनुपात में लबाई काफी ज्यादा थी । छप्पर के चारों किनारे आपस मे जुड़े थे । छप्परो की चहुँमुखी ढलान बड़ी सुन्दर थी । अगले भाग मे आगे से बिलकुल खुला हुआ दालान था । और दालान के पीछे का सारा भाग बाँस और सरकडे की मिट्टी-पुती दीवारों से घिरा एक लबा 'हॉल' सा था । दालान से हो कर ही अन्दर प्रवेश का मुख्य द्वार था । 'हॉल' के दोनों किनारों पर मच्छरदानी से ढके कई पलगों की कतार थी । और एक ओर धान रखने की एक छोटी बखार, एवं घर-गृहस्थी के सामान से भरे हुए दो-तीन सन्दूक, तथा एक किनारे रसोई का स्थान, जहाँ विना नहाये-धोये किसी का भी जाना मना था । और एक तरफ एक छोटे तख्तपोश पर तिल के तेल से भरी एक शीशी, एक आइना, एक कंघा और गोपीचन्दन के कई टुकड़े—ये दैनिक साज-शृंगार के साधन थे ।

पडितजी ने घर की सारी चीजें दिखला कर मुसकाते हुए कहा—"देखिए न, मैं भी कैसा पुराण-पन्थी हूँ ! घर मे खिड़की तक लगाने की नहीं सूझी ! धुएँ का निकास न होने से मच्छरदानियाँ तक काली हो चली हैं ! क्या करूँ ? पिताजी का देहान्त हुए अभी वर्ष से अधिक

नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में उनकी भावना का आदर करना ही पड़ता था!"

तीनो जने अब घर से बाहर हो पचास-साठ गज आगे राधादामोदर के मडप मे आ गये। सम्मेलन यही होने वाला था। एक-एक कर लोग वहाँ आने लगे थे। मडप का विशाल छप्पर घास-फूस का होने के बावजूद कम शानदार न था। और उसकी विशालता तो देखने ही योग्य थी! मानो विराट् आकाश सीमा मे बॉध दिया गया हो! मध्य मे काठ के विशाल बारह ' भे, चारो ओर वर्गाकार चार कतारो मे खडे, मानो छप्पर को आकाश मे ताने हुए थे। खभों के बीच के वर्गाकार फरश पर बैठक की दरी बिछी थी। कुछ हट कर उन खभो से तनिक छोटे चौबीस खभों की दूसरी चौतरफा कतार भी थी। इन कतारों के बीच का फरश भी दरियो से पटा था। और इनके अलावा और भी छोटे-छोटे अड़तालिस खंभो की एक तीसरी वर्गाकार चौतरफा कतार भी मडप के किनारों को थामे बडी शान और शान्ति से खडी थी। छप्परों की चौतरफा ढलान भी बड़ी सुन्दर और सुपुष्ट थी। और मडप के एक कोने मे एक खूब बडा ढोल एव झाल और मृदग आदि कई प्रकार के बाजे धरे थे। और मडप के किनारे से लगा हुआ कृष्णमाधवजी का निजी छोटा पोखरा भी था, जिसमे उस समय भी कुछ स्त्री-पुरुष स्नान मे सलग्न थे। और मडप से उत्तर बिलकुल सटा हुआ-सा स्वय राधा-दामोदर का मन्दिर था, जिसके भीतर-बाहर का कच्चा फरश प्रतिदिन की लिपाई-पोताई से स्वच्छता की आभा मे खिला हुआ-सा था।

✓ लोग आते गये। मन्दिर के द्वार की ओर झुक-झुक कर दाये हाथ से धरती छूते हुए नमस्कार कर दरी पर वे बैठते गये। श्राद्ध-कर चुकाने के असामर्थ्य के कारण जिनके मृतकों का श्राद्ध अब तक भी नहीं हो सका था, वे मुख पर वेदना और विक्षोभ का बोझ लादे बैठे थे। और स्कूल-कालेज से ताजा-दम निकल कर आये नवयुवकों के चेहरे मानो इस

अन्याय की हस्ती मिटा देने के प्रबल संकल्प और उत्साह से उद्दीप्त हो उठे थे।

चन्द्रावत ने सभापति-पद पर आसीन होने का अनुरोध विनयपूर्वक अस्वीकार कर दिया। वह तो अपने को महज एक सिपाही मान रहा था। अतः उसने सेनापति और सभापति के पद के लिए प० कृष्णमाधवजी के नाम का प्रस्ताव किया। सबने एकमत हो प्रस्ताव का समर्थन किया। सम्मेलन की कार्रवाई बाकायदा आरंभ होने पर जब सबसे पहले कृष्णमाधवजी ने मजिस्ट्रेट-पद से चन्द्रावत के और दरबार-हाई-स्कूल के प्रधानाध्यापक-पद से शैलेन्द्र के त्याग-पत्र की घोषणा की तो नवयुवकों का हृदय और भी आन्दोलित हो उठा। कुछ लोगों के चेहरे पर आश्चर्य की रेखाएँ भी उभर आईं। किन्तु श्रद्धा और आदर से सबकी आँखें चन्द्रावत और शैलेन्द्र के सकोच-विजडित चेहरों पर जा लगीं। जिस प्रकार किसी एक बड़े का पतन अनेक छोटों मे पतन के बीज प्रेरणा और आकांक्षा पैदा करता है, उसी प्रकार किसी एक बड़े का त्याग और बलिदान अनेकों में उत्सर्ग की आकांक्षा भर देता है। मजिस्ट्रेट के स्पृहणीय पद पर पहुँचा हुआ चन्द्रावत सबकी नजरों मे कब का बड़ा बन चुका था। किन्तु इस क्षण उस गरीब महतेह-पुत्र के असाधारण उत्सर्ग पर सभी अवाक् थे! श्रद्धा से मुग्ध और स्तब्ध! और उन असमर्थ दीनों के चेहरे भी अब श्रद्धा के साथ विश्वास की आभा से चमक उठे थे!

और शैलेन्द्र तो जैसे एकाएक सबके आकर्षण का केन्द्र बन गया। रह-रह कर सबकी श्रद्धापूर्ण आँखें उसे घूरने लगीं। जिनके दिलों में बंगालियों के प्रति घोर घृणा के भाव छिपे हुए थे उनके हृदय भी शैलेन्द्र के इस अनुपम त्याग से आन्दोलित हो उठे। श्रद्धा की बाढ़ उमड़ आई, और इस बाढ़ में दिल का मैल जैसे एकाएक धुल-धुल कर बहने लगा।

त्याग और बलिदान की भावना से भरे भाषणों की अब कमी न रही। वक्ताओं मे अधिकांश नवयुवक थे, जिनके भाषण का मुख्य लक्ष्य था मणिपुर की भूमि से सभी प्रकार के अन्याय-अत्याचारों को मिटा देने और इस महान उद्देश्य को पूरा करने के लिए सिर पर कफन बॉध कर मैदान मे उतर आने के निमित्त सबको आमन्त्रण देना और स्वयं तैयार होना।

नवयुवक योगेश ने अपने भाषण के अन्त मे कहा—"सांसारिक सुख-भोग की आकांक्षा को तृणवत् ठुकरा कर परम मान्य श्रीशैलेन्द्र बाबू तथा आदरणीय भाई श्रीचन्द्रावत सिंह की तरह 'नरसिंह' बन कर समरभूमि मे उतर आओ नौजवानो!"

और जवाब में ब्रजविहारी सिंह सीना फुला कर दोनो हाथों को उछालते हुए मानो भीष्म-प्रतिज्ञा के स्वर मे बोला—"मै महासभा को आज जीवन-दान दे रहा हूॅ भाइयो! सांसारिक सुख-भोग की आकांक्षाओं को मै लात मार रहा हूॅ! सबको पता होगा कि अगले मास मेरी शादी होने जा रही थी। लेकिन राधादामोदर को आज साक्षी रख प्रतिज्ञा कर रहा हूॅ कि मै तब तक क्वॉरा और ब्रह्मचारी रहूॅगा, जब तक कि मणिपुर के उन सभी गरीब मृतको का उद्धार नही हो जाता, जिनकी आत्माऍ ब्रह्म-सभा की निष्ठुरता की शिकार बन कर प्रेत-योनि की जजीरो मे जकड़ी अब भी कराह रही हैं! और जब तक भविष्य के लिए भी ब्रह्म-सभा के जहरीले दॉतों को उखाड़ कर फेक नही दिया जाता!"

तब श्रीतोमदोन शर्मा भी बोल उठे—"और यह लीजिए, इस गरीब का जीवन भी अपने देश और जाति को सदैव के लिए अर्पित और समर्पित है!"

और तब श्रीतोम्पोक सिंह भी छाती तान उसे दाये हाथ से ठोकते हुए बोले—"मैं क्षत्रिय हूँ, क्षत्रिय! 'क्षत्रिय' शब्द का अर्थ है जो जनता का क्षति से—नुकसान से—त्राण करे—रक्षा करे! अपनी मॉ

के दूध की शपथ यदि समर-भूमि से मै पीछे हट जाऊँ ! हटने का प्रयत्न भी करूँ !"

इस प्रकार की न जाने कितनी प्रतिज्ञाएँ की गई। दुहराई गई। और अन्त मे कृष्णमाधव शर्मा ने ओजपूर्ण भाषण देते हुए इन शब्दों मे उपसहार किया—"महाबली ठाकुर (हनुमानजी) पहले प्रकृति से 'वानर' थे, क्योकि अपने मे छिपे महाबल का उन्हें पता न था। किन्तु जब जामवन्त ने उनमे छिपे अगाध बाहुबल का उन्हें याद दिला दिया तो एक ही छलॉग मे समुद्र लॉघ कर वे लका जा पहुँचे, और महावीर रावण को मजा चखा दिया ! अकेले सारी लंका ध्वस्त कर सीता का सन्देशा ले कर फिर उसी वेग से वापस श्रीरामचन्द्रजी के पास आ गये !"

कृष्णमाधव शर्मा ने आगे कहा—"भाइयो ! 'वानर' शब्द का अर्थ है आधा मनुष्य और आधा पशु। तो, इस उदाहरण से हमें यह समझना चाहिये कि मनुष्य भी तब तक पशु ही बना रहता है जब तक कि वह अपने मे छिपी अगाध शक्ति के सम्बन्ध में सचेत नहीं हो जाता। और जब उसमें एक बार अपनी शक्ति के सम्बन्ध की चेतना जाग उठी, तो यह असम्भव है कि वह किसी भी अन्याय-उत्पात को चुपचाप बर्दाश्त कर ले ! समाज के रावणों को मजा चखाये बिना चुप रह जाय !"

सब लोग बड़ी उत्सुकता उत्साह और ध्यान से प० कृष्ण-माधवजी की बातें सुनने लगे। पडितजी ने कहना जारी रखा—"जिस प्रकार एक दीप की लौ से अनेक दीपों की लौ जलाई जाती है, और उन दीपों के सामूहिक प्रकाश से दूर-दूर तक का अन्धकार नष्ट हो जाता है, और उस स्थान का सौंदर्य बढ़ जाता है, उसकी सजीवता बढ़ जाती है; उसी प्रकार अब हमारा कर्त्तव्य है कि अपनी जगी हुई चेतना के सयोग से मणिपुर की समस्त सोई हुई चेतना को जगा दें ! उसमें छिपी

अगाध शक्ति के सम्बन्ध में सबको सचेत कर दें ! सारे समाज को सबल और सजीव बना दे !"

फिर एकाएक अपने स्वरों पर खूब जोर दे वे सबको उत्तेजित करते हुए बोले—"याद रखो, और विश्वास रखो भाइयो-ओ-ओ, कि सामूहिक व सघटित चेतना के महाबल के सामने अन्याय की कोई भी शक्ति अधिक दिनो तक टिक नहीं सकती ! टिक नहीं सकती !! विश्वास रखो, हमारे इस धर्म-युद्ध मे स्वयं राधा-दामोदर एव मणिपुर के सभी देवी-देवता साक्षी हैं ! हमारे साथी हैं ! सहयोगी हैं !"—कह कर एकाएक उन्होंने मन्दिर की ओर श्रद्धा और विश्वास के साथ अपना मस्तक झुका दिया।

सबने अनुकरण किया ।

फिर एकाएक इन नारो के गगनभेदी समवेत स्वरो से उस विशाल मडप का कोना-कोना गूँज उठा !—

"अन्याय और अधर्म का नाश हो !!!"

"श्राद्ध-कर समाप्त हो !!!"

"हमारे मृतको की सद्गति मे बाधाएँ नष्ट हो !!!"

और फिर सारी सभा एक विशाल जुलूस मे बदल कर नारे लगाती हुई प० कृष्णमाधव के नेतृत्व मे आगे चल पड़ी । इम्फाल की विभिन्न गलियों और सड़को का चक्कर लगाती वह मुख्य सडक से राजमहल की ओर बढ़ चली ।

(१४)

मणिपुर-नरेश को सारी खबर मिल चुकी थी । राजमहल की छत पर खड़े हो कर दूरबीन से वे जनता के उस विशाल जुलूस को आगे बढ़ते स्वय देख चुके थे, जिसे पुलिस ने पुल पार होने से रोक दिया था । 'राधा-दामोदर' के मंडप से प्रस्थान करते समय जुलूस का आकार बिलकुल छोटा था । किन्तु जिस प्रकार एक छोटा नाला अपने मूल

उद्‌गम से निकलने के बाद राह में अनेक नदी-नालों के संयोग से उत्तरोत्तर विराट् और विशाल बनता जाता है, वही स्थिति इस जुलूस की भी थी।

जुलूस को देखते ही नरेश के क्रोध और क्षोभ का ठिकाना न रहा। प० कृष्णमाधव और चन्द्रावत दोनों ही उनके अपने थे। उनके अधिक कृपापात्र ! पर दोनो ही अब उनकी आँखों में महान कृतघ्न और नीच बन कर प्रकट हुए। जिस प्रकार सर्प अपने केंचुल को उतार फेंक कर अत्यन्त तेज और गतिवान बन जाता है, उसी प्रकार कृष्णमाधव और चन्द्रावत भी उनकी सारी आत्मीयता एवं कृपा के केंचुलों को उतार फेंक मानो अब अधिक बलवान और गतिवान बन कर उनपर हमला कर चुके थे। वे दोनों ही जैसे आस्तीन के साँप बन कर उनकी नजरो में प्रकट हुए। आत्मीय एव कृपापात्र द्वारा किया गया विश्वासघात कहीं अधिक दारुण, कहीं अधिक क्रोधकारक होता है !

क्रोध और क्षोभ के आवेग मे अपने महल के शयन-कक्ष मे चहलकदमी करते हुए वे बार-बार गुनगुना रहे थे—"एँ ! ये दोनों ही आस्तीन के साँप साबित हुए ! मेरे समस्त उपकारो का जरा भी ख्याल न रखा ! कैसे विश्वास किया जाय किसी पर ! हाय, मनुष्य कितना कृतघ्न होता है ! कितना नीच !"—सोचते-सोचते उनके हृदय में व्यथा और वितृष्णा का बवंडर उठ आया। उस बवंडर के उदर से क्रोध और विक्षोभ का बवंडर भी उत्पन्न हुआ। क्रोधोन्मत्त हो कर दाँत पीसते हुए और तर्जनी हिलाते हुए वे फिर बोले—"इन नीचों को मजा चखाना ही पड़ेगा ! इन्हें बताना ही पड़ेगा कि कृतघ्नता और नीचता का परिणाम क्या होता है ! जिस पत्ते में खाया उसी में छेद करने का अंजाम क्या होता है ! राजा के विरुद्ध, राजाज्ञा और राज-विधान के विरुद्ध सिर उठाने का नतीजा क्या होता है ! इनका सिर कुचलना ही पड़ेगा ! इनके जहरीले दाँत उखाड़ने ही पड़ेंगे !"—कहते-कहते वे

क्रोध के आवेश में जैसे और भी उन्मत्त हो उठे ।

"कृष्णमाधव! ओ-ओ-ओ, कृतघ्न!"—वे इस बार तनिक चीख-भरे स्वर मे बोले—"तूने क्या समझ रखा है मुझे? नीच! कीड़े! फतिंगे! फतिंगा क्या सिंह को मारने का साहस करे! नहन्नी क्या वृक्ष को काटने का दुःसाहस करे! तुझे मै तेरी जगह ला कर छोड़ूँगा नीच! तुझे मै बता दूँगा, दिखा दूँगा कि तू कौन है, और मैं कौन हूँ!" फिर मन-ही-मन अपने उपकारो की याद दिलाते हुए—"तुझे इतना पढ़ा-लिखा कर राज-पुरोहित के सम्मान-जनक पद पर बैठा कर मैने जो घोर गलती की, घोर पाप किया, उसका प्रायश्चित्त तो करना ही पड़ेगा मुझे! नीच! यदि मैं तेरा सिर कुचले विना रह जाऊँ तो भविष्य में कैसे कोई कृतज्ञ बना रह सकेगा? परोपकार और कृपा में कैसे किसी की आस्था बनी रह सकेगी? किसो पर कैसे किसी का विश्वास बना रह सकेगा? तू ब्राह्मण है न! ब्राह्मणो की जाति होती ही बड़ी कृतघ्न है!"

किन्तु इन शब्दों के मुँह से निकलते ही उनकी स्मृति की आँखों मे चन्द्रावत भी आ खड़ा हुआ; जैसे चेहरे पर क्षत्रियत्व का गर्वोन्नत तेज सम्हाले हुए! वे दाँत किटकिटा कर फिर बोले—"तू तो क्षत्रिय है न, चन्द्रावत! लेकिन तू तो मइतेइ है! व्रात्य क्षत्रिय! अधम क्षत्रिय! इसी से तू इस नीच ब्राह्मण के बहकावे मे आ गया! तुझे ऊँचा उठाने का मेरा सारा प्रयत्न व्यर्थ गया! तूने जरा भी ख्याल न रखा मेरे उपकारों का! मेरे उदारता-भरे समस्त सत्प्रयत्नों का! इसी से यह बात स्पष्ट है कि किसी भी मइतेइ पर विश्वास न करना चाहिए! किसी भी मइतेइ को ऊपर उठाना न चाहिए! ऊपर उठने नही देना चाहिए! अन्यथा वह जिस वृक्ष के सिरे पर बैठेगा, उसी की जड़ पर कुल्हाड़ा मारेगा! मूर्ख! नीच! मै तुझे भी मजा चखा के रहूँगा! मै तुझे भी तेरी जगह ला कर छोड़ूँगा!"

फिर एकाएक उन्होंने व्यंगभरे स्वर में चन्द्रावत को लक्ष्य करके

नीति का एक श्लोक भी दुहरा दिया—

"शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रक !—

किन्तु—यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते ।"—कहते-कहते उनके स्वर में व्यग-वितृष्णा की हँसी भी उभर आई। मन-ही-मन हँस कर वे फिर बोले—"शृगाल कही हाथी की हस्ती को मिटाने का प्रयत्न करे! दुःसाहस करे ! ठहर तू, ठहर ! शृगाल को भी उसकी वास्तविक जातीयता का परिचय और विश्वास दिलाना ही पड़ेगा ! ठहर नीच !"

यह कहते ही उन्हे अपना वंश याद आ गया। वश-परपरा याद आ गई। वे एकाएक अपने ऊँचे आसन पर बैठ कर अपने उज्ज्वल वंश के सम्बन्ध मे सोचने लगे। कुछ ही क्षणों में मानो सारा वश-गौरव चलचित्र की भाँति उनके स्मृति-पट से गुजर चला। सूर्य और चन्द्र वंश के उच्च व पवित्र रक्तों के सयोग से निर्मित उनके उच्च राज-वश की परपरा उनकी स्मृति मे स्पष्ट हो चली। इम्फाल का प्रथम राज-वश 'निङथउ चा' के नाम से प्रख्यात था। यह राजवश अपने को सीधे सूर्यवश का मान कर अपनी पोशाक, झडा एव पूजा आदि मे लाल रग का उपयोग किया करता। क्योंकि उदीयमान सूर्य का रग लाल होता है। इसी वंश में चित्रवाहन पैदा हुए और उनके वीर्य से चित्रागदा जैसी परम प्रख्यात वीरांगना राजकुमारी! और तब महावीर अर्जुन व चित्रांगदा के प्रणय एव परिणय के रूप मे सूर्यवश और चन्द्रवश के परम पावन रक्तों का समिश्रण हुआ। और उस समिश्रण के फलस्वरूप हुआ महावीर बभ्रुवाहन का मणिपुर की पवित्र धरती पर अवतार ! और तब पुत्र-विहीन चित्रवाहन ने अर्जुन को मूल्य दे कर बभ्रुवाहन को अपने उत्तराधिकारी के रूप मे खरीद लिया। और तब 'निङथउ चा' वंश का नाम बदल कर 'अमोङ-निङथउ' हो गया, अर्थात् चन्द्रवंश। और तब राज-चिह्न का रग भी बदल कर श्वेत हो गया। क्योंकि चन्द्रमा का रंग हमेशा श्वेत होता है। वर्तमान मणिपुर-नरेश इसी चन्द्रवंश के

थे। अपने को 'चन्द्रवंशी' माना और कहा करते थे।

इस तथ्य की याद आते ही उनकी नसों मे अपने पूर्वजो के बीरत्व एव गौरव का उबाल उठ खड़ा हुआ। वे बोलने लगे—"जिस चन्द्र-वश के बीरत्व एवं गौरव की गरिमा से महाभारत का पन्ना-पन्ना गौरवान्वित है; जिनकी बीरता आज भी भारतीयो की गौरवमय प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है; उसी पवित्र वश के एक वंशधर के विरुद्ध इन बेईमान कृतघ्नो की यह धृष्टता! विद्रोह का ऐसा पापपूर्ण दुःसाहस! मजा चखा दूँगा बेईमानों को! बता दूँगा कि मैं क्या हूँ, और वे क्या हैं!"—कहते-कहते उनके चेहरे पर वश-गौरव की लालिमा उभर आई। रगो में स्वाभिमान का रक्त और भी उत्तप्त हो उठा।

सकेत की घटी बजी। पास के कमरे से एक युवती 'मपी'[1] हाथ जोड़े आ उपस्थित हुई। नरेश का आदेश हुआ प्राइवेट सेक्रेटरी को बुलाने का। कुछ क्षण बाद अपनी धोती का कोचा ठीक करते, हड़-बड़ाये हुए सेक्रेटरी साहब बड़े विनीत भाव से उपस्थित हुए। अपने आसन पर मसनद के सहारे लेटे हुए नरेश, कुछ क्षण सेक्रेटरी को न देखने का नाट्य किये रहे। सोने और चाँदी से जड़े हुए हुक्के पर भरी हुई चिलम बहुमूल्य तबाकू की सुगन्ध वहाँ बिखेर रही थी। सारा कमरा मॅह-मॅह कर रहा था। सेक्रेटरी की विनयभरी सयत खखास पर पाइप पर से मुँह हटा कर रोबभरे स्वर में वे बोले—"गौरचन्द्र!! उन कृतघ्न विद्रोहियों के लिए दरबार ने क्या निश्चय किया?"

सेक्रेटरी ने हाथ जोड़ विनय-भरे स्वर में जवाब दिया—"निश्चय हो गया अन्नदाता!"

"निश्चय हो गया अन्नदाता!"—महाराजा ने मुँह बना कर उसकी नकल उतारते हुए फटकार-भरे स्वर में कहा—"अन्नदाता के बच्चे!

---

१. अन्तःपुर की दासी

क्या निश्चय हुआ सीधे ढंग से शीघ्र बताता क्यों नहीं ?"

"प्रेसीडेंट साहब ने उनके नेताओं को हथकड़ी लगा गिरफ्तार करने का 'आर्डर' दे दिया धर्मावतार !"

"केवल गिरफ्तार करने का ही ?"—कहते हुए वे एकाएक सीधे हो बैठ गये। बोले—"प्रेसीडेंट के बच्चे! उन्हें कोड़े नहीं लगवाये? केवल गिरफ्तारी से क्या होता है? हथकड़ी से क्या होता है?"

"'पबलिक' पर 'लाठी-चार्ज' भी हुआ है अन्नदाता! स्वयं 'डी० एस० पी०' साहब मौके पर मौजूद थे धर्मावतार !"

"हूँ !"—मानो नरेश ने खुशी और संतोष की एक साँस ले कर सेक्रेटरी को विदा करते हुए कहा—"जा 'डी० एस० पी०' से कह दे! मै उसपर खूब, खूब प्रसन्न हूँ! पुरस्कार दिया जायेगा!"

सेक्रेटरी भी आश्वस्त एव खुश हो, विनय से सिर झुकाये, हाथ जोड़े, पीछे की ओर बगैर मुड़े कदम हटाते वहाँ से विदा हो गया।

× × ×

मिस्टर हौगसन मणिपुर में अंग्रेजी राज के राजनीतिक प्रतिनिधि (पोलिटिकल एजेंट) थे, और मि० राबर्टसन मणिपुर-स्टेट-दरबार के प्रेसीडेंट। दोनों ही 'आई० सी० एस०' थे। दोनों ही वहाँ ब्रिटिश स्वार्थ के सरक्षक थे। न्याय और शासन-व्यवस्था सीधे दरबार के अधीन थी, एव राजनीतिक प्रतिनिधि वहाँ उन सभी गति-विधियो पर नजर रखा करता जिनसे ब्रिटिश साम्राज्य के स्वार्थ एवं सुरक्षा पर प्रभाव पड़ने की सभावना या अनिवार्यता थी। मणिपुरी जनता के इस नये आन्दोलन से जहाँ मणिपुर-नरेश के मन में खलबली पैदा हो चली, क्रोध और विक्षोभ की प्रचंड ज्वाला जल उठी, वहाँ अंग्रेजी साम्राज्य के इन प्रतिनिधियों का मन भी अशान्त हुए विना न रह सका। क्योंकि किसी राजकीय अन्याय के प्रति वहाँ जनता का वैसा विशाल जुलूस, वैसा विराट् प्रदर्शन उन्हें कभी दिखाई नहीं दिया था। मणिपुरी

जनता के धार्मिक व सामाजिक जुलूस उन्होंने अनेक बार देखे थे, पर उनमे सिवा श्रद्धा, उल्लास और आनन्द के प्रदर्शन के और कुछ न होता। किन्तु इस जुलूस मे तो अन्याय से पिसी जनता के सम्मिलित क्रोध और विक्षोभ का बड़ा व्यापक और विशाल प्रदर्शन था! जनता निःशस्त्र थी, पर उनके हृदय निःशस्त्र न थे। निःशस्त्र जनता भी सघबद्ध हो किसी शक्तिशाली सरकार को भी किस प्रकार हिला सकती है, कितना परेशान कर सकती है, इस तथ्य से वे परिचित थे। स्वयं भारतीय कांग्रेस का सघबद्ध संघटित आन्दोलन ही इस तथ्य मे प्रमाण बन चुका था।

मि० राबर्टसन इस नयी परिस्थिति से निबटने के उपायों पर विचार-विमर्श के निमित्त मि० हौगसन के बॅगले पर पहुॅचे थे। समान उद्देश्य से मणिपुर-राज्य मे नियुक्त इन दो अग्रेज अफसरों की प्रकृति मे किन्तु समानता न थी। मि० राबर्टसन राज-काज की समस्याओ को मानवीय दृष्टि से देखने, विचारने व समाधान करने के पक्ष मे थे। किन्तु मि० हौगसन अनुदार राजनीतिक दृष्टिकोण के थे। एव ब्रिटिश स्वार्थ के समक्ष किसी भी अन्य दृष्टिकोण को महत्त्व न दिया करते। अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्यवाद का राजनीतिक स्वार्थ ही उन्हे सभी स्वार्थों से भव्य और महान दिखाई दिया करता।

मि० राबर्टसन उनसे कह रहे थे—"मुझे तो ब्रह्म-सभा के श्राद्ध-कर-कानून में मानवीय क्षुद्रता और ओछेपन के सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता मि० हौगसन! अफसोस कि मेरी नियुक्ति यहाॅ इस कानून के बन जाने के बहुत बाद हुई! नहीं तो मैं इस जगली कानून को किसी भी हालत में पास न होने देता!"

मि० हौगसन तनिक व्यंग और वितृष्णा की हॅसी हॅस कर बोले—"लेकिन एक जगली 'नेटिव स्टेट' से आप किस अच्छे कानून की उम्मीद रखते हैं मि० राबर्टसन?"

राबर्टसन को यह जवाब अच्छा न लगा। लेकिन अपनी अरुचि दबाते हुए व्यंग-भरे शान्त स्वर में वे बोले—"यह जंगलीपन लेकिन किसी 'नेटिव स्टेट' की ही विशेषता नहीं है मि० हौगसन! बल्कि 'डेमोक्रेसी' (लोकतंत्र) की जन्मभूमि इंगलैंड में भी जब सामन्तों का जोर था, तो इससे भी अधिक जगली कानून बना करते थे वहाँ!"

मि० हौगसन इस जवाब से अप्रतिभ हो उठे। लेकिन अपनेको सम्हालते हुए बोले—"लेकिन आधुनिक इंगलैंड से तो कोई ऐसे कानून की उम्मीद नहीं कर सकता?"

मि० राबर्टसन प्रसन्न हो अपने पक्ष का औचित्य सिद्ध करते हुए बोले—"ठीक है! और उसी प्रकार मणिपुर में भी सामन्तवाद की समाप्ति के बाद जब 'डेमोक्रेसी' का जन्म होगा तो ऐसे जंगली कानून बनाने का न कोई साहस कर सकेगा, न आशा ही?"

मि० हौगसन इस जवाब से और भी अप्रतिभ हो कुछ क्षण राबर्टसन के चेहरे को सन्देहभरी आँखों से देखते रहे। मुँह के कोने मे लगे हुए 'सिगार' को सम्हालते हुए बोले—"तो आप यहाँ भी 'डेमोक्रेसी' की कभी उम्मीद रखते हैं मि० राबर्टसन?"

मि० राबर्टसन दृढ़ आस्था-भरे स्वर में बोले—"क्यों नहीं! 'डेमोक्रेसी' कोई इगलैंड या अन्य यूरोपीय देशों की ही तो बपौती या विशेषता नहीं? जिस प्रकार किसी बुरी चीज को अपनाना भी मानवमात्र का स्वभाव और अधिकार है, उसी प्रकार हर अच्छी चीज पर भी मानवमात्र का स्वाभाविक अधिकार है! वह मानवमात्र की बपौती भी है!"

समुचित जवाब पास न होने पर हौगसन तनिक हँसे। फिर व्यंग-भरे स्वर में बोले—"आप 'कौस्मोपोलिटन' हैं मि० राबर्टसन! लेकिन यह 'कौस्मोपोलिटनिज़्म' (विश्व-बन्धुता) भारत में हमारी ब्रिटिश नीति के अनुकूल नहीं बैठती इसे आप बखूबी जानते हैं! क्योंकि आन

'इंडियन सिविल सर्विस' (आई० सी० एस०) के एक समझदार और बफादार सदस्य हैं !"

"मैं इसे बखूबी जानता और समझता हूँ मि० हौगसन ! मुझे दुख भी है कि अपने साम्राज्य में 'कौस्मोपोलिटनिज्म' की उदारता हममे है क्यो नहीं? मुझे पूरा विश्वास है, यदि यह उदारता हममें होती और उसे कार्य रूप में परिणत किया जाता तो सारे भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध उठा हुआ असन्तोष आज एक व्यापक आन्दोलन का रूप नहीं ले पाता ! यह आन्दोलन इतना नहीं बढ पाता !"

मि० हौगसन मुँह के 'सिगार' को पुनः व्यवस्थित करते हुए व्यग-भरे स्वर में बोले—" 'कौस्मोपोलिटनिज्म' भी एक महज 'उटोपिया' (हवाई कल्पना) के सिवा और कुछ नहीं ! जीवन के यथार्थ के साथ उसका मेल नहीं !"

"यह महज आपकी राय हो सकती है, और आप जैसे अनेक लोगो की भी ! लेकिन मै इसे मानने को कतई तैयार नही कि किसी सुन्दर उदार विचार का जीवन के यथार्थ के साथ मेल नही बैठ सकता !"

"लेकिन आपको यह भी तो सोचना चाहिए कि सारी ब्रिटिश जाति स्वभाव से ही इस महत्त्वाकांक्षाहीन अकर्मण्य आदर्श और विचार के विरुद्ध है ? अन्यथा ब्रिटिश जाति सारे विश्व मे ऐसे अभूतपूर्व विशाल साम्राज्य का निर्माण न कर पाती ? अपने गौरव की पताका को सारे विश्व में फहरा न पाती ? वह सारे विश्व के समुद्रों की उत्ताल तरगों पर शानदार शासन स्थापित न कर पाती ?"

"लेकिन इस ऐतिहासिक तथ्य पर आप क्यों नहीं विचार करते मि० हौगसन, कि राजा चार्ल्स के समय या उससे पहले ब्रिटेन में भी 'डेमोक्रेसी' की स्थापना का विचार वहाँ के सामन्तो की दृष्टि में महज एक 'उटोपिया' के सिवा और कुछ न था ? लेकिन दृढ़ विश्वास

के साथ जब ब्रिटिश जनता उसके लिए संघर्ष में जुट पड़ी, तो 'पार्लमेंटरी डेमोक्रेसी' के प्रथम जन्मदाता होने का गर्व भी उसे प्राप्त हो गया !"

मि० हौगसन इस उत्तर से निरुत्तर हो कर भी अपनी जातीय कट्टरता के गर्व से गर्वान्वित हुए बिना न रहे। उनके लाल-लाल दूधिया चेहरे पर जरा और भी लाली उभर आई। यह उनके लिए कम गौरव का विषय न था कि 'पार्लमेंटरी डेमोक्रेसी' (ससदीय लोकतन्त्र) का प्रथम जन्मदाता भी ब्रिटेन ही है ! लेकिन इस बहस को टालने के ख्याल से वे प्रस्तुत विषय को ले कर बोले—"आपके विचार की मैं कद्र करता हूँ मि० राबर्टसन ! लेकिन अभी हमें सोचना तो है मणिपुर के इस नये उठे आन्दोलन के सम्बन्ध में ! गौरवशील अंग्रेज जाति में उत्पन्न होने के नाते, अपने ब्रिटिश ताज के बफादार सेवक होने के नाते इस बवडर के भावी दुष्परिणामों की ओर से हम उदासीन तो नहीं रह सकते ?"

"और इसीलिए तो मैं दौड़ा हुआ आपके पास पहुँचा हूँ मि० हौगसन !"

"यह तो हर कर्तव्य-परायण ब्रिटिश नागरिक का स्वभाव है मि० राबर्टसन ! आपकी कर्तव्यपरायणता की मैं बहुत, बहुत कद्र करता हूँ !" कहते-कहते अब अपने सोफे पर बिलकुल सीधे हो वे बैठ गये। अधबाँही कमीज पर जहाँ-तहाँ बिखरी 'सिगार' की राख को एक बार झाड़ कर फिर वे शान्त और गभीर स्वर में बोले—"लेकिन अब हमें सोचना यह चाहिए कि इस आन्दोलन का हमारे ब्रिटिश स्वार्थ पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्या असर पड़ता है ! हमें वर्तमान और भविष्य दोनों देखने पड़ेंगे। उन आन्दोलन-कारियों के साथ नरमी का बरताव अथवा उनकी माँगों को दरबार द्वारा तुरन्त मान लेने का तात्कालिक परिणाम क्या होता है ? और भावी परिणाम क्या होगा ?"

फिर मि० राबर्टसन की ओर 'सिगार-केस' बढ़ाते हुए—"क्यों, क्या राय है आपकी ?"

इस बार मि० हौगसन से सहमति जताते हुए मि० राबर्टसन ने कहा—"सोचना ही चाहिए ! लेकिन साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि महाराजा में समझदारी की मात्रा बहुत कम है ! बहुत कम ! अन्यथा यह स्थिति ही यहाँ पैदा न होती !"

मि० हौगसन खिल-खिला कर हँस पडे । बोले—"यदि समझदारी की मात्रा अधिक होती तो मणिपुर की राजगद्दी के उचित उत्तराधिकारी के बजाय हम इसे क्यों गद्दी पर बैठाते ? देशी रियासतो के किस राजा को आप मणिपुर-महाराजा से अधिक समझदार समझ रहे हैं मि० राबर्टसन ?"

"लेकिन श्राद्ध-कर जैसा बेहूदा कानून तो किसी अन्य रियासत ने नहीं बनाया ?"

"सो तो हमारे द्वारा बनाये गये अनेक अच्छे कानून भी भारत के तथाकथित देशभक्तों की नज़रों मे बेहूदा ही साबित होते हैं ! और उन्हें बेहूदा करार दे कर वे हमारे विरुद्ध जाने कितने आन्दोलन चालू कर चुके हैं और आगे भी चालू करेंगे ही ! लेकिन इन बातो के विस्तार में न जा कर हमें सिर्फ सोचना यह है कि इस आन्दोलन को शुरू में ही किस तरह खत्म किया जाय ! इसे इस प्रकार कुचल दिया जाय कि भविष्य में किसी को साहस न हो फिर सिर उठाने का ! ऐसी परिस्थिति पैदा करने का !"

"तो आप इस आन्दोलन को कुचल देने के ही पक्ष में हैं ?"

"जरूर !"—अपने सिगार को नये सिरे से सुलगाते हुए मि० हौगसन दृढ़ स्वर में बोले—"शत्रु को उसकी शक्ति और प्रभाव बढ़ाने देने से पहले ही कुचल देना राजनीतिक बुद्धिमानी है मि० राबर्टसन !"

"लेकिन हम जनता को शत्रु क्यों मानें जब कि उसने हमारे

खिलाफ यह आन्दोलन खड़ा नहीं किया? यह आन्दोलन तो सिर्फ ब्रह्म-सभा द्वारा बनाये एक बेहूदे कानून के खिलाफ है?"

"आप तो फिर 'कौस्मोपोलिटन' बन गये!'—हौगसन ने मुसकाते हुए व्यंग कसा—"व्यक्तिगत रूप से हम अपनी-अपनी राय रखने में स्वतंत्र अवश्य हैं, लेकिन जहाँ ब्रिटिश साम्राज्य के स्वार्थ पर, उसकी सुरक्षा पर आघात पड़ने की सम्भावना या आशंका हो तो वहाँ हम सभी अंग्रेज हैं! परम स्वाभिमानी देशभक्त अंग्रेज़! यदि आप जैसा समझदार भी इसे महज एक बेहूदे कानून के विरुद्ध विद्रोह मान रहा है, तो मुझे अंग्रेज होने के नाते कम दुःख नहीं है मि० राबर्टसन! यह तो एक बहुत बड़े आन्दोलन की भूमिका है! केवल भूमिका! यदि हम अभी से सचेत न हो जायँ तो यही आन्दोलन आगे चल कर मणिपुर से अंग्रेजों को भगाने के आन्दोलन का भी रूप ग्रहण करेगा! यह भी भारत के विशाल राजनीतिक आन्दोलन का पूरक बन जायगा!"

"इसीलिए तो और भी अधिक समझदारी की जरूरत है मि० हौगसन, कि व्यर्थ में जनता के विक्षोभ को बढ़ा कर इसे भारत में चल रहे राजनीतिक अन्दोलन का पूरक न बनने दिया जाय! जहाँ तक हो नरम नीति को ही अपनाया जाय! और जहाँ नरमी से काम चल जाय वहाँ गरमी दिखाना राजनीतिक और व्यावहारिक दृष्टि से महज़ नासमझी होगी मि० हौगसन!"

मि० हौगसन क्षणभर अप्रतिभ रहे। लेकिन क्षणभर बाद ही खूब जोर दे कर बोले—"शासक के लिए नरमी बहुत बड़ी कमजोरी है मि० राबर्टसन! हमारी नरमी को ये मूर्ख 'नेटिव' हमारी महज कमजोरी समझेंगे! और हमें कमजोर समझ कर फिर शेर बन कर और भी दहाड़ना शुरू कर देंगे!"

"तो उस हालत में हम इस नकली शेर की ताकत को मिनटों में

कुचल देंगे !"—मि० राबर्टसन विश्वास-भरे स्वर में मुसकाते हुए बोले—"हम उसे अधिक दहाड़ने का मौका न देंगे ! लेकिन साथ ही हमे यह भी दिखा देना चाहिये कि हम अंग्रेज इन देशी-नरेशों से कही अधिक उदार हैं ! इस प्रकार हमारी न्याय-बुद्धि मे जनता की आस्था दृढ़ होगी; विश्वास मजबूत होगा ! और तब हमारी स्थिति कमजोर पड़ने के बजाय और भी मजबूत बनेगी मि० हौगसन !"

हौगसन को लगा कि राबर्टसन उनसे कहीं अधिक चतुर और समझदार हैं। कही अधिक सुदक्ष कूटनीतिज्ञ ! अतः उन्हें हथियार डालने में अब कोई आपत्ति न हुई। वे चुप रहे।

मि० राबर्टसन उन्हें चुप हुए देख फिर बोले—"यह मै बखूबी जानता हूँ कि महाराजा हमारा बना-बनाया है। हमारे हाथो का निरा कठपुतला ! लेकिन है आखिर हमारा आदमी ! और अपने आदमी की गलती या बेवकूफी भी अपनी ही गलती या बेवकूफी होती है। यह मान कर ही हमें इस मामले को सुलझाने का प्रयास करना चाहिये ! व्यर्थ की अकड़ एवं हठ दिखा कर इस गलती के पेट से किसी अधिक अवाञ्छित और घातक स्थिति को पैदा हमे नही होने देना चाहिये !"

इस बार हौगसन ने पूरी तरह आत्म-समर्पण करते हुए मुसकराकर कहा—"खैर ! मै आपकी समझदारी का लोहा मानता हूँ मि० राबर्टसन ! लेकिन फिर भी हमे खूब सावधान रहना चाहिये ! होशियार रहना चाहिये !"

"हम दोनों की सतर्कता स्थिति को बिगड़ने न देगी, यह मेरा दृढ विश्वास है मि० हौगसन ! किसी भी खतरनाक मोड़ के पैदा होते ही हम फिर सलाह करेंगे। लेकिन अभी मेरी राय है नरम नीति के पक्ष मे। और आन्दोलनकारियों पर लाठी-चार्ज करा कर कुछ गरमी का परिचय दिया ही जा चुका है ! अब और अधिक परेशान होने की जरूरत नहीं है।"

" 'ओ. के.' (एवमस्तु)"—कहते हुए मि० हौगसन ने निश्चिन्तता प्रकट की।

मि० राबर्टसन उनसे विदा ले कार पर सवार हो अपने बँगले पर वापस आ गये।

(१५)

अपने साथियों-सहित चन्द्रावत के जल में नजरबन्द किये जाने के बाद माँ की मनोदशा ठीक न रही। सारा जीवन ही संघर्ष में व्यतीत हुआ था। अपने एक मात्र पुत्र की शिक्षा पर, भरण-पोषण पर, अपनी सारी शक्ति और श्रम को उन्होंने इस आशा से खर्च कर दिया था कि पुत्र का जीवन सुखी बने। सम्पन्न बने। यह आशा आखिर साकार हो सामने आयी भी, किन्तु पूरी तरह पुष्पित और फलित होने से पहले ही आशा की वह लता एकाएक मुरझा चली! विनष्ट हो चली! अपने निज के भरण-पोषण के लिए उन्हें कोई चिन्ता न थी। वे अब भी अपने पुत्र की कमाई का एक पैसा भी अपने पर खरचने को तैयार न थीं। लेकिन पुत्र के सुख में ही अपने जीवन का समस्त सुख और सौभाग्य समझने वाली इस माँ का हृदय अब व्यथा से बेचैन हो उठा! अधीर हो उठा! चन्द्रावत के पागलपन को वे मन-ही-मन कोस रही थीं। पं० कृष्णमाधव के प्रति वितृष्णा की लहर उनकी रगों में दौड़ रही थी।

वे व्यथा-भरे दिल से सोच रही थीं—"तो क्या चाँदा का जीवन बरबाद हो ही गया? मेरे जीवन की सारी तपस्या निष्फल ही रह गई? क्या राजकुमारी 'मुक्ता' पुत्रवधू के रूप में इस निर्धन की कुटिया को अब उजाला न करेगी? क्या वह राजा से माफी माँग कर फिर से हाकिम नहीं बन सकता? क्या वह जीवन भर अब फकीर बन

कर ही रहेगा ?"—सोचते-सोचते उनकी आँखे व्यथा के आँसुओं से भर उठा।

अब उन्हें अपने चाँदा का हठी स्वभाव भी याद आ गया। आखिर वह है तो उन्हीं का पुत्र जिन्होने गरीबी की क्रूरता से जीवन भर जूझते हुए भी कभी सिर नीचा नहीं किया ! फिर यह कैसे सभव है कि फिर से हाकिम बनने के लोभ मे वह राजा से माफी माँग लेगा ? सारी जनता और महाराजा के आगे अपना सिर नीचा कर लेगा ?"—यह सोचते ही उनकी व्यथा सहसा साहस और स्वाभिमान में बदल कर अचानक बोल उठी—"नहीं नहीं ! ऐसा मै कभी होने न दूँगी ! मै जीते-जी अपने चाँदा का सिर नीचा होने न दूँगी ! पुत्र आखिर माँ का ही तो अंश होता है ! चाँदा का सिर नीचा होना क्या मेरा ही सिर नीचा होना नहीं है ? फिर मै किस दिल से बड़े गर्व से सोचूँगी—'मैं चाँदा की माँ हूँ !' नही नही ! मै ऐसा नहीं होने दूँगी ! नही होने दूँगी !!"

लेकिन फिर भी उनके हृदय की व्यथा दूर न हो सकी। स्वाभिमान और साहस की तरगें भी उस व्यथा को डुबो न सकीं। उन्होने गरीबी की क्रूरता को स्वाभिमान के साथ बर्दाश्त अवश्य किया था, किन्तु उस क्रूरता के आघात ने समय-समय पर उनके हृदय मे व्यथा की भी कम सृष्टि न की थी। गरीबी कितनी क्रूर और कड़वी होती है, इसे जीवन भर उन्होंने महसूस किया था। तो क्या, उनका चाँदा भी जीवन भर उन्हीं क्रूरताओं और कटुताओ का शिकार बना रहेगा ? यह सोचते ही पुनः उनका वत्सल हृदय व्यथा से भर आया। दर्द के आँसू आँखों मे उमड़ आये। किस माँ का हृदय अपनी एकमात्र सन्तान के जीवन की क्रूर कटु संभावनाओं से विचलित नही हो उठता ?

लेकिन फिर भी वे सोचने लगीं—"चाँदा आखिर अपने लिए तो फकीर बना नहीं ? अपने लिए तो वह जोगी बना नहीं ? तोम्पोक जैसे अनेक गरीब मृतकों के उद्धार के लिए ही तो उसने अपने जीवन के

सुख को लात मार दी है ? उन सबकी आत्मा की सद्गति और नरक से उद्धार के लिए ही तो वह जोगी बना है ?"—यह सोचते ही उनके हृदय में गरीब तोम्गोक की उस दुखिया माँ का चित्र उभर आया । और सहसा मानो सभी गरीब मृतकों की माँ बन कर वे बोल उठीं—"चाँदा, तूने बुरा नहीं किया बेटा ! तूने वही किया बेटा, जो हर दयावान आदमी को करना चाहिए था ! कितना पुण्य होगा तुझे ! प्रेत-योनि के नरक में पड़े उन सभी अभागों की आत्माएँ तुझे कितना असीस रही होंगी बेटा ! वे भगवान से तेरे सुख-कल्याण की अभी कितनी मनौतियाँ मान रही होंगी ! नहीं नहीं ! तेरा जीवन बरबाद नहीं होगा चाँदा ! कभी नहीं !! उन दुखियों की असीसें कभी निष्फल न होंगी बेटा !"—सोचते-सोचते मानो एकाएक उनका परम आस्तिक हृदय अपने पुत्र के सौभाग्य की आशा से आश्वस्त हो उठा ! उत्फुल्ल हो उठा !

इस आशा और उत्फुल्लता की तरगों में व्यथा का बोझ सहसा बह चला । लेकिन पुनः कुछ क्षण बाद व्यथा का वह बोझ उन तरगों से टकरा-टकरा कर उनके मन के किनारे आ ही लगा । वे व्यथा-भरे दिल से फिर सोचने लगीं—"मगर 'मुक्ता' जैसी बहू तो मैं फिर न पा सकूँगी ! अहा ! कैसी शीलवन्त ! कैसी रूपमन्त ! राजा से शत्रुता करके कैसे मेरा चाँदा इस राजकुमारी को फिर पा सकेगा ? उसका पति कभी बन सकेगा ? हाय ! हाय मेरे चाँदा का जीवन···!"

लेकिन इतने में तोम्बी सना वहाँ आ पहुँची । मीठी फटकार के स्वर में वह बोली—"चाची, क्या तुम इसी तरह सोच में गल-गल कर मरोगी ? दादा जब जेल से छूट कर आयेंगे तो कौन उनकी देख-भाल करेगी ? कौन उन्हें माँ के लाड़-प्यार से बना कर खिलायेगी ? पिलायेगी ? अपने लिए न सही, दादा के लिए तो जियो चाची ! मैं देख रही हूँ, चार दिन से तुमने अन्न-पानी त्याग रखा है ! सोचो तो, जब दादा को मालूम होगा वे कितना दुख मनायेंगे !"—कहते-कहते

स्वयं तोम्बी के नेत्र सजल हो उठे।

झट आँखे पोछ वह अतिशय प्यार और अनुरोध-भरे स्वर मे बोली—"मै भात बना रही हूँ चाची! आज भी खाने से इनकार करोगी तो मै दादा की शपथ खा कर कहती हूँ, मै भी अन्न-पानी त्याग कर तुम्हारी ही तरह मरूँगी!"—कह कर वह झट रसोई-घर में जा कर चूल्हा सुलगाने लग पड़ी।

माँ की आँखें भी आँसुओ से तर हो उठीं। आँखें पोछते हुए वे भी तोम्बी के पीछे-पीछे रसोई-घर मे जा पहुँचीं। बोलीं—"छोड़ तू, मै खुद बना लूँगी! मुट्ठी भर भात पकाने मे मेहनत क्या भला?" फिर उसके निकट बैठ कर उसके अश्रुविगलित चेहरे को स्नेहभरी चितवन से निहार कर प्यार-भरे स्वर मे बोलीं—"मुझे तो भूख सहने की आदत वर्षों से पड चुकी है बेटी! मगर सुना है कि तू भी आज कई दिनो से खाती-पीती नहीं है? इसी से बड़ी दुबली हो चली है!"

माँ की ओर बगैर ताके ही आँच फूँकते हुए जवाब मे तोम्बी सना बोली—"कहाँ! कहाँ दुबली हो चली हूँ चाची! किसी ने झूठ कहा तुमसे! दिन मे दो-दो बार तो थाली भरके खाती हूँ!"—कहते-कहते उसने चेहरे पर कृत्रिम मुसकान भर कर माँ को देखा।

लेकिन माँ को विश्वास नही हुआ। वे अनुरोध-भरे स्वर मे बोलीं—"तू झूठ बोलती है! अपने लिए भी आज यहीं बना! तेरे साथ मैं भी एक मुट्ठी खा लूँगी।"

इतना कह कर उन्होंने स्वय चावल निकाल कर तोम्बी के हवाले किया। स्वयं वहाँ बैठी-बैठी स्नेह-भरी आँखों से उसे देखती मन-ही-मन सोचने लगीं—"शैलेन जब जेल से छूट कर आयेगा, बताऊँगी कि तोम्बी ने तेरे ही लिए अन्न-पानी त्याग दिया था। सुन कर कितना खुश होगा! मगर वह मेरी बोली जो नहीं समझता! कितनी लालसा होती है उससे जी भर कर बातें करने की! मगर मूरख, इतने दिन मणिपुर में रह कर

भी यहाँ की बोली अभी नहीं सीख सका ! इस बार आयेगा तो चॉदा से जोर दे कर कहूँगी, उसे मणिपुर की बोली जल्दी सिखा दे !"

उनके मन की व्यथा अब बहुत कुछ हलकी हो चली। मन-ही-मन फिर बोली—"कैसे लोग हैं दुनिया के ! शैलेन बगाली है तो क्या ? तो क्या इसीलिए ऐसे अच्छे लड़के को लड़की न दी जाय ? कितना मीठा स्वभाव है लड़के का ! उसके मुँह से 'इमॉ, इमॉ' यह शब्द सुनते कितना मीठा लगता है ! बच्चे के मॉ नहीं, बाप नहीं ! जेल में चला गया ! आज मॉ होती ता कितना रोती ! कितना पीटती उसके लिए !"—कहते-कहते उनकी आँखों से कई बूँदें लुढ़क पड़ीं।

चूल्हे पर भात का अदहन अब खौलने लगा था। तोम्बी झट बाड़ी से 'हवाई अमूबी'[1] की कुछ फलियाँ तोड़ ले आई। आलू काट कर मिला दिया। भात बन जाने पर सरसों के तेल की छौंक और मसाले के योग से तरकारी की सुगन्ध भी कोने-कोने में मँहक उठी। सन्दूक से भूने माछ के दो टुकड़े भी निकाल कर उसमे डाल दिये। झोल के लिए जरा जल भी डाल दिया। मॉ मना करती ही रहीं—"मैं तो नमक के साथ ही भात खा लूँगी ! मेरे लिए तरकारी की जरूरत क्या ? अपने लिए बना केवल !"

लेकिन तोम्बी क्यों कर तैयार होती मानने के लिए ! वह तो यह सोचने मे भी असमर्थ थी कि सिर्फ नमक के साथ कैसे भात खाया जा सकता है ! खाया जाता है !

अब तोम्बी तरकारी बनाने में लगी थी, और मॉ उसके चेहरे को निहारती जा रही थीं। उनके हृदय में वात्सल्य का माधुर्य रह-रह कर उमड़ रहा था। कुछ देर पहले की व्यथा की कटुता मानो इस माधुर्य में विलीन हो चुकी थी।

---

१. एक प्रकार का मटर।

अब तनिक मुसकाते हुए वे तोम्बी से बोलीं—"जब शैलेन जेल से छूट कर आयेगा तो कहूँगी—'तोम्बी तेरे लिए कितना दुख मना रही थी! कितनी व्याकुल हो पड़ी थी!'"

और तोम्बी झट लज्जा से लाल हो कर प्रतिषेध के स्वर मे बोली—"तुम्हे मेरी शपथ चाची, अगर तुम किसीसे भी ऐसा कहो!" फिर झट गरदन नीची कर मन का भाव छिपाते हुए तनिक शान्त व धीमे स्वर मे—"तुम्हारा शैलेन मेरा होता ही कौन है, जिसके लिए मै दुख मनाऊँगी? व्याकुल हो पड़ूँगी? हाँ, दादा और तुम्हारे लिए दुख जरूर है!"—इतना कह कर अपने मन का भाव छिपाने की चेष्टा करके भी वह छिपा न सकी। सकोच के बोझ से गरदन नीची किये वह काम मे लगी रही। लेकिन मन का अन्तर्यामी मन-ही-मन बोल ही उठा—"तुम जरूर कहना चाची! उस बगाली को बता देना कि तोम्बी उससे घृणा नहीं करती! बल्कि अपने हृदय के मन्दिर मे उसे दिन-रात बैठाये उसपर प्यार की आरती उतारा करती है! तोम्बी के पिता भले ही उससे घृणा करें, लेकिन तोम्बी तो उसे कब की अपना मान चुकी है! उसपर हृदय न्योछावर कर चुकी है! वह किसी भी तरह की गलतफहमी अब न रखे! गलतफहमी मे पड़ कर अपनी तोम्बी के जीवन से खिलवाड़ न करे!"

माँ, मानो उसके मन का भाव ताड़ कर फिर प्यार-भरे स्वर में बोली—"लजाने की जरूरत क्या बेटी? मुझसे तो अब कुछ छिपा है नहीं बिटिया!...यह तो भगवान की सृष्टि की लीला है! एक दिन सबके मन का हाल ऐसा ही होता है! स्वयं भगवान को भी इस माया से लिपटना पड़ता है! क्या गौरी ने शकर को पाने के लिए कठिन तप नहीं किया? उनके लिए दिन-रात दुख नहीं मनाया? आँसू नही बहाये? क्या राधा ने कृष्ण के विरह मे दुख नहीं मनाया? उनके विरह-वियोग में वृन्दावन की कुज-गलियों में वह पागल की भाँति

भटकती नहीं फिरी ?"

माँ की ये बातें तोम्बी को कम मधुर नहीं लगीं। माधुर्य के आघात से उसका हृदय विचलित हो पड़ा। आँखों मे अचानक उभरे आँसुओं को छिपाती वह और भी गरदन नीची करके आँच फूँकने मे जबरन उलझ पड़ीं। फिर गरदन सीधी करके अपनी 'इनफी' की किनारी से आँखें पोंछती हुई वह बोली—"लकड़ी बड़ी गीली है चाची! धुआँ बहुत आ रहा है!"—कह कर वह झट रसोई-घर से निकल कर बाड़ी मे चली गई।

केले के निकुज के पीछे कुछ क्षण वह छिपी रही। पीठ-पीछे बाँस का घना निकुज होने के कारण वह औरों की आँखों से सुरक्षित रही। कुछ क्षण जी-भर रो लेने के बाद, फिर मन की व्यथा को चेहरे पर से छिपाने का प्रयत्न करती हुई वह रसोई-घर में आ पहुँची। इस बीच स्वय माँ रसोई मे लग चुकी थीं। रसोई बन कर तैयार भी हो चुकी थी। बल्कि अलग-अलग दो थालियों में परोसा भी लगाया जा चुका था। ठाकुरजी का प्रसाद बनाने के ख्याल से उनपर तुलसी के पत्त भी डाले जा चुके थे।

तोम्बी ने अपने विलंब की सफाई पेश नहीं की। उसने चुपचाप वह थाली अपने आगे कर ली, जिसमें भात नाममात्र को परोसा था। और तरकारी भी नाममात्र को थी। माँ हड़बड़ा कर उसे मना करती हुई बोलीं—"ना ना! वह थाली तो मेरे लिए है बेटी! तेरे लिए तो यह है! तू इसे ले, इसे!"—यह कहते हुए बड़ी थाली उसकी ओर उन्होंने खिसका दी।

लेकिन तोम्बी क्योंकर स्वीकार करती भला! हड़बड़ा कर वह भी तनिक जोर से बोली—"तुम्हें मेरे सिर की शपथ चाची, जो तुम ऐसा पाप करो! नहीं चाची, नहीं! मैं तो घर से खा कर अभी आई थी! मैं तो केवल इस लिए मान गई ताकि तुम्हें कुछ खिला सकूँ!" फिर

एकाएक अत्यन्त लाड़-भरे स्वर मे—"चाची! मेरी अच्छी चाची! मान जाओ! दादा की आत्मा खुश होगी! मान जाओ चाची!"—कहती हुई जबरन उस थाली को उनके आगे रख कर स्वयं ग्रास बना कर उनके मुँह मे डालने को तैयार भी हो पड़ी।

चाची अगत्या हथियार डालते हुए उसे स्नेह से अलग करती हुई बोलीं—"अच्छा हट! मै क्या बच्ची हूँ जो तेरे हाथ से खाऊँ? मै खुद खा लूँगी। मगर इतना खाऊँगी कैसे? तू तो जवान है बिटिया! घर मे खाया भी होगा तो अब तक गल-पच कर पेट में बिला भी गया होगा!"—कह कर उन्होंने उस थाली से कुछ भात निकाल कर अपनी थाली मे डाल लिया और तोम्बी ने जबरन बहुत-सी तरकारी उनकी थाली मे डाल दी।

माँ मजबूर हो कर जरा-जरा खाने लगी और तोम्बी ने तर्जनी तान कर दृढ़ताभरे स्वर मे चुनौती दी—"तुम्हे पेट भर खिलाये बिना मै नही खाती, यह कहे देती हूँ चाची!"—कह कर उसने अपना हाथ थाली से अलग कर लिया।

माँ उसके हठ पर पसीज कर अपनी आँखों मे उभरे आँसुओ को 'इनफी' के छोर से पोछ कर मुसकराते हुए बोलीं—"मैं तो भगवान से मनाती हूँ बेटी, कि अगले जन्म मे मै तेरे ही पेट से पैदा होऊँ! शैलेन मेरा बाप बने, और तू मेरी माँ!"—कहते-कहते अश्रुपूरित नेत्रो से तनिक जोर से वे हँस भी पड़ीं।

और तोम्बी भी हँसी को दबा न सकी। फिर तर्जनी तान कर मुँह बनाती हुई वह बोली—"और मै इस बुढ़िया बेटी को खूब पीटूँगी, अगर खाने से वह जरा भी इनकार करे! क्यों, चाची?"

माँ फिर तनिक जोर से हँसकर बोलीं—"अरी, अपनी माँ के डर के मारे ही तो मैं अभी गपर-गपर खाये जा रही हूँ!" और फिर एकाएक जैसे बाल-हठ का अभिनय करते हुए खाने से हाथ बार कर

वे बोलीं—"तो ले ! अगर मेरी माँ नहीं खाती तो मै भी नहीं खाती !"

तोम्बी फिर जोर से हँसी। फिर हँसी को रोक कर वह स्वयं भी धीरे-धीरे खाने लगी।

खाते-खाते ही माँ पुनः मुसकाते हुए बोलीं—"जब शैलेन छूट कर आयेगा तो कहूँगी—'इबुडो, अब जल्दी अपना एक घर अलग बना ले ! और जल्दी-से-जल्दी तोम्बी का 'सुभद्रा-हरण' करके अपना घर बसा ले !"—इतना कह कर वे इस बार खूब जोर से हँसीं।

तोम्बी भी उठी हँसी को दबाये रहने का प्रयत्न करते-करते तनिक बिहँस पड़ी। लेकिन मारे लज्जा के उसकी कनपटी तक लाल हो उठी। झट आँखें नीची हो पड़ी।

माँ ने लक्ष्य किया। फिर वात्सल्यभरे स्वर में बोलीं—"शैलेन तो मेरा धर्म का पुत्र है बेटी ! उसमे और चाँदा में मै जरा भी भेद नहीं करती। मगर अफसोस केवल अब इसी बात का है कि 'मुक्ता' अब चाँदा को नही मिल सकेगी ! कितनी अच्छी लड़की है मुक्ता ! कितनी अच्छी जोड़ी रहती तुम दोनों की !"—कहते-कहते उनके स्वर मे पुनः गहरी व्यथा उभर आई।

"क्यों नहीं मिलेगी चाची ?"—तोम्बी ने प्रश्न किया।

"तू समझदार हो कर क्या इतना भी नहीं समझती कि चाँदा अब हाकिम नहीं रहा ? फिर राजघराने की लड़की कैसे एक गरीब की पत्नी बन सकेगी ? कैसे वह गरीब-घर की बहू बन सकेगी ?"

तोम्बी ने दृढ़ता से जवाब दिया—"खूब समझती हूँ चाची, कि ससार मे सब लोग धन-दौलत को पसन्द करते हैं ! और खास कर लड़की के माँ-बाप तो और ! मगर लड़कियाँ कुछ और भी पसन्द करती हैं जिसकी ओर माँ-बाप की आँखें जल्दी नहीं जा पातीं ! बहुत सारे लोग तो अपनी जवानी के दिनों में अपने दिलों की दशा को माँ-बाप बनते ही भूल जाते हैं ! माँ-बाप बनते ही अपनी सतान को निजी

संपत्ति समझ कर उसपर जबर्दस्ती अपने अधिकार का रोब डालने लगते हैं ! लेकिन खैर, ऐसी भी लड़कियाँ होती ही हैं जो अपने दिल के प्यार को धन-दौलत से कहीं अधिक कीमती मानती हैं चाची !"

"मगर क्या पता कि मुक्ता क्या पसन्द करती है ?"

"मै मुक्ता को खूब जानती हूँ चाची ! और इसी से विश्वास भी करती हूँ कि वह सिवा दादा के ससार की किसी भी वस्तु को अधिक कीमती नहीं मानती ! वह सिवा दादा के अन्य किसी के साथ विवाह कर ही नहीं सकती !"

"मगर उसके माँ-बाप ऐसा होने देंगे क्या ? स्वय महाराजा ऐसा होने देंगे क्या ?"

"मगर यह भी तो मणिपुर की ही कथा है चाची, कि किसी जमाने मे राजकुमारी 'थोइबी' के माता-पिता और उसके राजा चाचा भी तो गरीब 'खम्ब' से उसकी शादी मे बहुत बाधक थे ? मगर अन्त में सती थोइबी ने खम्ब से ही तो विवाह किया ? तो फिर आज के जमाने मे यह बात क्यों नहीं हो सकती चाची ?"

माँ मानो एकाएक अत्यन्त आशा और उत्साह से भर कर बोल उठीं—"तेरे मुँह में 'घी-शक्कर' बेटी ! अगर ऐसा हो जाय बेटी, तो चाँदा का जीवन बरबाद होने से बच जाय !" किन्तु फिर एकाएक जरा निराशा-भरे स्वर में—"मगर वह जमाना तो कुछ और था ! और अब जमाना कुछ और है बेटी !"

"चिन्ता न करो चाची ! भगवान की कृपा हो तो जमाने के बदलते जरा-भी देर नहीं लगती ! और दादा का जीवन भला क्यों बरबाद होगा ? उनके तो सिर्फ चाहने और इशारे भर की देर है ! सैकड़ों-लाखों में एक, ऐसी अनेक लड़कियाँ उनके पैरों पर न्योछावर होने को तैयार हो पड़ें ! क्या मेरे दादा कोई मामूली आदमी हैं ? आज किस मणिपुरी घर में उनके नाम की चर्चा नहीं हो रही चाची ?"—कहते-

कहते उसके चेहरे पर सचमुच गौरव की लाली उभर आई ।

और माँ भी तोम्बी सना की बात से प्रभावित हुए विना न रह सकीं । पुत्र-गौरव से उनका हृदय भी उच्छ्वसित हो पड़ा । पुत्र का भावी जीवन मानो गौरव और सौभाग्य के सौरभ को लिये हुए उनकी आँखों में उभर आया !

(१६)

मि० राबर्टसन ने कई बार महाराजा को समझाया, और इस आन्दोलन को लबा होने देने के भावी दुष्परिणामों से उन्हें सचेत भी किया, पर वे अडिग बने रहे । वे कैदियों को जल्द रिहा करने अथवा 'श्राद्ध-कर' की समाप्ति या उसमें कमी करने को कतई राजी न हो सके । लेकिन फिर भी उनका मन सकल्प-विकल्पों के बवंडर से अछूता न रह सका । वे स्वय बिलकुल नासमझ न थे, लेकिन फिर भी चापलूसों के बहकावे में आ कर अपने ही द्वारा उत्पन्न परिस्थिति के समक्ष झुकने को तैयार कतई न थे । अपने द्वारा रोपे और पोसे विष-वृक्ष को भी स्वय काट डालना कम कठिन नहीं होता । तिसपर इसमें उन्हें अपनी प्रतिष्ठा की हानि भी नजर आ रही थी ! राजत्व के गौरव और अह में बट्टा लगता दिखाई दे रहा था !

किन्तु फिर भी वे उदासीन न रह सके । कई दिनों से नींद मानो आँखों से रूठ चली । और जब-तब एक दूसरी बात सोच कर उनका हृदय व्यथा से विदीर्ण हो जाता । कृष्णमाधव और चन्द्रावत इन दोनों के लिए उन्होंने क्या नहीं किया ! कृष्णमाधव को उन्होंने अपने छोटे भाई के स्नेह से पाला-पोसा था, पढ़ा-लिखा कर विद्वान् बना राजपुरोहित के पद पर बैठाया था । और चन्द्रावत के लिए तो वे पिता बन चुके थे । किन्तु दोनों में से किसी ने भी उनके उपकार का जरा भी ख्याल न किया ! जरा भी ख्याल न रखा !

वे व्यथाभरे दिल से बोल रहे थे—"कृष्ण ! मेरे उपकारों पर न सही, मेरे स्नेह और वात्सल्य पर तो तनिक तुम विचार किये होते ! उचित तो यह था कि तुम मेरे शत्रुओ से मेरी रक्षा करते ! बचाव करते ! हर तरह से मेरा साथ देते ! किन्तु यह क्या ? क्या, मेरे स्नेहमय सरक्षण का यही तुम्हारा प्रतिदान है ? मेरे समस्त उपकारों की क्या यही सम्मान है ? मेरे हृदय की यह व्यथा यदि तुम तक पहुँच पाती कृष्ण ! यदि तुम इसे जरा भी महसूस कर पाते कृतघ्न !"—कहते-कहते उनकी आँखों में व्यथा के आँसू उमड़ आये।

आधी रात का समय था। रानियों मे से कोई भी इस समय उनके पास न थी। अतः अपनी आँखो से बहती आँसुओ की धारा को रोकने का प्रयत्न वे न कर सके। लेकिन साथ ही उनके स्मृति-पट पर इतिहास के ऐसे अनेक उदाहरण भी खिंच आये जिनके समक्ष यह घटना कोई घटना न थी। यह विश्वासघात कोई विश्वासघात न था। क्या सम्राट् शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरगजेब को अपने अनुपम पुत्र-स्नेह से पाला न था ? क्या दारा, शुजा और मुराद उसी शाहजहाँ से पैदा हुए न थे जिससे स्वयं औरगजेब पैदा हुआ था ? क्या प्रियदर्शी सम्राट् अशोक ने अपने सगे-सहोदरों का वध नहीं कराया था ? क्या कैकेयी ने अपने पुत्र के लिए राजगद्दी के लोभ मे राम को चौदह वर्ष के लिए वनवास नहीं दिलाया था ?

इस क्षण राजाओं और राजवशो की क्रूरता एव विश्वासघात से भरे ऐसे अनेक उदाहरण उपस्थित हो-हो कर उनसे प्रश्न करने लगे जिनके अनुसार गद्दी के लोभ मे जाने कितने पुत्रों ने कितने पिताओ के वात्सल्य और परिपोषण का जरा भी ख्याल न कर उनकी निर्मम हत्या कर डाली थी; उन्हें कारागार में सड़ा-सड़ा कर हर तरह की यातनाएँ भोगने पर मजबूर कर डाला था; और जाने कितने भ्राताओं ने अपने समान रक्त और भ्रातृत्व का रंचमात्र भी ख्याल न कर जाने कितने

भ्राताओं के रक्त की होली खेल डाली थी। स्वयं मणिपुर-राजवंश का इतिहास भी ऐसी क्रूर घटनाओं से अछूता न था।

अपनी आँखों में इतिहास के इस निर्मम सत्य का उद्घाटन होते ही कृष्णमाधव और चन्द्रावत के प्रति उनका सारा आक्रोश अब मन्द हो चला। वे तनिक तटस्थ भाव से सोचने लगे—"ये दोनों मेरी गद्दी के लोभी नहीं! इन दोनों से रक्त का भी कोई सम्बन्ध नहीं! वे तो केवल एक अन्याय के विरोध में उठ खड़े हुए हैं! और इस विरोध के लिए उन्हें कम बलिदान भी करना नहीं पड़ा है! जीवन की जिन सुख-सुविधाओं को हासिल करने के लिए मनुष्य सब कुछ करता है, तरह-तरह के छल और पाखंड रचता है, उन्हें बिलकुल कर-तल पा कर भी उन्होंने तृणवत् परित्याग कर दिया! अपने भविष्य का उन्होंने जरा भी ख़याल न किया!"

यह सोचते ही उनकी आँखों में उन दोनों का व्यक्तित्व जैसे अचानक आदरणीय बन कर चमक उठा। और तब ब्रह्म-सभा की करतूतों के सम्बन्ध में भी वे तटस्थ भाव से सोचने लगे—"भारत के किसी भी प्रदेश में, किसी भी रियासत में श्राद्ध-कर जैसा कानून नहीं है। ब्रह्म-सभा की प्रेरणा से, चापलूस पंडितों और सभासदों के प्रोत्साहन से, राज्य की आय बढ़ाने के विचार से इस कर की सृष्टि की गई। जो धनवान हैं, सम्पन्न हैं, वे श्राद्ध-कर्म में हजारों रुपये व्यय कर सकते हैं! उनके लिए तिरासी रुपये बारह आने तीन पाई की रकम कोई रकम नहीं! परन्तु जो लोग सारे जीवन में भी एक साथ इतनी रकम जुटा नहीं पाते, उन गरीबों के लिए तो सचमुच यह रकम बड़ा बोझ है! उनके लिए तो यह सचमुच बड़ा अन्याय है! बड़ा अन्धेर! तो, उन दोनों ने आखिर क्या बुरा किया यदि इस अन्याय-अन्धेर के विरोध में विद्रोह खड़ा कर दिया?"

कुछ देर के लिए वे सचमुच एक निष्पक्ष न्यायाधीश बन गये।

पूरे मनुष्य बन गये। अपनी नजरों में वे आप अपराधी बन कर प्रकट हुए। इस 'कर' को बिलकुल समाप्त कर देने अथवा इसमे कमी कर देने की राबर्टसन की सलाह उन्हें ठीक जॅचने लगी। पर वे फिर भी किसी निश्चय पर पहुँच न सके।

किन्तु सोचते-विचारते उनकी नजरों में समस्या का दूसरा पहलू भी प्रकट हुआ। वे सोचने लगे—"यदि श्राद्ध-कर को समाप्त कर दिया जाय, अथवा उसमें आंशिक कमी कर दी जाय, तो इसे मेरी उदारता के रूप में तो जनता ग्रहण करेगी नहीं! यह तो उलटे चन्द्रावत और कृष्णमाधव की शानदार विजय समझी जायेगी, और मेरी घोर पराजय! और तब उन दोनों के प्रभाव और सम्मान में वृद्धि होगी, और साथ ही मेरी प्रतिष्ठा और सम्मान में होगी कमी!"

यह सोचते ही वे निष्पक्ष न्यायाधीश या पूरे मानव बने न रह सके। स्वार्थ प्रबल हो उठा। राजत्व आगे आ गया। वे फिर सोचने लगे—"और तब वे दोनों बनेंगे जनता की आँखो के तारे और मैं बनूँगा उन आँखों का काँटा! और तब आँखों के काँटे को कोई क्यों बर्दाश्त करने लगा? मौका मिलते ही वे इस काँटे को निकाल फेकने का प्रयत्न करेंगे! इन दोनों का दुःसाहस दिनों दिन बढ़ता ही जायगा! जनता शोख हो चलेगी! राजा और शासन का दबदबा बिलकुल नष्ट हो जायगा! और तब यह शासन और सिंहासन कायम रह सकेगा किस सहारे? यह तो सर्वनाश का मार्ग है! कल्याण का कदापि नहीं! विना दमन और दबदबे के शासन और सिंहासन कभी कायम रह भी सका है? यदि यह बात न होती तो अंग्रेजो ने कांग्रेस के आन्दोलन को क्यों दबा दिया? उसके सिर उठाते ही वे क्यो बार-बार दमन पर उतर आते हैं? 'भय बिनु होइ न प्रीति' यह कथन निःसार तो नहीं?"

दमन और दबदबे का विचार उठते ही उनमें अब एक प्रकार का जोश आ गया। वे पलंग पर पड़े न रह सके। एकाएक पलंग से उठ

कर फरश पर बिछी कालीनों पर चहल-क़दमी वे करने लगे। क्रोध के जोश में आ कर जिस प्रकार फणधर नाग फुफकारने लगता है, उसी प्रकार वे बार-बार मुँह की सीटी भी बजाने लगे। किन्तु दासी उन्हें भयभीत आँखों से झाँक-झाँक कर चली जाती। रानियों में किसीको भी अभी कमरे मे प्रवेश का साहस नहीं हो पाता। क्योंकि पिछले कुछ दिनों से महाराजा की मनोदशा से वे खूब भयभीत हो चली थीं।

उनके मन मे रह-रह कर यह दृढ़ सकल्प ध्वनित होने लगा—"कृष्णमाधव और चन्द्रावत के उठे सिर कुचलने ही होंगे! सर्प के विषैले दाँत तोड़ने ही होंगे! परवाह नहीं उपाय कैसे भी हों; साम हो, दान हो, दंड हो, विभेद हो, अथवा इनसे भी कड़े और क्रूर! लेकिन शत्रु को दबाना तो होगा ही! शत्रु के विनाश के उपायों पर विचारना होगा ही! अब तो प्रश्न केवल श्राद्ध-कर की समाप्ति या उसमें कमी का नहीं, प्रश्न है स्वय मणिपुर की राज-सत्ता के अस्तित्व और विनाश का!"

इस निश्चय के दृढ़ होते ही वे पलग पर आ कर लेट गये। लेकिन बहुत कुछ निश्चिन्तता अनुभव करते हुए भी, और सो जाने की इच्छा रहते भी नींद उनके निकट न आ सकी। मानो वह भी भयभीत हो चली। किन्तु पलग पर पड़ने के कुछ देर बाद उनके मन में समस्या से निबटने के अनेक उपाय प्रकट होने लगे। वे फिर सोचने लगे—"क्या बुरा है यदि राबर्टसन की सलाह मान कर कैदियों को रिहा कर दिया जाय? लेकिन श्राद्ध-कर की कमी या उसकी समाप्ति के प्रश्न पर बिलकुल दृढ़ रहा जाय! साम, दान, दंड, भेद क्रमशः इन उपायों को अपनाया जाय! कृष्णमाधव को अपमानित स्थिति में यहाँ बुला कर पहले खूब उसकी खबर ली जाय!"

अब उनका मन अपेक्षाकृत अधिक आश्वस्त हो चला। शान्त हो चला। और संकेत पा कर दासी ने छोटी रानी को महाराजा के शयन-

कक्ष मे जाने की सूचना भी दे दी। रानी ने जल्दबाजी में पुनः श्रृंगार किया। आदमकद आइने के सामने खड़ी हो अपनी साज-सज्जा का बार-बार मुआयना किया। फिर धड़कते दिल से शयन-कक्ष मे प्रवेश किया।

(१७)

दूसरे दिन महाराजा के विशेष आदेश के अनुसार प० कृष्णमाधव को हथकड़ी-सहित राज-महल मे हाजिर किया गया। उस दशा मे महाराजा के सामने उपस्थित किया जाना कृष्णमाधवजी के लिए कम ग्लानि-जनक न था। जीवन की आज मानो कड़ी परीक्षा थी। इस रूप मे उन्हें हाजिर करने मे नरेश का विशेष मतलब था, यह उनसे छिपा न रह सका। नरेश ने आखिर उन्ही के उद्देश से उस दिन अतिशय क्रोधावेग मे कहा भी था—"मै तुझे तेरी जगह ला के छोड़ूँगा! मै तुझे बता दूँगा कि तू कौन है, और मै कौन हूँ!" सो, मानो अन्तःपुर की नारियो के समक्ष ही इस तथ्य को वे साबित कर देना चाहते थे। क्योंकि स्त्रियों के समक्ष अपने प्रतिद्वन्द्वी को अपमानित या पराजित करने मे मनुष्य को कम गौरव महसूस नही होता, और उसी मात्रा मे उसका पराजित और अपमानित प्रतिद्वन्द्वी भी ग्लानि और दुख महसूस करता है। अतः नरेश अपने सारे परिवार और महल के समस्त अनुजीवियो के समक्ष अपने एक कृतघ्न अनुजीवी को उसकी कृतघ्नता और उद्दंडता का दड देना चाह रहे थे। कृष्णमाधव जैसे व्यक्ति के लिए वैसी दशा में उन सबके सामने उपस्थित किया जाना किसी भी क्रूर दड से कम व्यथाकारी न था।

महाराजा के उपकारों को वे भूले भी न थे। भूल सके न थे। सो, अन्तःपुर में नरेश के निजी बैठकखाने में नरेश के समक्ष उनका सिर नीचा हो ही गया। सहसा आँखें चार करने तक का साहस उन्हें न हुआ।

"हुँ!"—सोना-मढ़े हुक्के की नली में मुँह डाले एक बार तिरछी

आँखो से बन्दी को निहार कर मानो इस एक शब्द में ही उन्होंने मन की सारी घृणा और वितृष्णा उँडेल दी। बन्दी का सिर ऊँचा न हो सका। वह चुपचाप खड़ा रहा।

"हुँ!"

हुक्के का एक हलका कश लेते हुए नरेश ने विना प्रयास के एक बार फिर हुँकारी भरी। किन्तु कृष्णमाधवजी पूर्ववत् चुपचाप खड़े रहे। लेकिन उनकी यह चुप्पी महाराजा से जैसे बर्दाश्त न हो सकी। कृष्ण-माधव को वे छोटे भाई की भाँति ही सम्बोधित किया करते थे। किन्तु इस क्षण व्यंगभरे स्वर में वे बोले—"शरम नहीं आती, श्रीमान् पंडितजी महाराज को मेरे सामने आज इस वेश में खड़े होते?"

लेकिन पंडितजी ने फिर भी कोई जवाब न दिया। मानो अपनी इस अप्रिय और अप्रतिभ स्थिति का सामना करने के उपायों पर विचारते वे उसी प्रकार चुप-चाप खड़े रहे।

महाराजा ने पुनः व्यंग किया—"पंडितजी के सिर को आखिर हो क्या गया कि लटक कर वह धरती को चूमना चाह रहा है? सारी पृथ्वी का भार वाहन करते शेषनाग का सिर भी इतना नीचा नहीं हो पाता! किन्तु पंडितजी के सिर पर तो मणिपुर की जनता की हित-चिन्ता का ही अकेला बोझ है! एक महज मामूली, बिलकुल तुच्छ बोझ!"—कह कर वे इस बार जोर से हँस भी पड़े।

किन्तु उनकी हँसी के साथ ही कृष्णमाधवजी का सिर सहसा तन कर ऊँचा हो उठा। आँखें चार हुईं। वे बोल उठे—"पर मैं तो शेषनाग नहीं हूँ धर्मावतार?"

और महाराजा ने पुनः व्यंग कसा—"आप शेषनाग न सही, किन्तु आपके फण में शेषनाग के फण से भी ज्यादा जहर जरूर है श्रीमान्!"

और पंडितजी ने भी इस बार व्यंग-भरे लहजे में जवाब दिया—

"पर जिस प्रकार शेषनाग के फणो पर टिकी हुई पृथ्वी को उस जहर से कोई हानि नहीं पहुँचती, कृष्णमाधव के फणा का जहर भी, विश्वास रखें धर्मावतार, कि न मणिपुरी जनता को हानि पहुँचा सकेगा, न मणिपुर को, न मणिपुर-नरेश को !"

जिस प्रकार समर-भूमि मे कोई योद्धा अपने अमोघ अस्त्र को विफल या विनष्ट होते देख बौखला उठता है, उसी प्रकार मणिपुर-नरेश भी अपने व्यंग-बाण को व्यग-बाण से ही काटे जाते देख बौखला उठे। इस बार आँखे तरेर कर अत्यन्त फटकारभरे स्वर मे वे बोले—"तुम्हें ध्यान है कृष्ण, कि तुम किसके समक्ष वाचाल बन चले हो ?"

और कृष्णमाधवजी ने उनकी इस बौखलाहट से रचमात्र भी प्रभावित न हो निर्भीक स्वर मे जवाब दिया—"अपने अग्रज-सम पूज्य मणिपुर-नरेश के समक्ष महाराज !"

महाराजा का लहजा इस बार और भी कठोर हो उठा—"तुम्हे लज्जा नही आती ऐसा बोलते ! तुम्हारी जिह्वा कट कर गिर क्यो नहीं जाती 'अपने अग्रज-सम पूज्य' इन शब्दों का उच्चारण करते ? कृतघ्न ! निर्लज्ज ! जा, हट जा मेरी आँखो के सामने से !"

किन्तु कृष्णमाधवजी ने इस बार भी जैसे प्रभावित न हो निर्भीकता के साथ व्यग-भरे लहजे मे फिर जवाब किया—"जिह्वा कट कर अभी इसलिए नहीं गिर जाती धर्मावतार, कि आप इसे कटवा नही डालते, अथवा इस जिह्वा को अभी बहुत कुछ निवेदन करना शेष रह गया है धर्मावतार के श्रीचरणों मे ! और अपनी कृतघ्नता की सफाई तो समय आने पर ही पेश करूँगा, किन्तु इस समय अपने अग्रज-सम पूज्य मणिपुर-नरेश का आदेश सिर आँखो पर ! कृष्णमाधव अब भी यहाँ खड़ा रह कर और भी निर्लज्ज बनना नहीं चाहता धर्मावतार !"—यह कह कर हथकड़ी-जड़े हाथों से एक बार आशीष का अभिनय करके वे एकाएक पीछे की ओर मुड़ चले।

महाराजा की आवाज पुनः कठोर हो बोल उठी—"ठहरो! इस प्रकार भाग कहाँ चले?"

और कृष्णमाधव झट रुक कर और मुड़ कर विनय-भरे स्वर में बोले—'यह तो आपके अभी-अभी दिये आदेश का सादर परिपालन है महाराज?'

महाराज के गुस्से में कुछ कमी आती दीखी। उन्हें पता चल गया कि बातों में कृष्णमाधव को परास्त करना कतई आसान नहीं है। मानो मन-ही-मन हार मान कर एक बिछे आसन की ओर तर्जनी का इशारा करके कुछ कम कठोर स्वर में वे बोले—"बैठो! मेरा आदेश है!"

"आदेश सिर-आँखों पर!"—कहते हुए कृष्णमाधवजी कालीन के गुलगुले छोटे आसन पर बैठ गये।

दासी हुक्के पर ताजी चिलम चढ़ा चुकी थी। महाराजा मुँह में पेचवान डाल, मसनद के सहारे लेट कर विचारों में मौन हो चले। और कृष्णमाधवजी सिर झुकाये उनके अगले प्रहार का इन्तजार करने लगे। नरेश बीच-बीच में हुक्का गुड़गुड़ाते कुछ देर आकाश-पाताल को दिमाग के पैमाने से नापते रहे। किन्तु फिर भी बातों से कृष्णमाधव को पुनः लज्जित या परास्त करने का कोई अस्त्र उनके हाथ न आ सका।

अन्त में मानो हार मान कर नरम लहजे में वे बोले—"अच्छा, यह तो बताओ कि मेरे विरुद्ध तुमने विष का यह बवडर क्यों खड़ा किया?"

और कृष्णमाधवजी ने झट प्रतिवाद किया—"आपके विरुद्ध तो कतई नहीं महाराज! ब्रह्म-सभा द्वारा मणिपुर की शुद्ध व पवित्र भूमि पर बिखेरे विष के विरोध में केवल! क्योंकि लिखा है चिकित्सा-शास्त्र में—'विषस्य विषमौषधम्'। और नीति-शास्त्र ने भी कहा है—"कण्टकेनैव कण्टकम्'।"

महाराजा की त्योरियाँ पुनः तन गई। आवाज पुनः उग्र हो उठी—"वाचाल ! तुम्हे मालूम है अपनी इस वाचालता का तात्पर्य ?"

कृष्णमाधवजी ने भी निर्भीक स्वर मे जवाब दिया—"मालूम है धर्मावतार ! कृष्णमाधव विना तात्पर्य के कोई भी बात नहीं बोलता राजन् !"

प० कृष्णमाधवजी की दृढ़ता ने पुनः महाराजा को निस्तेज कर दिया। लेकिन फिर भी व्यग-भरे स्वर में उन्होंने प्रश्न किया—"जरा इसका तात्पर्य मै भी तो सुनूँ !"

"तात्पर्य तो स्पष्ट है राजन् !"—कृष्णमाधवजी ने पुनः निर्भीक स्वर मे जवाब दिया—"ब्रह्म-सभा के सभापति-पद पर स्वय आप हैं ! पर आप एवं ब्रह्म-सभा का सहारा ले कर टट्टी की ओट से शिकार खेल रहे हैं दूसरे लोग ! अपने विषभरे तीखे तीरों से मणिपुर की जनता को निर्जीव बना कर उनपर शासन करना चाहते हैं दूसरे लोग ! मै हृदय से चाहता हूँ राजन्, यदि इस सत्य का पता आपको चल जाता ! यदि इस सत्य को समझने का सच्चा प्रयत्न आप कर पाते ! और बेईमानो द्वारा मणिपुर की पवित्र भूमि पर बिखेरे जा रहे इस विष को, काश, आप स्वयं नष्ट करने का प्रयास करते !"

महाराजा भौंहें फैला कर पुनः व्यंग भरे स्वर मे बोले—"अच्छाऽऽऽ ! तो पडित कृष्णमाधवजी मणिपुर-नरेश को निरा मिट्टी का माधव समझ रहे हैं ?"

पंडितजी ने झट हाथ जोड़ प्रतिवाद किया—"नही राजन् ! यदि ऐसा होता तो कृष्णमाधव अभी जो आपकी सेवा मे निवेदन किये जा रहा है उसे नहीं कर पाता ! मिट्टी का माधव आखिर मिट्टी का ही होता है ! विश्वास रखिये, मिट्टी के माधव से कृष्णमाधव कुछ आशा नहीं रखता ! किन्तु समस्त मणिपुर के परम पूज्य माधव श्रीमणिपुर-नरेश से तो वह अभी बहुत, बहुत कुछ आशा रखता है अन्नदाता !"

इस बार नरेश खूब जोर से हँस पड़े। व्यग-भरे स्वर में बोले—"तो पडितजी अब कविता भी करने लगे! अनुप्रास की छटा से शब्दो मे सचमुच प्राण आ गया प्रतीत हो रहा है!"

और कृष्णमाधवजी ने पुनः हाथ जोड़ कर विनय-भरे स्वर में याचना की—"और इस कवित्व के पुरस्कार में मै मणिपुर-नरेश से मणिपुरी जनता के प्राणों की भीख माँग रहा हूँ राजन्!"

महाराजा का चेहरा अचानक क्रोध से तमतमा उठा। किन्तु क्रोध को दबा कर आहिस्ते से वे बोले—"तो तात्पर्य यह कि मणिपुरी जनता के प्राण सकट में हैं? और मैं ही इस संकट का कारण हूँ?"

महाराजा के चेहरे पर उभरी क्रोध की लाली कृष्णमाधवजी से छिपी न रह सकी। किन्तु फिर भी निर्भीक स्वर मे वे बोले—"मुझे खेद है कि मेरे निवेदन का सही अर्थ समझने का प्रयत्न नहीं किया जा रहा! यह तो बिलकुल स्पष्ट है कि श्राद्ध-कर मणिपुर की जनता के लिए परम सकट है, घोर संकट! और यह भी शास्त्र का ही वाक्य है राजन् कि—'राजा कालस्य कारणम्।' अर्थात् जनता के सुख-सौविध्य और सकट, दोनों ही कालों—स्थितियों—का कारण स्वयं राजा होता है। इस सत्य को किसी भी दशा में अस्वीकार नहीं किया जा सकता धर्मावतार!"

"तो मैं अपराधी हूँ?"—महाराजा और भी गुस्से में लाल हो फड़क उठे।

और कृष्णमाधवजी ने रंचमात्र भी भयभीत हुए बिना शान्त स्वर में उन्हें सचेत किया—"क्षमा करें राजन्! अनावश्यक क्रोध न कर्तव्य को समझने देगा, न अपराध को! महाकवि 'भारवि' के 'किरातार्जुनीय' के कुछ सर्ग आप पढ़ चुके हैं! तनिक शान्त हृदय से याद करें नीति के इन अमूल्य वाक्यों को—

'हित मनोहारि च दुर्लभं वचः'[1] तथा—
'स किं सखा साधु न शास्ति यो नृपम्
हितान्न यः संश्रृणुते .स किं प्रभुः।'[2]"

भारवि के इन वाक्यो का मानो महाराजा पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। वे एकाएक ठठे हो कर बोले—"अच्छा कृष्ण! अब छोड़ो इन बातो को! जो हो गया सो हो गया! बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेइ! ···भोजन का समय हो गया है। जेल मे तुम्हें खाने को तो क्या मिलता होगा! यही जल्दी स्नान-ध्यान से निबट लो! और हम दोनों आज यहीं साथ-साथ जीमे! फिर बाद मे आवश्यक बाते करेंगे!"—कह कर कृष्ण-माधवजी की स्वीकृति तक का इन्तजार न कर स्वय आगे बढ़ कर उनके हाथो की हथकड़ी खोलने का प्रयत्न करते हुए वे दासी को आवाज देने लगे।

लेकिन कृष्णमाधवजी झट अपने हाथ पीछे खींच कर मना करते हुए बोले—"नहीं अन्नदाता! क्षमा करे! ऐसा नही हो सकता!"

अन्नदाता चौंक कर ठिठक गये। आँखे खूब फैला कर आश्चर्य-भरे स्वर में बोले—"क्यों? क्यों नही हो सकता?"

"क्योंकि कृष्णमाधव अकेला नही है! उसके दूसरे अनेक साथी भी हैं जिनके हाथ अभी न सही, पर शरीर जेल की चारदीवारी मे बन्द हैं, और जो जेल का नीरस और निःसत्व भोजन खा रहे हैं! उन्हें छोड़ कृष्णमाधव की जिह्वा कैसे तैयार हो सकेगी राजमहल के सरस षड्रस भोजन के लिए धर्मावतार?"

"अरे! छोड़ो अभी साथी-वाथी की बात!"—कह कर महाराजा

---

१. ऐसा वचन दुर्लभ है जो हितकारी भी हो और मनोहर भी।

२. वह मित्र कुमित्र है जो अपने राजा को शुभ सलाह न दे, और वह राजा भी कुराजा है जो अपने मित्र की शुभ सलाह पर ध्यान न दे।

ने पुनः हथकड़ी खोलने की कोशिश की। शायद हथकड़ी खोलने की चाबी पहले से ही उन्होंने मँगा कर रख ली थी।

और कृष्णमाधवजी ने पुनः उनके हाथों से हाथ छुड़ा कर मना करते हुए कहा—"नहीं धर्मावतार! ऐसा नहीं हो सकता! राजा ही जब धर्म और नैतिकता की उपेक्षा करे तो किसी और से कैसे आशा की जायेगी इन बातों की?"

नरेश झेंप कर अपने आसन पर लौट आये। त्योरियाँ तन उठीं। चेहरा लाल हो उठा। फड़कते हुए ओठों से स्वरों पर बल देते हुए बोले—"किसे कहते हैं धर्म? किसे कहते हैं नैतिकता?"

किन्तु कृष्णमाधवजी रत्तीमात्र भी भीत या अप्रतिभ हुए बिना दृढ़ स्वर में बोले—"क्षमा करें राजन्! मैं पुनः याद दिलाऊँगा कि क्रोध न धर्म को समझने देगा, न नैतिकता को!"

महाराजा पुनः एकाएक अप्रतिभ हो गये। कुछ क्षण चुप रहने के बाद शान्त स्वर में बोले—"तो उनके लिए भी आज यहीं से भोजन भिजवा दिया जाय? क्यों?"

"सो तो बिना उन लोगों से पूछे इस सम्बन्ध में कुछ कहने में समर्थ नहीं हूँ अन्नदाता!"

"अरे, तुम तो नेता हो उन लोगों के! सरदार हो! फिर एक भोजन जैसी छोटी बात के लिए भी उनकी सलाह की जरूरत?"

"नेता और सरदार होने के कारण ही तो उत्तरदायित्व का बोध मुझे रोक रहा है राजन्! बात छोटी हो या बड़ी, पर है वह बात! और हर बात में सरदार को चाहिए कि अपने साथियों से सलाह ले!"

महाराजा मन-ही-मन खूब लज्जित हुए। उन्हें लगा जैसे यह व्यंग स्वयं उनपर भी तीर बन कर चल चुका है। इस बार मन-ही-मन हार मान समझौते के स्वर में वे बोले—"मैं तुम्हारी ईमानदारी और समझदारी का कायल हूँ कृष्ण! और तुम मेरी इस बात को झूठ या

मजाक मत समझो कि कल रात स्वयं श्रीगोविन्दजी ने स्वप्न मे उपस्थित हो मुझे आदेश दिया है—'मूर्खो, समझौता कर लो! भाइयों का आपसी कलह अच्छा नही होता !' तो कृष्ण, अपने परम पूज्य भगवान् श्रीगोविन्दजी का आदेश मान कर तुमसे सप्रेम अनुरोध कर रहा हूँ कि अब तुम सुलह कर लो! व्यर्थ का झगड़ा बढ़ाने से कोई लाभ नही! न तुम्हारे लिए, न मेरे लिए, न मणिपुर के लिए, न मणिपुर की जनता के लिए!"

"आदेश सिर-आँखों पर अन्नदाता! मेरे लिए श्रीगोविन्दजी भी पूज्य! और मणिपुर-नरेश भी!"

नरेश प्रसन्न हो उठे। अत्यन्त उदारताभरे स्वर मे बोले—"और मेरा यह अनुरोध भी तुम्हें मानना ही पडेगा कृष्ण, कि 'बीती ताहि बिसार दे!' ब्रह्म-सभा की सदस्यता से तुम अपना त्याग-पत्र वापस ले लो! और चन्द्रावत भी मजिस्ट्रेट के पद से अपना त्याग-पत्र लौटा ले! तुम दोनो के लिए मेरे मन में कितना वात्सल्य है, कितना स्नेह और आदर है, इसे तनिक हृदय से समझने का प्रयत्न तो करो! हृदय की बात को सिवा हृदय की सहायता के नहीं समझा जा सकता कृष्ण!"—कहते-कहते सचमुच उनकी आँखो मे आत्मीयता और वात्सल्य के आँसू उमड़ पड़े।

उन आँसुओं से कृष्णमाधव का हृदय भी प्रभावित हुए बिना न रहा। उनकी आँखें भी भरे बिना न रहीं। उनकी गरदन सकोच के बोझ से झुक चली। नरेश ने लक्ष्य किया। स्नेहभरे स्वर मे वे बोले—"मै नहीं चाहता कि कृष्णमाधव की विद्वत्ता और विवेक से हमारी ब्रह्म-सभा वचित हो जाय! और चन्द्रावत जैसे सच्चे व निर्भीक मजिस्ट्रेट के न्याय से मणिपुर की जनता वचित रह जाय! अन्यथा अनर्थ और अन्याय होते रहने की संभावना बनी ही रहेगी कृष्ण!"

कृष्णमाधवजी नरेश के इन अत्युच्च भावना-भरे शब्दों से खूब

प्रभावित हुए। फिर भी दृढ़ताभरे स्वर मे बोले—"आदेश सिर-आँखों पर! किन्तु पहले श्राद्ध-कर का पुराना अनर्थ और अन्याय दूर करने की घोषणा कर दी जाय!"

नरेश कुछ क्षणों के लिए मौन हो पड़े। फिर बोले—"लेकिन पहले मेरा अनुरोध तो स्वीकार करो!"

कृष्णमाधवजी ने उसी दृढ़ता-भरे स्वर मे जवाब दिया—"नरेश के इस विश्वास से मैं पूर्णतः सहमत हूँ कि चन्द्रावत सिंह जैसा सच्चा और निर्भीक मजिस्ट्रेट सचमुच मणिपुर-नरेश और मणिपुरी जनता के लिए दुर्लभ है! अपना त्याग-पत्र वापस लेने के सम्बन्ध मे वे स्वयं निर्णय करेंगे। मै भी परम-पूज्य नरेश की ओर से उनसे अनुरोध करूँगा। किन्तु मैं अपने त्याग-पत्र के सम्बन्ध में बड़ी विनम्रता से निवेदन करना चाहता हूँ कि श्राद्ध-कर के अनर्थकारी कानून को रद्द करने की राजकीय घोषणा से पूर्व उसे वापस लेने में कतई असमर्थ हूँ धर्मावतार!"

"तुम तो बाल-हठ पर उतर आये कृष्ण!"

"अपने अग्रजसम पूज्य नरेश के समक्ष कृष्णमाधव का बाल-हठ अनुचित तो नहीं अन्नदाता!"

इस उत्तर से नरेश खूब खुश अवश्य हुए, किन्तु सहसा कोई जवाब देते उनसे न बना। कुछ क्षण मौन रह कर फिर स्वरों मे कूटनीतिक चतुराई भर कर वे बोले—"अच्छा, मेरी यह बात तुम मानो कृष्ण! मेरा इतना-सा अनुरोध स्वीकार करो! आज जेल में तुम्हारे सब साथियों के लिए भोजन राजमहल से जायगा। किसी निश्चित कानून को रद्द करने से पूर्व आपस में बैठ कर विचार-विमर्श करना भी जरूरी होता है! पहले जेल से तुम्हें और तुम्हारे साथियों को मुक्त करने की घोषणा की जायगी! उसके बाद 'मणिपुर-पंडित-परिषद्' में इस विषय पर शास्त्रार्थ किया जाय कि श्राद्ध-कर का कानून

शास्त्र-विहित है अथवा अविहित ! मुझे तुम्हारी विद्वत्ता पर पूरा विश्वास है ! पहले 'पडित-परिषद्' में तुम इस कानून को शास्त्र-विरुद्ध सिद्ध कर दो ! 'पंडित-परिषद्' के सभी सदस्य ब्रह्म-सभा के भी सदस्य हैं। 'पंडित-परिषद्' मे इस कानून के शास्त्र-विरुद्ध सिद्ध हो जाने के बाद ब्रह्म-सभा के लिए भी कोई और चारा न रह जायेगा। फिर इस कानून को नियमित राजकीय घोषणा द्वारा रद्द किये जाने मे कोई बाधा न रह जायगी। बोलो, तैयार हो इस शर्त को स्वीकार करने को ?"

कृष्णमाधवजी कुछ क्षण मौन रहे। सिर झुकाये चुपचाप सोचते रहे। सिवा इस शर्त को स्वीकार करने के तत्काल कोई चारा उन्हें दिखाई नहीं दिया।

फिर एकाएक सिर उठा कर दृढ़ स्वर मे वे बोले—"एवमस्तु ! स्वीकार है !"

महाराजा प्रसन्न हो उठे। उन्हें तत्काल अपनी निजी 'कार' पर वापस जेल भिजवा दिया।

(१८)

उन बन्दियों को जेल से रिहा हुए आज कई दिन हो चुके थे। और कल रात 'पंडित-परिषद्' का शास्त्रार्थ भी समाप्त हो चुका था। आज सुबह बिछौने से उठते ही चन्द्रावत और शैलेन्द्र के मन मे शास्त्रार्थ का परिणाम जानने की उत्सुकता प्रबल हो उठी। झटपट शौचादि से निबट कर वे कृष्णमाधवजी के घर की ओर रवाना हो पड़े।

कृष्णमाधवजी भी शौचादि से निवृत्त हो हुक्के की नली मुँह मे डाले कलकत्ते का एक हिन्दी दैनिक पत्र पढ़ने में मशगूल थे। दोनो को स्वयं अपने घर आया देख स्नेह-सने स्वर में स्वागत करते बोले—"बड़ी लबी उमर है आप दोनों की ! अच्छा हुआ स्वय आ गये !

कल रात की 'लबड़-धों-धों' का समाचार सुनाने के लिए मुझे स्वयं आपके यहाँ जाने का कष्ट करना न पड़ा !"

एक दूसरी पटिया फरश पर बिछा दी गई थी। चन्द्रावत और शैलेन्द्र इतमीनान से बैठ चुके थे। किन्तु पंडितजी के अन्तिम वाक्य से उन्हें मालूम हो गया कि शायद शास्त्रार्थ का परिणाम अनुकूल नहीं रहा।

लेकिन फिर भी चन्द्रावत ने धड़कते दिल से प्रश्न किया—"कल रात के शास्त्रार्थ का परिणाम क्या रहा पंडितजी ?"

कृष्णमाधवजी ने तनिक उदासीन स्वर में जवाब दिया—"परिणाम होना क्या था ? 'खोदा पहाड़ और निकली चुहिया' वाली बात हुई ! कल रात की बात से मुझे तो विश्वास हो गया चन्द्रावत, कि सीधी उँगली से घी नहीं निकलने का ! अन्याय से मुक्ति पाने के लिए जनता को संघर्ष करना ही पड़ेगा !"

पत्नी ने झट अन्दर से हुक्के पर ताजी चिलम भर कर रख दी। चौड़े ललाट पर पसीने की बिखरी बूँदे पोंछ कर अँगोछे से हवा करते हुक्के की नली मुँह में डाले मानो फिर से ताजगी लाने का प्रयत्न वे करने लगे।

"तो महाराजा साहब से उस दिन हुए समझौते का स्पष्ट परिणाम कुछ निकलता नहीं दीखता ?"—चन्द्रावत ने पुनः धड़कते दिल से उत्सुकताभरे स्वर में पूछा।

हुक्के में एक दूसरी नली डलवा उसे चन्द्रावत और शैलेन्द्र की ओर बढ़ाते हुए पंडितजी ने जवाब दिया—"समझौता क्या था भाई, बिना माँगे ही सारी दुनिया के आश्वासन दे डाले थे ! जाने कहाँ की माया पसारी थी उस दिन ! तुम नहीं रहे उस समय। नहीं तो याद करते ! खैर, लेकिन पंडित-परिषद् के उन मूर्खों से शास्त्रार्थ का वह रंग जमा कि क्या बताऊँ तुमसे ! अब भी वह दृश्य याद करते हँसी

आती है ! क्रोध भी ! सुनाऊँगा तुम्हे !"

इतने में पडितजी के एक भक्त ने एक बड़ा-सा माछ् ला कर उन्हें भेट करते हुए कहा—"यह 'लोकताक'[1] का 'सरेङ्' है पडितजी ! आपके दर्शन करने चला तो याद आ गया ! कल अपने हाथ से निकाला था ! इतने यत्न से इसे लाया हूँ कि गरम का समय होते हुए भी बिगड़ा नही है !"

और पडितजी की सातसाला कन्या 'सत्या' तो उसे देखते ही उछल पड़ी। खुशी के आवेग मे बार बार दुहराने लगी—"ङा, पाबुङ[2] ! ङा, ङा !"

अपनी पुत्री की उत्सुकता का मखौल उड़ाते हुए पडितजी बोले—"मगर तुझे तो नहीं मिलेगा आज ! क्योंकि शास्त्र मे लिखा है कि 'ङा' देखते ही जिस लड़की की जीभ मे पानी भर आये उसे नही देना चाहिए ! दोष होता है ! तो सत्या की माँ ! याद कर लो ! सत्या को आज मत देना 'ङा' खाने को !"

और पिता की इस निषेधाज्ञा से लजा कर, घबरा कर सत्या भाग चली अन्दर माँ के पास।

कुछ देर के लिए पूर्व प्रसंग को भूलते हुए चन्द्रावत और शैलेन्द्र को निमन्त्रित करते हुए पडितजी बोले—"तो भोजन आज यहीं होगा तुम दोनों का ! यों तो अपनी-अपनी रुचि है भइया ! पर मुझे तो सबसे अधिक स्वाद आता है 'सरेङ' मे ही ! फिर लोकताक का सरेङ हो तो कहना ही क्या ! जो स्वाद लोकताक के 'सरेङ' मे है, वह मामूली ताल-तलैयो के 'सरेङ' में कहाँ ?"

---

१ मणिपुर की प्रख्यात विशाल झील जो इम्फाल से करीब पचीस मील दक्षिण में है।

२. पिता के लिए मणिपुरी सम्बोधन।

कह कर मानो जीभ पर उभरे हुए पानी को थूक कर वे फिर बोले—"वैष्णव धर्म की एक और पहेली देख लो तुम ! भारत के अन्य प्रान्तों के वैष्णव मत्स्य की ओर देखने तक में पाप समझते हैं ! किन्तु बंगाली वैष्णव धर्म को मानने वाले हम मणिपुरिये उसे देखते ही खुशी में उछल पड़ते हैं ! यहाँ तक कि उसे आग में भून-भून कर महीनों तक सन्दूक में रखे रहते हैं !"

शैलेन्द्र अब मणिपुरी समझने लगा था। उसने हँस कर जवाब दिया—"प्रत्येक धर्म को देश-काल से समझौता करना ही पड़ता है पडितजी !"

"सो तो है ही ! सो तो है ही !"—कहते हुए पंडितजी ने शैलेन्द्र का समर्थन किया।

किन्तु चन्द्रावत ने निमन्त्रण स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट करते हुए कहा—"लेकिन माँ जो भोजन बना कर इन्तजार में बैठी रहेंगी ! उनका नियम है, यदि हम न खायें तो भूखी बैठी रहेंगी !"

"वे तो देवी हैं, देवी ! आदर्श हिन्दू माँ ! बड़े भाग्य से किसी को ऐसी माँ की कोख से जन्म लेने का सुअवसर प्राप्त होता है ! उन्हें मना लेना ! कुछ यहाँ खा लेना, कुछ वहाँ भी ! खैर ! अब शास्त्रार्थ की 'लबड़-धों-धों' की कथा भी सुना दूँ !"—कह कर पुनः उन्होंने मुँह से थूक फेंका।

एक-दो बार हुक्के का कश ले कर उन्होंने कहना शुरू किया—

"महाराजा ने तो शास्त्रार्थ करा कर अपना वचन पूरा कर दिया। लेकिन राजनीति की कुटिलता से वे मुक्त न हो सके। मुझे तो लगता है कि शास्त्रार्थ का यह ढोंग उनकी राजनीति की कुटिलता का ही एक अंग था ! खैर !'

गला खखास कर वे फिर बोले—"उनकी पूरी सेना खूब तैयार हो कर आई थी। दर्शकों में भी अधिकांश उनके ही सैनिक थे जो शायद

उनके आदेश या इशारे पर ही वहाँ एकत्र हुए थे; राज-पक्ष के समर्थन में तालियाँ बजाने के लिए अथवा सामूहिक साधुवाद की बौछार करने के लिए ! खैर !

"सभापति-पद पर स्वयं महाराजा आसीन थे। उन्होंने यत्किंचित् भूमिका बाँध कर शास्त्रार्थ के उद्देश्य पर सक्षेप में चतुराई से प्रकाश डालते हुए सर्वप्रथम मुझे अपना प्रस्ताव पेश करने का आदेश दिया। मेरी भूल थी कि मैंने प्रस्ताव पहले से तैयार किया न था। मेरी धारणा थी कि केवल श्राद्ध-कर के सम्बन्ध मे वाद विवाद भर होगा। लेकिन जब महाराजा ने मुझे ही पहला प्रस्ताव पेश करने का आदेश दे दिया तो मैंने झटपट एक प्रस्ताव तैयार कर लिया। प्रस्ताव की शब्दावली भी बता दूँ—

'चूँकि, श्राद्ध-कर की प्रथा न भारत के किसी देशी राज्य में है, न किसी प्रान्त में, और चूँकि मणिपुर की गरीब जनता इस कर-भार को सम्हाल न सकने के कारण अपने मृतकों का श्राद्ध-कर्म करने मे असमर्थ हो उठी है, जिसके फलस्वरूप मणिपुर की भूमि पर धर्म के बजाय अधर्म की ही वृद्धि होने लगी है; अतः ब्रह्म-सभा इस कर-भार से जनता को मुक्त करे और इस प्रकार मणिपुर में क्रमशः लुप्त हो रही धार्मिक क्रिया एव शास्त्रीय मर्यादा के अस्तित्व की रक्षा करे।' "

"लेकिन जल्दबाजी में बनाया गया आपका प्रस्ताव भी कम सुन्दर न रहा पंडितजी !"—चन्द्रावत ने सन्तोष और प्रसन्नता प्रकट की।

"जरा आगे का हाल भी तो सुनो भाई !"—पडितजी ने मुसकरा कर कहना जारी रखा—"लेकिन भइया, देखा कि प्रस्ताव की शब्दावली जैसे बम का धड़ाका बन गई ! सारी पडित-मंडली जैसे चौक उठी ! और सबसे अधिक महाराजा के मुख पर मानो कालिख पुत गई ! मुँह उनका धुआँ बन गया !"

चन्द्रावत और शैलेन्द्र की उत्सुकता बढ चली। और पंडितजी ने एक-दो बार हुक्के का कश ले कर कहना शुरू किया—"अब मोर्चे पर विद्यामहार्णव पं० अचउवा शर्मा आये। खड़े हो कर सबसे पहले 'यं शैवाः समुपासते शिव इति'[1] इस प्रख्यात श्लोक का मंगल-पाठ किया। फिर महाराजा के आगे सिर झुका निज-निर्मित एक अन्य संस्कृत पद का भी पाठ किया—

'राजान दैवतं विद्धि परं धर्मस्य रक्षकम्,
बालोऽपि नावमन्तव्य एष धर्मः सनातनः।'[2]

"और..."

चन्द्रावत ने मुसकाते हुए उन्हें बीच में ही टोका—"लेकिन पंडित-जी! प० अचउवा शर्मा का यह श्लोक तो बिलकुल 'पेटेंट' है! बहुत पुराना है! इसे तो वे दैनिक स्तुति और पाठ की तरह हर दिन दोहराते हैं! घर में भी, सभा-सोसाइटियों में भी!"

कृष्णमाधवजी मुँह पर व्यंग की मुसकान उभारते हुए बोले—"और इसी से तो आजकल उनकी चाँदी कट रही है भइया! कुछ अपने शब्द और कुछ दूसरों के चुरा लिये! कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा, और भानुमती का कुनबा जोड़ दिया! बन गये चापलूसी के श्लोक! और इन्हीं हरकतों से स्वय बन बैठे विद्यामहार्णव, विद्यावैभव इत्यादि

---

१. "यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैन-शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः,
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।"

२. राजा को साक्षात् देवता समझो! क्योंकि वह धर्म का परम रक्षक है। बालक राजा को भी अवमानना नहीं करनी चाहिए। यही सनातन धर्म है।

इत्यादि ! भइया चन्द्रावत, 'मणिपुर-पंडित-परिषद्' ने उपाधियो के निर्माण एव वितरण मे जिस कमाल के कौशल और उदारता का परिचय दिया है कि क्या बताऊँ तुमसे ! विद्यामहार्णव, विद्यासिन्धु, विद्यारत्न, विद्यामहोदधि, विद्यावाचस्पति, इत्यादि इत्यादि !"—कह कर वे इस बार खूब जोर से हँसे ।

शैलेन्द्र और चन्द्रावत भी खूब जोर से हँसे ।

लेकिन चिलम का तबाकू जल चुका था । बीच मे ही अपनी पत्नी को पुकारते हुए पडितजी ने कहा—"सत्या की माँ ! जरा अपने घर के तबाकू मे से ! समझीं ? बाजारू तबाकू मे कोई स्वाद नहीं !"

माँ की आज्ञा के अनुसार सत्या चिलम उठा कर अन्दर ले आई । और पत्नी स्वय अन्दर से चिलम ले आ कर हुक्के के मुँह पर रखते हुए जरा नाराजगी के स्वर मे बोली—"जब विधाता के घर में बातो का खजाना बँट रहा था, सबसे पहले तुम्हीं पहुँचे थे शायद !" और फिर मन्दिर की ओर अँगुली का इशारा करके—"भात तैयार हो गया ! उधर ठाकुर-पूजा की भी अपनी ही पारी है आज ! समझे ?"—कह कर वे झट अन्दर चली गई माछ तैयार करने । और प० कृष्णमाधवजी पत्नी को उद्देश कर के तनिक जोर से बोले—"यदि जीवन मे मै कभी किसी से डरा और डरा करता हूँ तो वह एक तुम्हीं से सत्या की माँ !"

और सत्या की माँ चूल्हे के निकट से ही पतिदेव की बात सुन कर मन-ही-मन कम खुश न हुई । गौरव की अनुभूति से उन्हें तनिक रोमाच भी हो आया । गौरव हो क्यों नहीं ? वे उस पति की पत्नी हैं जो स्वयं मणिपुर-नरेश से भी नही डरता ! और यदि डरता है तो सिर्फ उनसे ! केवल अपनी पत्नी से !

हुक्के के एक-दो कश लगा कर, गला खखास कर कृष्णमाधवजी ने पूर्व-प्रसंग पकड़ कर कहना शुरू किया—"चापलूसी का श्लोक सुन कर महाराजा का मुख प्रसन्न हो उठा ! चेहरे पर अहंकार झलक

आया ! और दूसरे पडितों ने ताली बजा कर एक स्वर से—'मणिपुर-नरेश की जय ! ब्रह्म-सभा की जय ! सत्य सनातन धर्म की जय !' इत्यादि उद्घोषों से सभा-भवन का कोना-कोना गुँजा दिया !"

चन्द्रावत और शैलेन्द्र खूब हँसे। और पं० कृष्णमाधवजी ने कहना जारी रखा—"तो भइया, प० अचउबा शर्मा तो पहले से ही तैयार हो कर आये थे ! अब गला खखास कर नरेश एव सभी सभासदों का सबोधित करते हुए बोले—'मान्य सभासदो ! पंडित-परिषद् के मन्त्री होने के नाते, धर्मशास्त्रों के अध्येता होने के नाते, नरेश के सेवक और जनता के शुभचिन्तक होने के नाते मेरा आवश्यक एव पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है इस कुत्सित प्रस्ताव का विरोध करना !'

"उनकी इस भूमिकामात्र से पुनः तालियों की गड़गड़ाहट से सभा-भवन गूँज उठा ! उन्होंने कहना जारी रखा—'मैं स्पष्ट शब्दों मे बता देना चाहता हूँ कि यह प्रस्ताव बिलकुल शरारत से भरा हुआ है ! यदि इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया तो इससे न केवल ब्रह्म-सभा का अपमान होगा, अपितु ब्रह्म-सभा के परम मान्य सभापति, धर्म-रक्षक, प्रजा-पालक, धर्मावतार स्वय श्रीमणिपुर-नरेश का भी ! अतः मैं सदस्यों के सम्मुख इस निन्दनीय प्रस्ताव की अपराधपूर्ण त्रुटियों को एक-एक कर स्पष्ट किये दे रहा हूँ ! इसके पश्चात् आप सब मिल कर इस पर विचार करें ! निर्भीक हो अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करें !'

" 'साधु-साधु' की ध्वनि से पुनः सभा-भवन का कोना-कोना गूँज उठा ! अचउबा शर्मा का उत्साह बढ़ा ! अब वह एक-एक कर मेरे प्रस्ताव की त्रुटियों को दिखाते हुए बोला—

'(१) श्रीमान् मणिपुर-नरेश की छत्र-छाया में मणिपुर एक स्वतत्र धार्मिक राज्य है ! उसकी अपनी मान्यताएँ हैं ! अपनी प्रथाएँ हैं ! अतः यदि भारत के किसी अन्य प्रान्त या प्रदेश

में श्राद्ध-कर जैसी कोई प्रथा, नियम या कानून नहीं तो इससे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि मणिपुर मे श्राद्ध-कर जैसा आवश्यक विधान ही नष्ट कर दिया जाय! भारत के अन्य प्रान्तों और प्रदेशों मे "फनिक" पहनने की प्रथा नहीं, तो इससे क्या यह मान लिया जाय कि मणिपुर की महिलाएँ "फनिक" पहनना ही छोड़ दे?'

"क्या बताऊँ भइया! मै ठहरा अकेला और वे ठहरे सघबद्ध! इस प्रथम स्पष्टीकरण से ही अचउबा के लागो ने उत्साह के नशे मे खुश हो कर वो तालियाँ बजाईं कि सारा सभा-कक्ष गूँज उठा! सब ओर से 'साधु-साधु' की आवाज गूँज उठी! और नरेश का चेहरा तो मानो उचित प्रतिशाध की प्रसन्नता से खिल उठा! और अचउबा तो मारे गर्व के मानो आकाश मे उड़ चला! और फिर…"

चन्द्रावत ने बीच मे ही अपनी राय जाहिर की—"यह तो ठोक वैसी ही बात हुई पडितजी कि पार्लमेंटरी पद्धति के किसी सभा-भवन मे सघबद्ध मूर्खों की किलकारी के समक्ष एक बुद्धिमान की आवाज कोई मूल्य नहीं रखती!"

"सो तो है ही!"—पडितजी ने सहमति जता कर कहना जारी रखा—"अचउबा ने अपने गर्वभरे नेत्रो को चारो ओर नचा कर फिर कहना आरभ किया—

'(२) यह कहना सत्य का सरासर अपलाप है सभासदो, कि जनता श्राद्ध-कर के बोझ को सँभालने में समर्थ नहो! अधिकाश जनता कर चुका चुकी है! राजी-खुशी से चुकाये जा रही है! और जिन लोगों ने अब भो कर नहीं चुकाया, सो कृष्णमाधव जैसे लोगों के बहकावे में आ कर ही!'

"पुनः तालियाँ बज उठीं! और पुनः अचउबा आकाश मे उड़ चला!"

"यह तो 'उलटे चोर कोतवाल को डाँटे' वाली बात हुई पंडितजी!" —चन्द्रावत ने विक्षोभ-भरे स्वर में पुनः राय जाहिर की।

'इस नाटक के आगामी अभिनय भी तो सुनते जाओ!"—कह कर पंडितजी ने फिर हँसते हुए कहा—"अचउबा ने सभासदों पर गर्वभरी दृष्टि डाल कर आगे कहा—

'(२) मणिपुर की पवित्र भूमि पर धर्म के बजाय अधर्म की वृद्धि बताना वह असत्य है जिसकी उपमा सारे जगत् में ढूँढे भी न मिले! भला पूछिए तो इससे! जिस मणिपुर के घर-घर में तुलसी के पवित्र वृक्ष! ग्राम-ग्राम मे पावन देव-मडप! राधा-कृष्ण, राधा-दामोदर व जगन्नाथ के परम पुनीत मन्दिर! जहाँ हर हिन्दू नागरिक के गले में तुलसी की पुनीत माला एव ललाट पर गोपीचन्दन के पवित्र तिलक! और हृदय मे गौराग महाप्रभु का निवास! कहिये तो भला! ऐसी पवित्र भूमि पर अधर्म की वृद्धि होने का अभियोग लगाना किस जघन्य अपराध से कम है? और सबसे अधिक, जिस भूमि मे श्रीगोविन्दजी एव श्रीविजयगोविन्दजी जैसे भ्रातृ-युगल देवों के विशाल पवित्र मन्दिर हों, एव मणिपुर-नरेश जैसे धर्मपरायण नृपति धर्म के संरक्षक हों, वहाँ पर इस प्रकार अधर्म की वृद्धि का अभियोग? शिव, शिव! हरे, हरे! शान्तं पापम्!'

"इतना कह कर उसने दोनों हाथों से अपने दोनों कान भी मूँद लिये! उसके इस शानदार अभिनय पर तालियों की वह जोर की गड़गड़ाहट गूँज उठी कि यदि तुम रहते तो स्वयं देखते! या तो क्रोध में पागल हो जाते, अथवा हँसी के मारे लोट-पोट!"

"अच्छा अभिनय रहा!"—चन्द्रावत और शैलेन्द्र ने खूब जोर से हँस कर दो-तीन बार ताली भी पीट दी—"बिलकुल स्वर्ण-पदक पाने योग्य!"

और श्रीकृष्णमाधवजी भी जोर से हँसते हुए बोले—"लेकिन भइया, पहले मै मन-ही-मन खूब हँसा और फिर उनकी तालियों की गड़गड़ाहट मे मैंने भी एक जोर की हँसी की गड़गड़ाहट डाल दी ! पर परिणाम कुछ हुआ नहीं ! नक्कारखाने में तूती की आवाज की तरह ! अरण्यरोदन की तरह ! आखिर सभी जगली ही तो ठहरे वहाँ !"

कृष्णमाधवजी ने हुक्का गुड़गुड़ा कर फिर कहना आरंभ किया—"हाँ, तो अचउआ को अपनी सफलता पर इतना अहंकार हो आया कि अब वह खुले-आम मेरी बेइज्जती पर भी उतर आया ! एक बार महाराजा की ओर विनीत, पर दूसरो पर सगर्व दृष्टि डाल कर जरा गला खखास कर वह परम अपमान-भरे स्वर मे मुझसे बोला—

'अरे ! इतने विद्वानों के बीच शास्त्रीय मर्यादा की दोहाई देने का साहस तुझे हुआ कैसे ? तू स्वय शास्त्र जानता क्या है ? तुझे शास्त्रीय मर्यादा की बात करने का अधिकार क्या है ? क्या हम शास्त्र से अनभिज्ञ हैं जो भरी सभा में इस प्रस्ताव द्वारा हम विद्वानों को मूर्ख सिद्ध करने की धृष्टता कर रहा है तू ? काशी में तूने पढ़ा क्या आखिर ? श्रीमान् मणिपुर-नरेश का धन पानी को तरह बहाता रहा होगा वहाँ की 'दालमंडी' (वेश्या-बाजार) की गलियों मे ! भोग-विलास मे ! और आज तुझ जैसा कृतघ्न, नरेश के उन परम उपकारो का जरा भी ध्यान न रख स्वय उन्हीं के विरोध में आज जनता को उभाड़ने और उकसाने का दुष्प्रयत्न किये जा रहा है ! छी ! छी !! छी !!!'

"उसके पिट्ठुओं ने भी 'छी-छी' की सामूहिक ध्वनि से सभा-भवन को हिला दिया ! और अचउआ जरा खखास कर फिर बोला—

'यह तो हमारे परम दयालु, परम धार्मिक, परम उदार, परम मान्य नरेश की अपार करुणा समझ कि इतने घोर

अपराध करके भी तू अब तक जीवित है ! अन्यथा तेरे जैसे पतित कृतघ्न को तो कब का फाँसी पर लटका दिया जाना चाहिए था ! नीच ! नराधम ! तू क्या जाने शास्त्रीय मर्यादा को रे !'

"अचउवा का चेहरा तो चन्द्रावत, मारे क्रोध के तमतमा रहा था, और दूसरों के मुँह पर व्यग की तीखी-तीखी मुसकानें खेल रही थीं ! और स्वयं महाराजा भी मन्द-मन्द मुसकाते जाने किस लोकोत्तर आनन्द का आस्वाद लिये जा रहे थे !"

कृष्णमाधवजी अब हुक्के को चन्द्रावत के हाथ थमाते हुए गर्वभरे स्वर मे बोले—"लेकिन भइया, अब मै भी स्थिर न रह सका ! किसी-के चरित्र पर खुले-आम आक्रमण सबसे भयानक आक्रमण होता है भाई ! मैं उठा और मर्यादा का उल्लघन न करते हुए ही सभापति से अनुमति माँगी कुछ कहने की । और महाराजा को इसमें आपत्ति ही क्या थी ? यह तो सारा नाटक ही उनका आयोजित था ! और अभी अभिनय एक-तरफा ही होने के कारण शायद उन्हें पूरा रस-बोध भी हुआ न था !"

"छी !"—चन्द्रावत और शैलेन्द्र के मुँह से एकबारगी ही यह शब्द निकल पड़ा ।

" 'छी' करने की जरूरत नहीं भइया ! जिसका पक्ष कमजोर हो वह बचाव के लिए इस प्रकार के हथकंडों का आश्रय लेता ही है आखिर ! मैंने बोलना आरभ किया संस्कृत की एक कहावत पेश करते हुए—'निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते !' इसका अर्थ कोई कठिन नहीं है । अर्थात्, जिस देश में वृक्षों का अभाव हो वहाँ रेंडी का पौधा ही वृक्ष माना जाता है ! सो, मैंने कहा—'अनड्वानो ![1] तुम

[1] विद्वान् न होते हुए भी जो विद्वत्ता का प्रदर्शन करे उसके लिए व्यंग-संबोधन—अनड्वान् = बैल, साँड़ ।

लोग तो 'नवद्वीप'[1] की नदी में केवल स्नानमात्र से ही 'विद्वान्' बन बैठे ! विद्वानों से तुम लोगों की अभी भेंट हुई कहाँ ! मै तो श्रीमान् मणिपुर-नरेश से यह प्रार्थना करना चाह रहा हूँ कि यदि वे वास्तव मे जनता के साथ न्याय करना चाहते हैं तो काशी के पाँच प्रख्यात विद्वानों को मणिपुर मे आमन्त्रित करें ! उन्हीं के निरीक्षण एवं नर्णायकत्व में 'मणिपुर-पंडित-परिषद्' के पडितों के पांडित्य की परीक्षा ली जाय ! और उन्हीं के तत्त्वावधान में इस श्राद्ध-कर की शास्त्रीयता पर विचार भी किया जाय ! और तब हमारे इन विद्वानों को भी पूरा अवसर मिलेगा अपनी पडिताई दिखाने का ! और तब सबको पता भी चल जायगा कि कौन कितने गहरे मे है ! और तब श्रीमान् मणिपुर-नरेश, मणिपुरी जनता, एवं मणिपुर के धार्मिक जीवन व मर्यादा सबका ही भला होगा ! सबका कल्याण होगा ! बोलो, तैयार हो मेरी इस चुनौती को स्वीकार करने के लिए ? और नरेश से मेरा सविनय अनुरोध है कि, हैं वे तैयार काशी के प्रख्यात पाँच विद्वानों को मणिपुर बुलाने के लिए ?"

चन्द्रावत ने प्रसन्न हो कर कहा—"जवाब तो आपका पूर्ण मयत और समयोचित रहा पंडितजी !"

"हाँ चन्द्रावत ! मैंने लक्ष्य किया कि विद्वानों के चेहरे सहसा फीके पड़ गये ! और महाराजा भी कुछ फँसे दीखे ! विद्यावाचस्पति गौरहरि शर्मा ने झेंप मिटाने के लिए झट एक ललकार भी मुझे दे दी ! वह कमर कस कर बोला—'काशी के पडितों की यहाँ मणिपुर में क्या आवश्यकता ? तुम्हीं शास्त्रार्थ कर न लो हमसे ! तुम भी तो आखिर काशी से ही पढ़ कर आये हो न ! काशी के पंडितों की मंडली के ही एक सदस्य हो न !' और झट एक पुस्तक का रटा-रटाया मंगला-

---

१. बंगाल में संस्कृत-विद्या का प्रख्यात केन्द्र 'नदिया' ।

चरण पढ़ कर—'अस्य व्याख्यां विधेहि !'[1]— कह कर वह पूरी तरह भिड़ने को तैयार भी हो गया !'

प० कृष्णमाधवजी ने इस बार हँस कर गला खखास कर आगे कहा—"और मैंने भी उसकी ललकार स्वीकार करते हुए कह ही दिया—'एवमस्तु ! किन्तु निर्णय के लिए बाहर के किसी प्रख्यात व माने हुए विद्वान् अथवा विद्वानों का होना आवश्यक है !'

"अब महाराजा ने भी अपना मौन भग किया ! बोले—'यदि निर्णय के लिए नवद्वीप से ही किसी विद्वान् को बुलाया जाय तो कैसा रहे ?'

"मैंने भी खुश हो कर कहा—'एवमस्तु ! पर हों वे प्रख्यात और माने हुए ! और हों वे सख्या में पाँच ! दो नवद्वीप के, तो तीन काशी के ! अथवा तीन नवद्वीप के, तो दो काशी के ! उन्ही के समक्ष मैं इस मंगलाचरण की भी व्याख्या करूँगा और श्राद्ध-कर के औचित्य के सम्बन्ध मे भी विचार किया जायगा ! है स्वीकार, धर्मावतार ?'

"और धर्मावतार ने भी कह ही दिया—'एवमस्तु ?'

"सभा विसर्जित हो गई भइया, मगर चलते समय 'पंडित-परिषद्' के विजयी विद्वानों के चेहरों पर विजय का कोई स्पष्ट चिह्न मुझे दिखाई न दिया !"

"अच्छा, अब बहुत हो गया !"—अन्दर से सत्या की माँ सबके लिए एक-एक धोती, अँगोछा और लोटा ला कर सामने धरते हुए बोलीं—"भूख नहीं लगती तुम लोगों को ! जल्दी नहा-धो के ठाकुर-पूजा करते आ जाओ भोजन पर ! भात ठंढा हो गया !"

---

१. 'इसकी व्याख्या करो !'

(१९)

दिन का तीसरा पहर था। चन्द्रावत इस समय अपने घर की बाड़ी में खुरपी से घास-पात निकाल रहा था, और शैलेन्द्र पौधों की जड़ मे मिट्टी चढा रहा था। माँ ने उस थोड़ी-सी जमीन में जैसे दुनिया भर के पौधे लगा रखे थे। बाड़ी के किनारे बाड़े के रूप में 'कौबीला' के पौधे खड़े-खड़े मानो जल्द-से-जल्द वृक्ष के रूप में बदलने को उत्सुक हो उठे थे। कौबीला अपनी सटीक सीधाई और जल्द बढ़ कर वृक्ष में परिणत हो जाने के गुण के कारण मणिपुरी गृहस्थों का बड़ा प्रिय पौधा है। एक पन्थ दो काज! सौन्दर्यमय बाड़े का काम भी! और डालो का इन्धन मे उपभोग भी! निम्बू का वृक्ष फलो से लदा हुआ था। और नासपाती का पेड़ बेमोसम के कारण अभी फला न था। लेकिन पपीतों के पेड़ों मे अब भी अनेक हरे व पीले फलों के गुच्छे-से लटक रहे थे। पपीते के अधिकांश पीले फलों को कौवों ने चोच मार-मार कर विकृत भी बना दिया था। और केले की 'बीटे' अपने नये हरे पत्तों मे परम अभिराम निकुंज-सी प्रतीत हो रही थीं। और किनारे पर बॉस की एक घनी 'बीट' मानो बड़ी उदारता से अपनी गोद में कौवों और 'कचबचियो' को आश्रय दिये खड़ी थी। इनके अतिरिक्त हरशृंगार के पेड़ और बेला, उड़हुल, कुन्द और रजनीगन्धा आदि कई जाति के फूलों की झाड़ें भी तरतीब से लगाई हुई थीं। कपास के कई पौधों के अतिरिक्त 'येनमनाकुप्पी' व 'नापाक्पी' नामक छोटे व बड़े मणिपुरी प्याज की पौदें भी क्यारियों में, हवा के मन्द-मन्द झोंकों में मचल रही थीं।

दोनों मित्र इस हलके श्रम के काम में लगे हुए जहाँ-तहाँ की बातों से भी मन बहला रहे थे। एक समय हाथ में लगी हुई मिट्टी को झाड़ते हुए शैलेन्द्र ने कहा—"अन्धविश्वास की डोर से बँधे विना

धर्म की गाड़ी नहीं चलती भइया ! धर्म के प्रचारकों व संचालकों ने बड़ी खूबी और चालाकी से इस डोर का निर्माण किया ! और फिर इस डोर से बँधे हुए मनुष्य के मन से भावना की नई-नई डोरें पैदा हुई । और ये डोरें इतनी मजबूत साबित हुई कि बड़े-बड़े विद्वानों और विचारकों का मन भी इनसे मुक्त न हो सका ! वे भी निष्पक्ष न रह सके !"

चन्द्रावत अपने मित्र के मन्तव्य से सहमत होते हुए भी किंचित् भावनाभरे स्वर मे बोला—"अन्ध-विश्वास का ताना-बाना बुनने वालों की नीयत और उद्देश्य की परख या परीक्षा के झमेले में मैं नहीं पड़ता शैलेन ! किन्तु अन्धविश्वास के आधार पर टिका हुआ धर्म भी यदि मानव की आत्मा को उठाने और विशाल बनाने में सहायक हो तो उसके आगे झुकने में मुझे रत्तमात्र भी आपत्ति नहीं ! क्योंकि कोयले की खान से पैदा हुए हीरे को कोई इसलिए त्याग नहीं देता कि उसका जन्म कोयले से हुआ ? और कमल के फूल को कोई इसलिए इनकार नहीं कर देता की उसकी उत्पत्ति कीचड़ से हुई ?"

"तुम मेरा मतलब नहीं समझे चन्द्रावत !"—शैलेन्द्र ने समाधान किया—"धर्म से मेरा भी कोई विरोध नहीं, बशर्ते कि वह मानव की आत्मा को क्षुद्रता के दायरे से निकाल कर उसका निखिल मानव से तादात्म्य करा दे ! किन्तु व्यावहारिक तौर पर ऐसा होता है क्या ? धर्म व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र को अपने परंपरागत संस्कारों एवं भावना की सीमा में लपेट कर उसे आत्मिक रूप से औरों से अलग नहीं कर देता क्या ?"

"लेकिन केवल अलग ही तो नहीं करता शैलेन ? बहुतों को एक भावनात्मक कड़ी में जोड़ता भी तो है ?"

"लेकिन बहुतों को बहुतों से अलग करके ही तो ?"—कह कर शैलेन्द्र ने गंभीर स्वर में कहना आरंभ किया—"मैं अब गहराई से

सोचने लगा हूँ कि जिस प्रकार प्रान्तीयता, जातीयता आदि दुर्गुण मानव की एकता में बाधक हैं, उसी प्रकार धर्म भी! अब मैं धर्म को भी एक बहुत बड़े दुर्गुण के रूप में ही मानने लगा हूँ चन्द्रावत!"

और चन्द्रावत ने भी मुसकाते हुए गभीर स्वर मे प्रश्न किया—"तब तो राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की भावना को भी दुर्गुण में ही शुमार करना पड़ेगा मित्र?"

शैलेन्द्र ने अत्यन्त दृढ़ता-भरे स्वर में जवाब दिया—"बल्कि सबसे महान दुर्गुण के रूप में चन्द्रावत! मैं ज्यों-ज्यों ईमानदारी और गहराई से सोचता जा रहा हूँ, त्यों-त्यों मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि मानव के इन दुर्गुणों के रहते कभी भी 'विश्वमानव' एक नही बन सकता! 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श कभी भी सही माने मे यथार्थ का रूप नहीं ले सकता!"

"फिर तो तुम कही के भी नहीं रह जाओगे दोस्त!"—चन्द्रावत ने हँसते हुए व्यग कसा—"तुम्हारे प्रान्त और जाति के लोग ही तुम्हें 'प्रान्तद्रोही' एवं 'जाति-द्रोही' कहेंगे! एवं धार्मिक लोग 'नास्तिक' करार देंगे! तथा राष्ट्रवादी लोग 'देश-द्रोही' और 'गद्दार'! फिर किस-किससे लड़ोगे तुम अकेले?"

"सबसे मेरे मित्र!"—शैलेन्द्र ने भी दृढ़ता-भरे स्वर मे जवाब दिया—"अपने प्रान्त और जाति के लोगो में पहले ही मै बदनाम हो चुका हूँ! फिर परवाह नहीं यदि अपने इस विश्वास के लिए मै सबमें बदनाम बन जाऊँ! सबकी घृणा एव कोप का पात्र बन जाऊँ! सबसे बहिष्कृत हो जाऊँ!"

"तब तो तुम नये युग के 'पैगबर' बन कर रहोगे दोस्त!"—चन्द्रावत ने हँसते हुए पुनः व्यंग कसा।

शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए झट प्रतिवाद किया—"नहीं दोस्त! पैगंबरी मुझे नहीं चाहिए! मानव-समाज में नाना धर्म-मतो की सृष्टि

करके पैगबरों ने पहले ही कम अनर्थ नही किया! इन अनर्थकारियों की संख्या में एक और की वृद्धि करना मैं नहीं चाहता!"

"तुम्हारे चाहने-न-चाहने से कुछ होता नहीं दोस्त! तुम्हारे अनुयायी उस सख्या मे बलात् एक और की वृद्धि कर ही देंगे!"—कहते-कहते चन्द्रावत खूब जोर से हँस पड़ा।

शैलेन्द्र भी हँसा। फिर स्वस्थ स्वर मे बोला—"अभी यह प्रसंग मेरे मन मे इसलिए उभर आया कि कल रात 'टाल्स्टाय' की एक कहानी पढ़ रहा था। कला और 'टैकनीक' की दृष्टि से कहानी काफी अच्छी लगी। और ऊँची भावना की दृष्टि से भी। लेकिन उसमें ईसाई धर्म के ऊँचे आदर्श का बड़ा बखान किया गया था! किन्तु अमेरिका-अफ्रीका आदि देशों मे मानवता के विरुद्ध इन्हीं ईसाइयों के काले कारनामों के बारे मे पढ़ा करता हूँ तो बरबस कहना ही पड़ेगा कि टाल्स्टाय का विशाल हृदय भी अपने ईसाई धर्म की भावना की क्षुद्र डोर में बँधकर न निष्पक्ष रह सका, न विशाल!"

चन्द्रावत ने समर्थन में गभीरता से जवाब दिया—"और यही बात मैं कहूँगा विश्वविख्यात इतिहासकार 'एच० जी० वेल्स' के सम्बन्ध मे भी! उसने अपने 'आउट लाइन ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री' (विश्व-इतिहास की रूपरेखा) में मानव-जाति के ऐतिहासिक विकास को क्रमबद्ध ढग से दिखाने का प्रयास तो अवश्य किया, किन्तु ईसाइयत के मोह से वह मुक्त न हो सका! उसे इस बात का बड़ा खेद है कि सारा संसार ईसाई क्यों नहीं बन गया! और इसके लिए रोम के उस पोप के प्रति वह कम क्रोध नहीं प्रकट करता जिसने ईसाई धर्म के प्रतिनिधि के रूप में कुबलैखाँ के दरबार में दो अयोग्य ईसाई पादरियों को भेजा था! वह इसे बर्दाश्त करना नहीं चाहता कि क्यों उस दरबार पर बौद्ध धर्म का सिक्का जम गया!"

"इसीलिए तो मैंने कहा कि बड़े-बड़े विद्वानों और विचारकों का

मन भी इस मोह और भावनात्मक सकीर्णता से मुक्त नहीं हो सका! यदि सारा जगत् ईसाई बन भी जाता तो विश्व-मानव एक बन जाता अथवा ईसाइयत के प्रेममय धागे मे बँध जाता, इसे कम-से-कम मै तो कतई नहीं मान सकता भइया! अमेरिका के करोड़ों हब्शी भी ईसाई हैं!. किन्तु वहाँ के गोरे ईसाई उनसे कैसी अमानवीय क्रूरता का व्यवहार करते हैं! यह तथ्य ही इस ईसाइयत के थोथेपन में स्पष्ट प्रमाण है भइया!"

"और यही बात हिन्दू धर्म के धार्मिको के सम्बन्ध में भी शैलेन!"—चन्द्रावत ने पुनः गभीरता से कहा—"प० कृष्णमाधवजी के व्यक्तिगत ऊँचे चरित्र के लिए मेरे मन मे कम आदर नहीं है! किन्तु उन्हें भी अपने हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता और उदारता मे कम विश्वास नहीं है! उन्होंने एक दिन मुझसे कहा था—'यदि इस धर्म मे पराकाष्ठा की कठोरता और कट्टरता है तो असीम उदारता भी! अन्यथा प्राणिमात्र को एक आत्मा के रूप मे देखने वाले अद्वैत वेदान्त जैसे दर्शन की रचना न हुई होती! अपनी उज्ज्वल परपरा के रूप मे उपनिषदों की अद्वैतवादी रचनाएँ हमे प्राप्त न होती!' "

"किन्तु खेद तो यही चन्द्रावत, कि इन उदार रचनाओं और भावनाओं की विरासत के बावजूद हम उदार न बन सके! प्राणिमात्र को एक आत्मा के रूप में देखने का पाठ पढ़ कर भी हम व्यवहार मे मानवमात्र को भी 'एक' न देख सके! और यदि उदारता और उच्चता के उद्धरण ही ढूँढना शुरू करें तो ससार का कोई भी ऐसा धर्म नहीं जिसमें उदारता और उच्चता के तत्त्व हम ढूँढ न सकें!"

"बात तुम्हारी सोलह आने सही है शैलेन!"—चन्द्रावत ने सहमत होते हुए गभीरता से कहा—"हम हिन्दू भी बड़ी ऊँची-ऊँची बातें करते हैं! अपनी धार्मिक सहिष्णुता और उदारता एवं दर्शन-शास्त्रों की ऊँची विरासत पर गर्व-अहंकार करते हैं! ढिंढोरा पीटते हैं!

किन्तु हम मणिपुरी हिन्दू अपने ही नागा-कूकी भाइयों को अछूत बनाये हुए हैं! अपने ही रक्त के लोगों के साथ अमानवता का व्यवहार करते हैं! और अपने धर्म के नाम पर ही ब्रह्म-सभा द्वारा 'श्राद्ध-कर' का अमानवीय कानून भी हमने ही बनाया है! लेकिन खैर,"—वह एकाएक अगंभीर बन कर मुसकाते हुए बोला—"इन समस्त संकीर्णताओं के होते हुए भी कम-से-कम मुझे अपने शैलेन पर कम गर्व नहीं है शैलेन!"—कहते-कहते वह जोर से हँस पड़ा।

शैलेन्द्र भी हँसा। लेकिन फिर एकाएक गंभीर हो कर बोला—"मैं माँ को देखता हूँ! और अपने चन्द्रावत को! पं० कृष्णमाधवजी को! मणिपुर-नरेश और पं० अचउबा शर्मा को! सबका मन उसी समान धार्मिक विश्वास की डोर में बँधा हुआ हो कर भी इनकी प्रकृति में समानता क्यों नहीं? इसी से मैं यह भी सोचने पर मजबूर होता हूँ चन्द्रावत, कि इन सबकी उच्चता और अनुच्चता में धर्म का कोई हाथ नहीं है! धर्म का कोई भी प्रभाव नहीं है! बल्कि इन सबके अन्तस् में मानो प्रकृति ने ही किसी उत्तम और अधम तत्त्व का सन्निवेश कर दिया है जिससे परिचालित हो कर···"

शैलेन्द्र का वाक्य पूरा न हो सका। झट माँ ने रसोई-घर से आ कर सूचना दी—"पं० कृष्णमाधवजी आये हैं!"

और दोनों मित्र तब झट हाथ झाड़ते हुए दालान की ओर लपके। चन्द्रावत ने झुक कर दायें हाथ से धरती छूते हुए उन्हें प्रणाम किया। और शैलेन्द्र ने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार। माँ ने झट भरा हुआ हुक्का ला कर पंडितजी के आगे धर दिया। उसमें केले के पत्ते की नली भी लगा दी। और चन्द्रावत और शैलेन्द्र के आगे हाथ धोने के लिए पानी से भरा एक लोटा भी रख दिया।

दोनों मित्र हाथ धो इतमीनान से पंडितजी के आगे बैठ गये। कुशल-प्रश्न हुआ। और पंडितजी ने हुक्के के कई कश ले कर

इतमीनान से कहना आरम्भ किया--"मै महाराजा के यहाँ से ही अभी आ रहा हूँ ! मै बता चुका हूँ कि उस दिन का शास्त्रार्थ निरा नाटक था, धोखा था ! मुझसे प्रतिशोध लेने का बहाना ! दस गुडे-बदमाशों द्वारा मुझे अपमानित कराने का षड्यन्त्र ! बाहर के विद्वानों को बुलाने के वचन से वे बिलकुल मुकर गये ! मै तो कहूँगा कि किसी भी बड़े आदमी के वचन पर तब तक विश्वास न करना चाहिए जब तक कि वह लिखित रूप से वचनबद्ध नहीं हो जाता !"

"वह बड़ा कैसा जिसका वचन एक न हो ?"—चन्द्रावत ने कुछ उग्र स्वर में पूछा ।

"वह बड़ा है ससार की भौतिक दृष्टि मे !"—प० कृष्णमाधव ने जवाब दिया—"क्योंकि उसके पास अधिकार है ! प्रभुता है ! प्रभुत्व का शस्त्र है ! धनदौलत है ! और दुनियावी शानशौकत के सारे साधन हैं ! और बाहर से विद्वानों को बुलाने का उन्हे साहस इसलिए नहीं हुआ कि बाहरवालों के सामने उनकी पोल खुलेगी ! बाहर बदनामी होगी ! और शायद अचउबा ने उन्हें समझाया होगा कि इस प्रकार मणिपुर के विद्वानों की बेइज्जती होगी ! सबकी विद्वत्ता की पोल खुलेगी ! मणिपुर-दरबार की तौहीन होगी !"

शैलेन्द्र ने कहा—"चाहे कोई बड़ा आदमी लिखित रूप से ही वचनबद्ध क्यों न हो जाय पडितजी, पर उसपर विश्वास कभी नहीं करना चाहिए ! मन बेईमान होने पर वह अपने लिखित वचन का भी ठीक उसी प्रकार उलटा अर्थ लगायेगा, जिस प्रकार अपना उल्लू सीधा करने के लिए वह कानून का अर्थ और शास्त्र का वचन भी बदलवा देता है !"

कृष्णमाधवजी खूब जोर से हँसे । बोले—"ठीक कहा शैलेन बाबू आपने ! लेकिन मैंने भी इन बेईमानों को छकाने का उपाय अब सोच लिया है ! तू डाल-डाल, तो मै पात-पात ! मैंने आज नरेश से स्पष्ट

कह दिया है कि, अब से मुझे अपना छोटा भाई समझ कर वे कोई भी रियायत न करें! और न ही मै उन्हें बड़ा भाई समझ कर अब से कोई रियायत करूँगा! हम उनके शत्रु, और वे हमारे!"

चन्द्रावत और शैलेन्द्र का उत्साह बढ़ा। चन्द्रावत ने पूछा—"तो अब जनता के शत्रु से निबटने का उपाय?"

"बता रहा हूँ!"—कह कर हुक्के के कई कश ले कर उन्होंने धीरे-धीरे कहना आरभ किया—"हमे अब एक श्राद्ध-दल सघटित करना चाहिए चन्द्रावत! और इस दल की अनेक टुकड़ियाँ हों, और हर टुकड़ी मे कम-से-कम एक पुरोहित ब्राह्मण एवं पॉच कीतर्निये हों! और इन टुकड़ियों को सारे मणिपुर मे फैल कर उन सभी गरीब मृतकों का श्राद्ध करा देना चाहिए जिनके आत्मीय जन धर्म-लोप के भय से अत्यन्त भयभीत हैं! उद्विग्न हैं!"

चन्द्रावत मानो खुशी में उछल कर बोला—"योजना तो कमाल की है पडितजी! मै आपके मस्तिष्क को बधाई दिये विना नहीं रह सकता!"

"बधाई देने का समय अभी नहीं आया चन्द्रावत!"—पडितजी ने मुसकाते हुए जवाब दिया—"बधाई तो मुझे उस दिन देना जिस दिन हमारी अन्तिम विजय हो जाय! श्राद्ध-कर के इस कुत्सित कानून को हम मणिपुर की धरती से मिटाने में सफल हो जायँ! अभी तो न जाने हमें किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा! लोहे के न जाने कितने चने चबाने पड़ेंगे!"

"लेकिन जनता के दॉत भी कम कठोर नहीं हैं पडितजी!"—चन्द्रावत ने दृढ़ता से जवाब दिया—"अब आवश्यकता केवल जनता में चैतन्य भरने की है! उसे शत्रु के समक्ष पूरे उत्साह और सकल्प से उठा कर खड़ा कर देने की है! तब वह अपने दाँतों से लोहा तो क्या, फौलाद के चने भी चबा कर चकनाचूर कर देगी! और अपने उन्हीं कठोर दाँतों से अन्याय की समस्त क्रूर कड़ियों को भी चबाकर चूर-चूर

कर देगी !"

"बस, अब इसी दृढ़ और कठोर सकल्प की आवश्यकता है मेरे प्रिय साथी ! हम कमर कस कर पूरे जोर से सग्राम मे अब कूद पडे ! क्यो ?"

"अवश्य ! अवश्य !"—चन्द्रावत और शैलेन्द्र दोनो ही एक साथ बोल उठे—"अब तो 'क्यो' का कोई प्रश्न ही नही उठता पडितजी !"

"बस, तो कल से ही शुरू कर दे हम अपना काम !"—कृष्णमाधवजी ने सन्तोष, विश्वास और दृढ़ता के साथ गभीर स्वर मे कहा—"और इसी समय अपने साथियों को सूचना भी दे दें कि वे अधिक-से-अधिक जनता को ले कर कल प्रातः नौ बजे राधा-दामोदर के मंडप में उपस्थित हो जायँ !"

"अवश्य !"—चन्द्रावत और शैलेन्द्र ने पुनः दृढ़ स्वर मे सहमति जताई ।

"अच्छा तो मै अब चला ब्रजबिहारी के पास ! और आप दोनो अन्य साथियों को जा कर सूचित कर दें !"—कह कर कृष्णमाधवजी झट उठ कर चलते बने ।

शैलेन्द्र और चन्द्रावत भी झटपट तैयार होने लगे ।

(२०)

एक बार मणिपुर-पुलिस की लाठी खा कर भी लोग मानो डरे न थे । श्रीराधादामोदर के मंडप में आज तिल धरने तक की जगह न थी । रातों-रात श्राद्ध-दल का सघटन भी हो चुका था । इस दल के स्वयसेवक सभा की व्यवस्था मे लगे थे । और एक तरफ लगभग एक दर्जन युवक व अधेड़ व्यक्ति स्वच्छ-सफेद धोती, कुर्ता, चादर व बड़े-बड़े पग्गड़ पहने खड़े थे । यह कीर्तनियों का दल था । उनके गले में मृदग

व हाथ में करताल थे। विना कीर्तन के मणिपुरी हिन्दू का श्राद्ध-कर्म अथवा कोई भी धार्मिक सामाजिक कृत्य सम्पन्न नहीं होता। अतः यह दल मणिपुर-महासभा की ओर से सघटित किया गया था।

सभा की कार्रवाई शुरू होने से पहले मृदग और करताल के सम्मिलित ताल पर कीर्तन का सामूहिक स्वर मुखरित हो उठा। कीर्तन के पद 'बँगला' मे थे। राग भी बगाली था। कीर्तन के स्वरों के आरोहों और अवरोहो मे सभा-मंडप कुछ देर गूँजता रहा। फिर सर्वसम्मति से आज भी सभा के सभापति-पद पर पं० कृष्णमाधवजी ही आसीन हुए।

सभापति के अनुरोध पर आज प्रथम वक्ता के रूप में चन्द्रावत को खड़ा होना पड़ा! "भाइयो!"—इस सबोधन से शुरू कर सक्षेप में उसने सब कुछ बता कर इन शब्दों में उपसहार किया—"जनता स्वय जनार्दन है! भगवान है! जब तक यह भगवान सोया रहता है; कुसंस्कार, कुपरंपरा एवं भय के अफीम के नशे में आँखें उसकी बन्द रहती हैं; पौरुष निर्वीर्य रहता है; तभी तक अत्याचारियो के अत्याचार कायम रहते हैं; उत्पीड़कों के उत्पीड़न चालू रहते हैं; और वंचकों की वंचना चल पाती है! चलो साथियो! उठो भाइयो! हम जनता के इस नशे के विरुद्ध युद्ध करें! अत्याचारियों के अत्याचार एवं वंचकों की वंचना के विरुद्ध! हम सिर ऊँचा कर छाती तान कर, कन्धे से कन्धा भिड़ा कर इस महान अभियान पर चल पड़ें!" फिर एकाएक दोनो हाथ उठा कर पूरे जोर से नारा लगाते हुए वह बोला—"मणिपुर की जनता की अजेय शक्ति की जय!!!"

और तब सबने दोनों हाथ उठा कर इस नारे के उद्घोष से सारे मडप को गुँजा दिया! आकाश को कँपा दिया! सबके चेहरों पर साहस और उत्साह की आभा मानो नाच उठी! अपनी अतुल शक्ति का विश्वास मानो उनमें मुखर हो उठा!

इसके बाद उत्साह और साहस से भरे अनेक भाषण हुए। और

अन्त में कृष्णमाधवजी अपने संक्षिप्त ओजस्वी भाषण में सब कुछ बता कर उपस्थित लोगों को सावधान करते हुए बोले—"साथियो! पता नहीं कि कब इन हाथों में हथकड़ियाँ डाल कर हमे फिर जेलखाने की हवा खाने को मजबूर कर दिया जाय! उस दशा में आप लोग अपने नेता स्वय आप होंगे! बाहर बचे लोगो में से ही आप अपना नेता तैयार करेंगे! चुनाव करेंगे! घबराने की बात नही कि समय पर किसी मृतक का श्राद्ध होता है या नहीं! किन्तु मुझे विश्वास है कि महाराजा के अत्याचार के आगे झुक कर आप अपनी या अपने मृतकों की आत्मा को कलंकित न करेंगे! अपनी 'निखिल-मणिपुर-महासभा' के इस सन्देशे को याद रखना साथियो!"

और तब समूह ने एक स्वर से नारे लगा-लगा कर आकाश को गुँजाना आरंभ कर दिया—

"हम अपने मृतकों की आत्मा को कलकित नही करेंगे !!!"

"हम अन्त तक अपना युद्ध चालू रखेंगे !!!"

"हम महाराजा के अत्याचार के आगे नहीं झुकेंगे! नहीं झुकेंगे !! नहीं झुकेंगे !!!"

इसके बाद सबने श्रीराधा-दामोदर की मूर्तियों के आगे सिर झुकाया। 'निखिल-मणिपुर-महासभा' के झडे को हाथ मे ले कर सबसे आगे कृष्णमाधवजी चले, और उनके पीछे-पीछे मृदग और करताल के ताल पर कीर्तन के पद गाते हुए दूसरे लोग। 'थाङमाइ' बाँध के निकट बड़े पोखरे की ओर वे चल पड़े जहाँ अनेक मृतकों का सामूहिक श्राद्ध करने-कराने की आज योजना थी।

(२१)

"यह तो बड़ा अन्याय हो रहा है धर्मावतार! हमारे धर्म-रक्षक, मर्यादा-परिपालक नरेश के रहते इन कृतघ्न नास्तिकों का ऐसा दुःसाहस

कि धर्म और मर्यादा पर सबके सामने इतनी उच्छृखलता से पदाघात करें! शिव शिव! हरे हरे! नरेश की परम उदारता, परम दयालुता, परम क्षमाशीलता का अनुचित लाभ उठा कर ये नास्तिक आज मणिपुर की सारी धरित्री को अमर्यादा और अधर्म से आप्लावित कर देना चाँह रहे हैं राजन्! यदि राजा का दण्ड अब भी दया व क्षमा के उदार आवरण में ही आवृत रह गया तो यह निश्चित है कि अधर्म की अग्नि सारे मणिपुर को जला कर क्षार कर देगी राजाधिराज!"

विद्या-महार्णव प० अचउबा शर्मा ने राजमहल में प्रविष्ट हो राजा द्वारा दिये आसन पर विराजते ही ये बेचैनी भरे उद्‌गार प्रकट किये। उनकी इस बेचैनी से महाराजा भी बेचैन अवश्य हुए, किन्तु अपनी मनोदशा को दबा कर आश्वासन-भरे स्वर में वे बोले—"इतना अधिक घबराने की आवश्यकता क्या विद्यामहार्णव? धैर्य रखें! सब ठीक होगा! नहन्नी कितनी भी तेज हो तलवार का काम नहीं कर सकती! वह नख भले ही काट दे, पर वृक्ष नहीं काट सकती! इन नगण्य नास्तिकों और नमकहरामों की किसी भी शरारत पर हमें इतना बेचैन नहीं होना चाहिए विद्यामहार्णव!"

विद्या-महार्णव के लिए अलग हुक्का भर कर आ गया था। दासी अन्तःपुर से पान की गिलौरियाँ, सुपारी के टुकड़े व लवंग-इलायची तश्तरी में सजा कर उनके सामने धर गई थी। क्योंकि पंडितों में विद्यामहार्णव का स्थान सबसे ऊँचा था। 'ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्'[१] के वे पूर्णतः अधिकारी थे। राजा जयचन्द्र का दरबारी पंडित महाकवि हर्ष जिस प्रकार अपने 'नैषधीय चरित' महाकाव्य

---

१. "जो (हर्ष महाकवि) कान्यकुब्ज-नरेश से दो पान और आसन प्राप्त करता है!"

के हर सर्ग के अन्त मे बड़े गर्व से इस वाक्य को दुहराते हुए नहीं थका किया, प० अचउबा भी उसी प्रकार महाराजा द्वारा किये अपने सम्मान की चर्चा अन्य लोगो मे करते नही थका करते थे।

पान की एक गिलौरी व लवग-सुपारी-इलायची का एक-एक टुकड़ा अपने मुँह मे डाल तनिक स्वस्थ हो विद्यामहार्णवजी नीतिभरे लहजे मे फिर बोले—"धर्मावतार! किन्तु नीति तो यह कहती है कि नगण्य शत्रु की भी उपेक्षा न की जाय? 'नहन्नी' वृक्ष भले ही न काट सके, किन्तु मनुष्य के प्राण अवश्य ले सकती है! चींटी और हाथी की तुलना करना भले ही मूर्खतापूर्ण हो, किन्तु चीटी चुपके से हाथी के कान मे पैठ कर परेशान उसे अवश्य कर देती है! सुना है कि प्राण तक ले छोड़ती है! विषैले सर्प का बच्चा देखने में भले ही नगण्य हो, किन्तु उसके काटे हुए घाव का विष बडे जोर से फैलता है! अतः हमारा पवित्र कर्तव्य है अपने परम उपकारी 'स्वामी' को भावी अनिष्ट की संभावना से सावधान कर देना! उन्हें उचित परामर्श देना! जिसका लवण खाया उसकी शुभ-चिन्ता मे दिन-रात निमग्न रहना ही प्रत्येक धर्मभीरु सच्चे सेवक का कर्तव्य है स्वामिन्!"

पं० अचउबा शर्मा की युक्तिपूर्ण शब्दावली का महाराजा पर अनुकूल असर हुए विना न रहा। वे कुछ और सुनने के ख्याल से सम्हल कर अब सीधे हो कर बैठ गये। हुक्के की नली मुँह मे थाम कर धीरे-धीरे गुड़गुड़ाने लगे।

पं० अचउबा शर्मा भी हुक्के का एक हलका कश खीच कर विनय-भरे स्वर मे एक अन्य अभियोग भी उपस्थित करते हुए बोले—"कृष्ण-माधव ने स्वय 'महाब्राह्मण' बन कर प्रेत-कर्म कराना तो आरभ कर ही दिया है, किन्तु उस नास्तिक ने एक अन्य अनर्थकारी कार्य करके मणिपुर की सनातन मर्यादा का मूलोच्छेद करना भी आरंभ कर दिया है धर्मावतार!"

"कौन-सा अनर्थकारी कार्य विद्यामहार्णव ?"—नरेश ने जरा चौंक कर प्रश्न किया।

"अन्नदाता को अब भी पता नहीं ?"—नरेश की बेजानकारी पर तनिक आँखें फैला कर विनयपूर्वक आश्चर्य प्रकट करते हुए वे फिर बोले—"वह परम अशुभ समाचार तो इम्फाल के घर-घर में विद्युत्-किरण की भाँति पहुँच चुका है राजन्! कल रात कृष्णमाधव के पौरोहित्य मे एक ब्राह्मण-कन्या का एक मइतेइ पुरुष से विवाह-कर्म भी सम्पन्न हो गया अन्नदाता !"

"ऐं !"—नरेश मानो बिजली की लहर से छू कर सहसा चौंक कर, आँखें फैला कर बोले—"वह बदमाश मइतेइ है कौन ? और वह पतिता ब्राह्मण-कन्या कौन है ?"

"उस पतित मइतेइ का नाम यद्यपि मै जिह्वा पर लाना नहीं चाहता, किन्तु नरेश जब पूछ रहे हैं तो बताना ही पड़ेगा कि उस अधम का नाम 'गोविन्द' है ! तोम्बोक का पुत्र है वह ! किन्तु उस पतिता का नाम अभी याद नहीं ! किन्तु उसके पिता की सहमति इसमे कदापि न थी ! बदमाश उसे भगा कर ले गया अपने घर ! और पापी कृष्णा ने अपने अपवित्र मुख से पवित्र वेद मन्त्रों का उच्चारण कर इस कुकृत्य को वैवाहिक रूप भी दे दिया !"

"अच्छाऽऽऽ !"—नरेश पुनः आँखें पसार कर वितृष्ण हो आश्चर्य-भरे स्वर में बोले—"तो कृष्णमाधव अब 'आर्यसमाजी' भी बन गया ? ऐसा कुकृत्य सिवा आर्यसमाजी के कोई दूसरा कर या करा नही सकता विद्यामहार्णव !"

"मैंने तो बता दिया अन्नदाता से, कि काशी में अपने सनातन धर्म-ग्रन्थों के मिथ्या अध्ययन के नाम पर वह आर्यसमाज की ही शिक्षा-दीक्षा लेता रहा धर्मावतार ! अन्यथा वह कृतघ्न आज नरेश के उपकारों को भुला कर नरेश के विरुद्ध विद्रोह का यह बवंडर

न खड़ा कर पाता ! सनातन-मर्यादा में विश्वास रखने वाला कोई आस्तिक भला कैसे ऐसे कुमार्ग पर पैर रखने का साहस कर सकता है ?"

नरेश कुछ क्षण चुप रहे। फिर हुक्के की नली से मुँह हटा कर व्यंगभरे स्वर मे बोले—"मै तो विद्यामहार्णव, उस ब्राह्मण-कन्या को वेश्या मानता हूँ, और उस मइतेइ दूल्हे को भाँड़, और पुरोहित को भी भाँड ! किसी वेश्या और भाँड के विवाह मे किसी भाँड़ पुरोहित के कुकर्म पर आश्चर्य हमे नहीं करना चाहिए ! इन भाँड़-वेश्याओ के दुराचरण से सनातन मर्यादा का उच्छेद नहीं हो सकता !"

विद्यामहार्णव मन-ही-मन इस जवाब से खूब खुश हुए। नरेश को उत्तेजित करने के विचार से वे फिर विनय-भरे स्वर मे बोले—"किन्तु आश्चर्य न सही, क्रोध तो करना ही चाहिए ! इस प्रकार तो कृष्ण-माधव समस्त मणिपुरी महिलाओं को वेश्या बना छोड़ेगा, और समस्त मणिपुरी पुरुषों को भाँड़ ! अतः सनातन मर्यादा के मूलोच्छेद के प्रयत्न का यह घोर अपराधी दण्डित तो होना ही चाहिए ! मणिपुर के पवित्र हिन्दू समाज में वेश्यात्व और भडत्व के प्रचार पर रोक तो लगनी ही चाहिए धर्मावतार !"

नरेश इस बार खूब क्रुद्ध स्वर मे बोले—"अवश्य ! अवश्य, विद्यामहार्णव ! उन्हें दंड भी मिलेगा अवश्य ! और इसपर रोक भी लगेगी अवश्य ! मणिपुर-नरेश इतना नपुंसक और पतित नही कि वह इन दुराचारों की ओर से उदासीन रह जाय ! निष्क्रिय रह जाय !"

नरेश के मुख से अपने प्रति बार-बार 'विद्यामहार्णव' संबोधन से पं० अचउबा शर्मा की छाती मानो गर्व से फूल उठी थी। उन्हें पूरी तरह अपने हाथों में पा एक अन्य दुर्घटना का उल्लेख करते हुए वे फिर बोले—"मै तो निवेदन करना भूल ही गया धर्मावतार ! इस

श्राद्ध-कर के प्रति विद्रोह एवं इस वैवाहिक दुष्कृत्य से भी लाखों-गुना बड़े एक अन्य दुष्कृत्य की चर्चा करना तो मैं भूल ही गया था!"— कह कर मानो अपनी स्मृति को पूरी तरह बटोरते हुए वे फिर बोले— "कल रात उस वैवाहिक समारोह में एकत्र बदमाशों के सामने कृष्ण-माधव ने क्या भाषण दिया, पता है अन्नदाता को?"

"नहीं तो!"—अन्नदाता ने अपने स्वर में कौतूहल भर कर अपनी गैर-जानकारी जाहिर की।

और अचउबा शर्मा उन्हें पूरी तरह उत्तेजित करने के विचार से फिर बोले—"उसने मणिपुरी इतिहास के सम्बन्ध में अपने मिथ्या पांडित्य का प्रदर्शन करते हुए नरेश के पवित्र 'राजवंश' पर अत्यन्त घृणित आक्षेप करते हुए लोगों को बताया कि 'अर्जुन-बभ्रुवाहन का वंशज होने का मणिपुर-नरेश का दावा बिलकुल मिथ्या है! जाली है! झूठ, दगा और फरेब से भरा हुआ! वास्तव में मणिपुर-नरेश की धमनियों में भी उन्हीं नागाओं का रक्त प्रवाहित हो रहा है जिन्हें बड़ी कृतघ्नता और निर्लज्जता से महाराजा के पूर्व-पुरुषों ने अछूत और अस्पृश्य बना दिया!' मैं तो सुन कर मारे घृणा क्रोध और वितृष्णा के विचलित हो उठा अन्न-दाता! यदि मेरा वश चले तो अभी ही कृष्णमाधव को पकड़ मँगवा कर सारी जनता के समक्ष उसके चूतड़ों पर चाबुक लगवाऊँ! उसकी खाल खिंचवा लूँ!"

सुन कर नरेश के चेहरे पर अचानक क्रोध की वह लाली उभर आई जैसी पहले कभी अचउबा शर्मा ने देखी न थी। अपने प्रवचन के इस वांछित परिणाम पर वे मन-ही-मन खूब खुश हुए।

और नरेश मारे क्रोध के अधीर हो त्योरियाँ तान कर फड़कते ओठों से बोल उठे—"ऐं! इन नीचों का अब यह दुःसाहस! ऐं..."

मारे क्रोध के वे आगे बोल न सके। लेकिन अचउबा शर्मा को विदा करने के विचार से वे बोले अवश्य—"अच्छा! अब मैं एकान्त

चाहता हूँ विद्या-महार्णव !"

इस आदेश पर विद्यामहार्णव मन-ही-मन तनिक निराश अवश्य हुए। क्योंकि वे अभी बहुत कुछ और कहना चाह रहे थे। लेकिन वहाँ से झट चल देने के सिवा कोई उपाय उन्हें नहीं सूझा।

(२२)

'वृन्दासखी' जरा दूर के रिश्ते से पं० अचउबा शर्मा की भतीजी लगती थी। सोलह-सतरह की उमर मे यौवन की उत्तेजना ने मानो जातित्व की भावना उसके दिल से मिटा दी। और उत्तेजना के नशे मे वह भूल चली कि वह ब्राह्मण-कन्या है और उसका प्रेमी गोविन्द एक मइतेइ-पुत्र ! प्रणय के उन मदोत्तेजित नेत्रो मे मानव की सजातीयता के सिवा और कुछ रहा नहीं। लेकिन उनकी इस सजातीय समभावना से उत्पन्न वह प्रणय-व्यापार जब खुले-आम वर्ण-मर्यादा को चुनौती देने चला तो मर्यादा के महल मे खलबली भी मच गई और उस महल के मजबूत खभे मानो प्रबल भूकप के आघात से हिल उठे ! मर्यादा की आँखें तब तक अन्धी बनी रहीं, जब तक दोनो की प्रणय-लीला आवरण के अँधेरे मे छिपी रही। किन्तु वही प्रणय जब साहसपूर्वक वैवाहिक मर्यादा की पवित्रता मे बँधने को तैयार हो उठा, तो स्वय मर्यादा ही जैसे क्रोध में उन्मत्त हो उठी !

लेकिन वृन्दा और गोविन्द का प्रणय भी कमजोर न था। उसमे वासना का बल अवश्य था, किन्तु अन्यायपूर्ण रूढ़ि के प्रति जैसे प्रबल विद्रोह की भावना भी ! जब उस रूढ़ि की दीवार उन दोनों के बीच आ खड़ी हुई तो वह वासना ही मानो विद्रोह मे बदल कर उसे ध्वस्त करने के निमित्त उसपर टूट पड़ी। यद्यपि वह दीवार ध्वस्त न हो सकी, लेकिन उसमें दरार अवश्य हो चली। बात-की-बात में वे दोना उस दरार से निकल कर बाहर आ गये। और अपने गुप्त-प्रणय

को प्रकाश की पवित्रता में ला कर दीवार के पहरेदारों को मानो खुले-आम चुनौती देते वे चिढ़ाने लगे। फिर यह कैसे संभव था कि दीवार के पहरेदार निष्क्रिय रह जाते! हाथ-पर-हाथ धरे रह जाते!

किन्तु गोविन्द शायद उन प्रेमियों में न था जो प्रेम को शारीरिक वासना-पूर्ति के साधन से अधिक कुछ नहीं मानते। उसमें शायद प्रबल आत्मिक वासना भी थी। और वह किसी भी कीमत पर अपनी प्रेयसी को गँवाने को तैयार न था। सो, उसने बड़े साहस से वृन्दासखी के पिता श्रीनित्यानन्द शर्मा से उनकी पुत्री की माँग कर ही दी। और चूँकि बात बिलकुल अकेले की न थी, अतः नित्यानन्द शर्मा को कम क्रोध न आया। प० अचउबा शर्मा और कई भले लोगों के बीच वे इस तरह तिरस्कृत होना नहीं चाह रहे थे। धृष्ट गोविन्द ने सबके सामने उनसे मँगनी का प्रस्ताव करके उनके सम्मान पर मानो कम आघात नहीं किया।

सो, वे क्रोध में पागल हो एकाएक उबल पड़े, बरस पड़े—"नीच! मइतेइ के बच्चे! तुझे शरम नहीं आती इस तरह सबके सामने मेरी इज्जत उतारते? तेरी जीभ कट कर गिर नहीं जाती एक ब्राह्मण-कन्या से विवाह की मँगनी करते?"

लेकिन गोविन्द भी जैसे जी-जान अरप कर ही वहाँ पहुँचा था। उनके इस क्रोध के उबाल से जरा भी भयभीत न हो उसने युक्ति-भरे स्वर में फिर कहा—"लेकिन मइतेइ नीच कैसे हो गया शर्माजी, जब कि यहाँ मणिपुर में हर ब्राह्मण के रक्त में मइतेइयों का रक्त मौजूद है? और काफी मात्रा में मौजूद है! यदि मइतेइ नीच हैं तो ब्राह्मण भी नीच! और यदि ब्राह्मण उच्च, तो मइतेइ भी उच्च!"—कहते-कहते जैसे उसके चेहरे पर जातीय उच्चता का अहंकार भी उभर आया।

पर उसका यह अहंकार उन ब्राह्मणों को बहुत बुरा लगा। उसके शब्द मानो व्यंग के तीखे तीर बन कर उनके हृदय में जा चुभे। और

पं० अचउबा शर्मा तो बिलकुल झेंप चले। क्योंकि स्वयं उनकी माँ मइतेइ-कन्या थी। किन्तु दूसरे ही क्षण सम्हल कर अपने पांडित्य का अमोघ अस्त्र प्रयोग करते हुए वे बोले—"आज-कल मणिपुर में नास्तिकता की हवा चल पड़ी है न! अतः मुझे तेरी इस बात पर जरा भी आश्चर्य नहीं होता मइतेइ-पुत्र! किन्तु यदि तूने शास्त्रों का अध्ययन किया होता तो ऐसा कहने का साहस तू कभी न कर पाता! हमारे मणिपुर की मर्यादा धर्मशास्त्रों के आधार पर ही निर्मित है! और धर्मशास्त्रों में चारों वर्णों की कन्याओं से ब्राह्मण का विवाह विहित है! किन्तु ब्राह्मण-कन्या के साथ किसी हीन जाति के बालक का विवाह कहीं भी विहित नहीं है!"

"मुझे शास्त्रों के अध्ययन की जरूरत नहीं पडितजी!"—गोविन्द ने निर्भीक स्वर में झट जवाब दिया—"शास्त्रों का अध्ययन आपने भी किया है, और प० कृष्णमाधवजी ने भी! आप श्राद्ध-कर को शास्त्र के अनुकूल बता रहे हैं, और वे इसे शास्त्र के बिलकुल प्रतिकूल! अतः आपके शास्त्रों में मेरी कोई आस्था ही नहीं रही! लेकिन इतना जरूर जानता हूँ कि आप स्वय मइतेइ महिला के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं! और कुछ पढ़ा-लिखा होने के नाते यह भी जानता हूँ कि सन्तान में माँ के रक्त का अश कहीं अधिक होता है! क्योंकि वह नौ महीने गर्भ मे पालती है! और गर्भ से बाहर आने पर भी बच्चे को वर्षों तक अपनी छाती का खून पिला-पिला कर पाल-पोस कर बड़ा भी करती है! अतः मैं आपको जाति रूप से अपनेसे श्रेष्ठ मानने को कतई तैयार नहीं पडितजी!"

उसके इस स्पष्ट उत्तर से पडित अचउबाजी और भी झेंप चले। सीधे हमले का कोई सीधा जवाब उनके पास न था। और मुहल्ले में मइतेइयों की संख्या ज्यादा होने के कारण उस मइतेइ-पुत्र के प्रति शारीरिक दुर्व्यवहार का साहस भी किसी ब्राह्मण में न था। प० नित्या-

नन्द तो वहाँ से उठ कर गालियाँ बकते अपने घर की ओर चलते बने, लेकिन गोविन्द वहाँ डट रहा। वह 'मैट्रिक' परीक्षा पास करने में कई बार असफल अवश्य रहा, पर ज्ञान और समझ की दृष्टि से वह औसत मैट्रिक-पास के कहीं आगे था।

लेकिन उसके इस उद्दंड जवाब को सुन कर पं० अचउबाजी कुछ क्षण बाद क्रोध-भरे स्वर में फिर बोले—"तुम नास्तिकों ने शास्त्र की मर्यादा को नष्ट करने का निश्चय कर लिया है! किन्तु याद रख, मर्यादा-परिपालक, धर्म-रक्षक श्रीमान् मणिपुर-नरेश के रहते तुम नास्तिकों की उद्दंडता नहीं चलेगी! यह सोच ले गोविन्द, कि ब्राह्मण आखिर ब्राह्मण है! सभी जातियों में श्रेष्ठ! तुझे यह न भूलना चाहिए कि मइतेइ-कन्या में ब्राह्मण-वीर्य से उत्पन्न ब्राह्मण सन्तान में ब्राह्मण-रक्त की प्रधानता होती है! अतः जाति रूप से ब्राह्मणों से समता का तेरा दावा सिवा उच्छृंखलता तथा धृष्टता के और कुछ नहीं!"

पं० नित्यानन्द को गोविन्द ने भागते देख लिया था। और उसने अचउबा शर्मा के चेहरे पर भी विवश और असफल क्रोध को फड़कते लक्ष्य किया। अपनी इस विजय से और भी उत्साहित हो तनिक उद्दंडता-भरे स्वर में वह फिर बोला—"लेकिन यह भी तो आपके शास्त्रों का ही कथन है पंडितजी, कि 'पितुर्दशगुणा माता।' माता पिता से दस-गुना पूज्य होती है! अतः उसकी प्रधानता भी दस-गुनी होनी ही चाहिए! फिर पिता के वीर्य की ही प्रधानता और उच्चता बता कर आप स्वयं अपने शास्त्रों की मर्यादा और मान्यता की ही अवहेलना नहीं कर रहे? यदि मैं यह कहूँ कि आप जैसे लोग ही 'नास्तिक' हैं, तो?"

इस आरोप और अभियोग पर पंडितजी और भी आपे से बाहर हो गये। कोई ठीक जवाब न सूझने पर आँखें लाल-पीली करके फट-कार-भरे स्वर में वे बोले—"जा, भाग जा नास्तिक, मेरे सामने से! तेरी इतनी धृष्टता कि मेरे सामने तू शास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शन भी करे!

तुझ जैसे नास्तिकों की भ्रष्ट बुद्धि अब विना कठोर राजदड के सुपथ पर आने की नहीं ! तुझे सावधान करता हूँ गोविन्द, कि फिर कभी इस प्रकार किसी ब्राह्मण-कन्या से विवाह का प्रस्ताव किसी ब्राह्मण के समक्ष करने का दुःसाहस तूने किया तो···"

मारे क्रोध के उनके ओठ भी फड़फड़ा रहे थे। कोई युक्ति-युक्त उत्तर पास में न होने के कारण वे आगे बोल भी न सके।

लेकिन गोविन्द ने भी तर्जनी तान कर उन्हे इस बार चुनौती देते हुए कहा—"मै भी आपको सावधान करता हूँ, कि यदि आप लोगों ने अपना रवैया नहीं बदला, और अपनी जाति की थोथी उच्चता की डींग हाँकते ही रहे, तो हम मइतेइ अब एक हो कर मणिपुर के सारे ब्राह्मणो के विरुद्ध विद्रोह का झडा खडा कर देंगे और सारे ब्राह्मणो को मणिपुर की धरती से निकाल कर ही दम लेंगे ! समझे ?"—कह कर वह भी आँखें लाल-पीली किये वहाँ से अपने घर की ओर चल दिया।

किन्तु उसकी इस चुनौती से पडितजी के दिल मे हडकप मच गया। उन्होंने अपने नेत्रो में भय, घृणा और वितृष्णा भर कर गोविन्द को जाते देखा। और दूसरे ही दिन उन्होने बडी घृणा और क्रोध के साथ यह अशुभ समाचार भी सुना कि बृन्दासखी को गोविन्द ने भगा भी लिया, और कृष्णमाधवजी की पुरोहिताई मे उन दोनो का विवाह भी सम्पन्न हो गया ! इसके तुरन्त बाद ही वे दौड़े हुए राजमहल मे पहुँचे। महाराजा को सारी बातें पूरी तरह सुना भी नहीं पाये थे कि वहाँ से उन्हे चल देना पड़ा। किन्तु प्रयत्न में वे अब भी शिथिल न हो सके। प्रतिशोध की भावना उनके मन को आन्दोलित किये रही।

और उधर अचउबा शर्मा के चले जाने के बाद महाराजा का मन और भी क्रोध और क्षोभ की तरगों से आन्दोलित होता रहा। उनकी इच्छा अत्युग्र हो चली कि इसी क्षण कृष्णमाधव और चन्द्रावत को जंजीरों में जकड़ कर उनके सामने हाजिर किया जाय ! और सारी जनता

के सामने कोड़ों के प्रहार से उनके बदन की चमड़ी उधेड़ ली जाय, अथवा गोलियों से ही उन्हें खत्म करवा दिया जाय, ताकि पुनः किसी के दिमाग में ऐसी धृष्टता और दुःसाहस का पागलपन पैदा न हो सके! उन्हें रह-रह कर प० अचउबा शर्मा का वह क्रोध-भरा उद्‌गार याद आने लगा कि—'यदि मेरा वश चले तो अभी कृष्णमाधव को पकड़-मँगवा कर सारी जनता के समक्ष उसके चूतड़ों पर चाबुक लगवाऊँ! उसकी खाल खिंचवा लूँ!' उनका अपना संकल्प भी अब इसी उद्‌गार से सहमत हो उन्हें बार-बार उत्तेजित करने लगा। लेकिन झट उनकी आँखों में अपनी निजी स्थिति भी प्रकट हो पड़ी। एक पूरे राज्य के नरेश होते हुए भी वे पूरे आजाद न थे। मनमानी करने की आजादी उन्हें एक सीमा से अधिक न थी। अपने अंग्रेज प्रभुओं की इच्छा के विपरीत कुछ कर सकने में समर्थ वे न थे। मणिपुर-स्टेट-दरबार का विवेकशील अंग्रेज प्रेसीडेंट उन्हें ऐसे बर्बर कृत्यों की आजादी नहीं दे सकता, यह सोचते ही अपने प्रभुओं के खिलाफ भी उनके मन में वितृष्णा का बवडर उठ खड़ा हुआ। लेकिन बवंडर झट उठा और झट विलीन भी हो गया। झट उन्हें याद आ गया कि यदि अंग्रेज प्रभुओं की कृपा न हुई होती तो वे स्वय मणिपुर की गद्दी पर आसीन न हुए होते। भय और कृतज्ञता के भाव ने उस विक्षोभ के बोझ को बहुत जल्द दबा दिया।

दूसरे, कई यूरोपीय इतिहासकारों ने भी उनके वश के नागावंशी होने का उल्लेख कर दिया था। फिर उसी तथ्य को दोहराने में वे किस प्रकार कृष्णमाधव और चन्द्रावत को अपराधी करार सकते थे? इस अपराध में उन दो प्रभावशाली और तेजस्वी नागरिकों को वे किस प्रकार दंडित कर सकते थे?

लेकिन इस बात को वे मन से न भुला सके कि उन कमीनों ने खुले-आम उनके वंश पर नागा-वशी होने का आरोप लगाया है! उनके

वश की पवित्रता और उच्चता को सबके सामने ओछा करने का प्रयत्न किया है ! अतः उस घटना की स्मृति ने उनके मन के क्रोध को पुनः उभाड दिया । वे मानो क्रोध में पागल हो मन-ही-मन बोलने लगे—"ऐ ! महावीर अर्जुन और महाबली बभ्रुवाहन के इस पवित्र वंश को अस्पृश्य और अछूत नागा-वंश का सिद्ध करने की ऐसी धृष्टता ! ऐसा कमीना-पन ! ऐसी नीचता ! मै ठहरा मणिपुर-नरेश ! मै ठहरा अर्जुन-बभ्रुवाहन का वंशज ! फिर भी इस घृणित गाली को बर्दाश्त कर जाऊँ ! इतने बडे अपराध को चुपचाप सह जाऊँ ! यह तो ठीक वैसी ही गाली है जैसी कि किसीको उसके पिता के बजाय किसी अन्य का पुत्र कहा जाय ! 'दोगला' कहा जाय ! अब तक तो वे श्राद्ध-कर का विरोध कर केवल मेरा ही विरोध कर रहे थे, लेकिन अब तो वे खुले-आम मेरे उज्ज्वल वश को, मेरे पूर्वजों की रक्त-परम्परा को भी लांछिन व कलंकित करने की नीचता पर उतर आये !"

कुछ देर मौन रह कर अपने-आपसे वे फिर बोले—"अब और नहीं ! अब बात बर्दाश्त की सीमा से काफी आगे बढ़ गई ! यदि अब भी मैं बर्दाश्त करता जाऊँ तो किसी दिन खुले-आम वे मेरे सिर पर जूते भी चला दें ! खुले-आम मेरी इज्जत-आबरू उतार दे ! कोई आश्चर्य नहीं ! असंभव नहीं !" दाँत किटकिटाते हुए मन-ही-मन वे फिर बोले—"ठहरो कमीनो ! अब तुम लोगों को मजा चखाता हूँ इस बेशरमी-भरी गुस्ताखी का ! इस विद्वत्ता का ! इस ऐतिहासिक ज्ञान की गुरुआई की गुरु-दक्षिणा तुम्हें बहुत जल्द दी जायेगी बदमाशो !"

कुछ क्षण वे क्रोध के उन्माद मे अवश रहे, मौन रहे । फिर उन्हें याद आ गई कृष्णमाधव की वह दर्पभरी उक्ति कि—"आज से हम दोनों पूरे शत्रु ! आप जनता के शत्रु हैं ! और मै जनता की ओर से चुनौती देता हूँ आपको कि जो कुछ करना चाहें कर लें आप !" मारे क्रोध के हृदय की प्रत्येक आँत को मरोड़ते हुए वे फिर बोले—"बदमाश ! मैं

मणिपुर-नरेश जनता का शत्रु ! और कल तक नरेश के टुकड़ों पर पलने वाले तुम जैसे कुत्ते जनता के मित्र! और जनता के महान नेता! महान हित-चिन्तक !"

फिर उन्हें चन्द्रावत व कृष्णमाधव की वह अकड़ भी याद आ गई कि लाख मान-मनौती के बावजूद चन्द्रावत ने फिर से मजिस्ट्रेट बनना स्वीकार नहीं किया, और कृष्णमाधव ने फिर से राज्याश्रय की सुविधा भोगने से साफ इनकार कर दिया ! सामान्य व्यक्ति भी अपने दान और साहाय्य की उदारता को ठुकरा दिये जाने पर मन-ही-मन विक्षुब्ध हुए बिना नहीं रहता, तो राजा तो आखिर राजा ठहरा ! दरिद्रों का अहंकार एव त्याग और बलिदान श्रीमन्तों की आँखों मे कोई मूल्य नहीं रखते। वह निरी हेकड़ी के सिवा और कुछ नहीं माना जाता। और खास कर तब, जब वे उनके विरोध में उठ खड़े हुए हों। राजा का विरोध एक राजा करे तो एक शोभा भी; राजा के समक्ष कोई राजा ही यदि त्याग की हेकड़ी दिखाये तो एक बात भी; पर किसी दरिद्र को क्या अधिकार कि वह राजा का विरोध करे ? राजा के सामने त्याग और बलिदान की हेकड़ी दिखाये ?

लेकिन अपने मन में अपने पद और धन-दौलत की हेकड़ी के उठते ही उनके मानस-पट पर झट इतिहास की एक निर्मम घटना भी उभर आई। इस घटना के उभरते ही उनका मन आतंक से आन्दोलित हुए बिना न रहा। दरिद्रों मे कितनी अपार शक्ति छिपी होती है इस सम्बन्ध में मानो स्वय इतिहास उन्हें बार-बार आगाह करने लगा। उन्हें इतिहास की यह आवाज स्पष्ट सुनाई देने लगी कि—"गरीबों की संघटित शक्ति के समक्ष जब 'जारशाही' जैसी विशाल शक्ति भी नगण्य बन गई तो तुम जैसों की क्या बिसात ? जो शालिग्राम को खा कर पचा गया, उसे बैंगन को खाते और पचाते देर क्या भला ? गरीबों की आपसी फूट और अज्ञान की नींव पर ही तो अमीरों की शान और

विलास का महल खड़ा होता है ! तुम सोच लो, अच्छी तरह सोच लो कि ब्रह्म-सभा की आड मे अन्याय-अत्याचार का तुम्हारा यह क्रूर नाटक कब तक चलेगा ? जनता जब जग कर और पूरी तरह एकता मे बॅध कर तुम्हारे समस्त अत्याचारो का प्रतिशोध लेने आगे बढेगी तो कौन-सी शक्ति तुम्हारी रक्षा करेगी मूर्ख ?"

इतिहास की यह चेतावनी मानो महाकाल बन कर उनकी ऑखो मे प्रकट हुई ! मारे भय के उनके रोंगटे खडे हो गये ! सारा बदन पसीने से तर-बतर हो उठा ! कृष्णमाधव की वह दर्पभरी उक्ति उन्हें पुनः याद आ गई कि—"मै जनता की ओर से आपको चुनौती देता हूँ कि .." और इस वाक्य के याद आते ही इस बार उन्हें अपनी हेकडी जैसे बिलकुल ही भूल गई। वे बार-बार अपने-आपसे पूछने और सोचने लगे—"कृष्णमाधव और चन्द्रावत अकेले तो हैं नही ! जनता का विशाल विश्वास और सहारा उन्हे प्राप्त हो चुका है ! प्राप्त होता जा रहा है ! अन्यथा कैसे यह सब हो पाता? इतने बड़े आन्दोलन को वे कैसे सघटित और सचालित कर पाते ?" इतिहास का वही भीषण प्रश्न पुनः जैसे उनके सामने प्रकट हुआ—"जनता जब जग और पूरी तरह एकता मे बॅध कर तुम्हारे समस्त अत्याचारो का प्रतिशोध लेने आगे बढेगी तो कौन-सी शक्ति तुम्हारी रक्षा करेगी मूर्ख ?"

उनका मन पुनः आतंक से आन्दोलित हो उठा। ऑखो के आगे पुनः ॲधेरा-सा छा गया। भय और निराशा के आघात से वे कॉप उठे। लेकिन उनकी वह निराश एव भय-विकपित दृष्टि जब उस शयन-कक्ष की शानदार दीवार से जा टकराई तो अचानक आशा की उज्ज्वलता भी उनकी ऑखों में प्रकट हो उठी। भय और निराशा के भाव झट तिरोहित हो चले। भय का प्रकंपन अब प्रसन्नता के प्रकपन में बदल चला। सुनहले फ्रेम व कीमती शीशे में मढे उस विशाल तैल-चित्र ने मानो एकाएक उनके हृदय को आश्वस्त कर दिया। उन्हें अभयदान

दे दिया—"डर मत मूर्ख ! जब तक सर्वशक्तिमान् ब्रिटिश शक्ति के सरक्षण की सगीनी छाया मौजूद है तुझपर, तब तक संघटित जनशक्ति तो क्या, ससार की कोई भी शक्ति तेरा बाल भी बाँका न कर सकेगी ! न कर सकेगी !! डर मत मूर्ख !"

और वह विशाल तैल-चित्र स्वय सम्राट् 'जार्ज पंचम' का था !

अब महाराजा ने घटी बजाई और दासी झट हाथ जोड़े सामने आ खड़ी हुई। प्राइवेट सेक्रेटरी को बुलाने का उसे आदेश हुआ और झट प्राइवेट सेक्रेटरी का कमरे में प्रवेश भी हुआ। स्वामी की मनोदशा में किसी प्रकार का व्याघात न हो इस ख्याल से वह चुपचाप उनके उद्विग्न व विचारमग्न चेहरे को विनीत भाव से निहारता खड़ा रहा। और कुछ देर बाद भी जब स्वामी का ध्यान भग न हुआ तो उसे जबरन तनिक खखासना भी पड़ा। महाराजा का ध्यान भंग हुआ।

कुछ क्षण वे शून्य आँखों से सेक्रेटरी के विनयभरे चेहरे को निहारते रहे। फिर एकाएक जरा रूखे स्वर में वे बोले—" 'मणिपुर-इतिहास-परिषद्' के सघटन की बात थी न ? उसका क्या हुआ ?"

"बात तो पक्की है अन्नदाता !"—सेक्रेटरी ने हिचकते हुए विनय-भरे स्वर में जवाब दिया।

"बात तो पक्की है अन्नदाता !"—महाराजा जरा मुँह बना कर उसकी नकल उतारते हुए एकदम पलग पर सीधे हो बैठ कर गुस्सा-भरे स्वर में बोले—"अन्नदाता के बच्चे! तुम सब-के-सब पूरे हरामखोर और चापलूस इकट्ठे हुए हो यहाँ ! बात तो पक्की है-अन्नदाता ! अन्नदाता के बच्चे ! जब बात पक्की है तो संघटन अब तक हुआ क्यों नहीं ? अब तक उसका काम शुरू हुआ क्यों नही ? तुम्हारी पक्की बात ले कर चाटी जाय, या काम देखा जाय ? पक्की बात के बच्चे ! मैं काम चाहता हूँ काम ! देखना चाहता हूँ तुम्हारा वह काम जिसकी बड़ी-बड़ी डींगें तुम हाँका करते थे ! मैं देखना चाहता हूँ तुम्हारा मणिपुर-इतिहास

पर वह 'रिसर्च' जिसके नाम पर तुमने काफी पैसे ऐंठे हैं दरबार से! जा कर जरा ले तो आओ अपनी वह 'मैनुस्क्रिप्ट' (पाडुलिपि) और मै जरा देखूॅ कि क्या तुमने किया है अब तक! और कैसी है मणिपुरी इतिहास की तुम्हारी पडिताई!"

स्वामी के तिरस्कारभरे शब्द यद्यपि सेक्रेटरी को रञ्चमात्र भी विचलित न कर सके, किन्तु उनकी कोपमयी मुद्रा से वह विचलित अवश्य हो उठा। भय-भरे स्वर मे गिड़गिड़ाते हुए, हाथ जोड़ वह बोला—"अन्नदाता के आदेश पर सब कुछ चरणो मे हाजिर करूॅगा! लेकिन कई स्थलो पर पडित विद्यामहार्णव से सलाह लेना शेष है अभी! और विद्यामहार्णव भी आजकल पूरी तरह भिडे हुए हैं इस काम पर! वे कुछ भाग पूरा कर अन्नदाता के श्रीचरणो मे पहले भी अर्पित कर चुके हैं! मेरा तो अग्रेजी मे होगा और उनका मणिपुरी मे! तो मै जा कर लिये आता हूॅ अभी!"

कह कर ज्यों ही उसने वहॉ से हटने का प्रयत्न किया कि महाराजा ने कड़कते स्वर मे उसे रोक दिया—"ठहरो! भागे कहॉ जा रहे हो चोर की तरह?"

और सेक्रेटरी ठिठक कर खड़ा हो गया। विनीत भाव से आगामी आदेश का इन्तजार वह करने लगा।

महाराजा अब अपेक्षाकृत नरम स्वर मे बोले—"तो प्रेसीडेट से हुई तुम्हारी बात उस बारे मे?"

"किस बारे मे अन्नदाता?"

"किस बारे मे अन्नदाता! अन्नदाता के बच्चे! अरे, उन कमीनों की कारगुजारी के बारे मे, जिन्होंने अब न केवल मणिपुर-नरेश को, बल्कि नरेश के पूर्वजों तक को खुले-आम कलकित करना शुरू कर दिया है! पं० अचउबा ने तुमसे कुछ बताया नही?...सब-के सब हरामी, हरामख़ोर! और यह प्रेसीडेंट भी...अच्छा तो जा कर अब मेरी 'कार'

तैयार करवाओ ! मैं सीधे 'हौगसन' से मिलूँगा ! और पं० अचउबा को अविलब हाजिर होने का आदेश भिजवाओ !"

"जैसी आज्ञा अन्नदाता !"—कह कर सेक्रेटरी जल्दी-जल्दी पीछे की ओर कदम हटाते वहाँ से निकल चला।

और महाराजा स्वयं दासियों की सहायता से कपड़े बदल कर तैयार होने लग पड़े।

(२३)

अब तक श्राद्ध-कर-विरोधी आन्दोलन मे काफी गरमी आ चुकी थी। आन्दोलन अब इम्फाल की बस्तियों तक ही सीमित न रह गया था। मणिपुर के गाँव-गाँव अब आन्दोलन के नारों से गूँज उठे थे। सामूहिक श्राद्ध का कार्य हर जगह चालू हो चला था। प० कृष्णमाधव अनेक ब्राह्मण युवको को रातोंरात पुरोहिताई के कुछ मत्र और विधि-विधान रटा और बता कर गाँव-गाँव भेज रहे थे। कीर्तनियों की एक-एक मडली भी हर गाँव मे सघटित की जा चुकी थी। और श्राद्ध का खर्च न के बराबर था। एक पुरोहित मात्र को जिमा कर केवल पाँच पैसे दक्षिणा निश्चित की गई थी। और यह दक्षिणा भी 'निखिल-मणिपुर-महासभा' के कोश में जमा कर दी जाती। जो कुछ दान में प्राप्त होता वह भी महासभा की सम्पत्ति हो जाती। इस प्रकार दिनों-दिन फैलता यह आन्दोलन मणिपुर-नरेश और 'मणिपुर-सरकार' के लिए सचमुच एक भयानक सिर-दर्द बन चला !

उधर वृन्दासखी और गोविन्द को कठोर दंड दिया जा चुका था। अर्थात् राज्य की पुलिस ने गोविन्द को गिरफ्तार कर लिया, और वृन्दासखी के माता-पिता ने पुलिस की सहायता से वृन्दा को पकड़वा कर अपने घर में बन्द कर दिया। वृन्दा के लिए यह मामूली दंड न था। और वृन्दा की उम्र काफी कम बता कर एक नाबालिग बालिका

को बहकाने व भगाने के अभियोग मे गोविन्द को तीन वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी जा चुकी थी। और 'मणिपुर-पडित-परिषद्' की सिफारिश पर उन सभी व्यक्तियों को अपृश्य घोषित किया जा चुका था जो वृन्दा और गोविन्द के विवाह-समारोह में शामिल हुए थे, अथवा श्राद्ध-कर चुकाये बिना ही अपने मृतको के श्राद्ध किये जा रहे थे। और पडित-परिषद के 'एजेंट' जगह-जगह घूम कर समाज मे इन पापियों से असहयोग और अस्पृश्यता का व्यवहार किये जाने की अपील व वकालत कर रहे थे। समाज का बहुमत अब भी कृष्णमाधव-जी के साथ न हो सका था। परपरा का सस्कार उसका साथ अभी छोड न सका था। इस प्रकार मणिपुर-महासभा के सदस्य और आन्दोलक कई जगह अछूत करार दिये जा रहे थे। उनका हुक्का-पानी बद किया जा रहा था। परन्तु इस सामाजिक उत्पीड़न से दबने के बजाय वे और भी दबग बनते जा रहे थे।

अब आन्दोलन केवल सामूहिक श्राद्ध अथवा श्राद्ध-कर-विरोध तक ही सीमित न रहा। उन लोगों के यहाँ भी सामूहिक 'धरना' अब आरंभ कर दिया गया जो श्राद्ध-कर देने में समर्थ थे और श्राद्ध-कर चुकाने के पक्ष मे थे, और श्राद्ध-कर चुकाये जा भी रहे थे। इन धरना देने वालों में महिलाएँ भी शामिल होने लगी। और राजपक्षी नागरिक इन धरना देने वालों को हटवाने या पिटवाने में पुलिस की भी मदद लेने लगे। आपसी मार-पीट की संभावना भी उत्पन्न हो जाती, किन्तु कृष्ण-माधवजी ने अपने सहकर्मियों को पूर्णतः अहिंसक बने रहने का निर्देश दे दिया था। फलतः एकतरफा हिंसात्मक कार्य दूसरे पक्ष से प्रोत्साहन न पा कर जल्द ठढा पड़ जाता।

जगह-जगह 'लाठी-चार्ज' भी हो रहा था। लेकिन जाने क्यों कृष्ण-माधव, चन्द्रावत व शैलेन्द्र आदि प्रमुख नेता लाठो के आघात से अभी तक बचे हुए थे। शायद प्रेसीडेंट राबर्टसन की उदारता या नरमी इसमें

कारण थी। एक-आध जगह गोली भी चली। शायद जनता को केवल भयभीत करने के ख्याल से गोली छोड़ी गई हो! अतः मरा अभी कोई न था। कुछ लोग तनिक घायल अवश्य हो चले थे। लेकिन जिस प्रकार जलती आग में घी पड़ने से वह और भी भभक उठती है, लाठी-गोली से जनता का क्रोध और भी भभक उठा। वे अनुशासन मे कायम न रह सके। एक दिन एक पुलिस-चौकी पर क्रुद्ध शेर की तरह उनके टूट पड़ते ही पुलिस को खुल कर खेलने का मानो मनचाहा मौका मिल गया। उस दिन अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलीं। पूरे पाँच व्यक्तियों के प्राण-पखेरू देखते-देखते ही उड़ चले। दर्जनों घायल हो पड़े। मरनेवालों मे एक गरीब दससाला बालक भी था, जिसके मृतक बड़े भाई का श्राद्ध 'कर' न चुकाने के कारण सामूहिक श्राद्ध आरभ होने से पूर्व रुका हुआ था।

लेकिन उन पाँच व्यक्तियों की मृत्यु ने सारे इम्फाल मे वह खलबली पैदा कर दी जैसी पहले कभी पैदा न हो सकी थी। हाँ, कुछ अतिशय राजभक्त लोग खुश भी थे। लेकिन कुछ तटस्थ लोग भी अब क्रुद्ध हुए बिना न रहे। और 'मणिपुर-महासभा' की एक आकस्मिक आपात-कालिक बैठक इस दुर्घटना पर विचार करने के लिए तत्काल बुलाई गई। उपस्थित लोगों के चेहरे क्रोध से फड़क रहे थे। उन शवो का श्री राधादामोदर के मंडप के पास ला कर रखा गया था। और फिर सर्व-सम्मति से यह निश्चय हुआ कि इन शवों की अरथियों का सामूहिक जुलूस सारे नगर में घुमा कर पारी-पारी से प्रेसीडेंट, पोलिटिकल एजेंट व राजमहल के समक्ष उन्हें ले जाया जाय। और शासन से उचित न्याय की माँग की जाय।

देखते-देखते जुलूस में शामिल होने वाली भीड़ से मंडप का भीतर और बाहर भर चला। महिलाओं की आँखों में क्रोध और करुणा के आँसू उमड़ आये। तोम्बी सना ने भी अनेक तरुणियों का एक दल

संघटित किया। तोम्बी सना के नेतृत्व में उन तरुणियों का वह दल भी इस जुलूस में शामिल होने को वहाँ आ पहुँचा। तात्पर्य यह कि अब इस आन्दोलन में हर तत्त्व और हर तबका शामिल होने लगा। शामिल हो गया।

शवों का जुलूस रवाना होने से पहले कृष्णमाधवजी ने सबको सबोधित करते हुए क्रोध और शोक से भरे स्वर में कहा—"अपने अधिकार और सत्ता पर हलके आघात या आघात की आशकामात्र से क्रुद्ध हो पड़ना मानव का स्वाभाव है साथियो! त्याग और वीतरागता का आडंबर रचने वाले साधु-सन्त भी जब इस स्वभाव से रहित नहीं तो दिन-रात खुले-आम भोग-वैभव और प्रभुता की पूजा मे रत रहने वाला राजा तो आखिर राजा ठहरा! यह तो राज-धर्म का निश्चित सिद्धान्त है कि प्रभुता पर, स्वार्थ पर किसी भी ओर से आई हुई विपत्ति को क्रूरता, कुटिलता, पशुता अथवा किसी भी उपाय से विनष्ट कर दिया जाय! राजाओ के इतिहास मे ऐसे उदाहरणो का अभाव नही साथियो, जहाँ स्वार्थ, स्वार्थ और कुत्सित स्वार्थ के सिवा और कुछ देखा नहीं जाता! जहाँ अपने स्वार्थ के समक्ष न पिता पुत्र का ख्याल करता है, और न पुत्र पिता का! जहाँ स्वार्थ की निष्ठुर भावना मानवता को जड़-मूल से उखाड़ फेंक देती है! स्नेह और आत्मीयता के समस्त सुकोमल तारों को तोड़ और मरोड़ कर विनष्ट कर देती है! और तब वह महाशक्ति-सपन्न शासक अपनी सारी शूरता, बुद्धिमत्ता और वैभव के बावजूद एक कुत्सित हिंस्र पशु या पिशाच के सिवा और कुछ नहीं रह जाता! क्रूर हिंसक पशु से भी गिरा हुआ! पिशाच से भी घृणित और गया-बीता हुआ!"

कहते-कहते उनके स्वर में घृणा और क्रोध का उबाल उठ आया। दूसरे लोग भी घृणा और क्रोध से फड़क उठे। और तब एक साथ अनेक आवाजें खूब जोर से बोल उठीं—"हम बदला लेके रहेंगे!!! हम

मणिपुर की धरती से अन्याय-अत्याचार को मिटाके रहेंगे !!!"

इन आवाजों की गूँज दूर-दूर तक फैल गई। मानो शोक अत्यन्त क्रोध मे परिणत हो समस्त जनता को संघर्ष के निमित्त ललकार उठा हो !

कृष्णमाधवजी फिर बोले—"हमने जब स्वेच्छा से काँटों का ताज पहन लिया तो दुख-दर्द और उत्पीड़न से अब डरना क्या साथियो ? विचलित होना क्या ? हम बढे चलेंगे ! हमारी एक की मृत्यु सहस्रों मणिपुरी वीरों को उत्पन्न करेगी ! जन्म देगी ! उनमें अन्याय से प्रतिशोध लेने की अदम्य भावना, आकांक्षा और सकल्प पैदा करेगी ! और एक दिन इसी मणिपुर में हम वह स्थिति पैदा कर देंगे कि हमें आज अछूत और अस्पृश्य बनाने वाले लोग स्वयं अछूत बन जायेंगे ! स्वय जाति और समाज से बहिष्कृत हो जायेंगे !"

और तब पुनः सामूहिक स्वर-लहरी आकाश में गूँज उठी—"हम अन्यायियों को अछूत बनाके छोड़ेंगे !!! उन्हें एक दिन जाति और समाज से बहिष्कृत करके रहेंगे !!!"

और तब पुनः कृष्णमाधवजी ने क्रोधभरे स्वर मे दुश्मनो को ललकार कर कहना आरम किया—"छी कमीनो ! तुम यदि यह सोच रहे हो कि हमें जाति और समाज से बहिष्कृत करके, हमारा हुक्का-पानी बन्द करके, और हमारे बच्चों पर लाठियों-गोलियों की बौछार कराके हमें झुका लोगे तो तुम्हारी यह सरासर भूल है कायरो ! मणिपुर की आजादी को विदेशियों के हाथ बेचने वाले बेशरमो ! यह तुम्हारी सरासर भूल है, भूल है पापियो ! निर्लज्जो !!"—कहते-कहते उनके चेहरे पर मानो स्वयं क्रोध साकार हो उठा।

और भीड़ ने इस बार खूब जोर से जैसे समस्त आकाश को हिलाते हुए कहा—"हम नहीं झुकेंगे !!! नहीं झुकेंगे !!! हम मणिपुर की धरती से सारे पाप को, सारे पापियों को मिटाके रहेंगे !!!"

और इसके बाद ही अरथियों में लोगो ने कन्धे लगाये। कीर्तनियों ने मृदग और करताल के सकरुण लय-ताल पर कीर्तन के सकरुण पद गाने आरंभ किये। जुलूस चल पड़ा और जुलूस के आगे-आगे पं० कृष्णमाधव, चन्द्रावत, शैलेन्द्र, योगेश, ब्रजविहारी आदि युवक व नवयुवक चल पड़े। अनेक बस्तियों से होते हुए 'पोलो ग्राउड' के पास तक पहुँचते-पहुँचते यह भीड़ जन-समुद्र का विशाल रूप ले कर आगे बढ़ चली। और सागर में रह-रह कर उठती हुई हूहों की तरह उस विशाल भीड़ से रह-रह कर आकाश मे उठते हुए नारे मानो हर दिशा और दिगन्त में साहस, उत्साह, आतक और आश्चर्य की लहरियाँ बिखेरने लग पड़े।

लेकिन मणिपुर-सरकार को सारी सूचना पहले ही मिल चुकी थी। वह सतर्क और सावधान हो चुकी थी। किन्तु प्रेसीडेंट ने हर हालत मे गोली का इस्तेमाल न करने की कड़ी ताकीद कर दी थी। वह धधकती हुई आग को और धधकाना नहीं चाह रहा था। पर फिर भी मजबूती के साथ परिस्थिति से निबटने को वह तैयार था। और आज अनेक स्थानों से पुलिस हटा कर राज-महल, सेक्रेटेरियट, खजाना, प्रेसीडेंट और पोलिटिकल एजेंट के बगलों आदि महत्त्वपूर्ण स्थानो मे तैनात कर दी गई थी। और इन सब स्थानों में पहुँचने के मार्ग बिलकुल बन्द किये जा चुके थे। लेकिन जुलूस बढ़ा ही जा रहा था। उसके नेता बढ़े ही जा रहे थे।

किन्तु 'पोलो ग्राउंड' से आगे राजमहल और 'सेक्रेटेरियट' की ओर जाने वाली मोड़ पर जब जुलूस पहुँचा तो आगे बढ़ना आसान न रह गया। लौह-दीवार की तरह वहाँ पुलिस तैयार खड़ी थी। परीक्षा की यही असली घड़ी थी। तलवार और आत्मिक बल का मुकाबला था। पीछे हटना हार स्वीकार करना था, और वहाँ खड़े रहना अथवा धरना दे कर बैठ जाना भी उन्हें ठीक न जँचा। क्योंकि

उन पाँच शहीदों की अरथियाँ मानो बार-बार उन्हें आगे बढ़ने को प्रेरित कर रही थीं। और जनता भी बढ़ चलने को व्याकुल थी। ऐसी स्थिति में उस लौह-दीवार को तोड़ने के सिवा और कोई चारा न था। किन्तु लौह-दीवार भी टूटने को तैयार न थी। बल्कि तोड़ने का प्रयत्न करने वालों को ही वह तोड़ डालने को तैयार थी। सन्नद्ध और सतर्क खड़ी थी।

मौके पर जिला-मजिस्ट्रेट, एस० पी०, डी० एस० पी० और पुलिस-इस्पेक्टर भी मौजूद थे। कुछ देर जुलूस के नेताओं एवं शासन के अधिकारियों मे डट कर बातें हुईं। कोई भी पीछे हटने या हार मानने को तैयार न था। तब जनता के नेताओं के मुख से यह आकाश-भेदी नारा एकाएक गूँज उठा—

"मणिपुर की जय !!! मणिपुरी जनता की जय !!!"

और तब जनता ने भी सामूहिक स्वर से इन नारों को दुहरा कर आकाश को हिला दिया।

"अत्याचार का नाश हो !!!"

और जनता ने पुनः अपने सबल और विक्षुब्ध स्वरों से जैसे समस्त आकाश को इस नारे से गुँजा दिया।

"आगे बढ़ो, साथियो !!!"

खूब जोर से आदेश का यह नारा लगा कर कृष्णमाधव, चन्द्रावत, शैलेन्द्र और व्रजविहारी आदि उस लौह-दीवार को तोड़ने आगे बढ़ चले। जनता भी पूरे क्रोध और उत्साह के साथ उनके पीछे-पीछे बढ़ चली। लेकिन इस चुनौती से पुलिस की लाठियाँ भी आकाश में तन उठीं। संगीनों की नोकें भी उस ललकार का जवाब देने को सावधान हो पड़ीं। और दूसरे ही क्षण लाठियों की अन्धाधुन्ध वर्षा भी होने लगी। कृष्णमाधवजी के सिर से खून बह चला। और तब चन्द्रावत ने उन्हें पीछे धकेलते हुए उन लाठियों को स्वयं अपने ऊपर लेना शुरू किया।

और तब झट शैलेन्द्र मानो उसकी ढाल बन कर उसके आगे बढ़ कर बड़ी वीरता से उन प्रहारों का सामना करने लगा। कुछ देर तक वे तीनों एक-दूसरे से आगे बढ़-बढ़ कर पुलिस के घेरे को तोड़ने के प्रयास में लगे रहे। और चोटें खा-खा कर उनका सारा बदन खून से तर-बतर होने लगा। पुलिस-इस्पेक्टर अघोरनाथ वसु को आज मानो मन का सारा मलाल निकालने का खूब मौका मिला। शैलेन्द्र को गद्दार बंगाली मान कर मानो उससे बदला लेना उसने शुरू किया। लेकिन आवेश के नशे में उन चोटों को वे तृणवत् बर्दाश्त करते हुए जूझने लगे। आगे बढ़ने का प्रयत्न भी करने लगे। जनता के मुख से वाह-वाह और शाबाशी के शब्द निकलने लगे।

"आगे बढ़ो साथियो !!!" "अत्याचार का नाश हो !!!"—और "मणिपुरी जनता की जय !!!"—ये नारे लगा-लगा कर लाठियाँ खाती जनता भी आगे बढ़ने का प्रयास करने लगी।

सबसे पहले शैलेन्द्र एक पुलिस कांस्टेबल को खूब जोर से धक्का देते हुए एक तरफ से घेरे को तोड़ने में किंचित् सफल हुआ। लेकिन दूसरे ही क्षण कई तरफ से लाठियों की अन्धाधुन्ध चोटें खा कर वह मूर्च्छित हो धराशायी भी हो पड़ा। और तब चन्द्रावत के क्रोध की सीमा न रही। वह वायु-वेग से दौड़ कर शैलेन्द्र के शरीर को अपने शरीर से ढकते हुए लाठियों का प्रहार स्वयं सहने लगा। और दूसरी ओर कृष्णमाधव अपने साथियों के साथ घेरे को तोड़ने जब फिर आगे बढे, तो वे भी अधिक देर तक कायम न रह सके। वे भी मूर्च्छित हो गिर पड़े। और तब भीड़ को डराने और तितर-बितर करने के ख्याल से जिला-मजिस्ट्रेट ने एक साथ आकाश में अनेक 'फायर' करने का आदेश भी दे दिया।

अपने नेताओं को इस प्रकार गिरते देख और बन्दूक की आवाजें सुन-सुन कर जनता अब सचमुच भयभीत हो उठी। बहुतों ने भागने का

प्रयास भी आरम्भ कर दिया। बहुत भाग भी चले। लेकिन तोम्बी सना शैलेन्द्र और चन्द्रावत को धराशायी होते दूर से ही देख चुकी थी। उसके तो अब क्रोध का ठिकाना न रहा। मानो क्रोधोन्माद में रणचंडी बन कर वह भागते हुए लोगों को ललकारते हुए स्वयं आगे बढ़ी।

वह उन भागते लोगों को सबोधित करते कह रही थी—"ओ, कायरो !!! ओ, पुरुष का शरीर धारण कर पौरुष को कलंकित करने वालो !!! भाग कर कहाँ जा रहे हो नामर्दो !!! अपनी माँ के दूध को लजाने वालो !!! अपने मृतकों की आत्मा को कलकित करने वालो !!! अपनी प्रतिज्ञाएँ याद करो !!!"

लेकिन फिर भी कुछ लोग भाग ही चले। और वे लोग जो साहस और उत्साह मे कुछ शिथिल होने लगे थे, एक परम सुन्दरी तरुणी की ललकार पर लजा कर पुनः साहसान्वित हो उठे। और युवकों का तो कहना ही क्या !

तोम्बी सना फिर बोली—"श्रीराधा-दामोदर के सामने अन्त तक लड़ने और न झुकने की शपथ खाने वाले बहादुरो !!! आगे बढ़ो ! आगे बढ़ो !!!"—कहते हुए पागल की भाँति स्वय सबसे आगे वह बढ़ चली। और उसके बाद अनेक तरुणियाँ भी। पुरुष अब पीछे रह गये। तोम्बी सना के नेतृत्व में लगभग दो दर्जन तरुणियाँ घेरे को तोड़ने के प्रयास में जूझने लगीं। युवकों में दुर्दम्य उत्साह भर आया। क्रोध भर आया। वे जगह-जगह से घेरे को तोड़ने लगे। नारों से आकाश रह-रह कर गूँजने लगा। मानो स्वयं आकाश मणिपुरी जनता के उस संघर्ष में साथ देने लगा ! सहानुभूति से भर-भर कर हुंकारें भरने लग पड़ा !

लेकिन उसी क्षण संयोग से स्वयं प्रेसीडेंट मौके पर आ पहुँचा। मणिपुरी महिलाओं के उस अतुल शौर्य और साहस पर वह मुग्ध हुए बिना न रहा। स्त्रियों पर होते अत्याचार से उसका कोमल सभ्य हृदय

जैसे दहल उठा। उसने जिला-मजिस्ट्रेट को डॉटा, एस० पी०, और डी० एस० पी० को भी—"शरम नहीं आती तुम लोगों को इस प्रकार स्त्रियों पर अत्याचार करते, और करवाते? जल्द बन्द करो इस हैवानी नाटक को!"

दूसरे ही क्षण जैसे जादू की छड़ी खा कर वह सारा नाटक बन्द हो गया। घेरा तोड़ दिया गया। प्रेसीडेंट के आदेश पर घायलों को जल्द-से-जल्द अस्पताल पहुँचाने का प्रयास आरभ किया गया। उसने बड़ी नरमी से उन लड़कियों से माफी मॉगी। उन शवों का जल्द दाह-संस्कार करने का उसने जनता से अनुरोध किया। और राज्य की ओर से सारे मामलों पर विचार करने का उसने आश्वासन भी दिया। विश्वास दिलाया। और उसने घायलो को स्वय 'स्ट्रेचर' पर लदवाने मे हाथ बॅटाया। लोकप्रिय प्रेसीडेंट होने के नाते उसकी अपील व्यर्थ न गई।

(२४)

प्रकृति जाने किन-किन तत्त्वो से विभिन्न मानवों की सृष्टि किया करती है। एक ही रक्त से, समान रज-वीर्य से, एक ही कुल और जाति मे, एक ही परंपरा में पैदा हुए और पले-पुसे मानवों की प्रकृति एक-सी नहीं होती! विचार एक नहीं होता! चरित्र भी भिन्न-भिन्न होता है! मुक्तावती राजवंश में पैदा हुई। उसी वातावरण में पली-पुसी, पर न उसे अपने राज-रक्त का अहंकार था और न उस वातावरण से मोह। और जिस मॉ-बाप के रक्त से उसके शारीरिक एवं मानसिक तन्तुओं का निर्माण हुआ था, उनके स्वभाव से भी उसके स्वाभाव का जैसे कोई मेल न था। कोई साम्य न था। मुक्तावती चन्द्रावत को हृदय दे चुकी थी। हृदय से उसे अपना जीवन-सहचर मान चुकी थी। उसके मॉ-बाप भी चन्द्रावत से अपनी एकमात्र कन्या का विवाह करने को राजी हो चुके

थे। वचन-बद्ध हो चुके थे। किन्तु जब चन्द्रावत ने मजिस्ट्रेट के ओहदे को लात मार कर गरीबी को गले लगा लिया और बागी बन चला तो झट उनका विचार भी बदल चला। वचन कायम न रह सका। लेकिन मुक्ता का विचार नहीं बदला। उसका हृदय नहीं बदला। बल्कि मन-ही-मन वह मानो शिव-निष्ठ पार्वती के इस मानसिक संकल्प को बड़ी दृढ़ता से दोहराने लगी—"बरौं सभु न त रहौं कुमारी!" किन्तु स्वभाव से गभीर होने के कारण अपने इस भाव को वह प्रकट न कर पाती। चुपचाप अपने हृदय के संकल्प, वेदना और वितृष्णा को छिपाये अपने दैनिक कार्यों में वह लगी रहती।

वह अत्यन्त वितृष्णा-भरे हृदय से सोचा करती—"जिन गुणों के कारण चन्द्रावत आज जन-जन के मन का अधिनायक बनता जा रहा है, आश्चर्य कि वे ही गुण मेरे माता-पिता की दृष्टि में दुर्गुण बन गये! यदि वह निरीह जनता पर होते अत्याचारों की ओर से अन्धा, और उसकी दर्दभरी कराहों की ओर से बहरा बन कर मजिस्ट्रेट के पद से चिपका रह जाता, तो मेरे माँ-बाप की आँखों में वह रत्न होता! परम स्पृहणीय होता! पर हाय! जनता की मूक पुकार पर उस मिथ्या शान-शौकत और भोग की गद्दी पर लात मारते ही वह नगण्य बन गया! अग्राह्य बन गया!" फिर एकाएक क्रोध और घृणा से भर कर वह बोल पड़ती—"धिक्कार है ऐसी दृष्टि को! धिक्कार है इस शान-शौकत और भोग के जीवन को! और धिक्कार है इस जीवन की उस अधम आकांक्षा को!" और इतना सोचते ही उसकी नजरों में राज-कर्मचारियों का सारा वर्ग उभर आता। वह पुनः घृणाभरे हृदय से बोलने लगती—"भोग के जीवन को प्राप्त करने, उसे कायम रखने और बढ़ाने के निमित्त कितने छल-कपट, कितनी चापलूसी, कितनी क्रूरता एव नीचता का आश्रय लेना पड़ता है इन्हें! इस जीवन के लिए इनके जीवन का आदर्श है—'सबलों से डरो, दबो; और दुर्बलों

को दबाओ, सताओ !' और तब उसके मुँह से निकल ही पड़ता—
"घृणित कुत्ते ! मनुष्य के रूप में पशु !"

और आज की दुर्घटना की खबर से जब मणिपुर का सारा आकाश मुखरित हो उठा था, मणिपुर से बाहर के अखबार तक जब अपने कालमों को सजा रहे थे, फिर मुक्ता ही कैसे अनजान रह जाती उस खबर से ? राजवंश की बस्ती से पैदल कुछ मिनट की दूरी पर ही घटी दुर्घटना की खबर उसके कानों मे पहुँचने से कैसे रह जाती ? और जब सारी दुर्घटना की खबर उसके कानों में पहुँची तो वह स्थिर न रह सकी ! हृदय उसका विचलित हुए विना न रहा !

आज वह रात का भोजन न कर सकी। किसी बहाने ही वह माँ के आग्रह से मुक्त हो सकी। मच्छरदानी के अन्दर अपने पलग पर मन मार कर वह लेट गई। और एक-एक करके उसके मन की आँखों में वह दुर्घटना साकार होती रही। मानो वह दुर्घटना उसे बार-बार धिक्कारने लगी। उसपर तानो के तीर बरसाने लगी—"मुक्ते ! तेरा पति आज अन्याय के विरोध मे लाठियाँ खा कर जेल के अस्पताल में पड़ा पीड़ा से कराह रहा है ! और तू, इस प्रकार निष्क्रिय बन कर पलग पर लेटी हुई अपने-आपमे मशगूल है ! छी !" और तब उसी क्षण उसकी इच्छा प्रबल हो पड़ी अस्पताल की ओर चल देने की। वह पलग पर उठ कर बैठी भी। लेकिन झट भावना का उन्माद जरा कम हो चला। उस अँधेरी रात में कैसे वह अस्पताल जा सकेगी ? और वहाँ जाने की अनुमति उसे कैसे और क्योंकर मिल सकेगी? यथार्थ ने भावना पर काबू पाया। पर यथार्थ ने ही उसमें भावना की फिर सृष्टि भी करनी शुरू की। अनिष्ट की आशका से वह विचलित हो उठी। चन्द्रावत के शरीर की वास्तविक स्थिति जानने को अधीर हो उठी। "चोट घातक तो नही ?" —वह बार-बार अपने-आपसे पूछने लगी। लेकिन अपने भाई नरेन्द्र चन्द्र को यह कहते वह सुन चुकी थी कि कड़ी चोटों के बावजूद वे सब

होश में आ चुके हैं। डाक्टरों ने उनकी दशा को खतरे से बाहर घोषित कर दिया है। मुक्ता मन-ही-मन देवी-देवता को मनाने लगी। भगवान से प्रार्थना करने लगी—"डाक्टरों का कथन सच हो, सच हो भगवान! सच हो गोविन्दजी!"

अब उसकी आँखों मे तोम्बी सना की मूर्ति भी उभर आई। उसकी आज की असाधारण वीरता की चर्चा हर जबान पर थी। मुक्ता के कान भी उस चर्चा को सुन चुके थे। नमक-मिर्च लगा कर पहुँची हुई चर्चा कम विस्मयजनक न थी। तोम्बी मुक्ता की सहपाठिन रह ही चुकी थी। तोम्बी के पिता श्रीअचउ सिंह के सम्मानित व्यक्तित्व के कारण उनकी पुत्री को राजकुमारियों के साथ पढ़ने का मौका मिल चुका था। इस बीच भी तोम्बी उससे अक्सर मिला करती। वह तोम्बी के व्यक्तित्व से प्रभावित होते हुए भी यह कभी सोच न सकी थी कि वह इस असाधारण साहस और शौर्य का परिचय दे सकेगी! उसे तोम्बी से ईर्ष्या हो चली। वह मन-ही-मन पछताते हुए बोलने लगी—"आह, यदि आज तोम्बी के साथ मैं भी होती! मैं भी यदि उसी प्रकार लाठियो का सामना करती हुई नारी जाति के गौरव को ऊँचा कर पाती! अपने देवता, अपने चन्द्रावत के सम्मान को ऊँचा कर पाती! उसका साथ दे पाती!"

अवसर के हाथ से निकल जाने पर जैसे वह खूब दुखी हो पड़ी। और पुनः तोम्बी सना उसकी आँखों में प्रकट हो पड़ी। ईर्ष्या, आदर और भावना से भरे स्वर में वह बार-बार बोलने लगी—"तू अति महान है तोम्बी! अति विशाल! नारी जाति का बहुमूल्य रत्न! वीरांगना 'चित्रांगदा' की साक्षात् प्रतिमूर्ति! हम राजकुमारियाँ व्यर्थ ही चित्रांगदा के वंश में उत्पन्न होने के अभिमान और अहंकार में झूमती हैं! पर तू, मइतेइ है तो क्या? पर वास्तव में तू ही उस अनुपम वीरता की ऊँची विरासत की सच्ची अधिकारिणी है तोम्बी, जिसके

आज भी मणिपुर का नाम बाहरवालो के मन मे आदर और आश्चर्य पैदा करता है! तू धन्य है तोम्बी, धन्य! तेरे माता-पिता धन्य हैं! तेरी मइतेइ जाति धन्य है! स्वय सारा मणिपुर धन्य है!"

फिर एकाएक उसके मानस-पट पर चन्द्रावत का गर्व-गुम्फित उद्दाम व्यक्तित्व प्रकट हो पड़ा। वह पुनः अत्यन्त आदर और स्नेह से भावनाभरे स्वर मे बोल उठी—"सचमुच वह मइतेइ जाति धन्य है, वह माँ धन्य है, जिसने तुम्हे पैदा किया मेरे देवता! मेरे भगवान्! मेरे हृदय के सर्वस्व! और मै स्वयं भी धन्य हूँ तुम्हारे चरणों मे अपने हृदय को चढ़ा कर, मेरे जीवन! मेरे जीवन के सर्वस्व!"—कहते-कहते उसका हृदय बडे वेग से उच्छ्वसित हो उठा। आँखों में भावना के आँसू भर आये। वह गद्गद कठ से फिर बोली—"मेरे जीवन! तुमसे मै अलग हूँ कहाँ! पर खेद यही कि आज अलग-थलग पडी तुम्हारे कन्धे से कन्धा भिडा कर मै साथ नही चल पा रही! धिक्कार है मुझे! शतशः धिक्कार है कि मै अब भी तुम्हारे कार्य से उदासीन हूँ! तटस्थ हूँ!"—कहते-कहते वह एकाएक आवेश मे आ कर बिछौने पर उठ बैठी। फिर दृढ़ सकल्पभरे स्वर मे वह बोली—"नही, मेरे जीवन! मेरे जीवन के सर्वोच्च साथी! मै अब तटस्थ नहीं रह सकती! अलग नहीं रह सकती! तुमसे और तुम्हारे उद्देश्य, आदर्श और कार्य से मुझे अब कोई अलग नही रख सकता! अलग नहीं कर सकता!"

और तब मणिपुर-नरेश भी उसकी नजरो मे आ प्रकट हुए। उसका हृदय घृणा और क्रोध से भर उठा। घृणा-भरे स्वर मे वह फिर बोली—"छी, महाराज! स्वय अंग्रेजो के दयापात्र होते हुए भी आज आप अपनी प्रजा पर मिथ्या धौस जमाने की खातिर इन क्रूर हथकडों पर उतर आये! छी! छी!! छी!!!...मै आपको मानती और जानती तो तब, यदि अंग्रेजों के आगे, अंग्रेजी प्रभुता के आगे नतमस्तक होने के बजाय आज भारत के हजारो-लाखो सपूतों की तरह आप भी अपना

सिर और सीना तान कर खड़े होते ! इस विदेशी शासन-शक्ति को चुनौती देते ! चुनौती देने वालो का साथ देते ! मणिपुर के अमर शहीद श्रीटिकेन्द्रजित् सिंह के चरण चिह्नों का अनुसरण करते हुए मणिपुर से अंग्रेजी प्रभुत्व को विनष्ट करने के सकल्प और प्रयास मे जीवन के सुख-भोगों का बलिदान करते ! पर उलटे देश में विदेशी सत्ता के साम्राज्यवादी महल का एक स्तभ बन कर अपनी गरीब प्रजा को इस प्रकार सताते आपको जरा भी शर्म नहीं ! जरा भी सकोच नहीं ! छी ! छी !! छी !!!"

इस घृणाभरे उद्‍गार के साथ ही उसकी दृष्टि में भारत के सभी देशी राज्यों के नरेशो की स्थिति भी स्पष्ट हो उठी। और साथ ही अंग्रेजी राज्य के सभी हाकिम-हुक्कामों की भी। दूसरों की दया पर, दूसरों के घृणामय सरक्षण की छाया मे झूठी हेकड़ी व ऐंठ बघारने वाले इन सभ्य-संभ्रान्तों का असली रूप उसकी आँखों में उभर आया। हृदय पुनः घृणा और विरुचि से विकुंचित हो उठा। लेकिन दूसरे ही क्षण जब भारत के हजारों देशभक्तों की बिरादरी में प० कृष्णमाधव, चन्द्रावत, शैलेन्द्र आदि नर-वीरों के चेहरे उसके नयनों में उभर आये तो हृदय सहसा श्रद्धा, स्वाभिमान और समादर से आप्लावित भी हो उठा। मानो उसकी सरल सुसंस्कृत आत्मा उन्हीं लोगों की आत्मा से तादात्म्य स्थापित कर चुकी हो ! और पुनः ज्योंही आज के 'लाठी-चार्ज' की दुर्घटना व चन्द्रावत आदि के सिर फूटने व कमर टूटने के स्वकल्पित दृश्य उसकी स्मृति में ताजा हो उठे, तो वह मारे क्रोध और विक्षोभ के उबल भी पड़ी—"मैं बदला लूँगी ! इन पापियों से बदला ले कर रहूँगी ! मेरे जीवन के सर्वोच्च सर्वस्व ! तुम अब चिन्ता न करो ! मेरी आँखों के चाँद ! मेरे चाँदा ! मैं तेरा हाथ बटाऊँगी ! कन्धे से कन्धा भिड़ा कर तेरे साथ चलूँगी ! तू यदि जेल में होगा, तो बाहर तेरे काम को जारी रखूँगी ! मैं तेरे मार्ग पर चलती हुई अत्याचारियों के सारे

अत्याचार, लाठियों और गोलियों के सारे प्रहार हँसी-खुशी बर्दाश्त करूँगी ! तेरे रास्ते पर चल कर यदि जेल भी जाना पडे, यदि जेल मे सड़ना-गलना भी पड़े, तो वह सूना, नीरस और पीड़ाभरा जीवन भी मुझे सुख और सतोष देगा मेरे देवता ! और तभी मै तुझे सच्चे अर्थों में पा सकूँगी मेरे चॉद ! मेरे चॉदा !"—कहते-कहते वह भावना मे अवश हो पड़ी। हृदय मानो फूट-फूट कर आँखो से बहने लगा।

हृदय के इन आँसुओं ने ही मानो मणिपुर-इतिहास की चार-पॉच सौ साल पहले की एक घटना को उसकी आँखो मे अचानक ताजा कर दिया। 'महासती थोइबी' और 'खम्ब' की अमर प्रेम-गाथा उसके स्मृति-पट पर चल-चित्र की तरह गुजरने लगी। संक्षेप मे वह घटना यो थी—

उन दिनों मणिपुर की मुख्य राजधानी, आज की राजधानी इम्फाल से करीब सताईस मील दक्षिण 'मोयराङ' मे थी। अर्थात् उन दिनों मणिपुर के अनेक राजाओ मे मोयराङ के राजा की प्रधानता थी। राजा स्वय निःसन्तान था, पर अपनी परम सुन्दरी भतीजी 'थोइबी' को वह सन्तान के स्नेह से ही पाल-पोस रहा था। थोइबी द्वितीया की चॉद की तरह दिनों-दिन रूप और गुण से समृद्ध होती जा रही थी।

फूल की वह कली जब यौवन-वसन्त मे खिल कर अपना सौरभ बिखेरने लगी, तो अनेक धनवान राजवंशी युवक भौरो की तरह उसकी सौरभ-माधुरी से आकृष्ट हो-हो कर उसके आस-पास मँडराने लगे। पर थोइबी उदासीन बनी रही। किन्तु उसकी यह उदासीनता सदा बनी न रह सकी। आखिर एक उपयुक्त भौरे ने स्वय उसे आकृष्ट किया। 'खम्ब' नामक एक नवयुवक ने उसके दिल पर बड़ा गहरा अधिकार जमा लिया। खम्ब बड़ा बलवान था, पर साथ ही बड़ा गरीब भी। वह 'मुकना' (एक प्रकार की कुश्ती) और 'कॉजै' (पैदल-पोलो) आदि अनेक खेलों में स्वयं राजा द्वारा अनेक बार पुरस्कृत भी हो चुका था।

किन्तु जब राजा को मालूम हुआ कि उसकी थोइबी उस धनहीन

कुलहीन युवक से प्रेम करने लगी है तो उसके क्रोध की सीमा न रही। राज-रक्त का अहकार जैसे आग बन गया। राजकुमारी थोइबी का ऐसा दुःसाहस कि वह एक सामान्य कुल के धनहीन युवक को पति रूप में स्वीकार करने का प्रयास करे! विचार करे! अपने उज्ज्वल राजवश को कलकित करने के पथ पर पैर रखने की धृष्टता करे! राजा चाहता था कि थोइबी 'नोम्बाल' नामक धनी राजकुमार से विवाह करे। नोम्बाल सुन्दर था, बलवान था, पर महाबली 'खम्ब' में आसक्त थोइबी के मन को वह अपनी ओर मोड़ने मे किसी प्रकार भी सफल न हो सका; जैसे चॉद से कोई चॉदनी को अलग नहीं कर सकता। मानो थोइबी की असाधारण निष्ठा की चट्टान से टकरा कर नोम्बाल के सारे प्रणय-प्रयास व्यर्थ हो गये। फलतः नोम्बाल खम्ब से खूब ईष्या करने लगा, खूब घृणा भी। और तरह-तरह के षड्यन्त्रों से खम्ब को विनष्ट करने के प्रयत्न में वह लग पड़ा। किसी सुन्दरी से सबद्ध प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता बड़ी ही क्रूर होती है! बड़ी ही जघन्य!

उन दिनों एक महाबलशाली जगली साँड के आतक से सारा मोयराङ काँप उठा था। भयभीत हो उठा था। साँड जब किसी भी अन्य उपाय से काबू में न लाया जा सका तो राजा ने मानो राजा जनक की तरह इस शर्त की घोषणा की—"खम्ब और नोम्बाल दोनों में से जो भी उस साँड को वश में करेगा अथवा उसे पकड़ कर दरबार में हाजिर करेगा, सुन्दरी थोइबी के पाणि-ग्रहण का वही अधिकारी होगा!" राजा की छिपी जालसाजी थी कि खम्ब साँड द्वारा मार डाला जाये और थोइबी का नोम्बाल से विवाह कर दिया जाय। पर राजा का षड्यन्त्र सफल न हो सका। खम्ब ने साँड को वश में कर लिया। उसे राजा के समक्ष उपस्थित भी किया। पर राजा अपने वचन से मुकर गया।

राजा मन-ही-मन और भी क्रुद्ध हो उठा। असफलता का पिशाच मानो और भी उग्र हो उठा। अब निश्चित रूप से 'खम्ब' को पार-घाट

लगाने का प्रबल संकल्प उस पिशाच के मन को आन्दोलित करने लगा। फलस्वरूप एक दिन उसने उसे धोखे से पकड़वा कर अपने महाबली मद-मत्त गजराज के पैरो मे बँधवा कर कुचलवा देना चाहा। ऐसा उसने किया भी। उसी दशा मे अर्थात् हाथी के पैरों से बँधे मूर्च्छित खम्ब को सरे-आम घुमाया गया, घसीटा गया। और जब थोइबी को इस दुर्घटना का पता चला तो वह क्रोध और शोक मे जैसे पागल हो स्वय तलवार ले कर खम्ब की रक्षा के निमित्त दौड़ पड़ी। जैसे स्वय उसके प्राण संकट में पड चुके हो। वह खम्ब को छुड़ाने में सफल हुई। पर वह बुरी तरह घायल था! बेहोश था!

अब थोइबी राजा के क्रोध की जरा भी परवाह न कर खम्ब के घायल बेहोश शरीर को अपने कन्धे पर लाद कर चली गई उस गरीब की झोपड़ी मे। उस सती की अथक सेवा और सुश्रूषा से खम्ब आखिर मृत्यु के मुख से बाहर आ गया। जैसे सावित्री ने सत्यवान को मृत्यु के मुख से छीन लिया हो! थोइबी अब खम्ब की पत्नी बन कर सदा के लिए उसके घर मे रह गई। बस गई। और तब से 'महासती थोइबी' की अमर प्रेम-गाथा से मणिपुर की लोक-गाथा महिमान्वित हो उठी! जैसे जन-जन के मन की प्रेरणा का वह स्रोत बन गई!

इस क्षण मुक्ता का मन ज्यों-ज्यों इस कथा से गुजरने लगा, त्यो-त्यो वह चन्द्रावत को पाने को व्याकुल हो चली। और मणिपुर-नरेश के प्रति त्यों-त्यों उसका मन घृणा से विलोड़ित और विस्फारित हो चला। क्योकि उसे निश्चित रूप से पहले ही मालूम हो चुका था कि स्वय नरेश अब मुक्ता और चन्द्रावत के विवाह में प्रबल बाधक हैं। लेकिन थोइबी के उस अनुपम साहस और दृढ़ निष्ठा की स्मृति ने उसके हृदय मे भी साहस और सतीत्व की जैसे आग फूँक दी। चन्द्रावत की उस निर्धन कुटिया में उसका मन बड़े बेग से दौड़ पड़ा। वह चन्द्रावत को जल्द-से-जल्द पाने को अत्यन्त आकुल हो उठी। मानो स्वयं महासती थोइबी

उसके दिशा-भ्रान्त पथ की निर्देशिका बन कर उसकी आत्मा में प्रविष्ट हो गई हो !

अब वह पलंग पर पड़ी न रह सकी। रात काफी बीत चुकी थी। निद्रा में सारा घर निस्तब्ध हो चुका था। सारी बस्ती निस्तब्ध हो चुकी थी। वह पैर बचाती कमरे से निकल कर बीच आँगन मे स्थित तुलसी के झाड़ीनुमा पौधे के पास आ कर बैठ गई। हृदय में उठते उच्छ्वासों पर काबू पाने का प्रयत्न करते हुए घुटनों के बल बैठ उसने तुलसी-तरु के आगे सिर टेक दिया। आँसुओं की अजस्र धारा के बीच वह मन-ही-मन गद्गद स्वर मे बोलने लगी—"माँ वृन्दे ! मुझे मेरे चाँदा के पथ पर चलने का साहस और सकल्प दे माँ ! मेरे हृदय में सतीत्व की वह आभा, वह सकल्प भर दे माँ, कि मैं अपने चाँदा को अवश्य, अवश्य-मेव पा सकूँ ! तू देवी है ! सतियों की शिरोमणि है ! मेरे हृदय के अन्तस्तम में छिपे उस भाव को तू जानती है माँ, कि मेरा हृदय उसे वर चुका है ! मैं उसकी कुर्सी से नहीं, उसकी गद्दी से नहीं, वरन् उसकी उज्ज्वल आत्मा और गर्वोन्नत पौरुष से बँधी थी माँ ! मैं रोज-रोज तुझे पूजती आई हूँ ! मुझे यह वर दे माँ, कि मेरे हृदय का यह पवित्र भाव सदा बना रहे ! मुझमें महासती थोइबी कि वह शक्ति भर दे माँ, कि मैं अपने चाँदा का रक्षा-कवच बन कर उसके साथ-साथ चलूँ ! उसके पथ पर चलती रह कर सारे दुखों का, मुसीबत की आँधी और तूफानों का हँस-हँस कर सामना करती रहूँ माँ ! जय माँ !"

और उसी समय मानो माता वृन्दा की स्वीकृति और प्रसाद के रूप में वसन्त की धीमी-धीमी हवा रजनी-गन्धा के फूलों से छन-छन कर बहने लगी। मुक्ता का मन आश्वस्त हो चला। वह उठ कर अपने आँसू पोंछती अपने कमरे में वापस आ गई। और बिना किसी आहट के अँधेरे में ही दो-चार पुस्तकें और कुछ कपड़े अपनी हाथ-झोली में भर कर, अपना चप्पल पहन धीरे से कमरे से निकल कर मंडप में

आ गई। और मन्दिर के आगे झुक कर राधा-कृष्ण को नमस्कार कर, और फिर दूर से ही श्रीगोविन्दजी की ओर मुँह करके उन्हें भी सिर झुका वह पैर बचाती आगे चल पड़ी।

मुक्तावती शिष्टाचार-वश एक-दो बार पहले भी चन्द्रावत्त के घर जा चुकी थी। अतः रास्ता देखा हुआ था। लेकिन जब वह अपनी बस्ती के अहाते से बाहर निकली तो सहसा रात के दो का घंटा बजा। उसे सहसा ख्याल हो आया कि इतनी रात को जाना ठीक न होगा। दो मील पैदल चल कर भी रात काफी शेष रहेगी। अतः वह पास के जंगल में बढ़ चली। एक वृक्ष की घनी छाया के नीचे बैठ कर रात्रि-शेष की प्रतीक्षा वह करने लगी। किन्तु अब तक उसका मन काफी हलका हो चला था। पर महासती थोइबी की अमर प्रेम-गाथा की ताजी-ताजी स्मृति उसके मन से मिट न सकी। खम्ब के घायल और बेहोश हो जाने की खबर पा कर मारे शोक के जब थोइबी कुछ क्षण के लिए स्वयं बेहोश हो चली, तब 'वनदेवी' ने बेहोशी के उस स्वप्न में प्रकट हो उसे धीरज बँधाया था। विश्वास दिलाया था। किसी लोक-कवि की लेखनी से प्रसूत वनदेवी के आश्वासनभरे वे संगीतमय सुमधुर पद अब मुक्ता के गले में उतर आये। अपने कोकिल-कंठ से उन पदों को वह मन-ही-मन दुहराने लगी, गुन-गुनाने लगी—

> "मपुरो इबा-निम्बी हे सती अथोइबी,
> हौगत्लो वान्थव मतम नत्ते।
> नपुराइब न नम्बु थादोकुते!"

गाते-गाते ज्यो-ज्यों वह इन पदों के अर्थ पर ध्यान देती, त्यो-त्यों मारे खुशी के वह झूम जाती! कितना सुन्दर और सरस सन्देशा था स्वयं मुक्ता के लिए—"अपने पति के ध्यान में मग्न रहने वाली हे सतियों में श्रेष्ठ! उठो, जागो! मूर्छा का समय अब नहीं रहा! तुम्हारे पति ने तुम्हें छोड़ा नहीं!"

जंगल के वृक्षों एवं तरु-लताओं से टकराते और गूँजते हुए उसके अपने धीमे स्वर मानो उसे स्वय वनदेवी के स्वर प्रतीत हो रहे थे। कुछ देर पहले का अपना सारा क्रोध और शोक भूल कर उसका मन मानो अमृतवर्षी परम रस से आप्लावित हो उठा। किन्तु ज्यो ही तीन का घंटा बज उठा, वह अचानक मानो मीठी नींद से घबरा कर उठ खड़ी हुई, और फिर पैर बचा कर चलते चलते मुख्य सड़क पर आ पहुँची। और जब वह लगभग पौन घंटे बाद चन्द्रावत के घर पहुँची तो अब भी उषा की रोशनी पूरी तरह फूटी न थी। मुहल्ला अब भी निस्तब्ध था। लेकिन चन्द्रावत की माँ की आँखों से निद्रा जैसे रूठ चुकी थी। कल की दुर्घटना ने उनके हृदय मे क्रोध और क्षोभ, व्यथा और वितृष्णा की सृष्टि करके मानो नींद उनसे छीन ली थी। लेकिन फिर भी वे दैनिक श्रम का अपना नियमित काम भूली न थीं। इस समय भी रसोई-घर मे टिमटिमाते दीपक की रोशनी मे वे चरखे पर सूत कात रही थीं। अचानक अपने सामने उभरी छाया से तनिक चौंक कर उनकी आँखें ऊपर उठ आईं। सूत कातना छोड़ क्षण-भर अवाक आँखों से उस मूर्तिमान छाया को निहारने लगीं। और मुक्ता ने झट घुटने टेक उनके चरणों पर सिर रख दिया।

गद्गद स्वर में वह बोली भी—"मैं मुक्ता हूँ इमाँ! तुम्हारी बहू! तुम्हारे वीर पुत्र की वधू! अपनी पुत्री को स्वीकार करो! अपने चरणों में जगह दो इमाँ!"—कहते-कहते मुक्ता का स्वर अत्यन्त विह्वल हो उठा।

तब माँ को भी अपनी आँखों पर विश्वास करना पड़ा। यह निरा स्वप्न न था, बल्कि उनके हृदय का चिरसंचित स्वप्न जैसे स्वय मूर्तिमान हो उनके चरणों पर लुढ़क पड़ा हो! उन्होंने झट मुक्ता को धरती से उठा कर अपनी स्नेहमयी भुजाओं में बाँध लिया। मुक्ता उनकी छाती में सिर टेके कुछ देर रोती रही। और माँ का मानो सारा हृदय पिघल-

पिघल कर उसके सिर को भिगोने लगा। मानो जन्म-जन्मान्तर की माँ अपनी जन्म-जन्मान्तर की पुत्री को अपने अंक में इस प्रकार अतर्कित रूप से पा कर निहाल हो उठी! कृत-कृत्य हो उठी!

(२५)

पं० कृष्णमाधव, चन्द्रावत, शैलेन्द्र आदि दर्जनों प्रमुख कार्यकर्ता अभी अस्पताल मे ही नजरबन्द किये जा चुके थे। स्त्रियो को नजरबन्द या गिरफ्तार नहीं किया गया। किन्तु अस्पताल की चिकित्सा या परिचर्या के निमित्त वे पुरुषों के साथ ही रखी गई। तोम्बी सना को चोट तो खूब लगी थी, और कुछ क्षण के लिए वह बेहोश भी हो चली थी, किन्तु वह बीमार न बन सकी। बीमार बनने से उसने मानो साफ इनकार कर दिया। लेकिन अपनी साथी तरुणियो की वह स्वयं बड़ी तत्परता से डाक्टर से परिचर्या कराती रही। और स्वय 'नर्स' का काम करने लगी। अपनी घायल सखियो और पुरुषो को मजाक-भरी बातो से हँसाने भी लगी। इस प्रकार उनकी पीड़ा को कम करने लगी।

आज वह शैलेन्द्र के बिलकुल निकट आ चुकी थी। यत्किंचित् मानसिक पर्दे की द्विधा-बाधा भी अब नष्ट हो चुकी थी। शैलेन्द्र अपनी समस्त घातक चोटों की पीड़ा इस क्षण भूल कर आनन्द में जैसे खो चुका था। वह रह-रह कर तोम्बी सना को कनखियों से देख लेता। फिर अपने साथियो के संकोच से आँखें मूँद कर अपने-आप मे खो जाता। लेकिन तोम्बी उसके प्रति अपनी आसक्ति को जरा भी जाहिर होने न देती। मानो इस क्षण सभी उसके प्रिय 'कामरेड' थे। सघर्ष के प्रिय साथी।

पं० कृष्णमाधवजी मुसकाते हुए भावना-भरे स्वर में बोल पड़े—"आज तो मारे गर्व के मेरी छाती फूल उठी साथियो! तोम्बी जैसी बेटियों ने आज मुझे सचमुच विश्वास दिला दिया कि विजयी हम अवश्य

होंगे ! हमारी अन्तिम विजय को कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती !"

तोम्बी प्रशंसा के संकोच से तनिक अप्रतिभ हो चली। चेहरे पर लाली उभर आई। फिर मुसकाती हुई आदरभरे स्वर में वह बोली—"और आप जैसे बापों पर भी तो हमें कम गर्व नहीं पंडितजी ! यदि आप जैसे वीर बाप न होते, और मेरे दादा जैसे वीर भाई, तो हम बेटियों और बहनों को संघर्ष में आने का मौका ही कैसे मिल पाता ?"

पं० कृष्णमाधवजी सकुंचित स्वर में मुसकाते हुए बोले—"मेरा बखान न करो बेटी ! बखान करो अपने वीर दादा का और अपने दादा जैसे अनेक साथियों का, जिनके साथ और सहयोग के बल पर ही मैं नेता बना हुआ हूँ ! पर हृदय से कहता हूँ बेटी, कि वास्तव मे मेरे नेता तुम लोग हो ! मैं तो अपनेको एक सैनिक और साथी मान कर ही तुम सबोंके साथ चल रहा हूँ ! चलने में गर्व अनुभव कर रहा हूँ !"—कहते-कहते कृष्णमाधवजी की आँखें जरा गीली भी हो उठीं।

तोम्बी ने लक्ष्य किया। उसका हृदय भी उच्छ्वसित हो उठा। लेकिन स्नेह-भरे स्वर में पंडितजी को सावधान करते हुए बोली भी—"मगर मेरी प्रार्थना है कि अभी आप कुछ न बोलें ! मैं स्वयं अपनी आँखों आज देख चुकी हूँ कि कितना खून आपके सिर से बहा है ! वह आपका खून नहीं, वह मणिपुर का प्राण था पंडितजी ! अब आप चुपचाप विश्राम करें !"—उच्छ्वसित स्वर में इतना कह कर वह उनके पैताने में बैठ उनके पैर सहलाने लगी।

"लेकिन तू क्यों अपने कष्ट को कष्ट नहीं समझ रही ?"—कृष्ण-माधवजी ने उससे वात्सल्यभरे स्वर में अनुरोध करते हुए कहा—"स्वयं भी तो विश्राम कर तू ! यह शरीर अब तेरा नहीं, सारे मणिपुर का हो चुका है बेटी ! तुम जैसी बेटियों से जाने मणिपुर को अभी कितनी आशाएँ हैं !"

"मैं तो अब घर जा कर ही विश्राम करूँगी ! सहेलियों की दवा-

दारू हो चुकी है। फिर उन्हें ले कर सवेरे ही चल दूँगी।"

"लेकिन अभी तो जा कर विश्राम कर!"—इस बार पंडितजी ने स्नेह-भरे किन्तु कुछ कड़े स्वर में, तर्जनी तान कर उसे आदेश दिया—"रात अभी शेष है! कृष्णमाधव का नहीं, अपने नेता का आदेश मान कर जा, सो जा अपने बिस्तर पर!"

और तोम्बी बगैर आना-कानी के अपने नेता का आदेश स्वीकार कर अपनी सहेलियो के बिस्तर को एक बार अच्छी तरह देख अपने बिस्तर पर जा लेटी।

× × ×

दूसरे दिन सवेरे ही तोम्बी अपनी सखियों के साथ सीधे चन्द्रावत के घर पहुँची। तमाशबीनो की भीड़ जमते देर न लगी। उसकी अपनी माँ दौड़ी हुई वहाँ पहुँचीं और उसके चोट-खाये सिर को देख उसपर हाथ फेर उसे झिड़कने भी लगीं—"बड़ी मर्द बन कर जा पहुँची राजा से लड़ने! कल कितना रोका, समझाया, मगर आज-कल की लड़कियाँ तो माँ-बाप का कहना मानने से रही! रात मारे चिन्ता के किसीको भी नीद न आ सकी। किसीके भी मुँह मे अन्न का एक दाना न जा सका! वह तो रासबिहारी ने बताया कि तोम्बी अभी मरी नही! अगर मर गई होती तो मेरी छाती ठंढी होती! बाप का मन खुश होता!"—कहते-कहते वे स्वय रो पड़ीं। और फिर उसका हाथ पकड़ कर खींचते हुए बोलीं—"चल, तेरे हाथ-पैर तोड़ कर बन्द कर दूँ घर मे! वहाँ से सिर फुड़वा कर अब आई बडी वीर-बंका बनने! चल, चल अपने बाप को जरा मुँह तो दिखा!"

और तोम्बी हाथ छुड़ाते मुसकाते हुए बोली—"अगर वहाँ नहीं मरी तो अब तुम्हारे सामने मरती हूँ इमाँ! और मुझे तो खुशी होगी कि अपनी माँ की गोद में मरूँगी!"

और माँ अश्रुभरे नेत्रों से झट उसकी गाल पर एक हलकी चपत

लगा कर झिड़कते हुए बोलीं—"फिर वही अमंगल की बात! अगर फिर कभी ऐसी बात जबान पर लाई तो!"

"तुम्हीं तो कह रही थीं इमॉ!"—तोम्बी हँस कर इतना कह कर गाल को हथेली से सहलाते हुए चोट लगने का अभिनय करते बोली—"उफ, बड़ी चोट लगी इमॉ! उधर मुए पुलिस की लाठी की मार, और इधर अपनी माँ की मार! किस-किसकी बर्दाश्त करूँ अब!"

इस जवाब से दूसरी सखियाँ खिलखिला पड़ीं। और उसकी माँ खिसिया कर सबसे बोलीं—"किसीको भी लाज-शरम नहीं! अगर तुम लोगों को वहाँ मार खाने की इच्छा थी तो घर मे ही मार खा लेतीं! आजकल की लड़कियाँ क्यों डरने लगीं अपने माँ-बाप से भी! हित की बात क्यों सुनने और मानने लगीं!"

और पुनः सब लड़कियाँ बड़े जोर से हँस पड़ीं। और थम्बाल ने हँसते हुए उनसे व्यग किया—"तुमने तो ऐसी ढीठ बेटी पैदा की चाची, कि कल सारे पुलिस के लोग मारते-मारते थक गये, परेशान हो गये, मगर तोम्बी जरा भी डरी नहीं! बल्कि वे लोग खुद ही डर गये!"

तोम्बी की माँ जरा नाराजी का अभिनय करते हुए बोलीं—"चल! मेरी बेटी क्यों ढीठ? ढीठ तो तुम लोग हो कि कल सिर फुड़वा कर भी आज लाज-शरम धोके हँसे जा रही हो!"

फिर सब-की-सब खिलखिला पड़ीं। और उधर से चन्द्रावत की माँ तोम्बी का हाथ पकड़ कर दूसरी ओर खींचते हुए जरा कृत्रिम नाराजी के स्वर में तोम्बी की माँ से बोलीं—"बिटिया की दवा-दारू करोगी, उसे खाने-पीने को दोगी, कि लगीं आते ही उसे डाँटने! सबका मुँह सूखा हुआ है!"'आ तो बिटिया इधर! एक बड़ी अच्छी चीज दिखाऊँ तुझे!"—कहते हुए उसे उस कमरे की ओर खींच ले चलीं जहाँ मुक्ता चुपचाप बैठी उन सबकी बातें सुन रही थी। मन-ही-मन हँस भी रही थी।

और तोम्बी की माँ मानो ईर्ष्या से आकुल हो चन्द्रावत की माँ को उलहना देते बोलीं—"मेरी बिटिया को तुम लोगो ने ही खराब कर दिया है चाँदा की माँ ! मै जैसे उसकी माँ ही नही !"

लेकिन उनके क्रोध-भरे उलहने को सुनने के लिए चन्द्रावत की माँ खडी न रहीं। और तोम्बी जब कमरे में प्रविष्ट हुई तो उस अच्छी चीज को देखते ही दंग रह गई ! क्षणभर आँखों पर उसे विश्वास न हुआ ! लेकिन दूसरे ही क्षण मानो हर्ष मे उन्मत्त हो—"अरी तू ! तू कहाँ से आई मुक्ता ?"—कहते हुए उसके गले से लिपट भी पड़ी।

"अरी, ओ थम्बा ! ओ चन्द्रा ! ओ सत्या ! ओ शान्ती ! ओ रुक्मिणी ! दौड दौड़ ! इधर तो आ ! देख तो इस चिड़िया-घर में आज कौन-सी चिडिया आ गई ! कैसी सुन्दर चिडिया आ फँसी यहाँ !"

तोम्बी की आवाज पर सभी सखियाँ उधर दौड़ पडीं। और मुक्ता ने झट गला छुड़ा कर स्नेह-भरे स्वर मे डाँटा उसे—"धत् ! मै चिड़िया तू लेकिन तोम्बी, आज तक जरा भी नही बदली !"

और उधर सारी सखियाँ इस अतर्कित दृश्य एवं तज्जनित हर्ष के उन्माद मे ताली बजा मानो नववधू का स्वागत करने लगीं ! व्यग कसने लगी—"भाभी आई, भाभी ! भाभी चिड़िया, भाभी ! वाह मुक्ता भाभी ! धैर्य नही रहा ! डर गई कि कहीं दादा को कोई दूसरी चिडिया न फाँस ले ! इसी से आज ही दौड आई अपना अधिकार जमाने !"

तोम्बी एकाएक जरा गंभीरता का नाट्य करते हुए थम्बाल की ओर तर्जनी दिखा कर बोली—"हाँ भाभी ! अच्छा किया तुमने ! नहीं तो थम्बा बाजी मार ले जाती तुमसे !"

और थम्बाल तनिक लजा कर व्यग-भरे स्वर मे बोली—"कोई झूठ बोलना सीखे तो तोम्बी से ! डरो मत भाभी ! दादा फँसने वाले जीव नहीं ! लेकिन एक खुशखबरी सुना दूँ तुम्हें, कि तोम्बी ने जरूर फाँस लिया है एक बगाली चिड़े को ! कल रात अस्पताल में सबकी आँखें

बचा-बचा कर अपने चिड़े से इस प्रकार केलि-क्रीड़ा में लगी रही कि क्या बताऊँ तुमसे !"—कह कर वह जोर से हँस पड़ी ।

सभी सखियाँ भी जोर से हँसीं और बोलीं—"थम्बा बिलकुल सच कह रही है भाभी !"

तोम्बी की कनपटी तक लाल हो उठी । तर्जनी हिला कर और आँखें तिरछी करके संकोचभरे स्वर में वह बोली—"तुम सब झूठ में पारगत हो छोकरियो ! नहीं, भाभी ! विश्वास न करना कभी !"

और मुक्ता ने मुसकरा कर जवाब दिया—"मुझे सब कुछ मालूम हो चुका है तोम्बी ! और मुझे यह भी मालूम हो चुका है कि कल रात अस्पताल में ही तुम दोनों की शायद सच्ची शादी भी हो चुकी है !"—कह कर हलकी हँसी भी वह हँस दी ।

और तब चन्द्रा भी बोली—" 'शायद' नहीं भाभी ! तुम्हारी खबर बिलकुल पक्की है !"

और रुक्मिणी ने मुसकाते हुए स्पष्टीकरण किया—"अभी केवल मन की ही शादी हुई है भाभी ! ऊपर की होनी अभी बाकी है !"

और मुक्ता ने मुसकाते हुए जवाब दिया—"जब मन की शादी हो चुकी तो ऊपर के दिखावे की जरूरत क्या ? पक्की शादी तो मन की ही शादी होती है ?"

"तभी तो तुम भाग कर अभी से अपने पति के घर कब्जा जमाने आई हो न ?"—सामूहिक व्यंग से अप्रतिभ होते हुए भी तोम्बी ने हँस कर व्यंग कसा । मानो बदला चुकाया । फिर वह भाग चली रसोई-घर में चन्द्रावत की माँ के पास । उनका हाथ पकड़ कर उन्हें खींचते हुए कमरे में ले आई और बोली—"चाची ! नव-वधू का गृह-प्रवेश यों मुफ्त में नहीं होने का ! आज बहू-भात का भोज हम खा कर जायेंगी यहाँ से ! आज खूब भूख लगी है हमें । समझीं, चाची ?"

और चाची भी मानो एकाएक मजाक की तरंग में आ कर मुसकाते

हुए बोलीं—"आज मेरी दोनों बहुओं का भात-भोज एक साथ होगा तोम्बी !" फिर एकाएक उन लड़कियों को न्योता देते हुए—"आज तुम सब यहीं भात खाओ ! चन्द्रावत मेरी कोख का पुत्र है और शैलेन्द्र धर्म का ! दोनों की बहुएँ मौजूद हैं यहाँ ! मैं अपनी दोनों बहुओं के गृह-प्रवेश की खुशी आज एक साथ मनाऊँगी बेटियो !"

माँ का मजाक सुन कर केवल तोम्बी को छोड़ अन्य सभी लड़कियाँ हँस पड़ीं, और तोम्बी लजा कर जरा आँखें कुचित करके बोली—"जाओ चाची ! तुम भी मजाक करने लगीं !"

तोम्बी के सकोच-कुचित चेहरे को वात्सल्य-तरल नेत्रों से देखते हुए माँ इस बार गभीर स्वर मे बोली—"मजाक नही बिटिया ! भगवान जानते हैं कि मै चाँदा और शैलेन्द्र में कोई भेद नही करती !" कहते-कहते उनकी आँखे अचानक छलछला आईं। गद्‌गद कंठ से वे बोली—"वे दोनो आज यहाँ नही हैं ! मगर तुम दोनो को आज एक साथ यहाँ देख कर लगता है जैसे उन दोनों को ही मै देख रही हूँ बेटी !"—कहते-कहते उनकी आँखो से वात्सल्य की कई बूँदे भी लुढ़क पड़ी। आँखे पोंछ कर वे फिर बोलीं—"उन दोनो को इन पलगो पर आमने-सामने बैठ कर जब हर रोज बातें करते देखा करती, सुना करती, तो कुछ न समझते हुए भी रसोई-घर मे बैठी-बैठी मै इतनी खुश हुआ करती कि···। आज मेरे वे दोनो यहाँ नही हैं ! नही तो मैं इतनी खुशी मनाती कि···"

इतना कह कर वे हृदय के आवेग पर काबू पाने का प्रयत्न करते हुए झट चली गई रसोई-घर मे और कुछ क्षण बाद ही एक छोटी पोटली लिये पुनः उस कमरे में पहुँच कर उसे उन लड़कियों के हवाले करते हुए अत्यन्त खुशी और उदारता से भरे स्वर में बोलीं—"लो, यह रुपया ! यह मेरी अपनी मेहनत की कमाई का है ! जो-जो चीजें खाने की इच्छा हो, बाजार से खरीद कर ले आओ ! खूब खुशी से

बनाओ, और खूब खुशी से खाती जाओ !"

और जब थम्बाल तोम्बी ने पैसे गिने तो सौ रुपये से भी ज्यादा निकले। चीजों की उस सस्ती के जमाने में वे रुपये बहुत, बहुत ज्यादा थे।

थम्बाल पोम्बी बोली—"इतना सारा ले कर हम क्या करेंगी चाची? सारी बस्ती को जिमाना तो है नहीं !"—कह कर उसमें से उसने केवल बीस रुपये ले कर शेष उनके हवाले कर दिये।

(२६)

भोज-भात की तैयारी होने लगी। इस बीच उन लड़कियों की माताएँ वहाँ आ-आ कर उन्हें देख गईं। लेकिन अपने साथ वापस घर ले जाने में सफल न हो सकीं। बरन चन्द्रावत की माँ ने उन्हें भी जीमने का निमन्त्रण दे दिया। सारी सखियाँ मुक्ता और तोम्बी को घर छोड़ बाजार चली गईं। इधर तोम्बी मुक्ता को साथ ले अपने पोखरे में नहाने चली गई। जल्द नहा-धो कर वे वापस आईं। आँगन में तुलसी के पेड़ पर बड़ी श्रद्धा से 'वृन्दादेवी मचुम्' कह कर दोनों ने लोटे का जल डाला। और जरा-जरा तुलसी की जड़ की मिट्टी को बड़ी भक्ति से अपने मस्तक से स्पर्श कराया।

मुक्ता अपने साथ अपने हाथ की बनी तीन नक्काशीदार कीमती 'फनिक' की लेती आई थी, और तीन 'इनफी' और तीन 'फुरित्' भी। उनमें से सबसे सुन्दर एक-एक निकाल तोम्बी की ओर बढ़ा कर मुसकाते हुए वह बोली—"तोम्बी सना और शैलेन्द्र बाबू के प्रेम-विवाह के उपलक्ष्य में यह मेरे प्रेम का उपहार है तोम्बी! इसे ग्रहण करो! तुम दोनों का प्रेम सदा अमर रहे सखि!""तुम्हें मेरी शपथ! बार-बार शपथ! अस्वीकार न करो इसे!"

तोम्बी तनिक लज्जा से लाल अवश्य हो चली। किन्तु इस सशपथ

प्रेमोपहार को अस्वीकार वह न कर सकी। मुसकाते हुए, दोनों हाथ बढ़ा कर उसे ग्रहण करते हुए वह बोली—"और मैंने भी तुम्हारे लिए पहले से ही बनाके रख छोड़ा है भाभी!"—कह कर उस उपहार को उस कमरे मे ही रख स्वयं जल्दी-जल्दी अपने सूटकेस से एक फनिक, एक इनफी और एक फुरित् (चोली) निकाल कर वह दौड़ी हुई वापस आई। हाँफते हुए ही उन्हे मुक्ता की ओर बढ़ा कर बोली—"मै झूठ नही बोलती भाभी! तुम्हारे लिए ही इन्हे बना रखा था! मेरा विश्वास था, तुम आओगी अवश्य! मगर चाची को विश्वास न था! मगर फिर भी वे तुम्हें दिन-रात रो-रो कर याद किया करती थी! और मैने उन्हे कहा था—तुम, विश्वास करो चाची! थोइबी अपने खम्ब से अलग नहीं रह सकती!' आखिर मेरा विश्वास तो सच निकला न?" और फिर मुसकाते हुए अपना उपहार मुक्ता के हाथ थमाते हुए बोली—"अपनी प्रिय भाभी थोइबी के कर-कमलो मे उसकी तोम्बी की सप्रेम भेंट! सदा अमर रहे मेरे दादा खम्ब और मेरी भाभी थोइबी का पवित्र प्रेम!"

इतना कह कर वह मुक्ता के गले से लिपट गई। उसके मुँह को चूम भी लिया। और मुक्ता ने भी मुसकाते हुए जवाब मे एक चुम्बन जड ही दिया। दोनों झट अलग हो गई। और दोनो के दिये उपहार दोनों ने धारण किये।

कपड़े बदलते-बदलते ही मुक्ता मुसकाते हुए भौहो पर तनिक बल दे कर कृत्रिम खीझ-भरे स्वर मे बोली—"तुम मुझे बार-बार भाभी न कहा करो तोम्बी! नाम ले कर पुकारा करो! हम दोनों सहपाठिन भी तो रह चुकी हैं!" और फ़िर एकाएक तर्जनी तान कर, आँखे तिरछी करके—"और यदि फिर भी तुमने नहीं माना तो शैलेन बाबू को भाई बना कर मै तुम्हें भी भाभी ही कहा करूँगी! समझीं?"—कह कर वह तनिक जोर से हँसी। तोम्बी भी हँसी।

माँ एक बार रसोई-घर से आ कर उन्हे झाँक गईं। दोनों अब मेज

के आगे खड़ी हो शृंगार करने लगी थी। आइना एक ही था। अतः तय हुआ कि दोनो एक-दूसरी को साथ-साथ सजाएँ। शीशी से तिल का तेल अंजुलि मे डाल कर तोम्बी ने मुक्ता के सिर पर डाला और मुक्ता ने तोम्बी के सिर पर। और फिर एक साथ वे एक-दूसरी के सिर को हलके हाथों से मलने भी लगी। मुक्ता ने तोम्बी का सिर मलते समय इसका खूब ध्यान रखा कि उसके सिर के ताजे घाव में तनिक भी तकलीफ न हो! उसके हृदय मे उस घाव ने कितना स्नेह, कितनी श्रद्धा पैदा कर दी थी तोम्बी के लिए! और रसोई घर से माँ पुनः आ कर इस दृश्य को देख गईं। उनका मन खुशी से नाच उठा!

हँसते हुए वे बोलीं भी—"मैंने कहा था न तोम्बी, कि तुम दोनों की जोड़ी कितनी अच्छी रहेगी! सो, भगवान ने मेरी सुन ही ली! मनोरथ मेरा पूरा कर ही दिया!"

और तोम्बी ने हँस कर मजाक किया—"मगर भाभी तो कहती हैं चाची, कि आज कुश्ती लड़ कर देखा जाय, कि जोड़ी अच्छी रही या नहीं? मगर कल पुलिस के बेईमानो ने इतना पीटा कि मैं तो बिलकुल थक गई हूँ! कमजोर हो चली हूँ! मैं तो हार जाऊँगी चाची!"

"धत्! झूठी!"—कह कर मुक्ता बड़े जोर से हँस कर उसे धक्का देते बोली—"कहाँ से इस तरह का सफेद झूठ बोलना सीख आई तू?"

चाची भी हँसे बिना न रह सकी। हँसते हुए मजाक-भरे स्वर में वे भी बोलीं—"अच्छा, आज नहीं! किसी और दिन, जब शैलेन और चाँदा दोनो मौजूद हों!"—कह कर हँसती हुई ही झट अन्दर रसोई-घर में चली गईं।

तेल मल लेने पर दोनों ने कघी से एक-दूसरी के बाल ठीक किये। सीमन्त की रेखाएँ काढ़ीं। जूड़े बाँधे। चेहरों पर और भी चमक आ गई, और बालों में भी। और कपाल के बीचों-बीच नाक के मूल से

सीमन्त के मूल तक गोपीचन्दन की खिंची दो खड़ी रेखाओं में तो उनका धार्मिक व्यक्तित्व और भी खिल उठा।

बाजार से सामान ले कर वापस आने के बाद उन लड़कियों ने उन दोनों को आश्चर्य-भरी आँखों से देखा। और रुक्मिणी तो हँस कर मजाक करते बोली भी—"तो दोनों बहुओं ने शृंगार भी कर लिया! और यदि दोनों दूल्हे भी मौजूद होते, कितना अच्छा रहता! कितना मजा रहता! तो क्या मै जाऊँ दादा और शैलेन बाबू को खबर देने?"

और थम्बाल पोम्बी ने चेहरे पर हलकी मुसकान उभारते दोनों बहुओ को आदेश भी दे दिया—"बहूजी! सम्हालिये ये सामान अपने! और जा बैठिये रसोई-घर में! हम चलीं अब नहाने धोने!" और फिर तोम्बी से मजाक करते हुए—"हाँ भई, बगालिन बहू! किरण, कुमुद, सरोज, शान्ति और चित्रा का घर दूर है। वे कपड़े लेने घर नहीं जा सकतीं! झट-पट कपड़ो का इन्तजाम करो इनके लिए!"

और बात-की-बात मे तोम्बी ने अपने घर से उनके लिए कपड़े ला दिये। और तब उसने बाजार से लाये सामान पर दृष्टिपात किया। एक-एक कर सबको वह जाँचने भी लगी। सबसे पहले उसने विभिन्न जाति के माछो की परीक्षा की। 'सरेङ' को उसने खूब पसन्द किया। मात्रा भी काफी थी। लेकिन 'ङातिन' (रहू) का आकार जरा छोटा था। 'डाशेप' (टेङरा) उस वक्त भी जिन्दा होने के कारण अपनी पूँछे और पंख हिला रहे थे। और 'ङकरो' (सिंगी) अपने सींग ऊँचे किये मूँछें बार-बार नचा रहे थे। और चटनी बनाने के लिए 'डारी' (सड़ा माछ) भी पड़ा था। और तरह-तरह के भूने माछ भी पर्याप्त मात्रा में थे।

साग-भाजियों में युङ्चाक्, आलू, हवाइ अमूबी (एक प्रकार का मटर), लुकलइ, फाइजा, कउखा, थाडजिङ और पुलई के अतिरिक्त मणिपुरी प्याज भी था। दाल-चावल घर मे ही मौजूद थे।

सरसों के तेल की एक कनस्तरी भी आ गई थी। और पान के पत्तो के साथ कच्ची सुपारी के साबुत दाने भी। दूध और घी का इन्तजाम भी हो चुका था।

स्नान के लिए चलते-चलते रुक्मिणी ने सखियों से कहा—"सत्या, सरोज, कुमुद और किरण तो ब्राह्मणी ठहरी! हमारा छुआ भात वे कैसे खायेगी! तो पाक करने का भार आज इन सब पर, और ऊपर का सारा काम हम सबों पर! क्यो? तब तक बहुओं को चाहिए कि माछ-तरकारी धो-धा कर और मसाला पीस-पास कर ठीक रखें!"—कह कर मुसकाते हुए वह औरों के साथ पोखर की ओर चल पड़ी।

और तोम्बो ने आँखे तिरछी करके गरदन हिलाते हुए जवाब दिया—"आज तुम लोगो की बन आई है! कह लो जितना भी! हुकुम चलाती चलो! हम भी खबर लेंगी बाद मे!"

लेकिन जवाब देने के लिए कोई रुकी नही।

× × ×

रसोई बन कर तैयार हो चुकी थी। भोज्य पदार्थों की भीनी-भीनी मॅहक और सुगध आस-पास भा फैल रही थी। चन्द्रा, सत्या और शान्ति के मुॅह मे तो रह-रह कर पानी भी उभर रहा था। थम्बाल पोम्बी ने लक्ष्य किया। और तब उसने स्वय अपनेको उद्देश्य कर उनपर व्यंग कसा—"अरी, ओ मेरी जीभ! जरा और धीरज तो धर! अगर अभी से ही पिघल-पिघल कर पानी बन गई, तो बाद मे तू स्वाद क्या लेगी, खाक!"—और इतना कह कर वह कमरे से बाहर जा कर थूक का एक लौदा भी फेंक आई।

उसके इस अभिनय पर सभी सखियाॅ खूब जोर से खिलखिला पड़ीं। और चन्द्रा, सत्या और शान्ति तनिक लजा भी गई।

मुक्ता माछ तलने में लगी थी। तोम्बी आलू की भजिया बनाने में और सत्या माछ के तले टुकड़ों को झोलदार बना रही थी। और चन्द्रा

'सोइबुम्'[1] बनाने मे लगी थी। और उधर सरोज 'इरोम्बा'[2] बनाने में।

थम्बाल पोम्बी ने मुक्ता को लक्ष्य कर मुसकाते हुए फिर कहा—"भई, अर्जुन को सुभद्रा-हरण करने में कितना कष्ट हुआ था? कितना बड़ा युद्ध उन्हे करना पडा था? मगर दादा हमारे इतने भाग्यवान हैं कि स्वय सुभद्रा ही उनके घर भागी आ पहुँची! व्यर्थ की लड़ाई-झगडे से उन्हे...."

लेकिन थम्बाल पोम्बी का वाक्य पूरा भी न हो सका कि आँगन मे एकाएक कोलाहल उठ खड़ा हुआ। वह छोटी बालिका 'राधे' भयभीत हो झट आँगन से दौडती रसोईघर मे प्रविष्ट हो बोल उठी—"अरी ओ मइया! सिपाही आ गया, सिपाही! सिपाही!!"

और तोम्बी ने ज्यो ही कमरे से निकल कर देखा तो अवाक् रह गई! दंग रह गई! पाँच पुलिस कांस्टेबल, और पुलिस-इंस्पेक्टर अघोरनाथ वसु, और स्वय मुक्तावती के पिता राजकुमार चन्द्रमणि सिंह वहाँ खडे थे! और कौतूहल-वश अन्य तरुणियाँ भी कमरे से निकल कर बाहर आ गईं। और मुक्ता भी बाहर निकलना चाह ही रही थी कि झट तोम्बी ने मुड़ कर उसे अँगुलियों से आगाह कर दिया, और झट निकट आ कर उसे उपस्थित लोगो के बारे मे बता भी दिया। मुक्ता ठिठक कर खड़ी हो गई। अप्रतिभ भी हो चली। चेहरे पर पसीना भी उभर आया। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने दिल पर काबू पाने के प्रयत्न मे वह झट नीचे बैठ गई। इस अवाञ्छित परिस्थिति का सामना करने के उपायों पर विचार करने लगी।

अघोरनाथ वसु कड़कते स्वर मे उन खड़ी हुई लड़कियो को धमकाते

---

१. कच्चे बाँस की सड़ी जड़ में सिगी माछ मिला कर बनाई गई तरकारी।

२. एक प्रकार की मणिपुरी चटनी।

हुए बोला—"बताओ ! राजकुमारी मुक्तावती को कहाँ छिपा रखा है तुम लोगों ने ?"

और जवाब मे सबसे पहले थम्बाल पोम्बी एक ओर तर्जनी का इशारा करते बोली—"उस बॉस की झाड़ी मे दारोगाजी !"

उसकी सखियॉ खिलखिला पड़ीं, पर दारोगा क्रुद्ध हो उठा ! आँखें तरेर कर कड़कते स्वर मे वह फिर बोला—"बदतमीज छोकरी ! मजाक करती है ! बता, कहाॅ छिपा रखा है राजकुमारी को ?"

और तब तोम्बी ने निर्भीक स्वर मे जवाब दिया—"यह किसी चोर-चॉई का घर नही दारोगाजी, कि किसी को छिपा रखा जाय ?"

और तब इस्पेक्टर ने मूॅछे मरोड कर जरा मुॅह बनाते हुए व्यग कसा—"चोर-चॉई का नहीं तो क्या साधु का घर है ?"

"हॉ जी, श्रीमानजी !"—तोम्बी ने भी मुॅह बना ऐंठ कर जवाब दिया—"मणिपुर के सबसे बडे और सबसे पवित्र साधु का यह घर है श्रीमानजी !"

"अच्छा तो चोर का न सही, दगाबाज का ही सही ! नमकहराम का ही सही !"—इस्पेक्टर ने पुनः मुॅह बनाते व्यग कसा ।

और तोम्बी मानो न सुनने का बहाना कर तनिक भौहें टेढ़ी करके क्रोधभरे स्वर में बोली—"क्या कहा ? जरा फिर तो कहो !"

और अघोरनाथ ने भी ऑख-भौह नचाते हुए झट जवाब दिया—"जिसने अपने प्रभु का नमक खा कर उसी के साथ दगा किया उसे दगाबाज नमकहराम नही तो और कहा क्या जायेगा ?"

"जरा जीभ सम्हाल कर बोलो दारोगा !"—तोम्बी ने कड़कते स्वर मे उसे सावधान किया ।

अघोरनाथ कल ही इस तरुणी के साहस या दुःसाहस की करामात देख चुका था । अतः उसकी उग्र मूर्ति देख वह मन-ही-मन डर गया । लेकिन फिर भी ऊपर से रोब जताते हुए फिर बाला—"अरी ! चोरो

भी, और सीनाज़ोरी भी !"

"हरामी ! चोट्टे ! कुत्ते ! क्या हम चोर हैं ?"—कड़क कर तोम्बी झट एक लकड़ी का पतला कुन्दा उठा कर आँगन मे बढ़ चली। और देखते-ही-देखते दूसरी लड़कियाँ भी ईंधन का एक-एक मोटा चैला उठा कर मानो अग-रक्षक की भाँति तोम्बी के पीछे हो चली।

लेकिन रसोई-घर मे अब तक चुपचाप बैठी मुक्ता अनिष्ट की आशका से काँप उठी ! उसने अब क्षणमात्र का बिलंब करना भी ठीक न समझा। तोम्बी के आगे बढ़ने से पहले ही वह बिजली के वेग से अन्दर से निकल कर झट आँगन मे आ कर तनिक तन कर खडी हो गई। और अनर्थ-उत्पात पर उतारू उन तरुणियों को हाथ के इशारे से मना करके अघोरनाथ की ओर मुखातिब हो आँखों मे क्रोध की चिनगारी और स्वर मे रोब का ओज भर कर बोली—"किसकी खोज है ? मुक्ता की ? तो देख लो ! वह सामने खडी है तुम लोगो के ! वह पशु या कोई निर्जीव वस्तु नहीं कि चोरी चली जायेगी, अथवा उसे कोई चुरा ले जायगा ! वह डरपोक भी नही कि किसी के घर मे किसी के डर से जा छिपेगी ! वह अपने पति के घर आई है, अपने पति के ! वह अपने पति के घर मे अभी बैठी है, अपने पति के घर मे !"—कहते-कहते उसके चेहरे पर जैसे एक साथ शौर्य, स्वाभिमान और सतीत्व का ओज चमक उठा !

अघोरनाथ अब सचमुच डर गया। एक के तेज ने मानो दूसरे के तेज को निस्तेज कर दिया। और पुलिस के सिपाही मानो मूक दर्शक बने रहे। लेकिन राजकुमार चन्द्रमणि सिंह से अब न रहा गया। अपनी क्वाँरी पुत्री की ऐसी निर्लज्ज धृष्टता को भला कोन पिता बर्दाश्त कर सकेगा ! और वे तो ठहरे अर्जुन-बभ्रुवाहन-वंश के एक अच्छे-खासे राजकुमार ! रक्त के कण-कण में राज-रक्त और वश-गोरव का अहकार भरा हुआ ! अतः अपनी पुत्री को अत्यन्त क्रोध-भरे स्वर में फटकारते

हुए गरज कर बोले वे—"ओ-ओ-ओ, कुल-कलंकिनी ! ओ-ओ-ओ, निर्लज्जे ! तुझे लज्जा नहीं आती इस प्रकार बोलते ? छी ! अपने पति के घर ! तेरा वह पति कैसा ? विवाह तेरा हुआ कब ? एक नीच कृतघ्न मइतेइ एक उज्ज्वलवंशी राजकुमारी का पति ! छी ! छी ! छी !!!...
जन्म लेते ही तू मर क्यों नहीं गई कुलनाशिनी ?"—कहते-कहते मारे क्रोध के वे काँपने भी लगे।

"बस, पाबुङ !"—मुक्ता ने भी आँखें तरेर कर तर्जनी तान उन्हें सावधान करते हुए मारे क्रोध के फड़कते ओठों से जवाब दिया—"स्त्री सब कुछ बर्दाश्त कर सकती है, पर अपने पति का अपमान बर्दाश्त नहीं कर सकती ! कुछ बोलने से पहले ध्यान रखिए आप !"

और तब राजकुमार ने अपने राज-रक्ती अहंकार के लहजे में कड़कते स्वर में इंस्पेक्टर को आदेश दिया—"इंस्पेक्टर ! तुम चुपचाप देख क्या रहे हो ? बहुत हो चुका ! अब अधिक बकवास की जरूरत नहीं ! हथकड़ी डालो इस निर्लज्ज अधम लड़की के हाथों में ! और घसीटते ले चलो दरबार में ! और यदि कोई बीच में आये तो गोलियों से भून डालो उसे !"

और तब झट चन्द्रावत की माँ भी सामने आये बिना न रह सकीं। स्वाभिमान से तर्जनी और सीना तान कर वे भी बोलीं—"पहले सोच लो तुम लोग तनिक ! कहे देती हूँ कि मुझे गोलियों से भूने बिना कोई मेरी बहू को यहाँ से नहीं ले जा सकता ! नहीं ले जा सकता !!"

"इस बदतमीज बुढ़िया को भी हथकड़ी डालो !"—राजकुमार ने उसी क्रोध-भरे लहजे में पुनः इंस्पेक्टर को आदेश दिया—"इसे भी घसीटते हुए दरबार में ले चलो !"

और तब मुक्ता और तोम्बी एकाएक क्रोध में पागल हो उठीं। चीत्कार-भरे स्वर में मानो एक साथ ही कड़कती बोल उठीं—"खबरदार ! अगर किसी ने भी पाँव बढ़ाने का साहस किया ! हथकड़ियाँ

डालने और डलवाने वालो, गोलियाँ चलाने और चलवाने वालो मे से किसी की लाश का पता भी न चलेगा यहाँ! यह जान लो तुम लोग!"—कहते हुए क्रोधोन्माद में उन दोनों के अग-अंग काँपने लगे। आँखों से जैसे चिनगारियाँ बरसने लगी। दूसरी लड़कियाँ भी जैसे टूट पड़ना चाहने लगी।

इस बीच मुहल्ले के बहुत सारे लोग कौतूहल-वश ही वहाँ एकत्र हो चुके थे। लेकिन राजकुमार चन्द्रमणि सिंह के अपमान भरे लहजे ने अब उन्हे भी उत्तेजित कर दिया। मइतेइयो की सख्या वहाँ काफी थी। कुछ जातिवाद के स्वाभिमान ने, कुछ मुहल्ले के स्वाभिमान ने, और कुछ चन्द्रावत और चन्द्रावत की माँ के व्यक्तित्व के सम्मान ने मिल कर उन्हे भी क्रोधोन्मत्त बना दिया। उस भीड मे से क्रोध और उत्तेजना से भरे तरह-तरह के वाक्य निकलने लग पडे—

"पकड़ लो सालो को! मार-मार कर चटनी बना दो!"

"राजकुमारपन दिखाने आया है हरामी! मारो दस जूते!"

"चन्द्रावत सिह की इज्जत सारे मुहल्ले की इज्जत है! अब तो सारे मणिपुर की इज्जत है! पीटो बदमाशो को! कोई जिन्दा बच कर जाने न पाये!"

"निकालो लाठियाँ! निकालो भाले! निकालो तलवारे!"

राजकुमार की तो अब सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई! अघोरनाथ वसु भी भयभीत हुए बिना न रहा। उसकी एक पिस्तौल उस उत्तेजित भीड से उसका कहाँ तक बचाव कर सकती थी! और उस दशा मे जब कि श्राद्ध-कर-विरोधी आन्दोलन ने जनता को दबंग बना दिया था! उस दबंग जनता के लिए अब कोई भी कार्य जैसे असभव न था।

लेकिन परिस्थिति को इस तरह बिगड़ते देख तोम्बी सना झट सावधान हो उठी। वातावरण को शान्त और सरस बनाने के विचार से वह भीड़ को सबोधित करते हुए खूब जोर से बोली—"भाइयो!

राजकुमार अभी नाराज हैं तो क्या, मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे हैं हमारे मेहमान आखिर ! वे अपनी समधिन के घर आये हैं ! सारे मुहल्ले के मेहमान हैं ! हमे उनका आदर करना चाहिए ! सम्मान करना चाहिए ! न कि कमीनो की तरह ऐसे गन्दे शब्दों का इस्तेमाल ! सुभद्रा-हरण को ले कर कृष्ण-बलदेव भी तो कुछ देर आपस मे लड़े थे ? लेकिन अर्जुन को सुभद्रा मिल ही गई ! और कृष्ण-बलदेव मे भी सुलह हो ही गयी ! हम लड़ लिये सो लड़ लिये, पर अब तो सुलह…"

तोम्बी का वाक्य पूरा भी न हो सका था कि अकस्मात् एक नई परिस्थिति पैदा हो गई ! सबने बड़े आश्चर्य से देखा कि स्वय मुक्ता की माँ अचानक जाने कैसे वहाँ पहुँच कर अपने पति के सामने जा खडी हुई । वे बडे वेग से हॉफ रही थी । साँसे ले रही थी ।

आते ही दोनो हाथों को नचाती पतिदेव पर बरस पडी—"शरम नहीं आई इस तरह का नाटक खडा करते तुम्हे ? बूढे हो गये ! राजवश मे जन्म लिया ! मगर फिर भी तुम्हें अकल नहीं आई ! अपनी बेटी को सरे-आम इस तरह बेइज्जत करने पर उतर आये ! छी ! अच्छी-खासी फौज ले कर आ पहुँचे तुम ! मुक्ता कोई नाबालिग तो नहीं ? नासमझ तो नही ? उसने दिल से एक बार जिसे पति चुन लिया, मान लिया, उसके घर अगर खुद चली ही आई तो बुरा क्या हो गया ? अन्याय क्या हो गया ? आखिर महासती राजकुमारी थोइबी भी तो एक दिन इसी तरह अपने गरीब पति खम्ब के घर खुद ही चली गई थी ?" —कहते-कहते उनके चेहरे पर जैसे सती के मातृत्व का गर्व एकाएक चमक उठा !

फिर झट पुलिस-इस्पेक्टर एवं पुलिस के सिपाहियों की ओर मुखातिब हो कर उन्हें फटकारते हुए बोलीं वे—"जाओ, भागो तुम लोग यहाँ से ! यह हमारा घरेलू मामला है ! तुम्हारी कोई जरूरत नहीं यहाँ !" और फिर उसी क्षण एकाएक मुक्ता की ओर बढ़ कर अत्यन्त

प्रेम और वात्सल्य से भरे स्वर में उसे आमन्त्रित करते हुए—"आ बेटी, आ! मेरी महासती थोइबी! अपनी माँ के गले तो मिल! पहले मै गलती पर थी! अपनी मुक्ता और उसके पवित्र मन को मैने ठीक से जाना न था! पहचाना न था! अब सारा मान-अभिमान छोड़ कर आ जा बेटी! मेरे गले मिल!"—कहते हुए वे स्वयं तनिक बढ़ कर उसके गले से लिपट गईं।

अपने उभरे आँसुओं को पोछतीं गद्गद कंठ से वे फिर बोलीं—"मै तेरी माँ हूँ बेटी! जीवन मे जो कुछ नेम-व्रत मैने किया है उन सबके पुण्य के सहारे मै तुझे आशीर्वाद देती हूँ कि जब तक आकाश में सूर्य और चन्द्रमा का तेज है; जब तक पृथ्वी मे महासती वृन्दा का माहात्म्य है, और जब तक मणिपुर मे श्रीगोविन्दजी और विजयगोविन्दजी का प्रताप है, तब तक इन सबके पुण्य और प्रताप से तेरा सोहाग सदा अचल रहे बेटी! अपने पति मे तेरा मन अटल रहे! तू दूधो नहाती और पूतो फलती रहे बेटी!"—इतना कह कर उन्होने मुक्ता की ठोडी को अगुलियों से अलगा कर उसे चूम भी लिया।

इन शब्दो मे माँ ने अपना सारा हृदय मानो उँडेल दिया। मुक्ता अब तक तो चुप रही, पर उसका हृदय भी अब फूट पड़ा! माँ की छाती मे मुँह छिपा—"इमाँ! ओ, मेरी इमाँ!"—कहती तनिक जोर से रो पड़ी।

मानो माँ के साहस और वात्सल्य के उद्दाम आवेग मे कुछ क्षण पहले की पशुता अपने-आप निःशक्त और विनष्ट हो चली। अपने-आप उसके मुख पर जैसे कालिख पुत गई। राजकुमार चन्द्रमणि सिंह अपनी निरुपाय गुर्राती आँखो से यह सब कुछ देखते ही रह गये। और अघोर-नाथ वसु का मुँह तो मारे शर्म के चोंगा बन गया। और पुलिस के सिपाही जल्द-से-जल्द वहाँ से भाग चलने का इन्तजार करने लगे।

और थम्बाल पोम्बी झट चन्द्रमणि सिंह के आगे जा कर मुसकाते

हुए बोली—"आज मुक्ता के विवाह का भोज-भात है यहाँ चाचाजी! पता चल चुका होगा आपको! विना मुँह जूठा किये चले न जायें आप!"

चन्द्रमणि सिंह ने इस वाचाल कन्या को गुर्राते नेत्रों से एक बार देख कर अघोरनाथ वसु को झट आदेश दिया—"चलो इंस्पेक्टर! बाद में समझ लेंगे!"

और ज्यों ही अघोरनाथ वसु चन्द्रमणि सिंह के साथ चलने को तैयार हुआ कि चन्द्रा ने हँस कर और मुँह गोल करके टूटी-फूटी बँगला में उसे आमन्त्रित किया—"बोगाली मोशाइ! आपनी ऐमोन भागचेन केनो? रुइ माछेर झोल ओ भात ना खेये जेते होबे न आपनार!"

उसके इस आमन्त्रण और बँगला भाषा के प्रयोग पर सभी सखियाँ हँस पड़ीं, सभी दर्शक हँस पडे, लेकिन निमन्त्रण स्वीकार न किया जा सका। अपनी असफलता और अपमान की कालिख और गुस्सा मानो मुँह पर पोते और लादे वे सब-के-सब झट चलते बने।

और उधर तोम्बी, मुक्ता की माँ का हाथ पकड़ कर मुसकाते हुए बोली—"अब जरा समधिन से भी तो गले मिल लो चाची! विना इस मिलनी के विवाह का कर्म पूरा हो सकेगा कैसे?"

और उधर से थम्बाल पोम्बी ने चन्द्रावत की माँ का हाथ पकड़े ला कर दोनों समधिनों को आमने-सामने भी कर दिया। अब विना किसी बाधा सकोच के वे बडे प्रेम से गले मिलीं। विवाह की इस अतर्कित विचित्र घटना और इस रस्म पर सबको हँसी भी आई! आश्चर्य भी हुआ! खुशी भी हुई!

(२७)

अब मुक्ता की माँ पर मानो मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। पतिदेव नाराज हो पड़े, और मणिपुर-नरेश भी। एक परम कृतघ्न राजद्रोही के घर स्वयं जा कर अपनी कन्या के पलायन का अनुमोदन कर आना और

पुलिस के काम में बाधा डालना किसी भयानक राजद्रोह से कम न था। और दस लोगो के बीच स्वयं पतिदेव के अपमान में हाथ बॅटाना किस घोर पाप से कम था ? और जिसे धर्मद्रोही व राजद्रोही ठहरा कर पंडित-परिषद् ने धर्म और समाज से बहिष्कृत करार दिया, उसी के साथ अपने उज्ज्वल राजवंश की पुत्री के विवाह का खुले-आम समर्थन और अनुमोदन तो घोर धर्मद्रोह भी था, और घोर समाज-द्रोह भी ! सो, उनपर एक साथ अनेक द्रोहो का अभियोग था। राजद्रोह, पतिद्रोह, धर्मद्रोह, समाजद्रोह ! सारे द्रोह मानो एक साथ चौतरफा हमले के लिए तैयार हो चले। एक द्रोह ही कम अनर्थकारी नही होता, लेकिन यहॉ तो चार-चार द्रोह एकत्र थे ! 'एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ?' सो पडित-परिषद् ने एकमत हो यह फतवा दे दिया कि विना घोर प्रायश्चित्त कराये चन्द्रमणि सिंह उन्हे घर मे रहने न दे ! अन्यथा वे स्वयं सारे घर-सहित प्रायश्चित्ती होंगे ! धर्म और समाज से बहिष्कृत होंगे !

लेकिन मुक्ता की मॉ इस अपमान को बर्दाश्त करने को तैयार न थीं। वे उस मुक्ता की मॉ थीं जिसे 'महासती थोइबी' कह कर उन्होने स्वय अभिनन्दन किया था। वे स्वय गर्वान्वित हो चुकी थीं। वे स्वयं जिस कार्य का समर्थन विना किसी बाधा-सकोच के कर चुकी थीं, उसी के उपलक्ष्य मे प्रायश्चित्त करने का साफ मतलब था अपने किये कार्य को पाप-कर्म मान लेना ! जिस कार्य को बडे गौरव से महापुण्य मान कर वे स्वय कर आई थी उसे ही महापाप मान कर झुकने को वे कतई तैयार न थीं। वे थूक कर चाटने वाली महिला न थीं। यह सच है कि चन्द्रावत के मजिस्ट्रेट-पद से त्याग-पत्र देने के बाद वे आरभ मे उसके साथ मुक्ता के विवाह के पक्ष मे न थी। क्योकि मॉ होने के नाते और राज-वंश के सुख-वैभव मे पली होने के नाते अपनी एकमात्र पुत्री को गरीबी के गले सौपने को वे कैसे तैयार हो जातीं ? हर मॉ अपनी सन्तान

के सुख की आकांक्षा रखती है। और गरीबी से दूर रहती हुई भी गरीबी के अभिशाप से अपरिचित वे न थीं। और अब तो चन्द्रावत केवल गरीब ही नहीं, बल्कि स्वय नरेश का अत्यन्त क्रोधपात्र भी बन चुका था! इस प्रकार राजा और दैव दोनों के क्रोधपात्र बने हुए व्यक्ति के हाथ में अपनी कन्या का हाथ थमाने को वे क्योंकर तैयार हो पातीं?

किन्तु वे साथ ही मुक्ता के मन को भी पढ़ा करतीं। गभीर स्वभाव के कारण अपने मन की गहरी व्यथा को छिपाये हुए भी वह माँ से बिलकुल छिपी न रह सकी थी। उसके चेहरे पर अकित व्यथा की रेखाएँ माँ की सहानुभूति-भरी आँखो मे समा ही जाती। लेकिन फिर भी वे अन्त तक अडिग बनी रही। मन-ही-मन मुक्ता के मन का समर्थन करती हुई भी वे खुले-आम उसका साथ देने को तैयार न थी। लेकिन जब मुक्ता स्वयं साहसपूर्वक अपने मानस-पति के घर जा ही पहुँची, और उसके पिता बाकायदा पुलिस की फौज के साथ उसके अपमान पर उतर ही आये, तो माँ से तटस्थ न रहा जा सका! वे यह सोचते ही विचलित हो उठी कि उनकी प्रिय पुत्री पुलिस की सहायता से पकड़ी जा कर सरे-आम तिरस्कृत की जायगी! पिता की ओर से सन्तान पर घर के भीतर भी होते अत्याचार को कोई माँ बर्दाश्त नही कर पाती। फिर अपनी सन्तान पर खुले-आम होने वाले अत्याचार की आशंका से वे कैसे विचलित न हो जाती?

खबर मिलते ही विपत्ति के मुख मे पडी सन्तान की रक्षा के निमित्त वे तीर की तरह ऐन मौके पर जा पहुँचीं, और उस लज्जाजनक नाटकीय दृश्य को देख मारे क्रोध के अधीर हो सबके सामने पतिदेव पर बरस भी पडी, और उस आवेश मे ही अपनी पुत्री के कार्य को गौरवान्वित करते हुए उसे 'महासती थोइबी' के ऊँचे आसन पर बैठा कर मानो स्वयं भी महिमान्वित हो उठीं। उस गर्व की अग्नि उनके मन से अब भी मिटी या बुझी न थी। बल्कि नये सिरे से अपने प्रति अत्याचार की चुनौती

और आहुति से वह और भी उद्दीप्त हो उठी।

पतिदेव ने बड़ी क्रूरता और निर्लज्जताभरे शब्दो में उनकी भर्त्सना करते हुए चुनौती भी दी—"तेरी बेटी भी पापिन और तू भी पापिन! अगर अपना भला चाहती है, इस घर मे रहना चाहती है, तो जा अभी, इसी दम, अपनी पापिन बेटी के बाल पकडे ले जाकर महाराजा साहेब के सामने हाजिर कर! उनसे क्षमा की भीख माँग! और तब दोनों माँ-बेटी धर्मशास्त्र के विधान के अनुसार प्रायश्चित्त कर के इस घर मे कदम रखो! समझी?"

और तब मुक्ता की माँ ने मानो घृणा से पागल हो क्रोधभरे स्वर मे जवाब दिया—"निर्लज्ज! लज्जा नही आती तुम्हे ऐसा कहते! मैं अपनी बेटी के बाल पकडे ले जा कर हाजिर करूँ महाराजा के सामने! और तुम खुद, दस पापियो और बदमाशो के बीच वहाँ बैठ कर तमाशा देखो! अपनी आँखे सेंको! छी!...खुद गये तो थे पूरी फौज ले कर वीरता बघारने वहाँ! कैसी दुर्दशा हुई याद नहीं तुम्हे? बडी वीरता से पूँछ उठाये भौंकने गये तो थे, मगर दुम दबाये भागते रास्ता भी नही सूझा! और अब तुम्हें नया रास्ता यह दिखाई दे रहा है कि मुझपर झूठ-मूठ का हुकूमत का रोब गाँठो! छी!

"प्रायश्चित्त तो पाप का होता है? और मैने तो कोई पाप किया नही जो प्रायश्चित्त करके तुम पापियो का मन खुश करूँ! तुम्हारा हौसला बढ़ाऊँ! तुम लोगों के मन-गढे धर्मशास्त्र पर मेरा अब कोई विश्वास रहा भी नही, जो उसके विधान के अनुसार प्रायश्चित्त करके तुम पापियों के मान और शान को ऊँचा करूँ! देख लिया तुम्हारा धर्म और धर्मशास्त्र जिसके नाम पर तुम लोग गरीबो को सता रहे हो! लूट रहे हो! गरीबो के श्राद्ध रुकवा कर उनकी सद्गति मे विघ्न-बाधा डाल रहे हो! पहले भी तो था यह धर्म और धर्मशास्त्र? मगर कहाँ था किसी मृतक के श्राद्ध पर यह टैक्स? क्या अपने पुरखो से

अधिक तुम्हीं लोग धर्मात्मा हो? तुम्हीं लोग धर्मशास्त्र को अधिक जानने और मानने वाले हो?"

पत्नी के इस उत्तर से पतिदेव और भी आग-बबूला हो उठे। मारे क्रोध के थर-थर काँपते हुए बोले—"पापिन! तो अब तेरी इतनी हिम्मत कि स्वयं मणिपुर-महाराज तक को तू पापी कहे! मुझे पापी कहे! और सारे विद्वानों को भी! निकल मेरे घर से अभी! अभी निकल!"—कहते हुए उनका हाथ पकड़ कर उन्हे जोर का धक्का भी दे दिया और मुट्ठी बाँध उन्हें पीटने को तैयार भी हो पड़े।

लेकिन मुक्ता की माँ दबने के बजाय और भी दबग बन गईं। पतिदेव के धक्के से सम्हल कर झट तन कर खड़ी हो धिक्कार-भरे स्वर मे बोली—"छी, निर्लज्ज! घर से निकलेगी वो जो रखेल बन कर आई होगी! मै तो धर्म-पत्नी बन कर आई हूँ, धर्म-पत्नी बन कर!" कहते-कहते उनके चेहरे पर स्वाभिमान की लाली उभर आई। अहंकार-भरे स्वर मे वे फिर बोली—"क्या यह मेरा घर नहीं कि कोई जब चाहे निकलने को हुकुम दे दे? निकालने को तैयार हो जाय? जब निकलूँगी अपनी इच्छा से, रहूँगी अपनी इच्छा से!" फिर तर्जनी तान कर—"मैं मुक्ता की माँ हूँ! याद रखो! जब निकलूँगी, तुम रोक नहीं सकते! रहना चाहूँगी, तुम निकाल नहीं सकते!"

इस चुनौती पर राजकुमार चन्द्रमणि सिंह और भी क्रुद्ध हो उठे। किसी सामन्त की पत्नी अपने सामन्त पति के अधिकार को इस प्रकार चुनौती दे यह कम क्रोध की बात न थी! क्रोधातिशय में वे काँपने लगे। लेकिन उनके कुछ कहने और करने से पहले ही एक दूसरी नई परिस्थिति पैदा हो गई।

अब तक मुक्ता की माँ की दो सौतें पति द्वारा सौत के इस तिरस्कार और अपमान पर मन-ही-मन खुश होती हुई भी झगड़े से ऊपरी तौर पर उदासीन बनी थीं। दर्शक बन कर ही खब रस ले रही थीं।

लेकिन जब मुक्ता की माँ ने अपने विशेषाधिकार को जताते हुए पति को चुनौती दी कि "घर से निकलेगी वो जो रखेल बन कर आई होगी !"—तो वे उदासीन न रह सकीं। मानो यह स्वय उन दोनो पर करारा व्यग था जो दूसरी और तीसरी के रूप मे उस घर मे प्रविष्ट हुई थीं। उनमें से मझली झट आगे बढ़ कर दोनों हाथ और मुँह एक साथ नचाती और चमकाती हुई मुक्ता की माँ से व्यग-भरे कटु स्वर मे बोली—"अच्छा ! तो तू पत्नी बन कर आई ! और हम रखेल बन कर ?" और फिर एकाएक वह छोटी को उत्तेजित करते हुए व्यग-भरे स्वर मे फिर बोली—"तो मजू की माँ ! चलो हम निकल चले घर से ! ब्याहता रानी साहब का हुकुम हो गया घर से निकल जाने का ! चलो, चलो ! निकल चलो ! नही तो मार-पीट कर जबरदस्ती कही निकाल न छोडे हमे !"—कहते हुए उसने छोटी सौत का हाथ पकड़ कर उसे खीचा भी।

मुक्ता की माँ अवाक् रह गई ! उन दोनो पर आक्षेप करने का उनका उद्देश्य कतई न था। क्षण भर आश्चर्य-भरी आँखो से उन्हे देख कर वे बोली—"मैने तुम लोगो को कब कहा रखेल जो लगी बात का बतगड़ बनाने ?"

और मंजू की माँ जवाब मे मुँह चमका कर ऐंठ कर बोली—"जैसे और किसी को अकल ही नही ! समझ-बूझ ही नहीं ! क्या हम घास खाती हैं कि इस सीधीं-सी बात को भी न समझे ? तुम बडी होने से ही ब्याहता बन गई, और हम छोटी होने से रखेल ? खबरदार अगर इस बात को फिर जबान पर लाई तो !"

"तो तुम लोग भी तूल बाँध कर झगड़ने पर उतर ही आईं ?"—मुक्ता की माँ ने दुख और क्रोध मे भर कर पूछा।

"अगर तू उतर आई तो हम क्या कमजोर हैं कि डर जायँ ?"—एक ने चुनौती दी, और दूसरी ने हाथ-मुँह चमकाते हुए स्वरो को

ऐंठ कर व्यंग कसा—"बड़ी आई गर्व बघारने वाली !—'मैं मुक्ता की माँ हूँ !' जो कुलबोरनी कुल का मुँह काला करके चुपके से भाग निकली एक ओछे मइतेइ के घर, वो मुक्ता इनकी 'महासती थोइबी' बन गई ! आओ मजू की माँ ! महासती की माँ के चरणों की धूल तनिक ले कर हम भी पवित्र हो लें !"—कह कर वह ठुमक कर हँस भी पड़ी। मजू की माँ भी हँसी।

इस व्यंगबाण से आहत हो मुक्ता की माँ क्रोध में पागल हो चिल्ला पडी—"खबरदार, अगर मेरी बेटी को कुछ कहा तो !"

वे दोनो पहले से ही तैयार हो कर बैठो थीं। एक साथ ही बिजली की कड़क के स्वर मे वे बोल पडी—"और खबरदार, अगर तूने भी फिर किसी को रखेल कहा तो !"

राजकुमार चन्द्रमणि सिंह खूब खुश हो अब दर्शक बन चुके थे। लेकिन मुक्ता की माँ इस झूठे अभियोग पर और भी क्रुद्ध हो कर बोलीं —"शरम नही आती तुम लोगो को इस तरह झूठ बोलते? अगर झूठा कलक लगाया तो जीभ कट कर गिर जायेगी ! और लड़ना ही चाहती हो तो फिर लड लो ! मै मुक्ता की माँ हूँ जो किसी से डरना नही जानती ! मुक्ता के बाप को भी पता चल चुका है ! समझीं ?"—कह-कर वे दोनों सौतो के आगे अब तन कर खड़ी भी हो गईं।

लेकिन "मैं मुक्ता को माँ हूँ" इस गर्वभरी उक्ति से वे सौतें और भी भड़क उठी। "बड़ी आई मुक्ता को माँ !"—कहते हुए उन दोनों ने एक साथ दोनों ओर से उनके बाल कस कर पकड़ लिये, और जोर से धक्के देते हुए मझली ने व्यग-भरे कटु स्वर में पुनः उनका अपमान करते हुए कहा—"निकल घर से ! महासती मुक्ता की माँ है न तू ? और महासती की माँ महासती से कम क्या होगी ? सती भी अपने पति का हुकुम नहीं टालती ! और तू तो महासती ठहरी ! पति का हुकुम घर से निकलने का हो चुका है, मगर तू है बेशरम कि अभी भो अपनी

जीभ चलाये जा रही है ! भाग इस घर से !"

मुक्ता की माँ मारे क्रोध के पागल हो पड़ीं। और पूरे जोर से उन दोनों को धक्के दे कर लहमे भर में उनके हाथ से अपने बाल छुडाते हुए वे दौड चलीं सीधे इन्धन वाले कमरे मे, और वहाँ से बडा कुल्हाडा लिये हुए झट उन दोनो के आगे तान कर, हाँफते हुए, थर-थर काँपते हुए, उन दोनों को ललकारते हुए बोलीं—"मै क्षत्रिय की बेटी हूँ ! क्षत्राणी का दूध पी कर पली हूँ ! क्षत्रिय कन्या और जो कुछ भी सह ले, मगर अन्याय और अत्याचार सहन नही कर सकती ! झूठ सहन नही कर कर सकनी ! तुम दोनो को आज बलि दूँगी, बलि ! महाकाली को आज खुश करूँगी, खुश !"

इतना कहते हुए वे ज्यो ही उन दोनो पर चोट करने बढ़ी कि उन दोनो को मैदान छोडते देर नही लगी। मुक्ता की माँ के सिर से उखडे हुए बाल अपने हाथ मे लिये हुए ही वे चीखती-चिल्लाती इस प्रकार भाग पड़ीं कि रास्ता भी नही सूझा उन्हे ! मुहल्ले के दूसरे घरो मे वे जा छिपी। मगर वहाँ भी मारे भय के थर-थर काँपती रहीं। और मुक्ता की माँ क्रोधोन्माद मे मानो स्वय काली बन कर उनके पीछे दौड़ पड़ी। मगर मुहल्ले की भीड अब तक जुट चुकी थी। अनेक अनुनय-विनय से, बडी कठिनाई से उन्हें रोका जा सका। वे अपने घर लौट कर भी हाथ मे कुल्हाड़ा थामे ही वहाँ खडी हो गई !

राजकुमार चन्द्रमणि सिह भी लापता हो चुके थे। और मुक्ता की माँ हाथ मे कुल्हाड़ा लिये मारे क्रोध के काँपते और हाँफते हुए बोल रही थी—"आ तो, अब कौन निकालता है मुझे अपने घर से ! जब निकलूँगी अपनी इच्छा से ! रहूँगी अपनी इच्छा से ! ठट्ठा है ? कोई मुझे अपने घर से निकाल दे ! धर्म और समाज से निकाल दे ! ठट्ठा है ! कोई मुझसे प्रायश्चित्त करा ले ! खून की नदी बहा दूँगी ! पापियो को पाठ पढा दूँगी !" इत्यादि-इत्यादि।

सिवा मुहल्ले की भीड़ के घर का कोई भी व्यक्ति वहाँ अब नहीं था।

(२८)

उधर मुक्ता की माँ रणचडी बनी अपने घर मे अकेली खड़ी थी। और इधर मुक्ता, तोम्बी और थम्बाल सरस हास-परिहास मे मशगूल थीं। दिन का तीसरा पहर था। रात की रसोई के लिए घर में चावल तैयार न था। बखारी में से धान निकाल कर चन्द्रावत की माँ उसे कूटने की तैयारी करने लगी।

थम्बाल ने मुसकराते हुए व्यग कसा—"देखो जरा! घर मे दो-दो नौजवान बहुओ के रहते हुए भी बुढ़िया काम से अलग होना नही चाहती! मानो काम ही बुढ़िया के प्राण हो! उधर दादा पर लाठियाँ बरस रही थी, मगर फिर भी बुढ़िया काम मे लगी ही रही!"

और मुक्ता ने झट दौड कर माँ के हाथ से मूसल छीनते हुए कहा—"क्या मै मर गई इमाँ? जाओ, तुम अपना चरखा कातो!" —कह कर वह स्वय ताबड़तोड़ मूसल चलाने लगी।

लेकिन झट तोम्बी ने उसके हाथ से भी मूसल छीनते हुए व्यग-भरे स्वर मे कहा—"ओ, नई बहू! क्या मुहल्ले के लोग नहीं हँसेंगे देख कर? दो-दिन भी आये नही हुए, मगर घर को इतनी जल्दी पहचान गई कि लगी आते ही धान का सिर कुचलने! कलिजुगी बहू!"

माँ किसी और काम से घर से बाहर चली गई। और मुक्ता ने हँस कर ताना मारा—"ओ, पुरानी बहू! सतजुगी बहू! अगर सन्तोष नहीं तो तू भी आ जा! और बेचारे धान का सिर क्यों कुचलूँगी? कुचलूँगी दुश्मनों का सिर जब मौका आयेगा! और तब तुझे भी साथ लूँगी!"

अब एक ओर से तोम्बी भी मूसल का घड़ पकड़ कर उसकी नोक को समान लय-ताल से भरी ओखल मे बजारने लगी। गोरी, गोल और सुपुष्ट बॉहों के आरोह-अवरोहो मे जैसे विशिष्ट नृत्य की सुषमा साकार हो उठी। और समान लय-ताल से ओखल मे गिरते मूसल के आघात के शब्द जैसे नृत्य के उत्तेजक संगीत अथवा वाद्य के स्वर बन चले। मुक्ता और तोम्बी के तरुणाभा से उद्दीप्त अरुण चेहरो पर निरन्तर नृत्य करती मुसकान, श्रमजन्य अरुणाई में और भी मोहक बन उठी। एक हाथ के थकते ही जैसे मूसल अपने-आप दूसरे हाथ को पकड़ लेता। उस युगल-जोड़ी द्वारा रह-रह कर हाथ बदलने के इस दृश्य मे वह नृत्य और सगीत जैसे और भी मधुर बन जाता।

धान कूटते-कूटते ही तोम्बी सना ने थम्बाल को आदेश दिया—"हॉ भई, थम्बा! तू ही क्यो चुपचाप बैठी रहेगी? तेरा गला बड़ा मीठा है! कोई गीत सुना और हमारी मेहनत को हलका कर!"

और थम्बाल ने इस आमन्त्रण पर अपने मीठे सुरीले स्वर में धीरे धीरे गाना शुरू कर दिया—

"ममाग लइकाइ थम्बाल शातले
खोइमुना इल्ल खोइराबा।
शाबि लाओ लाओ चाशि लाओ,
कल्लक्पा यामइ कजाओब,
यामइ मागदा थारो लाओ।"

अर्थात् "सामने के मुहल्ले मे कमल खिल रहे हैं! पुरुष भ्रमर मौजूद हैं यहॉ! प्यारी (प्यारे), आओ आओ! हम चले चले! यहॉ बड़े ईर्ष्यालु लोग हैं! मेरे सामने आ जाओ!"

उसके इस गीत पर तोम्बी एकाएक धान कूटना छोड़ कर हॅसते हुए, व्यग-भरे स्वर मे बोली—"किसे बुला रही है थम्बा? किस मुए से ऑखें लड़ गई तेरी?"

और मुक्ता ने भी अपनी साँसें ठीक करते हुए, तोम्बी को तर्जनी का एक खरोंचा मार कर व्यंग-भरे स्वर मे कहा—"तू बड़ी ईर्ष्यालु है तोम्बी ! आखिर जोड़े की जरूरत सबको होती है ! शैलेन बाबू से तेरी आँखे लड़ गई तो थम्बा ने तो ईर्ष्या नही की ?"

तोम्बी ने भी उसे एक खरोचा मारते हुए कहा—"वाह लाल-बुझक्कड़ ! मै क्या ईर्ष्या कर रही हूँ ! मै तो आशीर्वाद देती हूँ थम्बा को, कि वह मेरे दादा को ही अपने जाल मे फँसा ले ! तब मै देखूँगी कि कैसे मुक्ता ईर्ष्या नही करती !"

और मुक्ता ने हँस कर ताना मारा—"मगर थम्बा तो शैलेन बाबू को जाल मे फँसाने जा नही रही कि तोम्बी अभी से इस तरह ईर्ष्या से आकुल हो चली है ? क्यो थम्बा, झूठ तो नही कह रही मै ?"

और तब थम्बाल ने भी व्यग कसा—"मगर मै तो देख रही हूँ कि तुम दोनो ही डर पडीं। ईर्ष्या से व्याकुल हो पड़ीं ! विश्वास रखो, मै तुम्हारे चिडों की ओर आँख भी नहीं उठाऊँगी !"

"अरी, किस चिडे पर नजर लगा रही है थम्बा ?"—कहते हुए एक ओर से चन्द्रा भी आ पहुँची।

तोम्बी ने ही हँसते हुए झट जवाब दिया—"तेरे ही चिड़े पर चन्द्रा ! अभी तेरी ही चर्चा चल रही थी कि चन्द्रा ने एक ऐसे चिड़े को फँसा रखा है जिसका शरीर आदमी का है, लेकिन मुँह बन्दर का ! क्या सच है चन्द्रा ?"

"धत् ! झूठी !"—चन्द्रा ने तनिक लजा कर प्रतिवाद किया।

और मुक्ता, तोम्बी और थम्बाल खूब जोर से हँस पडीं।

लेकिन चन्द्रा कोई और खबर ले कर आई थी। इस प्रसंग को टालते हुए आँखें फैला कर वह बोली—"एक बात मालूम हुई तुम लोगों को ?"

"कौन-सी बात ?"—तोम्बी ने भी आँखे फैला कर पूछा।

"अरी, उस अभागी वृन्दासखी की! पहले तो बेईमानों ने उसे गोविन्द से अलग कर दिया! और अब एक बूढे गॅजेडी और जुआरी के गले उसे बॉधने जा रहे हैं!"

"यह कौन बूढ़ा पिशाच है चन्द्रा?"—सबने ऑखे फैला कर चौकन्ने हो कर प्रश्न किया।

"अरी, वही काङ्जाग्रो 'लइकाय' (बस्ती, मुहल्ला) का हरेश्वर शर्मा, जिसकी तीन पत्नियॉ पहले ही अपने भाग्य को रो रही हैं! और अब चौथी वृन्दासखी भी जीवन भर के लिए भाग्य को रोने जा रही है!"

तोम्बी सना दुख के साथ घृणा-भरे स्वर मे बोली—"वह बूढ़ा तो बड़ा खबीस है भाई! कोई भी अपकर्म उससे छूटा नहीं! गॅजेडो है, भॅगेड़ी है, अफीमची है, जुआरी है! और क्या-क्या बताऊँ बहनो! उसकी एक स्त्री तो इसी शोक मे जहर खा कर मर भी गई!"

अब मुक्ता ने कहा—"उस बूढे को तो विवेक होना भी न चाहिए! मगर लड़की के मॉ-बाप को तो सोचना चाहिए? आखिर किस गुण पर रीझ कर वे लडकी का बलिदान करने जा रहे हैं?"

चन्द्रा ने जवाब दिया—"सबसे बडा गुण तो पैसा है भाई! वृन्दा के बाप को और दूसरे घटक लोगों को बतौर घूस के पैसे मिले होगे! वृन्दा का बाप भी तो गॅजेड़ी और जुआरी है? दोनों मे दोस्ती भी है, और बहुत कुछ बेच-बाच कर भी उस बूढे के पास अभी बीस 'परी'[1] जमीन बची हुई है! कहते हैं कि वृन्दा को अन्न-वस्त्र का कष्ट न रहेगा!"

मुक्ता घृणा-भरे स्वर में बोली—"छी! क्या अन्न-वस्त्र ही एक लड़की का मूल्य है? और क्या वृन्दा भी राजी है?"

---

१. परी=लगभग साढे सात बीघे।

चन्द्रा ने प्रतिवाद किया—"अरी, नहीं ! वह बेचारी तो रो-रो कर मरी जा रही है !"

मुक्ता करुणा और घृणा से भरे स्वर मे बोली—"है भी बेचारी ही ! नही तो क्या मजाल की कोई भी बदमाश किसी स्त्री से उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह कर ले ! विवाह करने या कराने का साहस करे !"

चन्द्रा इस बार खूब दृढ़ स्वर मे बोली—"मगर मेरा तो विश्वास है कि वृन्दा उस खबीस बूढे से विवाह करने के बजाय मर जाना कही ज्यादा पसन्द करेगी ! वह अब भी गोविन्द की ही आशा में है !"

"मगर गोविन्द तो जेल मे है अभी ! वह जेल से आ कर उसे बचा भी तो नहीं सकता !"—थम्बाल ने कहा ।

तोम्बी उत्साह और साहस से भरे स्वर मे बोली—"मगर हम तो हैं थम्बा ? हम चाहने पर इस गाय को कसाई के हाथ से अवश्य बचा सकती हैं !"

"फिर अधिक सोचने की जरूरत क्या ? उसे किसी भी तरह बचा अवश्य लेना चाहिए !"—मुक्ता भी उत्साह से भर कर बोली ।

"और विवाह आज रात को ही होना है ?"—चन्द्रा ने कहा ।

मुक्ता तनिक घबड़ाकर बोली—"तो जल्दी करो तोम्बी ! कोई उपाय जल्दी सोचो उसे बचाने का !"

और तोम्बी झट कमर कस कर तैयार हो मानो कुशल सेनापति के स्वर मे बोली—"उपाय सोचा हुआ है ! थम्बा, चन्द्रा ! तुम दोनों चलो मेरे साथ ! मुक्ता यही रहेगी ! उसे अभी-अभी भगा ला कर यही छिपा देंगे ! फिर बाद मे और कुछ सोचते रहेंगे !"

इतना कह दोनों को साथ ले वह तत्काल चल पड़ी वृन्दासखी की बस्ती की ओर, और मुक्ता अब सूप से चावल फटकने और साफ करने लग पड़ी ।

× × ×

रात हो चुकी थी। वृन्दा को इस कौशल से भगा ले आया गया कि किसी को भागते समय पता भी न चला। और वृन्दा को लगा मानो वह नरक-कुंड से निकल कर एकाएक स्वर्ग में आ पहुँची हो! निश्चय किया गया कि कुछ देर बाद वृन्दा को किसी अन्य निरापद स्थान मे पहुँचा दिया जाय, वहीं छिपा रखने का प्रबन्ध किया जायं। और इस बात की भी सावधानी रखी गई कि मुहल्ले के लोग भी यह जान न पायें कि वृन्दा भगा कर वहाँ लाई गई है। बालिका राधे अक्सर वहाँ आया-जाया करती थी। सो, उसे भी ताकीद कर दी गई बिलकुल मौन रहने की। उम्र की बिलकुल कच्ची हो कर भी राधे अनुशासन मे रहना जानती थी।

सबके साथ ही वृन्दा ने भोजन किया। आज बहुत दिन बाद उसे जैसे भूख लगी। आज ही उसे अन्न मे स्वाद लगा। भोजन के बाद वे सब सोने के कमरे मे बन्द हो गई। लेकिन जबान उनकी बन्द न हो सकी। चुपके-चुपके हास-परिहास भी चल पडा।

थम्बाल ने चुटकी लेते हुए कहा—"वृन्दा का 'सुभद्रा-हरण' करने मे खासा हाथ तोम्बी का है! तो धर्म से तोम्बी ही अब वृन्दा का 'पति' हुई, और वृन्दा उसकी पत्नी! तो आज दोनो पति-पत्नी को सोहाग-रात यहाँ मनाई जाय! क्यों?"—कह कर वह हँसी भी।

"धत्!"—वृन्दा जरा लजा कर बोली।

थम्बाल मुसकाती हुई फिर समझाते हुए बोली—"अरी, लजाती क्यों है? अगर हम विधाता का नियम ही उलट दे तो हर्ज क्या? स्त्री-पुरुष मे विवाह तो विधाता का नियम है, मगर हम यदि आज स्त्री-स्त्री मे ही विवाह करा कर इस नियम को ही चुनौती दे दे तो कितना मजा रहेगा वृन्दा!"

और तब मुक्ता ने हँसते हुए समर्थन भी किया और व्यंग भी—"मगर विधाता को सबसे पहले चुनौती देने का मौका तेरे हाथ से

छिन चुका है थम्बा ! मै एक किताब में पढ़ चुकी हूँ। अफ्रीका के एक देश में इस नियम को चुनौती दी जा चुकी है। उस देश में स्त्रियों के स्त्रियों से ही विवाह का नियम जाने किस सनातन काल से चला आ रहा है ! आज भी चालू है ! समझी ?"

थम्बाल मानो एक साथ निराशा और आश्चर्य प्रकट करते हुए बोली—"धत् तेरी की ! तब तो वहाँ के पुरुष केवल मुँह ताकते होंगे ? या उस देश में पुरुष हैं ही नहीं ? शायद स्त्रियाँ ही पैदा होती होंगी ? क्यो भाभी ?"

मुक्ता ने जवाब दिया—"ऐसा कोई देश नहीं जहाँ स्त्रियाँ न हों और पुरुष न हों ! मगर वहाँ स्त्री से विवाह करके भी किसी स्त्री का विना पुरुष के काम नहीं चलता !"—कह कर वह हँस पड़ी।

"अजीब देश है वह भी !"—चन्द्रा ने आश्चर्य प्रकट किया।

मगर बात आगे न बढ़ सकी। मानो एकाएक वहाँ मुसीबत का एक बम आ गिरा ! बड़े जोर का धमाका हुआ ! और उस धमाके से सभी सन्न रह गईं ! सहसा किसी के मुँह से कोई वाक्य न निकला। मानो राम-राज्य की खुशियाँ मनाई जाने के समय एकाएक राम के वनवास का दुखद समाचार आ पहुँचा हो ! मानो किसी विवाहोत्सव के क्षण में ही दूल्हे या दुलहिन की मृत्यु की दुखभरी घटना घट उठी हो !

वे सखियाँ हास-परिहास में लगी ही थीं कि मुक्ता की प्रिय सखी और चचेरी बहन राजकुमारी रंजना छिपे तौर पर वहाँ आ पहुँची। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। रंजना एकाएक कुछ बोल न सकी। किन्तु उसके चेहरे पर लदी परेशानी और व्यथा की रेखाएँ देख कर ही मुक्ता बेचैन हो पड़ी ! आशंकित हो उठी !

"तू इतनी रात बीते यहाँ कैसे रंजना ?"—मुक्ता ने बेचैनी और आश्चर्य से भरे स्वर में पूछा।

और जवाब में रंजना एकाएक रो पड़ी। रोते-रोते ही अत्यन्त व्याकुलता-भरे स्वर मे बोली—"सत्यानास हो गया दीदी! सत्यानास हो गया! चाची हमे छोड़ कर चली गई दीदी!"—और यह कहते हुए वह मुक्ता की गरदन पकड़ कर फूट-फूट कर रोने लगी।

मुक्ता के तो काटो तो खून नहीं! इस असहनीय दुख-भरे समाचार से वह स्तब्ध रह गई! दुख के अतिशय आघात ने एकाएक उसके हृदय के तारो को तोड़ कर बिलकुल निःशक्त बना दिया! आँखों मे या वाणी मे उतरने की शक्ति उनमे रही ही नहीं। जैसे अब भी उसका हृदय इस समाचार पर विश्वास न कर सका! दूसरी सखियाँ भी स्तब्ध रह गई! कुछ देर तक कारुण्य मौन मे लिपटा रहा! क्योंकि दुख के अतिशय मे मुखरता नही होती। गहरी वेदना सहसा मुखर नहीं हो पाती।

"ऐसा हुआ कैसे रजना?"—कुछ क्षण बाद तोम्बी ने साहस करके पूछा।

और रजना ने बिलखते हुए व्यथा-विह्वल स्वर मे जवाब दिया—"सो सब मत पूछो बहन! मत पूछो! सोचते दिल फटता है! कहते दिल फटता है! क्रूर विधाता ने यह कैसे कर दिया समझ मे नहीं आता कुछ! पापियों ने कैसा जाल रचा कि चाची को मरने पर मजबूर कर दिया!"

"तो क्या चाची मजबूर हो कर मरी? क्या चाची ने आत्महत्या कर ली रजना?"—तोम्बी ने फिर आश्चर्य-भरे स्वर मे पूछा।

रजना ने इस बार स्वर को मजबूत करके जवाब दिया—"हाँ तोम्बी! आत्म-हत्या ही समझो! मगर वह दृश्य याद करते ही छाती काँप उठती है! बहन, अब पछतावा हो रहा है कि चाची के साथ मैं भी क्यों न मर गई! उन्हीं के साथ मै भी क्यों न चिता में जला दी गई!"

"तो क्या चाची का दाह-संस्कार भी हो गया?"—तोम्बी ने और

भी आश्चर्यभरे स्वर में प्रश्न किया।

"हाँ तोम्बी! बड़ी जल्दबाजी बरती गई! और मै सीधे श्मशान से ही यहाँ दौड़ी आ रही हूँ! रहा नहीं गया! मुक्ता दीदी को इस अशुभ खबर की सूचना देने का पाप उतावला हो उठा!"

मुक्ता का हृदय अब सूखा न रह सका। अब वह भी फूट-फूट कर चुपके-चुपके रोने लगी। पर रसोई-घर मे सोई हुई माँ को कुछ मालूम न हो सका।

मुक्ता व्यथा-विह्वल स्वर मे विलखती हुई बोली—"यह कैसे हुआ रजना? सुना तो बहन! क्यो, और कैसे माँ हमे छोड़ कर चली गई? कैसे पापियों ने जाल रच कर उन्हें मरने पर मजबूर कर दिया? सुना तो बहन!"

और तब रजना ने सारी घटना सक्षेप में कह सुनाई। उनकी दोनो सौतों एवं राजकुमार चन्द्रमणि सिंह के डर कर घर से भाग निकलने तक की घटना के बाद का विवरण सुनाते हुए वह बोली—"चाचा साहब भागे हुए जा पहुँचे सीधे महाराजा साहब के पास, और उनसे पुलिस वालों की एक फौज ले कर बड़ी वीरता से आ पहुँचे पत्नो को पकड़वाने! कैद करवाने! मगर सिंहनी क्या शृगाल द्वारा कैद की जा सकती है? चाचा साहब के प्रोत्साहन और आदेश पर ज्यों ही एक कांस्टेबल हथकड़ी ले कर आगे बढ़ा कि चाची मानो बिजली की तरह कड़क कर कुल्हाड़ा तान कर बोली—'खबरदार कुत्ते! आगे बढ़ने की हिम्मत की तो...'

"कुत्ता एक ही दहाड़ में डर गया! हिम्मत न हुई कदम बढ़ाने की! मगर चाचाजी ने गुस्से में आखें लाल-पीली कर के धमकाया उसे—'नमकहराम! मणिपुर-महाराजा का नमक खा कर भी एक औरत से डर गया! अपनी पुलिस की वर्दी का नाम हँसा दिया! बढ़ आगे! इस पापिन औरत को हथकड़ियों में कस कर ले चल जेलखाने!'

"और तब कुत्ते की हिम्मत जैसे बढ़ चली। पर वह साहस करके ज्यो ही आगे बढ़ा कि चाची के कुल्हाड़े की एक चोट से वह वही ढेर हो गया! और चाची लहू से सने कुल्हाड़े को फिर तान कर सबको सावधान करते बोलीं—'भागो कुत्तो, अगर जान प्यारी हो! नही तो सब-के-सब ढेर हो जाओगे यहाँ!'

"तहलका मच गया! खलबली मच गई! इस्पेक्टर के पास पिस्तौल थी। अपने कांस्टेबल को इस प्रकार मरते देख कर उसने शायद डर कर ही पिस्तौल तान ली! और चाची ने झट उछलते हुए बढ़ कर उसके हाथ में तनी पिस्तौल पर इतने जोर का कुल्हाडा दे मारा कि इस्पेक्टर के हाथ से पिस्तौल छिटक कर गिर पडी! लेकिन चाची की उस चोट से ही उस पिस्तौल की गोली छूट कर उनकी अपनी छाती मे आ लगी! चाची अब खडी न रह सकी! छाती को एक हाथ से दबाये वे धम् से नीचे बैठ गई। और मरते-मरते ही उनके मुँह से शब्द भी निकले—'यह मेरा घर है! जब निकलूँगी अपनी इच्छा से! रहूँगी अपनी इच्छा से! जब निकलूँगी तुम रोक नही सकते! जब रहूँगी तुम निकाल नहीं सकते!...हाय बेटी मुक्ता! सोहाग तेरा अचल रहे बेटी! बिदा!' और इतना कहते-कहते वे सदा के लिए वे चुप हो गई दीदी!"—कह कर रजना पुनः फूट-फूट कर रोने लगी।

और मुक्ता भी—"ओ, मेरी इमाँ! ओ, मेरी प्यारी इमाँ!"—कहते-कहते पछाड़ खा कर गिर पडी।

(२९)

सखियों के तात्कालिक उपचार ने मुक्ता को जल्द होश में ला दिया। होश में आते ही फिर व्यथाभरे थके स्वर मे वह रंजना से बोली—"मै ही माँ की मृत्यु का कारण हूँ बहन! मैं ही कारण हूँ! मै ही कारण हूँ!! उफ्, क्या करते क्या हो गया!"—कह कर

उसने पुनः आँखें मूँद लीं। मुँदी आँखों की किनारियों से अश्रु की अजस्र धारा बह चली।

और रंजना ने ढाढ़स बँधाते हुए उससे स्नेह-भरे दृढ़ स्वर मे कहा—"होश में आओ दीदी! तुम क्यों ऐसी व्यर्थ की बात सोच रही हो? उनकी मृत्यु का कारण तो स्वयं महाराजा हैं! तुम कदापि नहीं! कदापि नहीं!! तुम्हें तो अन्तिम साँसें लेते हुए भी सारे हृदय से आशीर्वाद देती गई हैं! तुम्हारे अचल सोहाग की कामना करती गई हैं! अपने-आप को उनकी मृत्यु का कारण मान कर उस स्वर्गीया आत्मा को अब दुखी न करो दीदी!"—कहते-कहते रंजना का गला रुँध गया।

मुक्ता होश मे ही थी। रंजना के शब्द और भी व्यथा और करुणा के तीर बन कर उसके हृदय मे जा चुभे। अब वह हिचकियाँ ले-ले कर रोने लगी। सखियों के नेत्र भी गीले हो गये। और वृन्दा मारे संकोच के मन-ही-मन पछताने लगी। उसका भागना और भाग कर यहाँ आना शुभ नहीं हुआ यह सोच कर वह मन-ही-मन कटती जा रही थी! मरती जा रही थी!

मुक्ता एक समय बिछौने से उठ कर तनिक शान्त स्वर मे बोली—"अब रात कितनी होगी तोम्बी?"

"अभी तो तीन भी नहीं बजे! तुम जरा सो जाओ! आराम करो!"

मुक्ता दृढ़ स्वर मे प्रतिवाद करते हुए बोली—"नहीं नहीं, मै माँ की चिता पर जाऊँगी! चिता अब भी गरम होगी! एक लकड़ी उसमे डाल आऊँ! उनकी चिता की राख जरा माथे से लगा आऊँ!"—कहते हुए वह एकाएक पलंग से उठ खड़ी हो जाने को तैयार भी हो पड़ी।

किसी को रोकने का साहस न हुआ। बल्कि उसकी सखियाँ भी चुप-चाप उसके पीछे-पीछे चल पड़ी। चन्द्रावत की माँ अपने नियमित

दैनिक कठोर श्रम की गाढ़ी निद्रा में अब भी अचेत सोई थीं। मुहल्ला भी निस्तब्ध रजनी के गाढे आँचल मे खर्राटे ले रहा था, और इम्फाल का सारा नगर भी। पर नागा-बस्ती के मुर्गों में सुगबुगाहट अब आने लगी थी, किन्तु उनकी प्रभाती के कर्ण-भेदी स्वर अभी आरंभ हुए न थे। लगभग पौन घंटे मे मुक्ता अपनी सखियों के साथ श्मशान-भूमि में जा पहुँची।

वह एकाकी चिता अब भी दहक रही थी। मानो माँ की तेजस्वी आत्मा अपनी वीर पुत्रियों की प्रतीक्षा में नेत्रो से स्वाभिमान एव गरम-गरम प्यार की चिनगारियाँ उगलती हुई उस शून्य निर्जन स्थल में दहक और धधक रही हो! श्मशान की उस भीषण शान्ति में वह दिवगत आत्मा जैसे चिता की चिनगारियों में सहस्त्रजिह्व हो कर बोल रही हो—"मेरी मुक्ते! मेरी सती थोइबी! अपनी माँ के इस अपमान का तू बदला लेना बेटी!" और पास की झाड़ियो से जब-तब उठती हुई शृगालो की सामूहिक ध्वनि मानो माँ के समर्थन मे प्रतिशोध और उद्‌बोधन के उन्हीं शब्दों को दुहरा रही हो!

मुक्ता अपनी सखियो के साथ चिता के पास बैठी मानो इन्हीं शब्दो को सुन रही थी। उसकी आँखों से आँसुओ की अजस्र वर्षा में हृदय का मर्मान्तकारी शोक जैसे क्रोध की बूँदों मे बरस रहा हो! मुक्ता और उसकी सखियों ने श्रद्धा-पुष्प के रूप मे एक-एक लकड़ी उस चिता मे डाल दी। चिता पुनः धधक उठी। मानो माँ की आत्मा पुनः प्रज्वलित हो कर बोल उठी—"मेरी वीर पुत्रियो! मणिपुर के आततायियो को कभी क्षमा न करना! न करना!! न करना!!!"

मुक्ता ने जलती चिता की प्रदक्षिणा की। और चिता की गरम-गरम राख अपने हाथ में ले कर कर मानो भीष्म-प्रतिज्ञा के स्वर में वह बोली—"उन आततायियो से मै बदला लूँगी माँ, जिन्होने मुझसे तुम्हे छीन लिया; जिन्होंने मणिपुर की सारी धरती को क्रूरता और अत्याचार

के काँटों से पाट रखा है; और जिन्होंने गरीबों के जीवन को अत्याचार के क्रूर काँटों से छेद-छेद कर दुखी और निःसत्व बना दिया है! तुम्हारी चिता की यह राख मुझे बल देगी माँ! मुझे कठिनाइयों से जूझने की प्रेरणा देगी! आततायियों के विनाश के संघर्ष में मुझमें साहस और संकल्प की आग भरेगी! तुम्हारी इस पवित्र चिता की इस पवित्र राख की शपथ, यदि मै दुखी जनता के संघर्ष से कभी पीछे पग हटाऊँ!" फिर एकाएक एक हाथ से सिर की वेणी को खोल कर बिखेरते हुए मानो दुःशासन के अपमान-अत्याचार से प्रपीड़ित द्रौपदी के प्रतिशोध-भीषण सबल स्वर मे वह बोली—"यह लो माँ! मेरे सिर के ये खुले बाल पुनः तब तक नहीं बँधेंगे जब तक कि मणिपुर की पीड़ित जनता के वे बन्धन विनष्ट नही हो जाते जिनसे बँध कर वह अवश और निःशक्त बन चुकी है! ये मेरे बाल तब तक नहीं बँध सकेंगे माँ, जब तक कि मणिपुर के गरीब मृतको की सद्गति के मार्ग मे ब्रह्म-सभा द्वारा पैदा की गई समस्त परिस्थितियाँ और समस्त बाधाएँ जड़-मूल से विनष्ट नही कर दी जातीं! और तभी सच्चे माने में तुम्हारे अपमान का, तुम्हारी इस मृत्यु का बदला लिया जा सकेगा माँ! जय माँ!"—कह कर अपने खुले बालों-सहित वह चिता के सामने साष्टांग लेट गई।

और तब तोम्बी भी चिता की प्रदक्षिणा करके गरम-गरम राख को हाथ में उठा कर बोली—"तुम अकेली मुक्ता की ही माँ नहीं हो माँ! तुम जैसी माताएँ छोटेपन की सारी सीमाओं को तोड़ कर सारे जगत् की, सबकी, समस्त दुखी प्राणियों की माँ बन जाती हैं माँ! हम तुम्हारी आत्मा की ऊँचाई के झंडे को, अन्याय-अत्याचार के सामने कभी न झुकने के साहस और बलिदान की भावना को, कभी नीचा न होने देंगी माँ! जय माँ!"—कहते-कहते वह भी अपनी वेणी के बाल खोल कर साष्टांग हो पड़ी।

और तब रंजना भी अपने सिर के बाल खोले उस चिता के भस्म

को अपने कपाल से लगाते हुए बोली—"तुमने मुझे माँ के स्नेह से पाला और माँ की आँखो से देखा है चाची ! तुम सचमुच सबकी माँ हो ! सारी मातृ-जाति का गौरव ! तुमने अपने पेट से मुक्ता दीदी जैसी पुत्री को पैदा किया ! मुझे भी आशीर्वाद दो चाची, कि अपनी मुक्ता दीदी के पीछे-पीछे चलती मणिपुर की धरती से अन्याय के निकृष्ट कीटो के मिटाने के सघर्ष मे मै भी पीछे कभी न रहूँ ! न रह सकूँ ! जय माँ !"—कहते हुए उसने भी चिता की प्रदक्षिणा की। साष्टाग लेट कर चिता को प्रणाम किया।

और तब थम्बाल और चन्द्रा और वृन्दा ने भी चिता की तीन बार प्रदक्षिणा करके उस पवित्र राख को कपाल से लगा कर प्रतिज्ञाएँ कीं, प्रणाम किया। मानो उस मातृत्व की उज्ज्वल आभा चिता की उन गरम-गरम लपटों से उन तरुणियो के हृदय मे प्रविष्ट हो गई। वे सब मानो नारीत्व के स्वाभिमान की प्रतीक और उत्पीड़ित जनता की माँ बन गई। अपनी दुखी सन्तान के उत्पीड़न का प्रतिशोध लेने की अडिग भावना से वे भर उठीं !

(३०)

कुछ मास जेल की नजरबन्दी में रखने के बाद अदालत मे कृत्रिम गवाहों और सबूतों के सहारे भयानक अपराधी सिद्ध करा कर प० कृष्ण-माधव, चन्द्रावत, शैलेन्द्र आदि पाँच व्यक्तियों को सात-सात साल को कड़ी कैद की सजा दी जा चुकी थी। अन्य प्रमुख आन्दोलन-कारियों मे से किसी को चार, किसी को तीन, किसी को दो और किसी को केवल एक साल की कैद की सजा के अतिरिक्त जुरमाना भी किया गया। छह या तीन महीने की सजा पाने वाले भी कई थे। और अदालत की दृष्टि में नगण्य अपराधियो को केवल कुछ जुरमाने की सजा दे कर ही मुक्त कर दिया गया। लेकिन सबपर अभियोग समान था। मणिपुर सरकार

को उलटने के षड्यन्त्र का अपराध सबपर जबरन लागू किया गया था। केवल अपराध के सामर्थ्य और प्रवृत्ति मे न्यूनाधिकता को ध्यान मे रख कर दड मे भी न्यूनाधिक्य बरता गया था।

सश्रम कारावास की सजा उन्हे दी गई थी। अधिकतर उन्हे सूत कातने और वस्त्र बुनने का काम दिया गया था। मणिपुर की कोई भी महिला इस कला से अनभिज्ञ नही, पर पुरुषो मे बहुत कम लोग इस कला को जानते हैं। उन्हे आरभ मे कठिनाई अवश्य अनुभव हुई, लेकिन बहुत जल्द वे इस कार्य मे दक्ष और अभ्यस्त बन चले।

जेल-जीवन की इस लबी अवधि का उपयोग अध्ययन, विविध विषयों पर वाद-विवाद और विचार-विमर्श मे भी किया जाने लगा। उस बन्दी-वार्ड मे बाकायदा एक अध्ययन-गोष्ठी भी कायम हो चली। प० कृष्णमाधवजी अग्रेजी के ज्ञाता न थे, अतः राजनीति और सामाजिक विषयो पर लिखी हिन्दी की पुस्तकों पर ही उन्हे सन्तोष करना पड़ता। लेकिन वे साथ-साथ चन्द्रावत और शैलेन्द्र से अग्रेजी भी पढने लगे। और अधिकाधिक विद्वानो द्वारा लिखी अग्रेजी की पुस्तको के साराश उनसे सुनने भी लगे। और दूसरे लोग उनसे हिन्दू धर्म-शास्त्रो का, शास्त्र-पुराणों का सारांश और तात्पर्य सुन-सुन कर अपनी-अपनी आँखें खोलने लगे। राबर्टसन की उदारता ने उन्हे जेल मे पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओ से वचित न रहने दिया। हिन्दी के एक दैनिक के अतिरिक्त अग्रेजी के प्रख्यात पर कम खतरनाक पत्रो को भी जेल के वाचनालय मे भेजा जाने लगा। पहले जेल मे पुस्तकालय नाम की कोई चीज न थी। पर इस आन्दोलन ने ही उसे भी जन्म दे दिया।

पहले मणिपुर मे किसी सुसघटित राजनीतिक ज्ञान या भावना का उदय हुआ न था, पर अब श्राद्ध-कर-विरोध के धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन के गर्भ से ही सुसघटित राजनीतिक ज्ञान और भावना के जन्म का आरभ भी उस जेल मे हो चला। राजनीति की धाराएँ

फूटने लगीं, और उन्हीं के आधार पर उन कैदियों मे अन्दर-अन्दर ही एक दलबन्दी की-सी भावना भी सुपुष्ट होने लगी, यद्यपि व्यक्तिगत रूप से एक-दूसरे के प्रति स्नेह-भावना में कोई कमी न आ सकी।

और उधर जेल से बाहर मुक्ता अपनी सखियों के सहयोग से आन्दोलन को जीवित रखने के प्रयास मे जुट पड़ी। महिलाओं के लिए उसने भी अध्ययन-गोष्ठी कायम की। एक गुप्त पुस्तकालय और वाचनालय का प्रबन्ध भी कर लिया। वह गुप्त रूप से कई आवश्यक पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ जेल में चन्द्रावत और शैलेन्द्र के पास भी भेजने लगी। मुक्तावती अग्रेजी के अतिरिक्त बॅगला का भी व्यावहारिक ज्ञान रखती थी। वह बॅगला की पत्र-पत्रिकाएँ मॅगा कर अपनी साथी सखियो का ज्ञान बढाने लगी। और जिन्हें अक्षर-ज्ञान न था उन्हें अपनी पढ़ी-लिखी सखियों के सहयोग से पढ़ाने भी लगी। लेकिन यह काम रात के अवकाश के क्षणो मे वह करती। दिन भर वह सघटन के काम मे लगी रहती। जो लोग जेल से मुक्त हो निष्क्रियता दिखाने लगे थे उन्हें वह जा-जा कर उत्साहित करती। कैद मे पड़े लोगों के घरों मे जा-जा कर उनके परिवार की खोज-खबर लेती। जिनके गुजारे का कोई अन्य आश्रय न था, उनके लिए चन्दा जुटाती। जो बीमार हो जाते उनके लिए दवा-दारू का प्रबन्ध करती। उसके लिबास मे सादगी आ गई थी। खान-पान बिलकुल सादा हो गया था। इस सादगी मे वह अपनी सास से भी पीछे न रही। और तोम्बी एव रंजना मानो उसका अभिन्न हृदय और अभिन्न अग बन कर उसकी सादगी, उसके संकल्प और संघर्ष मे रंचमात्र भी उससे पीछे न रह सकीं।

पं० कृष्णमाधवजी जेल में अपने साथियों से उत्साह-भरे स्वर में आज बोल रहे थे—"अब जीत हमारी निश्चित है साथियो! हमारी बहन-बेटियाँ जब कमर कस कर मैदान में उतर आई हैं तो संसार की कौन शक्ति इन शक्ति-रूपा दुर्गाओं की सघटित हुकार को बर्दाश्त कर

सकेगी ! उन्हें कौन-सी शक्ति परास्त कर सकेगी !"—और इतना कह कर उन्होंने 'दुर्गा-सप्तशती' की सारी कथा सक्षेप मे सबसे कह सुनाई।

'दुर्गा-सप्तशती' की कथा की नये ढग से व्याख्या और विश्लेषण करते हुए उन्होंने फिर कहा—"मधुकैटभ के अत्याचार से पीड़ित विश्व के लिए उस आदि नारी-शक्ति ने 'महाकाली' का रूप धारण किया; महिषासुर के अन्याय से उत्पीड़ित जगत् के रक्षार्थ 'महालक्ष्मी' का; और शुभ-निशुंभ के अत्याचार ने उसे 'महासरस्वती' बनने पर बाध्य किया। तमोरूपा महाकाली, रजोरूपा महालक्ष्मी, और सत्त्वरूपा महासरस्वती का सम्मिलित रूप ही वह महाशक्ति है जिसे हम 'दुर्गा' कहते है। सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों का सम्मिलित रूप ही सारी सृष्टि है। अपनी सृष्टि पर, अपनी सन्तान पर आई हुई विपत्ति को त्रिगुणरूपा माँ दुर्गा कभी बर्दाश्त नहीं करतीं ! हमे विश्वास करना चाहिए साथियो, कि मुक्ता आदि हमारी बहन-बेटियों मे आज उन्ही माँ दुर्गा की अदम्य कार्य-शक्ति प्रकट हो पड़ी है ! आततायियों के विनाश के निमित्त माँ दुर्गा का वही अदम्य साहस और सकल्प उभर पड़ा है ! जय माँ दुर्गे !"—कह कर भक्ति-भावना-भरे हृदय से उस आदि नारी शक्ति को दोनों हाथ सिर से सटा कर उन्होंने नमस्कार किया।

उनकी इस भक्ति-भावना मे सबने खुल कर साथ दिया। 'जय माँ दुर्गे !'—की सामूहिक ध्वनि से जेल का आकाश गूँज उठा। इस प्रकार के विविध प्रवचन वहाँ हुआ करते। कृष्णमाधवजी के मुख से शास्त्रीय व पौराणिक तथ्यों और कथानकों की प्रोत्साहक व्याख्याएँ सबमे उत्साह भर कर उनके हृदय से निराशा के कीटाणुओं को दूर कर देतीं।

चन्द्रावत का मन अब मुक्ता के सम्बन्ध में अधिकाधिक भावुक होने लगा। उसे आज याद आ गया वह क्षण जब अत्यन्त व्यथा-भरे

स्वर मे मन-ही-मन इन शब्दो में मुक्ता से उसने अन्तिम विदा ली थी—
"अब मै तुम्हारे योग्य नहीं रह गया मुक्ते ! तुम्हारा जीवन-सहचर बनने की उस योग्यता को मै स्वय ठुकरा चुका हूँ जिससे प्रभावित व आकृष्ट हो कर ही तुम्हारे माँ-बाप ने सम्बन्ध तय किया था। पर मैं तुम्हे भूलूँगा नही ! शायद तुम्हारी स्वाभिमान-भरी चितवन और गर्व-भरे व्यक्तित्व की पवित्र स्मृति मेरे सघर्ष मे सहायक होगी ! विदा दो मुक्ते, विदा !" विदा उसने अवश्य ले ली, पर उसका मन उससे विदा न ले सका। उसने कहा भी यही था ! वह पवित्र स्मृति सदा उसके साथ रही। संघर्ष के साग्रामिक क्षणों मे सघर्षजन्य सकल्प और भावना का प्राबल्य अवश्य रहा, पर मुक्ता फिर भी उसके अन्तस् मे छिपी ही रही। मानो वहाँ छिपी-छिपी ही उसके सकल्प को मजबूत करती रही। उसकी भावना को उत्तेजित करती रही। उसके उत्साह को बढ़ाती रही। लेकिन जब अपने मानस-पति के घर के उद्देश से मुक्ता के साहस-भरे पलायन और शौर्य-भरे संघर्ष की कहानी उसके कानो मे भी आ पड़ी तो उसका मन सौभाग्यभरी भावना एवं गर्वोज्ज्वल अहंकार की तरगो से खूब वेग से तरगित हो उठा। तब से जेल की राते मानो उसके लिए 'मधु-रजनी' बन चली ! मधु-रजनी के उन मधुर-मादक क्षणों से उसका मन सलग्न हो भावना के सरस पवित्र मन्दिर मे मुक्ता को बैठा कर जाने क्या-कुछ बोला करता, क्या-कुछ सोचा करता !

जेल के 'बैरेक' मे चन्द्रावत और शैलेन्द्र के विस्तर पास-पास थे। शैलेन्द्र शायद जाग रहा था, लेकिन वह मुँह ढके पड़ा हुआ था। और चन्द्रावत भावना-भरे स्वरो मे बार-बार मुक्ता को उद्देश कर मन-ही-मन बोल रहा था—"ओ मुक्ते ! ओ मेरी मुक्ते ! इस अकिंचन को आत्मसात् करने वाली महामहिमामयी नारी ! ओ, दुर्बलो और दलितों के पक्ष मे अपने जीवन को होमने वाली महामहीयसी महिले ! तूने मुझे धन्य किया ! मणिपुर को धन्य किया ! समस्त नारी-जाति और मानव-

जाति को धन्य किया! पं० कृष्णमाधवजी ने झूठ नहीं कहा, अतिशयोक्ति नहीं की, कि तुम दुर्गा हो! ओ, दलितो की दुर्गति का नाश करने में खड्गहस्त महिले! तुम सचमुच दुर्गा हो! माँ दुर्गा की अदम्य और अमोघ शक्ति से परिचालित तुम सचमुच इस संघर्ष के नेतृत्व के योग्य हो! कृष्णमाधवजी का यह विश्वास वास्तव मे व्यर्थ नही कि तुम जैसी दुर्गाओं की सघटित हुंकार को कौन शक्ति बर्दाश्त कर सकेगी? तुम्हें कौन परास्त कर सकेगा? हम सचमुच इस सघर्ष मे सफल होगे! ओ, हमारी दुर्गे! ओ, मेरी मुक्ते!"—कहते-कहते उसकी आँखों में भावना और प्रसन्नता के आँसू भर आये।"

वह गद्‌गद् कठ से मन-ही-मन फिर बोला—"मेरे जीवन का वह क्षण वास्तव मे परम अमूल्य होगा मुक्ते, जब सघर्ष की विजय-वैजयन्ती थामे तुम्हे इन आँखो से जी-भर कर देखूँगा! तुम्हारे चरणो मे अपने सारे हृदय को लुटा कर स्वयं फकीर बन जाऊँगा! तब सारा मणिपुर धन्य होगा! सारी नारी-जाति धन्य होगी! सारा मानव-समाज धन्य होगा! तुमने मुझे जीवन-साथी और सहचर के गौरवपूर्ण पद पर बैठा कर जिस अतुल गौरव का अधिकारी बना दिया है, विश्वास रखो मुक्ते, उस गौरव का अधिकारी बने रहने का मै जीवन भर प्रयत्न करूँगा! जीवन भर साधना करूँगा! मै तुम्हारा सैनिक हूँ! सच्चा साथी और सहचर! तुम्हारे समक्ष श्रेष्ठत्व और नेतृत्व का अहकार करके मै अपने को ओछा करना नही चाहता मुक्ते!"

और उधर शैलेन्द्र के मन की दशा भी बहुत कुछ ऐसी ही रहा करती। भावना समान, पर आलम्बन भिन्न-भिन्न। और भावना मे अतिशय व्यापकता। वह अपनी तोम्बी के बारे मे आज सोये-सोये सोच रहा था, मुक्ता और मुक्ता की माँ के बारे मे, तथा उन सभी महिलाओं के बारे में जो बड़े साहस और शौर्य के साथ मैदान मे उतर आई थीं। सबसे पहले वह केवल तोम्बी को लक्ष्य कर मन-ही-मन बोल रहा था—

"तुम मानवी हो तोम्बी, सच्ची मानवी ! भिन्न जल-वायु में, भिन्न भूमि और भिन्न समाज मे उत्पन्न और पले-पुसे एक मानव के मन से अपने मन को मिला कर तुम समस्त विश्व-मानव के मन का एक अग बन चुकी हो तोम्बी ! तुममें जाति और प्रदेश की क्षुद्रता नहीं ! संकीर्णता नहीं ! तुम्हारा यह सघर्षमय जीवन ही इस तथ्य का साक्षी है कि तुम भोगलुब्ध नही हो ! क्षुद्र वासनाओ से परिचालित हो कर तुम मेरे पास नही आई ! बल्कि मानव के मन की मौलिक सजातीय एकता और व्यापकता ही तुम्हें जीवन मे प्रेरित और परिचालित कर रही है ! तुम विश्व-नागरिकता के उस ऊँचे आसन पर बैठने की अधिकारिणी हो तोम्बी, जहाँ—धर्म, रक्त, रग, जाति और भाषा—कोई भी कृत्रिम या प्राकृतिक दीवार मानव के गतिशील विशाल मानस के समक्ष टिक नहीं सकती ! उसे आगे बढ़ने से रोक नही सकती ! मेरी तोम्बी ! मेरे हृदय-सागर को अहर्निश अन्दोलित करने वाली मेरी सरस चचल सवेग ऊर्मि ! धर्म, रक्त, रंग, जाति और भाषा आदि को आधार बना कर आज विश्व मे बेईमानो ने जिन क्षुद्रताओं और सकीर्णताओ एवं तत्फलस्वरूप जिस घातक पार्थक्य की सृष्टि कर दी है, उस सृष्टि के संहार के प्रयत्नो की दिशा मे, और विश्व-मानव के समत्व और एकत्व की रागिनी को मुखरित करते रहने की साधना मे मेरी हृदय-वीणा के तुम तार बनो देवि ! इस साधना में उत्तरोत्तर मेरे विश्वास को आगे बढ़ाने वाली महाशक्ति ! मेरे विश्वास मे साथ दो ! मेरी साधना में साथ दो ! मेरी कल्पना और प्रेरणा में साथ दो !"

और फिर मुक्ता को मन-ही-मन सबोधित करते हुए वह फिर बोला—"तुम राज-वश मे पैदा हुई मुक्ते ! भोगमय वातावरण में पलीं और परिपुष्ट हुईं ! किन्तु कृत्रिम उच्चता और शान-शौकत की दीवार भी तुम्हें विश्व-मानव के विशाल मन के मौलिक पथ पर बढ़ने से रोक न सकी ! तुम अपने कृत्रिम जीवन के कृत्रिम अहकार और गौरव को

ठुकराती हुई एक सच्चे विशाल मानव के मन से जा मिलीं! पीड़ित जनता के स्वार्थ से अपने स्वार्थ को मिला कर मानवता के जिस ऊँचे झंडे को उठाये तुम निर्भीक आज चल रही हो देवि, विश्वास दिलाता हूँ, तुम्हारे इस झंडे का साथ मैं आजीवन कभी छोड़ न सकूँगा! मेरी श्रद्धा, विश्वास और संकल्प के अमर पवित्र पुष्प स्वीकार करो देवि!" कहते-कहते उसका मन मुक्ता के परमोज्ज्वल पवित्र व्यक्तित्व के आगे यों विनत हो चला जैसे किसी परम श्रद्धालु भावुक भक्त का मस्तक आराध्य प्रतिमा के समक्ष।

और फिर वह मुक्ता की स्वर्गीया माँ से भी भावनाभरे लहजे में ही बोला—"आरम्भ में सामान्य जीवन बिताते हुए भी तुम उस महान शहीद के समान हो माँ, जो अन्त में अवसर आने पर भले ही टूट जाय, पर झुकना नहीं जानता! नहीं जानता! जिसे अन्याय-अत्याचार और जोर-जबर्दस्ती की तलवार भी नहीं झुका सकती! नही डरा सकती! मातृत्व, नारीत्व और मानवता के जिस उज्ज्वल विद्रोही आदर्श का उदाहरण जिस साहस और निर्भीकता के साथ तुम पेश कर गई हो माँ, उस साहस को शतशः प्रणाम! उस निर्भीकता को शतशः प्रणाम! तुम्हें प्रणाम! और तुम्हारे अन्तिम समय के उस उज्ज्वल आदर्श को भी! तुम्हारा यह आदर्श विश्व-मानव-मन की एक महान प्रेरक शक्ति है माँ! तुम मिट कर भी मिटीं नही! मर कर भी मरीं नहीं! तुम स्वयं उस आदर्श की उच्चता में विलीन हो कर अब भी मौजूद हो माँ!"—कहते-कहते उसका मन इस महामानवी के अदृश्य चरणों में भी झुक कर तादात्म्य-बोध से उत्फुल्ल हो चला।

और फिर संघर्ष में जुटी उन सभी महिलाओं से वह उसी भावुक लहजे में मन-ही-मन बोला—"हमारे इस संघर्ष की साथी बहनो! तुम दास्य, सामन्ती और पूँजीवादी युग के उन समस्त पतित कलाकारों, कवियों, विचारकों और विद्वानों के समक्ष एक जबर्दस्त चुनौती बन कर

आज खड़ी हो जिन्होंने तुम्हें 'अबला, रमणी, नितम्बिनी' आदि जाने किन-किन घृणित नामों और सम्बोधनो से पुकारा और उन रूपों मे चित्रित किया ! तुम लोग सचमुच दुर्गा हो ! तुम महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती की सम्मिलित पुनीत महाशक्ति की वह प्रतीक हो जिसके सबल सघटित निर्घोष को कोई महाशक्ति भी दबा नहीं सकती ! जिसे समर मे कोई भी परास्त नहीं कर सकता ! तुम धन्य हो बहनो ! धन्य !"—कहते हुए उसने दोनों हाथ अपने सिर से सटा लिये ।

और चन्द्रावत की माँ तो उसके मन-मन्दिर मे सदा मौजूद ही रहा करतीं, जिन्हे वह जननी के उच्चासन पर कब का बैठा चुका था । उन्हे भी श्रद्धा-भरे नयनों से निहारते, उनके उद्देश से बहुत कुछ बोलते और विचारते एक समय निद्रा माता के मीठे आँचल मे विलीन हो चला ।

× × ×

मुक्ता ने भी कृष्णमाधवजी के ही ढग पर नये सिरे से नये श्राद्ध-दल का सघटन किया । क्योंकि पुराने श्राद्ध-दल के स्वय-सेवक कैद किये जा चुके थे । मुक्ता और तोम्बी के आह्वान पर अनेक ब्राह्मण और मइतेइ युवक व नवयुवक सहर्ष स्वय-सेवक बन कर पुरोहितो और कीर्तनियो का कार्य सुचारु रूप से चलाने लगे । पं० कृष्णमाधव के नेतृत्व मे सघटित व सचालित इस कार्य ने मुक्तावती के नेतृत्व मे जैसे नया जन्म ग्रहण किया । नव-जीवन बडे वेग से सक्रिय हो उठा । उसी प्रकार सामूहिक श्राद्ध-कर्म, उसी प्रकार श्राद्ध-कर-विरोध, और उसी प्रकार 'कर' चुकाने की क्षमता और इच्छा रखने वालों के द्वार पर सामूहिक धरने ! लेकिन पहले से सजीवता और सक्रियता कहीं अधिक ! क्योंकि इस स्वयं-सेवक-दल मे साहसी महिलाओं का बाहुल्य था । मणिपुर की नैसर्गिक कर्मठ नारी-शक्ति के सचालन और सहयोग से आन्दोलन में अपूर्व ओज और जोश भर आया ।

सरकार अब अधिक सतर्क हो उठी । अधिक परेशान । क्योंकि

अन्याय-अत्याचार और क्रूर दमन के द्वारा महिलाओ को दबाना आसान न था। बाहर बदनामी का, मुँह काला होने का, भय था। और स्टेट-दरबार का प्रेसीडेंट अंग्रेज आइ० सी० एस० ठहरा! सभ्यता का जातीय स्वाभिमान उसे महिलाओ पर अत्याचार करने-कराने से रोक रहा था। अतः स्वय-सेविकाओं के साथ नरम नीति बरती जाने के बावजूद स्वयं-सेवको पर और भी कड़ाई से प्रहार किया जाने लगा। मानो महिलाओ के प्रति प्रतिशोध का पुजीभूत भाव भी पुरुषों पर ही बरसने लग पड़ा। पुरुष स्वय-सेवको से पुनः जेल के 'वार्ड' भरे जाने लग पडे। कई शहीद भी हुए। पर मुक्ता और तोम्बी भी दूने आवेग और संकल्प से नये-नये 'रँगरूटो' से रिक्त स्थानो की पूर्ति करने लग पड़ी। अपनी साथी सखियों के साथ जब वे दोनों द्वार-द्वार जा कर तरुणों से अपील करती, वह अपील व्यर्थ न जाती। कौन तरुण भला इन तरुणियो की ललकार और चुनौती के समक्ष निष्क्रिय या उदासीन रह सकता था! अतः अब मणिपुर-सरकार ने मुक्ता, तोम्बी, रजना, थम्बाल आदि प्रमुख कर्मठ महिला कार्यकर्त्रियो को गिरफ्तार करके आन्दोलन की रीढ तोड़ देने का सकल्प किया। रावर्टसन की नरम नीति पर अब हौगसन और मणिपुर-नरेश की कठोर नीति हावी हो चली। गोलियाँ न सही, पर महिलाओं पर अब जगह-जगह लाठियाँ बरसने लग पड़ी। उन्हे गिरफ्तार किया जाने लगा।

गाँधीजी के नेतृत्व में सन् १६३० का देशव्यापी आन्दोलन भी आरभ हो चला था। इस आन्दोलन मे पर्याप्त सख्या मे सम्मिलित महिलाओं के साहस और उत्सर्ग की भावना ने इन मणिपुरी वीर महिलाओ को भी खूब प्रभावित और प्रोत्साहित किया। और उसी प्रकार भारत-सरकार की दमन-नीति ने मणिपुर-सरकार को भी। भारत की आजादी के आन्दोलन मे महिला-सत्याग्रहियों पर भी गोलियाँ और लाठियाँ बरस रही थीं, उनसे जेलें भरी जा रही थीं। फिर क्यों न

मणिपुरी महिलाओं के प्रति भी वही नीति बरती जाय ?

रावर्टसन के विरोध करने पर हौगसन ने समझाया उसे—"यह जीवन-मरण का संग्राम है हमारा ! इस मामले मे स्त्री-पुरुषों का विचार हमे छोड़ना पडेगा ! शत्रु स्त्री हो या पुरुष, वह केवल शत्रु है ! लिंग-भेद का विचार और विवेक यहाँ काम नहीं दे सकता ! स्त्रियों का स्वाभाविक स्थान उनका घर है और स्वाभाविक कार्य है चूल्हे-चौके का सचालन, न कि कानून द्वारा स्थापित और सचालित राज्य-शक्ति के विरुद्ध विद्रोह ! लेकिन जब वे अपने स्वाभाविक और न्यायोचित पथ से भ्रष्ट हो कर इस अस्वाभाविक और न्याय-विरुद्ध मार्ग पर उतर आई हैं तो न्याय को भी उनके विरुद्ध अपना दड उसी प्रकार इस्तेमाल करना चाहिए जिस प्रकार पुरुष विद्रोहियो के विरुद्ध ! आपको यह सोचना चाहिए मिस्टर रावर्टसन, कि हमारे हजूर वायसराय और गृह-मत्री कही अधिक समझदार और विवेकशील हैं हम लोगो से ! गृह-मंत्री का आदेश और निर्देश हमे प्राप्त हो चुका है कि किसी भी तरीके से इस आन्दोलन को कुचल दिया जाय ! और आप ठहरे 'सिविल सर्विस' के एक समझदार वफादार कर्मचारी ! हमारा अब कर्तव्य है आँख मूँद कर ऊपर के आदेश को कार्यान्वित करना, न कि किसी प्रकार की 'अगर-मगर' अथवा हिचक जाहिर करना। आपको खुद सोचना चाहिए कि मणिपुर का यह आन्दोलन अब केवल स्थानीय नहीं रह गया, बल्कि गाँधी के खतरनाक आन्दोलन का ही एक भयानक खतरनाक पूरक ! आपको यह भी सोचना चाहिए कि मणिपुर सीमावर्ती प्रदेश है ! बर्मा हमारे अधीन अवश्य है, पर चीन और तिब्बत की सीमा यहाँ से अधिक दूर नहीं है !"

और रावर्टसन को अगत्या दमन-नीति से सहमत होना पडा। लेकिन फिर भी उसने स्त्रियो पर गोली चलाने की मनाही कर ही दी। लाठियो और गिरफ्तारियों से ही यदि काम चल जाय तो गोलियों के

इस्तेमाल की जरूरत क्या ?

लेकिन मुक्ता भी कच्ची गोलियाँ न खेल रही थी। वह जानती और समझती थी कि जेल में प्रमुख लोगो के बन्द होने से आन्दोलन शिथिल हो जायगा। कृष्णमाधव आदि नेताओं के बन्द हो जाने से आन्दोलन मे काफी शैथिल्य आ चुका था। उस शैथिल्य को दूर करने और आन्दोलन मे प्राण फूँकने में मुक्ता और उसकी साथिनों को कम प्रयत्न न करना पड़ा। अतः गिरफ्तारी का 'वारट' कटते ही उसने छिप कर काम करने और आन्दोलन को चालू रखने का संकल्प किया। इस विचार और सकल्प मे सभी सखियाँ उससे सहमत थी। उन तरुणियो की नसों मे यौवन का वही खून खौल रहा था जिसमे हर साहसिक और रोमांचक कार्य के लिए स्वाभाविक उत्साह लहरें मारा करता है !

मुक्ता ने सरकार मे अपने दो-तीन विश्वस्त गुप्तचर पहले से ही तैनात कर दिये थे। अतः सरकारी गतिविधियो और इरादों की सूचना वह पहले ही पा लिया करती। सो, गिरफ्तारी का आदेश जारी होने के साथ ही वे इस फुर्ती से अन्तर्धान हो गई कि पुलिस ताकती ही रह गई ! टापती ही रह गई ! चन्द्रावत के मकान पर छापा मार कर भी उसे निराश होना पड़ा। सिवा चन्द्रावत की वृद्धा माँ के वहाँ कोई भी दिखाई न पड़ी। घर का कोना-कोना छान-डाला गया, पर सिवा कुछ पुस्तकों के उसके हाथ कुछ पड न सका।

आन्दोलन ने जनता में अब तक इतनी सहानुभूति ला दी थी कि छिपने के स्थानों का अभाव न रह गया था। लेकिन वे एक साथ रहने के बजाय अलग-अलग रहा करतीं। किसी निश्चित स्थान पर किसी निश्चित समय पर ही मिला करतीं। लेकिन पूरी सतर्कता के साथ ! बालिका राधे अब अधिक सक्रिय हो उठी। वह सफल सन्देश-वाहिका के रूप में नियुक्त हो गई। शैलेन्द्र का नाम ही उसके लिए

सबसे बड़ा आकर्षण था। मानो वह शैलेन्द्र के नाम पर किसी भी खतरे को झेलने के लिए सदा तैयार रहती।

तोम्बी ने उससे कहा था—"जब तू यह काम ठीक से करेगी राधे, तो बगाली बाबू जल्दी ही जेल से छूट कर आ जायेंगे! समझी ?"

और थम्बाल ने मुसकरा कर उसकी गाल पर एक हलकी मीठी चपत लगाते हुए सावधान किया—"और, अगर किसी से भी हम लोगों के बारे मे कुछ भी बताया, तो समझ ले कि बगाली बाबू से तेरी शादी हम नहीं होने देंगी! समझी ?"

"धत्"—कह कर राधे लजा तो गई, किन्तु झट उसने दृढ़ स्वर में आश्वासन भी दे दिया—'नही बताऊँगी! नही बताऊँगी! किसी से भी नही बताऊँगी!"

और तब चन्द्रा ने तोम्बी से मजाक किया—"अपनी सौत पर नजर रखा कर तोम्बी! बडो खतरनाक छोकरी है यह राधे!"

और जवाब मे तोम्बी ने झट राधे को अपनी प्यारभरी भुजाओ मे बॉध कर उसका मुँह चूम लिया। मुसकाते हुए बोली भी—"यह तो बगाली बाबू की छोटी मॉ है, मॉ! मेरी सास है! सास पर नजर भी रखूँगी! अपनी सास को खूब प्यार भी करूँगी! पूजा भी करूँगी! क्यो राधे, है न तू मेरी सास ?"—कह कर पुनः उसका मुँह उसने चूम लिया।

लेकिन राधे उसकी स्नेहभरी भुजाओ से निकल कर लज्जा-ललित स्वर मे फिर बोली—"धत्!"

और तब थम्बाल ने ऑखे नचाते हुए फिर व्यग कसा—"लड़की खुद बड़ी चालाक है! तोम्बी की चलाकी मे वह आने की नही! वह सास के बजाय सौत ही बनो रहना चाहती है!"

राधे सबकी प्यारी बन चुकी थी। उन सबो के दुलार मे वह मस्त हो हमेशा आज्ञा-पालन के लिए तैयार रहती।

तो, इस प्रकार यह आन्दोलन चालू था, पर अब आन्दोलन की नेत्रियो का मोर्चे पर कोई पता न था। पुलिस बेचारी हैरान थी। और हर समय सावधान रहने के बावजूद अब तक सफल वह न हो सकी थी। लाख खोज और शोध के बावजूद।

(३१)

उधर जेल मे मुक्ता के नेतृत्व-कौशल की खबर पा कर कृष्णमाधव-जी खुशी और गर्व से बार-बार सिर हिला कर कहने लगे—"शाबाश बेटिया! मणिपुर की वीर पुत्रियो! शास्त्र ने व्यर्थ नही कहा 'बुद्धिस्तासा चतुर्गुणा' और 'साहसः षड्गुणश्चैव'। हम पुरुषो से चौगुनी बुद्धि और छह-गुने साहस वाली अपनी इन बहन-बेटियो की बुद्धि और साहस के आगे हमे सिर झुकाना ही चाहिए साथियो!"

और उधर से शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए व्यग किया—"किन्तु अपने शास्त्रो पर इतनी दृढ़ आस्था रखने वाले पडितजी से मेरा नम्र निवेदन है कि उसी श्लोक के 'कामश्चाष्टगुणः स्मृतः' इस वाक्य का तात्पर्य क्या है?"

"सो तो केवल बकवास है, बकवास! किसी बकवास-भरे श्लोक मे भी यदि कोई पते की बात कही गई हो तो उसे हमे स्वीकार कर लेना चाहिए शैलेन बाबू!"

शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए फिर व्यग किया—"मगर खतरा तो यह है पडितजी, कि यदि शास्त्रो का समर्थन किया गया तो साथ ही उनके बकवास भी स्वतः समर्थित होगे! और शास्त्रों के शैतान अपना उल्लू सीधा करने के लिए उन्ही बकवासों का सहारा लिया करेंगे! अपने स्वार्थ के समर्थन मे जाने वे कितने ही बकवासों को पेश किया करेंगे!"

पडितजी को सहसा कोई जवाब न सूझा। लेकिन फिर भी क्षणभर रुक कर वे बोले—"आपका तर्क तो यों सही है शैलेन बाबू, किन्तु

हिन्दू होने के नाते हमे हिन्दू-शास्त्रों का सहारा तो लेना ही पड़ेगा! जिस प्रकार हम माछ खाते समय उसके कॉटों को निकाल फेंकते हैं, उसी प्रकार शास्त्र के अनुचित आदेशो और मान्यताओ का तिरस्कार कर उसके उचित आदेशों और मान्यताओ को स्वीकार करना ही चाहिए! कॉटो के भय से हम सरेड और रहू जैसे उत्तम स्वादिष्ट माछों के आस्वाद से वचित तो नहीं रह जाते? इसीलिए स्वय शास्त्र ने सुझाव दिया है—'सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु।' अर्थात् मिथ्या का परित्याग करके हमे सार अश ले लेना चाहिए!"

शैलेन्द्र अब शास्त्रार्थ के लहजे मे बोला—"लेकिन अफसोस तो यह पडितजी, कि चाहे हिन्दू-शास्त्र हो या ईसाई-शास्त्र, अथवा बौद्ध या मुसलिम शास्त्र, ये सभी शास्त्र समाज मे व्यवहारतः अपने सार अशो के बजाय अपने मिथ्या अशो से ही परिचालित होते हैं! अन्यथा प्राणिमात्र के एकत्व के प्रतिपादक 'अद्वैत वेदान्त' मे विश्वास करने वाले हम हिन्दू आचारतः क्यो मानवमात्र की एकता मे, उसकी समता मे विश्वास नही करते? और यदि हम विश्वास करते हैं, तो क्यो व्यवहारतः वर्णभेद और छुआछूत को मानते है?"

वहॉ उपस्थित लोगो को शलेन्द्र का तर्क बडा तगडा लगा। चन्द्रावत मन-ही-मन मुसकरा रहा था, पर दूसरे लोग नये तथ्य की उपलब्धि से खुश हो शैलेन्द्र को श्रद्धा-भरे नेत्रो से देखने लगे।

पं० कृष्णमाधवजी ने शान्त स्वर मे जवाब दिया—"किन्तु उस वेदान्त-शास्त्र मे ही इसका समाधान भी किया गया है शैलेन बाबू! 'परमार्थ-सत्य' और 'व्यवहार-सत्य' नाम से सत्य के मुख्यतः दो भेद वहॉ किये गये हैं। प्राणिमात्र अथवा मानवमात्र मे एकता अथवा समता की भावना अथवा बुद्धि 'परमार्थ-सत्य' है। किन्तु सिद्धान्त रूप से ठीक होते हुए भी व्यावहारिक नहीं है। व्यावहारिक जगत् मे वर्ण-विभेद और छुआछूत का व्यवहार सनातन से चला आ रहा है। अतः वह

व्यवहार-सत्य है। अतः सत्य के व्यावहारिक रूप को भी स्वीकार करने में सकोच हमें न करना चाहिए !"

उपस्थित लोगो मे बहुतों को पडितजी का जवाब ठीक लगा। क्योकि अपने समाज मे प्रचलित छुआछूत के व्यवहार को वे अनुचित मानने को अभी तैयार न थे। अतः वे मन-ही-मन खुश हुए। लेकिन शैलेन्द्र ने फिर तर्क का प्रहार किया—"किसी व्यावहारिक सत्य को स्वीकार करना और बात है, और उसे उचित समझना और मानना कुछ और। समाज मे किसी प्रचलित प्रथा को हम 'तथ्य' कह सकते हैं, 'सत्य' नही ! तथ्य और सत्य में बड़ा अन्तर है पडितजी ! और दूसरी बात यह कि जिन वेदान्ती विद्वानो या विचारको ने सत्य का यह भेद किया है, यदि सत्य कहा जाय तो उन्होने वास्तव मे वेदान्त के अद्वैत सिद्धान्त के साथ विश्वासघात ही किया है ! उन्होंने भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए ही इस भेद-सिद्धान्त का आविष्कार किया !"

शैलेन्द्र के इस आक्षेप से पडितजी चौंक उठे, और दूसरे लोग भी। लेकिन चन्द्रावत चुपचाप मुसकराता ही रहा।

पडितजी ने अब दायें हाथ को बार बार हिलाते हुए शैलेन्द्र के आक्षेप का प्रतिवाद किया—"नही नहीं ! ऐसा आपको नहीं सोचना चाहिए ! ऐसा आपको नही कहना चाहिए, शैलेन बाबू !"

किन्तु शैलेन्द्र ने पुनः तर्क का तूफान चालू किया—"सत्य तो आखिर सत्य ठहरा पडितजी ! उसे न कहना, अथवा उसके सम्बन्ध मे सोचे बिना रह जाना भी सत्य के प्रति किसी विश्वासघात से कम नही है ! सत्य के यदि ऐसे मनगढ़न्त विभेदों को स्वीकार कर लिया जाय, यदि हम व्यावहारिक तथ्य को हीं 'सत्य' मान लें, तो पंडित अचउबा शर्मा द्वारा की गई धर्म और धर्मशास्त्र की व्याख्याओं को भी हमें सत्य के रूप मे ही स्वीकार करना होगा ? श्राद्ध-कर के कानून को भी हमे व्यवहार-सत्य के रूप में ही स्वीकार करना पड़ेगा ? मै उसे तथ्य के रूप

मे अवश्य स्वीकार करता हूँ, पर सत्य के रूप मे कदापि नहीं ! और फिर, इसी प्रकार सदियो से चली आई समाज की किसी क्रूर-से-क्रूर और भद्दी-से भद्दी प्रथा का भी व्यवहार-सत्य के नाम पर हमे समर्थन करना पडेगा ?"

पंडितजी के पास अब जवाब न था। और दूसरे लोग शैलेन्द्र के तर्कों से पर्याप्त प्रभावित हुए दीख रहे थे।

पडितजी ने अगत्या हथियार डालते हुए शैलेन्द्र से प्रश्न किया— "तो आपका इस सम्बन्ध मे अपना निश्चित मत क्या है शैलेन बाबू ?"

और शैलेन्द्र ने बेहिचक दृढता से जवाब दिया—"यदि मेरा मत पूछते है तो मै तो कहूँगा कि अब इन धर्मो और धर्मशास्त्रो की मानव-समाज को जरूरत नही रही ! इन धर्मों और धर्मशास्त्रों की आड मे सदियो से सारे विश्व मे मनुष्य समाज पर पर्याप्त अत्याचार होते आये हैं ! और आज मणिपुर की गरीब जनता भी इस धर्म और धर्मशास्त्र के अत्याचार की ही शिकार बनी कराह रही है पंडितजी !"

पं० कृष्णमाधवजी पुनः चौक कर आश्चर्यभरे स्वर मे बोले—"तो क्या आप धर्म को नही मानते शैलेन बाबू ?"

और शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए फिर दृढ़ता से जवाब दिया—"यदि न माना जाये तो क्षति क्या, पडितजी ?"

"किन्तु विना किसी मर्यादा और विश्वास का सहारा लिये हम जीवन मे आगे बढ़ तो नहीं सकते ? ऊपर उठ तो नही सकते ?"

"विश्वमानव की एकता और समता मे दृढ़ विश्वास एव तदनुकूल व्यावहारिक मर्यादा में आस्था और आचरण क्या हमे आगे नही बढ़ा सकते ? ऊपर नहीं उठा सकते ?"

पडितजी हिचक-भरे स्वर मे आधा हथियार डालते हुए बोले— "आपका कथन ठीक है शैलेन बाबू ! और वेदान्त अथवा हिन्दू धर्म का मूल सिद्धान्त भी तो यही है ! अतः इससे धर्म का खंडन तो नहीं

होता ? धर्म के नाम पर प्रचलित पाखडों एवं रुढियो का खंडन अवश्य होता है ! किन्तु एक बात मै पूछ सकता हूँ आपसे, कि यदि धर्म में आपका विश्वास नहीं, तो गरीब मृतकों के उद्धार के निमित्त किये गये इस आन्दोलन मे आप सम्मिलित कैसे हुए ? हेडमास्टरी की अच्छी-खासी सरकारी नौकरी पर आपने लात कैसे मारी ? और आन्दोलन मे सदा आगे बढ़-बढ़ कर आपने पुलिस की लाठियाँ क्यो सही ? इतने बलिदान करने को तैयार कैसे हो गये ?''

''अभी-अभी मै जवाब दे चुका हूँ पडितजी ! विश्व-मानव की मूल-भूत एकता मे निजी दृढ़ विश्वास ने ही मुझे इस ओर प्रेरित किया। मणिपुर को तो मै अपनी निवास-भूमि भी मान चुका हूँ, बना चुका हूँ, और यह भारतवर्ष का एक अग भी है, अतः यहाँ की उत्पीड़ित जनता के सघर्ष मे शामिल होने एव उसके लिए किये गये यत्किंचित् त्याग पर मै गर्व नही करता। आपका बलिदान बहुत बड़ा है ! चन्द्रावत सिह का बलिदान बहुत बडा है ! और इस संघष मे हमारे बहुत-से साथियों का बलिदान भी बहुत बड़ा है ! लेकिन इतना मै अपने ऊपर विश्वास करके कहता हूँ पडितजी, कि विश्व के किसी भी कोने मे मानव-मात्र पर किये गये अत्याचार को मै अपने पर किये गये अत्याचार से कम नहीं मानता ! भले ही मै प्रत्यक्ष रूप से उसके प्रतिकार के सघर्ष मे शामिल न हो सकूँ, पर मेरा मन उत्पीड़ितों के पक्ष मे ही रहेगा ! अपने पर किये गये अत्याचार का प्रतिकार अपनी शक्ति भर पशु भी करता है, मनुष्य भी। लेकिन पशुओ का ससार बहुत छोटा है, क्योंकि उनका मन बहुत छोटा होता है। अतः उनकी भावना और भावनात्मक ससार भी छोटा होता है। किन्तु मनुष्य का मौलिक मन बहुत बडा होता है। इसलिए उसकी भावनाएँ और उसका भावनात्मक जगत् और समाज भी बहुत बड़ा होता है। छोटी दुनिया में, छोटे समाज में, मन को कैद किये रखना मनुष्य के लिए कतई सम्मान-जनक नहीं ! यह तो

पशुत्व का प्रतीक है ! और अपने अथवा अपने समाज पर हो रहे अत्याचार के प्रतिकार में शामिल होना तो मनुष्य का सामान्य कर्तव्य है ! और यह तो मै अपने अत्यन्त समीपी, स्व-समाज के सघर्ष में शामिल हुआ हूँ । अतः यह व्यर्थ गौरव और गर्व की बात नहीं है मेरे लिए !"

पडितजी ने इस बार पूरी तरह हथियार डाल दिये । अत्यन्त प्रसन्नता और आदर से भरे स्वर मे वे बोले—"तब तो आप महान धार्मिक हैं शैलेन बाबू ! महान आस्तिक ! विश्व-मानव के मन के एकत्व और व्यापकता मे दृढ़ विश्वास रखने वाले को मैं नास्तिक समझ कर आस्तिकता का अपमान नहीं कर सकता शैलेन बाबू ! आप तो वास्तव मे सच्चे वेदान्ती हैं ! वेदान्त के सिद्धान्त के सच्चे अनुयायी ! आपका विचार भी सत्य ! आचार भी सत्य ! विचार और आचार की एकता के बिना मनुष्य कभी मनुष्य बन नही सकता ! आप सच्चे मनुष्य है शैलेन बाबू ! सच्चे अर्थों मे मनुष्य ! यही सबसे बड़ी आस्तिकता है आपकी !"

पर शैलेन्द्र लज्जित हो पड़ा । लज्जा से तनिक लाल ! आँखें नीची हो चलीं । बोला—"लेकिन इस सघर्ष मे दृढ संकल्प से शामिल हुए और होने वाले अपने किसी भी साथी को मै अपने से छोटा नही मानता ! बड़ा अवश्य मानता हूँ !"

"यह भी तो आपके विशाल हृदय का ही द्योतक है शैलेन बाबू ?"

शैलेन्द्र ने झट दोनो हाथ जोड कर प्रार्थना की—"मेरी विनम्र प्रार्थना है पडितजी, कि यह सब कह कर मुझे और लज्जित न करे ! हमारे अन्य साथियो को मुझसे छोटा न करे !"

पडितजी ने हँसते हुए जवाब दिया—"अच्छा, अच्छा ! अब और कुछ कह कर अपने प्रिय साथी शैलेन्द्र के मन को नाराज करने की गलती मै नही करूँगा ! विश्वास रखें शैलेन बाबू !"

पडितजी के इस जवाब पर सभी हँस पडे। शैलेन्द्र भी हँसा।

पडितजी अब एकाएक अन्य प्रसग को ले कर बोले—"विश्व-मानव के मन की एकता और व्यापकता मे आपका विश्वास बिलकुल सही है शैलेन बाबू! देखिये न! हमने इधर मणिपुर मे श्राद्ध-कर-विरोधी आन्दोलन आरंभ किया और उधर गॉधीजी ने अब नमक-कर-विरोधी आन्दोलन शुरू कर दिया है! नमक और श्राद्ध शब्द को हटा दिया जाय तो दोनो आन्दोलनो मे केवल 'कर-विरोधी' शब्द रह जाता है। कितनी गजब की समानता है! गॉधीजी के आन्दोलन से अपना यह आन्दोलन कोई कम महत्त्वपूर्ण तो नही?"

और शैलेन्द्र के कुछ जवाब देने से पहले ही ब्रजविहारी गर्वभरे स्वर मे बोल उठा—"कम क्यो? ज्यादा है पडितजी! हमने पहले शुरू किया और उन्होंने बाद मे! और सिद्धान्तो से भी हम आगे हैं! गॉधीजी आज अपना चरखा-वाद या ग्रामोद्योग-वाद चलाने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर हमारे पूर्वजो ने तो इस 'वाद' को सदियो पहले मणिपुर मे चालू कर दिया! हमारे घर-घर मे चरखे है! घर-घर मे करघे और खड्डियाँ है! चार-पॉच लाख जन-संख्या के इस छोटे-से राज्य मे ढेड़-दो लाख तो करघे और खड्डियाँ हैं! हर मणिपुरी नारी चरखा चलाना जानती है! कपड़े बुनना जानती है! हम अपने घर के बुने कपड़े स्वय भी पहनते हैं, और दूसरों को भी पहनाते हैं! हम अपनी आवश्यकता की सभी चीजें यहाँ आप पैदा करते हैं! अतः मेरी राय मे तो 'गॉधीवाद' को 'मणिपुरी वाद' कहना कही अधिक ठीक होगा! कहीं अधिक युक्ति-युक्त और उपयुक्त!"—कहते-कहते उसके चेहरे पर जातीय स्वाभिमान की लाली उभर आई।

और शैलेन्द्र ने उसके इस गर्व पर मानो प्रहार करते हुए मुसकाते हुए कहा—"और कुछ अग्रेज लोग तो गॉधीवाद को मन-ही-मन 'ब्रिटिशवाद' समझते हैं, और कुछ लोग 'रूसीवाद'! क्योंकि गॉधीजी

के महान गुरु 'रस्किन' साहेब अंग्रेज थे। रस्किन की लिखी प्रसिद्ध पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' जिसका गॉधीजी ने 'सर्वोदय' नाम से अनुवाद किया या कराया है, गॉधीवाद का मुख्य आधार है। और रूस मे पैदा हुए 'टाल्स्टाय' के सिद्धान्तो से भी गॉधीजी खूब प्रभावित हैं। तो भाई ब्रजविहारी, झगडा नही करेंगे तुमसे अंग्रेज और रूसी लोग? और दूसरे, गॉधीवाद को 'स्वदेशी-वाद' कह कर प्रचारित करने वाले और ऐसा मानने वाले देशभक्त गॉधीवादी क्या नाराज न हो पडेंगे तुम पर?"—कह कर वह ठठा कर हँस पड़ा।

लेकिन उसकी इस हँसी मे सिवा चन्द्रावत के किसी और ने साथ न दिया। क्योंकि यह बात उन लोगो को कम अनोखी न लगी। और ब्रजविहारी तो मन-ही-मन जरा नाराज भी हो पड़ा।

लेकिन कृष्णमाधवजी ने आँखे फैला कर आश्चर्य-भरे स्वर में पूछा—"अच्छाऽऽऽ! क्या यह सच है शैलेन बाबू? तब तो तात्पर्य यह कि गॉधीवाद भी कोई मौलिक वाद नही है? और इस वाद का प्रेरणा-स्रोत स्वदेश मे न हो कर विदेश मे है?"

बीच मे ही ब्रजविहारी पुनः बोल उठा—"विदेश मे क्यों, स्वदेश मे है! मणिपुर भारत का स्वदेश ही तो है?"

लेकिन शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए पुनः व्यंग कसा—"अफसोस लेकिन यही ब्रजविहारी भाई, कि गॉधी बाबा ने मणिपुरी चरखा-वाद से कोई प्रेरणा नहीं ली! और यदि छिपे-छिपे ली भी हो तो इसका स्पष्ट उल्लेख उन्होने शायद कहीं किया नही! तुम लेकिन 'कापी-राइट ऐक्ट' के अधीन मुकदमा उनपर दायर कर सकते हो!"

इस बार सिवा ब्रजविहारी के सभी ठठा कर हँस पड़े।

कृष्णमाधवजी ने बीड़ी सुलगाते हुए आश्चर्य-भरे स्वर में फिर कहा—"तब तो मानव के मन की व्यापकता और एकता का आपका सिद्धान्त और भी सही उतरता है शैलेन बाबू?"

"यह कोई मेरा निजी आविष्कृत सिद्धान्त नहीं है पंडितजी! यह बहुत पुराना सिद्धान्त है! सत्य-सनातन सिद्धान्त! भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने भी ऐसा कहा और माना है, तथा विश्व के अन्य अनेक देशो के ऋषि-मुनियो ने भी! मैं तो केवल इस सिद्धान्त में विश्वास रखने वाला एक व्यक्ति हूँ! एक सैनिक!"

"तो आप गॉधीवाद में भी विश्वास रखते होगे? क्योंकि विश्व-मानव के मन से निकले इस व्यापकता-भरे वाद से आपका मतभेद तो होना न चाहिए?"—पडित कृष्णमाधवजी ने प्रश्न किया।

और शैलेन्द्र ने तनिक गभीरता से जवाब दिया—"विश्व-मानव मे एक ही ढग से सोचने और समझने वाले लोग विश्व के विभिन्न भागो मे, विभिन्न युगो मे होते आये हैं पडितजी! भारत के चाणक्य, युरोप के मेकियावेली, इटली के फासिस्ट मुसोलिनी और जर्मनी के हिटलर और हिटलर के परम गुरु नीत्से के विचारो में पर्याप्त समानता है! ये लोग 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' अर्थात् 'वीरभोग्या वसुन्धरा' के सिद्धान्त मे विश्वास करते हैं। पर 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धान्त मे विश्वास और आस्था रखने वाले इन मनुष्यो के विचार और आचार विश्व-मानव की एकता और समता के उन्नायक नही कहे जा सकते। बल्कि घोर बाधक हैं! यद्यपि विभिन्न वादों के आधार पर बने गॉधीवाद मे खूब उदारता है; वह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के आदर्श का प्रतिपादन नही करता; किन्तु मै, इस वाद की मानवता पर आधारित उदारता का प्रशंसक होते हुए भी इसके असगत और अवैज्ञानिक आर्थिक सिद्धान्त से कतई सहमत नहीं हूँ! इसका गलत आर्थिक सिद्धान्त ही इसके उदार मानवतावाद का सबसे बड़ा शत्रु है! क्योंकि मानव-समाज का सारा व्यवहार मुख्यतः 'अर्थ' की धुरी पर चला करता है! फिर यदि समाज के मुख्य 'सचालक यन्त्र' के सम्बन्ध मे ही जिस 'वाद' के गलत विचार हा, गलत मान्यताएँ हों, उस वाद से

मानव-समाज प्रगति कर सकेगा इसमें मुझे कतई विश्वास नहीं है !"

"लेकिन आज देश के अंग्रेजी पढ़े-लिखे ऊँचे दिमाग वाले सैंकड़ों-हजारो लोग क्यो गॉधीजी के पीछे चल रहे हैं ?"—कृष्णमाधवजी ने पुनः प्रश्न किया ।

"उन ऊँचे दिमाग वालों के बारे मे कुछ न कह कर मैं अभी सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि सदियों से मणिपुरी समाज मे सक्रिय रूप से प्रचलित इस वाद की विफलता को आज स्वयं अपनी ऑखों देखते हुए भी मै कैसे इस वाद से सहमत हो सकता हूँ ? प्रत्यक्ष मे कोई प्रमाण पेश करने की जरूरत नहीं पडितजी ! आखिर गॉधीवादी अर्थव्यवस्था के यहॉ होते हुए भी वही शोषण, वही गरीबी, वही अन्याय और अत्याचार आज यहॉ प्रत्यक्ष रूप मे क्यो मौजूद हैं जिन्हें भविष्य मे विनष्ट करने का दावा गॉधीवाद कर रहा है ? और आश्चर्य तो यह कि अपनी इसी अर्थ-व्यवस्था के आधार पर वह भारत मे 'राम-राज्य' लाने का सपना भी देख रहा है !"

दूसरे लोग खूब रुचि से चुपचाप सुनने लगे । लेकिन ब्रजविहारी को निराशा हुई । और कृष्णमाधवजी फिर बोले—"लेकिन मणिपुर मे इस वाद की विफलता का मुख्य कारण यहॉ का सामन्तवाद है शैलेन बाबू ! इस वाद पर सामन्त-वाद की प्रभुता है । इस प्रभुत्व के नीचे वह निर्जीव और व्यर्थ बना हुआ है ! मेरा तो विश्वास है कि इस प्रभुत्व के समाप्त होते ही यहॉ की गॉधीवादी अर्थ-व्यवस्था स्वतन्त्र बन कर खूब प्रगति करेगी ! और तब न मणिपुर मे शोषण रह जायगा, न गरीबी रह जायेगी, न अन्याय-अत्याचार रह जायेंगे !"

शैलेन्द्र ने भी मुसकराते हुए जवाब दिया—"लेकिन आप क्या यह भी विश्वास करते और मानते हैं कि इस अर्थ-व्यवस्था मे उलझ कर विश्व-मानव के मन-मस्तिष्क की प्रगति रोक दी जाय ? उस

मस्तिष्क ने विज्ञान के क्षेत्र मे जो अब तक अपार प्रगति की है, और उस प्रगति के फल-स्वरूप मानव-समाज को सुखी और सुविधा-जनक जीवन के जो अनेक साधन उपलब्ध हो चुके हैं, हो रहे हैं, और भविष्य मे अधिकाधिक उपलब्ध होते रहने की उमीद भी है, उन्हें क्या रोक दिया जाय? प्राप्त सुविधाओं को विनष्ट कर दिया जाय? उस प्रगति का विरोध किया जाय? उस प्रगति की निन्दा की जाय? गाँधीवाद हमे येही मूर्खताएँ सिखाता है! और इसीलिए मै इस वाद के बिलकुल विरुद्ध हूँ पडितजी!"

पडितजी क्षणभर चुप रहे। कुछ सोच कर फिर बोले—"लेकिन मै यह कैसे मान लूँ शैलेन बाबू, कि गाँधीवाद इस वैज्ञानिक प्रगति अथवा वैज्ञानिक साधनों के विरुद्ध है? अन्यथा गाँधीजी स्वय रेल पर यात्रा न करते? अपनी काग्रेस के कार्यों मे तार-टेलीफोन का उपयोग न करते? पुस्तके प्रेस मे न छपवाते? समय की पाबन्दी के लिए अपनी कमर मे घड़ी लटकाये न रखते? ये सारी चीजें विज्ञान द्वारा ही उपलब्ध हुई हैं? और यदि गाँधीवाद वास्तव मे विज्ञान-विरोधी होता तो गाँधीजी स्वय इन वस्तुओ का उपयोग न करते?"

शैलेन्द्र इस बार खूब जोर से हँस पड़ा। हँसते हुए ही बोला—"यही तो इस वाद की विशेषता है पंडितजी! न गाँधीजी स्वय गाँधी-वादी हैं, न कोई ऊँचे दिमाग वाला गाँधीवादी ही गाँधीवादी है! वैज्ञानिक अवदानों का यत्किंचित् उपयोग भी विज्ञान और वैज्ञानिक प्रगति की महत्ता को स्वीकार करने मे स्पष्ट प्रमाण है! मै पूछता हूँ आपसे कि यदि कुछ वर्ष बाद अग्रेजी शासन को भारत से मिटाने और भगाने में सफलता हमे मिल गई, और इस अग्रेजी शासन की जगह गाँधीजी के शिष्यों की सरकार कायम हो गई, तो क्या वह रेल की सारी पटरियाँ उखड़वा कर फेंक देगी? क्या पूँजीपतियो के सारे बड़े-बड़े कल-कारखाने ध्वस्त करा देगी? अपने शासन को कायम रखने की खातिर, अथवा

कानून और व्यवस्था के नाम पर अपने विरोधियों के सशस्त्र विद्रोह को दबाने मे पुलिस और सेना का इस्तेमाल न करेगी ? फिर उसके अहिंसा-सिद्धान्त की क्या दशा होगी ? किसी समतुलित मतिष्क के ईमानदार व्यक्ति के लिए गॉधीवाद मे विश्वास व्यक्त करना कतई आसान नहीं है पंडितजी ! इस वाद की यह जड़बुद्धिता और स्पष्ट असंगतियॉ ही इसकी हेयता मे प्रमाण हैं !"

पडितजी को शैलेन्द्र का यह कटु-कटोर व्यंग तनिक भी अच्छा न लगा। पडितजी अब तक गॉधीवादी बन चुके थे। नव-दीक्षा का विश्वास खूब प्रबल था, पर अध्ययनजन्य ज्ञान का प्राबल्य न था। यह व्यग उन जैसे गॉधीवादियों पर भी एक करारा प्रहार था। लेकिन पडितजी स्वभावतः उदार और सयमी थे। अतः भीतर से तिलमिला कर भी वे ऊपर से अपने यत्किंचित् अध्ययनजन्य ज्ञान के सहारे संयमित स्वर मे बोले—"गॉधीवाद प्रत्यक्ष हिंसा का विरोधी है शैलेन बाबू ! गॉधीवादियो की सरकार न रेल की पटरियॉ उखडवायेगी, न बिजली-टेलीफोन के तार कटवायेगी, न पूॅजीपतियों के बडे-बडे कार-खाने ध्वस्त करायेगी ! बल्कि इन वस्तुओं के प्रचलन और उपयोग मे निहित शोषण रूपी हिंसा को अहिंसक तरीकों से विनष्ट कर देगी ! वह ग्रामोद्योगो को इतने बडे परिमाण मे प्रोत्साहित करेगी कि पूॅजीपतियों के बड़े-बडे कल-कारखाने और उनके शोषण, और इन शोषणों के बल पर पलने और परिपुष्ट होने वाले पूॅजीपति भी अपने-आप विनष्ट हो जायेंगे ! सेना और पुलिस भी शायद दिखावे के लिए रह जाय, अथवा इनका उपयोग न्यूनतम मात्रा में किया जाय। और फिर समाज से शोषक-शोषित वर्ग की समाप्ति के बाद इनका अस्तित्व भी समाप्त हो जायगा ! क्योंकि गॉधीवाद के अनुसार स्वतन्त्र भारत के हर गॉव हर माने मे इतने सुसस्कृत और स्वात्म-निर्भर और स्वतन्त्र बन जायेगे कि केन्द्रीयता का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा ! और उस केन्द्रीय शक्ति को कायम रखने के सारे

हिंसक साधन भी अपने-आप विनष्ट हो जायेंगे !" फिर एकाएक व्यंग-भरी मुसकान के साथ—"और जड़बुद्धिता का आरोप तो ऐसे हर व्यक्ति पर किया जा सकता है शैलेन बाबू, जो किसी भी सिद्धान्त, विश्वास या आदर्श में दृढ़ आस्था रखता हो ?"

शैलेन्द्र तनिक झेंप गया। ईंट का जवाब मानो पत्थर से मिल गया। उसे बड़ी लज्जा हुई कि प्रकारान्तर से उसने अपने आदरणीय नेता को भी जड़बुद्धि और बेईमान सिद्ध कर दिया है। झट हाथ जोड़ माफी माँगते हुए बोला—"अपने कड़े शब्दो के लिए मै बहुत लज्जित हूँ, करबद्ध क्षमा-प्रार्थी हूँ पंडितजी ! किन्तु विनम्रता के साथ इतना अवश्य कहूँगा कि गाँधीवाद आधारहीन स्वप्न की उड़ान के सिवा और कुछ नही ! वास्तविकता से इसका कोई मेल नही ! और एक दूसरी जबर्दस्त असगति इसमे यह है कि शोषक शक्तियो एव शोषक साधनों के विनाश में गाँधीवाद भी विश्वास रखता है। तो, विनाश चाहे हिंसात्मक साधनो से किया जाय, अथवा अहिंसक साधनो से, पर है वह विनाश ! और जहाँ विनाश है, वहाँ हिंसा भी है ! क्योकि दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है ! अतः ..."

विवाद का सिलसिला एकाएक रुक गया। एकाएक इस बहस से लोगो का ध्यान हट कर दूसरी ओर चला गया। स्त्रियों के गगनभेदी नारे जेल की दीवारे लाँघते हुए वहाँ पहुँचने लगे। सब लोग चौकन्ने हो चले। बड़ी उत्सुकता और कौतूहल से इन्तजार करने लगे। उत्तरोत्तर वह आवाज काफी जोर पकड़ती हुई उनके निकट आने लगी।

कृष्णमाधवजी जरा घबराये स्वर में बोले—"एँ ! हमारी मुक्ता, तोम्बी आदि मणिपुर की वीर बेटियाँ गिरफ्तार तो नहीं कर ली गई ?"

वे सब एकाएक 'बैरेक' के आँगन मे आ कर खड़े-खड़े उस सामूहिक ध्वनि को ध्यानपूर्वक सुनने, पढ़ने और परखने लगे। चन्द्रावत ने निश्चित स्वर में समर्थन किया—"हाँ, वे ही लोग हैं

पंडितजी !"

पडितजी उनकी गिरफ्तारी पर तनिक चिन्तित हो कर बोले—"जाने अभी कितनी अग्नि-परीक्षाओं से गुजरना पड़ेगा हमें ! शत्रु शक्तिशाली भी है, क्रूर भी, दृढ़-संकल्प भी !"

शैलेन्द्र ने आश्वासित किया—"हम भी दृढ़-संकल्प हैं पंडितजी ! जन-पक्ष भी अब कम शक्तिशाली नहीं है ! चिन्ता किस बात की ? अग्नि-परीक्षाओं से हम हॅस-हॅस कर गुजरते चलेंगे ! शत्रु को दिखा लेने दीजिए अपने सारे क्रूर कारनामे, पर अन्त मे विजय हमारी निश्चित है ! विश्वास रखें आप !"

"विश्वस्त हूॅ शैलेन बाबू !"—कृष्णमाधवजी ने तनिक साहस-भरे स्वर मे जवाब दिया—"रात के बाद दिन का आना अनिवार्य है ! पर हमारी यह रात जैसे ध्रुव प्रदेश की रात बन गई है !"

"किन्तु ध्रुव प्रदेश की रात भी तो बीतती ही है आखिर ?"—शैलेन्द्र ने फिर कहा—"और फिर उस लबी रात के बाद आया हुआ दिन भी तो उतना ही लबा होता है !"

जेल का 'महिला बन्दी-वार्ड' पुरुष-वार्ड से अधिक दूर न था। मुक्ता, तोम्बी, रजना, थम्बाल, चन्द्रा, वृन्दा आदि तरुणियाॅ, जोर-जोर से नारे लगाती जेल के मुख्य द्वार पर अब आ पहुॅची थी। उनके सबल और समवेत नारो से जैसे जेल का सारा अहाता हिलता हुआ महसूस होने लगा। और उसके साथ ही उन पुरुष बन्दियो के हृदय भी खूब जोर-जोर से आन्दोलित होने लग पड़े।

कृष्णमाधवजी ने झट दोनों भुजा उठा कर अपने 'वार्ड' से ही खूब जोर की आवाज लगाई—"स्वागत ! मणिपुर की वीर पुत्रियो !!! स्वागत बेटियो !!!"

फिर उनके साथियों ने भी समवेत स्वर मे खूब जोर से इन शब्दो को दुहरा दिया। वे सबल-सवेग स्वागत-स्वर जैसे दीवार के अवरोधों

के सिर लात मारते झट उन वीर महिलाओं के पास जा पहुँचे। कोई भी बाधा-व्यवधान उन्हें रोक न सका।

इस स्वागत के जवाब मे सबसे पहले तोम्बी अपनी भुजाएँ आकाश की ओर तान कर खूब सबल स्वर में बोल उठी—"जय हो! मणिपुर के वीर पुत्रों !!! जय हो !!!"

उसकी सभी सखियों ने भी उसी वेग और आवेग से समवेत स्वर में इस जयोद्‌घोष से आकाश को गुँजा दिया। जेल की दीवारों को हिला और दहला दिया। जेल के अवरोधो ने उनके चर्म-चक्षुओं को एक-दूसरे से अवश्य अवरुद्ध कर दिया था, पर हृदय के सवेग नेत्रो को कौन अवरुद्ध कर सकता था? सबने जैसे सबको देख लिया।

महिला-बन्दी-वार्ड के फाटक खुलने की आवाज पुरुष-बन्दी-वार्ड मे भी आ पहुँची। और उस वार्ड मे प्रविष्ट कराई जा रही उन वीर तरुणियों के मुख से ये सामूहिक नारे बार-बार ध्वनित और प्रतिध्वनित होने लग पडे—

"अन्याय का नाश हो !!!"

"हम श्राद्ध-कर-कानून को मिटाके रहेंगे !!!"

"अपने मृतको की आत्मा को कलंकित नहीं करेंगे !!! नहीं करेंगे !!!"

"हम नहीं झुकेंगे !!! नहीं झुकेंगे !!!"

"मणिपुर की जनता की जय हो !!! जय हो !!! जय हो !!!"

और फिर उत्तर मे पुरुष-बन्दी-वार्ड में भी ये नारे उसी वेग से ध्वनित हो कर धरती और आकाश को गुँजाने लगे। हिलाने और दहलाने लगे।

× × ×

अब तक मुक्ता के गुप्त अड्डों पर अनेक छापे मार कर भी मणिपुर-सरकार की पुलिस अपने उद्देश्य में सफल न हो सकी थी। किन्तु बार-

बार के प्रयास ने आखिर सफलता उसे दे ही दी। रुपयों का—पुरस्कार का—लोभ कम प्रबल नहीं होता। कुछ मुट्ठी भर लोग ही इस लोभ को परास्त कर सकते हैं। संभव है, मुक्ता के सहकर्मियों मे से ही कोई व्यक्ति मणिपुर-सरकार द्वारा घोषित मोटी रकम के पुरस्कार के लोभ में अचानक काला बना गया हो, अथवा स्वभाव से ही कोई कुत्सित 'काला जन्तु' उनके बीच छोड दिया गया हो! महिला-वेश मे, अथवा पुरुष-वेश में!

किन्तु मुक्ता और उसकी अटल सहकर्मी सखियों को निश्चित रूप से अन्त तक उस विश्वासघाती व्यक्ति का पता न चल सका। उन्हें निश्चित रूप से पता चला केवल उस भयानक विश्वासघात के बीभत्स रूप का ऐसे क्षण मे जब भाग निकलने या छिप जाने का कोई चारा न रह गया। कोई गुजाइश न रह गई। क्योंकि सभी अन्तरग व विश्वस्त सखियों के साथ मन्त्रणा-मुखर मुक्ता का वह गुप्त अड्डा तब तक अचानक अतर्कित रूप मे सशस्त्र कांस्टेबलों व पुलिस-अफसरो से घिर कर जैसे जेल का रूप ले चुका था। गुप्तचरो के साथ पुलिस के सशस्त्र व्यक्ति उस मकान के बरामदे मे आ धमके थे और मकान के पिछवाडे बाँस के घने कुंजो व सामने आम के बाग मे कांस्टेबलो की तनी बन्दूकें जैसे उन्हें बार-बार चुनौती और चेतावनी दे रही थी—"खबरदार! प्रतिरोध अथवा भाग निकलने का अब समय नहीं रहा! एकमात्र चारा है केवल पूर्ण आत्मसमर्पण!"

मुक्ता व्यर्थ मे प्राण गँवाने के पक्ष मे कभी न थी। उन प्राणों का मूल्य अब लाखगुना बढ़ चुका था। उचित अवसर पर निर्भीक हो कर वह मृत्यु को खुली चुनोती भी दे सकती थी। पर इस अवसर पर निर्भीक भाव से पुलिस के हवाले हो जाने में ही उसे कल्याण दिखाई दिया। कौन उन अडिग साहसी तरुणियों की आत्मा को बेड़ियाँ पहना सकता था! संघर्ष मे विजय और पराजय का अवान्तर

सिलसिला चालू रहने के बावजूद अन्त में विजयी वह पक्ष होता है जिसकी आत्मा अन्त तक अडिग बनी रहती है। क्या हुआ यदि कुछ समय के लिए अपनी सखियों के साथ वह जेल में चली ही गई! क्या हुआ यदि कुछ समय के लिए संघर्ष में शिथिलता आ ही गई! आखिर प० कृष्णमाधव, चन्द्रावत और शैलेन्द्र के जेल में बन्द किये जाने के बाद, कुछ दिन सघर्ष के शिथिल पड़ जाने के बावजूद मुक्ता और तोम्बी ने मिल कर उस सघर्ष में दुबारा खूब जोर से प्राण फूँक दिये ही थे! क्या पता यदि फिर कोई नई शक्ति अचानक पैदा हो कर मुक्ता-तोम्बी के अधूरे कार्य को आगे बढ़ाने के लिए मैदान मे कूद पडे! आखिर गाँधीजी को भी तो सन् '२१ के देश-व्यापी सघर्ष को अचानक रोक देना पडा था! पर गाँधीजी और गाँधीजी के साथियों ने हार नही मानी। फिर वही शिथिल शक्ति पूरे जोर से सन् '३० के आन्दोलन के रूप मे दहाड़ उठी। और अब यह आन्दोलन भी शिथिल पडता दिखाई दे रहा था, 'राउड टेबुल कानफ्रेंस' के चक्कर मे पड कर! फिर, यदि सारे भारत की आजादी का व्यापक सघर्ष इस स्थिति में पहुँच चुका था तो मणिपुर का यह जन-संघर्ष अब उसी व्यापक संघर्ष के बन-चुके एक अग के रूप मे यदि शिथिल पड़ गया हो तो क्या? जब सारे देश के स्वातन्त्र्य-सघर्ष की आत्मा पुनः वेग से उठ खड़ी होगी तो मणिपुर का यह संघर्ष भी फिर उसी वेग से उठ खड़ा होगा। अब तो मणिपुर के इस सघर्ष का भाग्य जा जुड़ा था सारे भारत की आजादी के संघर्ष के साथ!

यह सब सोच-विचार कर मुक्ता ने विना किसी प्रतिरोध के अपनी सखियों के साथ अपने को पुलिस के हवाले कर दिया। लेकिन आत्मा आजाद बनी रही। और उसी आजाद आत्मा के सबल समवेत निर्भीक स्वर इम्फाल की गलियों और सड़को को गुँजाते हुए जेल की ओर बढ़ चले।

मुक्ता के दल की सामूहिक गिरफ्तारी का आयोजन बड़े नाटकीय ढग से किया गया था। क्योंकि अब तक के अन्य खुले या छिपे प्रयास सफल न हो सके थे। लेकिन सरकार का यह प्रयास अपने अद्भुत नाटकीय रूप में बिलकुल खुला भी था, बिलकुल छिपा भी। खुला इस माने में कि वे बिलकुल दिन-दहाड़े अपने अभियान पर चल पड़े थे, और छिपा इस अर्थ में कि मोर्चे पर खुले-आम प्रस्थान करने के बावजूद कोई भी दर्शक उनके असली रूप और इरादे को ताड़ न सका, भॉप न सका। दर्शकों ने तो यही समझा होगा कि किसी मुहल्ले की शव-यात्रा है यह! श्मशान-भूमि की ओर जाने का स्वाभाविक मार्ग भी था ही वह। धोती, कुर्ता और चादर पहने एव सिर पर बडे-बडे पग्गड बॉधे व मृदग और करताल के ताल पर कीर्तन के सकरुण पद गाते कीर्तनियों के दल के साथ शव-यात्रियों का वह दल चार कधों पर टिकी अरथी के पीछे-पीछे जा रहा था। लोग कौतूहल-भरे करुण नेत्रो से उस अरथी को एक बार देख मृत व्यक्ति के सम्बन्ध में कुछ पूछ कर अपनी जिज्ञासा शान्त कर लेते। लेकिन किसने यह सोचा होगा कि ऊपर से नव वस्त्र से ढकी उस अरथी पर एक प्रमुख पुलिस अफसर का जीवित 'शव' लेटा हुआ है, और वह स्वयं हरबे-हथियार से लैस है? और उसके अगल-बगल उस अरथी पर ही नये वस्त्र के आवरण मे कई भरी हुई राइफलें भी रखी हुई हैं, और उस जुलूस में शामिल लोग पुलिस के सिपाहियो के सिवा और कुछ नहीं हैं?

शव-यात्रियों का वह दल मुक्ता के अड्डे के पास पहुँचा। मृदग और करताल के लय-ताल पर कीर्तन के पद पीछे से ही मुखरित होते आ रहे थे। पुलिस का भेदिया पहले से ही छिपा बैठा था। और एक दूसरा भेदिया शव-यात्रा के साथ आ रहा था। शव-यात्रा के सगीतमय करुण क्रन्दन मे संकेत के कई शब्द भी बोल रहे थे। पास की घनी झाड़ी में छिपा हुआ भेदिया झट बाहर निकल आया। उसके सकेत

मात्र पर जुलूस वहाँ रुक गया। अरथी का वह प्रेत विद्युद्वेग से जीवित हो कर यों बाहर निकल पड़ा जैसे किसी सन्त के चमत्कार ने किसी मुर्दे को अचानक जीवित करके ठोकर मार कर उठा दिया हो! और विद्युद्वेग से ही पुलिस के दूसरे लोगों ने राइफलें सम्हालते उस मकान को चारों ओर से घेर लिया।

कीर्तन की ध्वनि सुन कर ही तोम्बी और थम्बाल झट खिड़की के किनारे आ कर बाहर की ओर झाँकने लगी थीं। लेकिन मिनट भर बाद ही शव-यात्रा का दृश्य बदलते देख तोम्बी चीख उठी—"अरी, ओ भाभी! यह तो यमपुरी के यमदूतो का दल है भाई! प्रेतों की फौज! इन्हें यमराज ने भेजा है हमारे पास!"

और मिनट भर बाद ही बरामदे में पिस्तौल-हस्त पुलिस-इन्स्पेक्टर के प्रवेश ने सन्देह की गुंजाइश भी नहीं रहने दी।

मुक्ता के आदेश पर सभी सहयोगी सखियों ने विना प्रतिरोध और बचाव के प्रयास के आत्म-समर्पण कर दिया। पुलिस के प्रेतों को किसी भी प्रकार की जोर-जबर्दस्ती या ज्यादती दिखाने का अवसर देने की भूल नही की गई।

× × ×

अपनी सहयोगी सखियों सहित मुक्ता और तोम्बी की गिरफ्तारी की खबर बिजली की लहर की तरह इम्फाल के घर-घर मे फैल गई। सन्देश-वाहिका बालिका राधे उस क्षण अड्डे पर न थी। लेकिन सामूहिक गिरफ्तारी की खबर उसे जल्द मिल गई। वह सीधे चन्द्रावत के घर की ओर दौड पड़ी। चन्द्रावत की माँ को उसने खबर दी। उस वृद्धा के हृदय पर जैसे अचानक बज्रपात हो गया। कुछ क्षण तो वे सन्न रह गईं। लगा जैसे आँखों के आगे अँधेरा छा गया हो। लेकिन पहले धक्के का आकस्मिक असर समाप्त होने पर उनकी आँखों में अचानक

आँसू भी भर आये। आँसू क्यों न आयें? चन्द्रावत और शैलेन्द्र भी जेल मे, और अब मुक्ता व तोम्बी भी! उनके निजी पारिवारिक जीवन के ये चारों ही स्नेह-केन्द्र उनसे दूर किये जा चुके थे। मुक्ता और तोम्बी अन्तर्धानी जीवन बिताने के बावजूद अक्सर रात मे वेश बदल कर उनसे मिलने आया करती थीं। उन दोनों से मिल कर उन्हें ऐसा महसूस होता मानो स्वय चन्द्रावत और शैलेन्द्र ही उनसे वेश बदल कर मिलने आये हों!

'पर अब क्या होगा?'—यह प्रश्न उनके मन मे बारम्बार ध्वनित होने लगा। उन्हें ऐसा लगने लगा जैसे सारा घर ही प्रेत का बसेरा बन गया हो। आजीवन-तपस्विनी उस निर्भीक वृद्धा को भी लगा जैसे उस घर का कण-कण उन्हे काट खाये जा रहा हो। और कुछ क्षण बाद ही उनका हृदय जैसे बोल पड़ा—"अभागिन! तू भी चली जा अब जेल मे! जब तेरा सारा परिवार ही जेल मे बन्द है तो अब अकेली इस भूत के बसेरे मे रहने से लाभ क्या? अब तो जेल ही तेरा स्वर्ग है! उस स्वर्ग मे मुक्ता और तोम्बी का, और उनकी स्नेहशीला सखियो का साथ तो रहेगा तुझे? अपने चन्द्रावत और शैलेन्द्र की आवाज दूर-दूर से भी सुन तो सकेगी तू? अथवा क्या पता कि उन्ही के साथ तुझे भी रख दिया जाय? कौन माल-खजाना गड़ा है तेरे घर मे कि इससे मोह की जरूरत अब? तेरा सारा माल-खजाना तो अब जेल मे बन्द किया जा चुका है! जा, जा! जल्द चली जा जेल मे!"

पर जेल जाया जाय कैसे? और इस प्रश्न का समाधान बिलकुल सामने था। जिस प्रकार प० कृष्णमाधव, चन्द्रावत और शैलेन्द्र आदि जेल गये, और अपनी सखियो के साथ मुक्ता एव तोम्बी वहाँ पहुँची हैं, अब उसी प्रकार उसी रास्ते वे भी आसानी से जा सकती हैं। उसमे बन्द की जा सकती हैं। और इस विचार के दृढ़ होते ही वे जा पहुँची तोम्बी सना की माँ के पास। तोम्बी सना की माँ के दिल का भी कम बुरा हाल

न था। आँखों में आँसू थे और झुर्रीभरे चेहरे पर गहरी उदासी की दर्दभरी छाया।

तोम्बी उनकी सबसे छोटी संतान थी। अतः वह स्वभावतः अपनी माँ की बड़ी दुलारी थी। आँखों की तारिका! मणिपुरी भाषा मे 'तोम्बी' शब्द का अर्थ है—'सब से छोटी (कन्या)' और 'सना' माने 'स्वर्ण'। उनकी आँखों की तारिका और दुलार-भरी गोद की वही स्वर्ण-कमलिनी अब जेल की निष्करुण पाषाणी भूमि की धूल चाटा करेगी यह सोचते ही उनका हृदय विदीर्ण हो रहा था!

शैलेन्द्र भी अब उनका प्यारा बन चला था। जब स्वयं तोम्बी ही उसे मन-ही-मन अपना पति स्वीकार कर चुकी है, तो क्या ऐसे दामाद को वे इसलिए हाथ से जाने देती कि वह बगाली है? वे आरंभ मे भी अपने पति श्रीअचउ सिंह की उस क्रूर कुत्सित भावना की विरोधिनी थीं। किन्तु जिस दिन राजकुमारी मुक्तावती अपने पिता के घर से भाग कर अपने मानस-पति के घर आ पहुँची, और जब मुक्ता की माँ ने स्वयं वहाँ पहुँच कर अपने पुत्री के सतीत्व-गर्वित पलायन का समर्थन करते हुए बड़े गर्व से उसे 'महासती थोइबी' का प्रतिरूप उद्घोषित किया तो तोम्बी सना की माँ का हृदय भी स्थिर न रह सका। उन्होंने भी उसी क्षण मन-ही-मन अपनी तोम्बी को 'महासती थोइबी' के उच्चासन पर बैठा ही दिया। उनका हृदय भी ईर्ष्या-मिश्रित गर्व से उत्फुल्ल हो कर मन-ही-मन बोल उठा—"अरी, तेरी तोम्बी भला किस बात मे कम है मुक्तावती से? जैसी सुन्दर वैसी ही वीर-बंका! कल ही तो वह पुलिस के छक्के छुड़ा आई है लड़ाई मे? तू माँ है उसकी! मुक्ता की माँ की ही तरह तू भी आशीर्वाद दे अपनी प्यारी वीर बेटी को कि उसका मन भी अपने शैलेन्द्र में आजीवन अटल बना रहे! उसका सोहाग आजीवन अक्षय-अमर बना रहे!" आह, उनकी उसी छोटी दुलारी का पति, उनका वह पुत्र-सम प्यारा दामाद भी तो आज वर्षों से जेल मे पड़ा

सड़ रहा है !

न केवल तोम्बी की माँ का, अपितु श्रीअचउ सिंह का संकीर्ण हृदय भी अब विशाल बन चला था। मानो शैलेन्द्र के प्रत्यक्ष ज्वलन्त व्यक्तित्व की विशालता ने ही उनके हृदय में बलात् प्रविष्ट हो कर उसे विस्तृत और व्यापक बना डाला था। अब उनके मन से समस्त बगाली जाति के प्रति वर्षों से पुंजीभूत घृणा की हिम-नदी जैसे पिघल कर, बह कर, विनष्ट हो चुकी थी। उनका हृदय भी शैलेन्द्र को निःसकोच अब दामाद मान चुका था। और अपनी तोम्बी की अटल निष्ठा और वीरता पर तो जब-तब उनका हृदय गर्व से फूल, फूल उठा करता था! ऐसी असाधारण कन्या व असाधारण दामाद के पितृत्व और श्वसुरत्व की भावना अब उनके हृदय को सचमुच गर्व के पख पर उड़ा, उड़ा रही थी!

चन्द्रावत की माँ को देखते ही तोम्बी की माँ रो पड़ी। रोती-रोती बोलीं—"हाय! मेरा दामाद तो वहाँ दुख भोग ही रहा था, अब मेरी 'सोना' भी उसी दुख के दल-दल मे जा पहुँची!"

चन्द्रावत की माँ ने आश्वासन दिया—"धीरज धरो बहन! इसमे दुख की बात क्या अगर अपने पति के पास वह पहुँचा दी गई? यह तो बडी खुशी की बात है बहन! राम को वनवास मिला तो सती सीता बड़ी खुशी से पति के साथ हो गई! अपनी तोम्बी क्या किसी सीता-सावित्री से कम है बहन? और अपना शैलेन ही किस राम से कम है? यही तो कि राम भगवान थे और शैलेन आदमी है! मगर राम ने भी तो आखिर मानुस-तन ही धारण किया था? क्या पता कि राम ने ही फिर अवतार लिया हो, और सती सीता ने भी? मुक्ता भी तो साथ गई है! तोम्बी कितनी खुश रहा करेगी उसके साथ! दोनो के प्राण एक हैं, केवल देह हैं दो! दोनो को देख ऐसा लगता है बहन, जैसे उनके प्राण एक-दूसरो की छाती मे छिपे हो! और यही बात

चाँदा और शैलेन मे है बहन !"

तोम्बी की माँ तनिक आश्वस्त हो कर बोली—"मगर दुख के लिए दुख तो किया ही जाता है बहन ! अपने चाँदा और शैलेन, मुक्ता और तोम्बी वहाँ सुख भोगने तो गये नहीं ? जवानी अगर जेल मे ही गुजर गई तो ससार का सुख कब मिलेगा उन्हे ? यही सोच कर छाती फटी जा रही है चाँदा की माँ !"—कहते-कहते उनके हृदय की हूक जैसे अचानक आँखो मे उतर आई ।

"तोम्बी की माँ ! दुख का स्वाद लिये बिना कोई सुख का सच्चा स्वाद नही ले सकता । पार्वती ने कैसी कठिन तपस्या की थी शकर को पाने के लिए ! और लक्ष्मण ने कितनी कडी तपस्या की थी राम के साथ वनवास मे ! राम के साथ तो भला सीता भी थी, मगर लक्ष्मण की ऊर्मिला तो अयोध्या मे ही रह गई ! उन दोनो की जवानी भी तो यो ही बीत गई ! मगर अन्त मे लक्ष्मण और उर्मिला का मिलाप हुआ ही ! बाद मे उन्होने ससार का सुख भोगा ही ! हमे तो गर्व से खूब खुशी मनानी चाहिए बहन, कि चाँदा और शैलेन जैसे हमारे बेटे हैं, और मुक्ता और तोम्बी जैसी बेटियाँ !"—कहते-कहते उनके झुर्री-भरे चेहरे पर गर्व-गौरव की खुशी चमक उठी । इस चमक के आलोक मे कुछ क्षण पहले के दुख-दर्द का अँधेरा जैसे बिलकुल विलीन हो चला ।

इतना कह लेने के बाद उन्होंने अपनी अगली योजना बताते हुए फिर कहा—"मै तुमसे एक बात कहने आई हूँ बहन ! तुम यह पक्का समझो कि मै भी अब जेल जा कर रहूँगी ! मेरे लिए तो जेलखाना अब स्वर्ग है और घर बिलकुल नरक ! जहाँ मेरे चाँदा और शैलेन हैं, मुक्ता और तोम्बी हैं, वही मेरा स्वर्ग ! और जहाँ वे नहीं हैं वहीं मेरा नरक ! मेरा तो सारा घर ही उठ कर अब जेल मे चला गया है ! क्या करूँगी अब अकेली अपने घर मे ? भूत के बसेरे में ?"

तोम्बी की माँ सन्न रह गई ! बोली—"तो तुम जेल जाओगी बहन ? कैसी कड़ी छाती है तुम्हारी !"

"अगर छाती मेरी कड़ी होती तो घर मे ही रह न जाती बहन ? कडी करने की कोशिश करके भी कडी नहीं कर पा रही हूँ !"—कहते-कहते उनकी आँखो से मोतियो की लड़ी-सी निकल कर पिचके गालों पर लुढ़क पडी।

तोम्बी की माँ तनिक अप्रतिभ-सी हो कर झट प्रतिवाद करती बोलीं—"नहीं नहीं ! कड़ी कहने का मेरा यह मतलब नहीं बहन ! वरन मेरा मतलब यह है कि तुम्हारी छाती इतनी कड़ी है कि तुम किसी भी दुख से घबराती नही ! किसी से भी डरती नहीं ! जैसा वीर बेटा वैसी ही वीर माता !"—कहते हुए उन्होने झट उनके पैरो के पास की धरती छूते हुए मानो उस महिमामय व्यक्तित्व का अभिनन्दन किया।

"तो क्या सचमुच तुमने जाने का निश्चय कर लिया बहन ?"—तोम्बी की माँ ने उनके सकल्प की दृढ़ता के सम्बन्ध मे पुनः प्रश्न किया।

"जरूर बहन ! अब दुविधा की कोई बात ही नहीं !"

"मगर सुना तो है कि जेल मे वही जा सकता है जिसे सरकार पकड़ कर जेल भेजना चाहती है ? अगर सरकार तुम्हे पकड़े ही न, तो ?"

"पकडेगी क्यो नहीं ? मै भी अपनी मुक्ता और तोम्बी की ही तरह काम करना शुरू कर दूँगी ! घर-घर जा कर अब धरना दूँगी ! महाराजा के खिलाफ बोलूँगी ! तब तो जरूर पुलिस का सिपाही मुझे पकड़ेगा ? जेल भेज देगा ?"

"तुम धन्न हो चाँदा की माँ ! धन्न हो तुम ! तुम्हारे चरणो की धूल में लोटने की लालसा हो रही है !"—कह कर पुनः उनके पैरों के पास की जमीन से तनिक धूल ले कर सिर से लगाते हुए बोलीं वे—

"तबीयत तो मेरी भी कर रही है तुम्हारा साथ देने की बहन! मगर अपने बूढ़े का ख्याल करके कुछ निश्चय नहीं कर पा रही! इस बुढ़ापे मे कौन उनकी देख-भाल करेगा अगर मै जेल में चली जाऊँ ?"

"तुम घर पर ही रह कर बूढ़े पति की सेवा करो बहन! सती नारी का सबसे बड़ा धर्म यही है! तुम भी आखिर बूढ़ी हो! बुढ़ापे में पति और पत्नी एक-दूसरे के और नजदीक आ जाते हैं! तोम्बी ने शैलेन का और मुक्ता ने चाँदा का रास्ता अपना कर सती-धर्म का ही तो निबाह किया है? मगर मेरा घर तो अब सूना है! किसकी देखभाल के लिए रह जाऊँ ?"—कहते-कहते पुनः उनकी आँखें छलछला आईं।

"तुम खुशी से करो अपने मन की बात चाँदा की माँ! तुम किसी भी तरह की चिन्ता न करो! तुम्हारे घर की देख-भाल और रखवाली का भार अब मेरे ऊपर!"

राधे भी उनके पास ही बैठी अब तक चुपचाप सब कुछ सुन रही थी। चन्द्रावत की माँ से वह बोल उठी—"मैं भी चाची, तुम्हारे साथ ही जेल जाऊँगी! अब मुक्ता भाभी और तोम्बी दीदी के बिना दिल मेरा नहीं लगता!"

तोम्बी और चन्द्रावत की माँ ने बारह-तेरह की उस बलिका को वात्सल्यभरे नेत्रों से निहारा। चन्द्रावत की माँ उसकी पीठ पर थपकियाँ लगा कर मुँह चूमते हुए बोली—"मगर तेरी माँ जाने देगी तुझे? और तिसपर तू नाबालिग लड़की ठहरी! तुझे तो सरकार का सिपाही पकड़ेगा भी नहीं!'

राधे तनिक निराश हो चली। लेकिन फिर दृढ़ता-भरे स्वर में बोली—"माँ तो जरूर जाने देगी चाची! अगर नहीं जाने देगी, खाना-पीना छोड़ दूँगी! और पुलिस का सिपाही अगर नहीं पकड़ेगा तो मैं खूब जोर से उपद्रव मचाऊँगी! पहले छिप कर काम करती थी, अब खुल कर उपद्रव मचाऊँगी! फिर भी क्या सिपाही मुझे नहीं

पकड़ेगा ?"

अब तोम्बी की माँ ने सिफारिश की—"बड़ी बहादुर लड़की है यह राधे ! यह नहीं मानेगी बहन ! इसे भी ले लो अपने साथ ! बड़ी मदद करेगी महाराजा के खिलाफ हो-हल्ला मचाने में ! सिपाही पकड़ ले तो भी ठीक, न पकड़े तो भी ठीक ! कुछ करने दो इसे ! विना कुछ किये इसका मन चैन नहीं ले सकता चाँदा की माँ !"—कहते-कहते वे मुसका भी पड़ीं ।

चन्द्रावत की माँ भी सहमत हो कर उससे प्यार-भरे स्वर में बोली—"अच्छा, तो चल मेरे साथ तू भी ! मै तो अभी से ही अपना काम शुरू करने जा रही हूँ !"

राधे खुश हो उठी । और चन्द्रावत की माँ तत्काल अपनी योजना को कार्यान्वित करने की दिशा मे बढ़ चलीं ।

(३३)

चन्द्रावत की माँ के अभियान का समाचार जेल के पुरुष एवं महिला वार्डों में भी जा पहुँचा । माँ ने श्राद्ध-दल का संघटन भी कर लिया और बूढ़ी, अधेड़, जवान व किशोरी महिलाओ के एक दल का भी । अभी कोई गरीब या सघर्ष के हमदर्दों के परिवार मे कोई मरा न था कि श्राद्ध-कर्म की जरूरत पडती । लेकिन राधे की प्रामाणिक सूचना के अनुसार इम्फाल के दो-तीन मुहल्लों के सम्पन्न घरों मे तीन-चार व्यक्ति अभी-अभी मरे थे जिनके घर वाले कर चुकाने के पक्ष मे थे । अतः उनके द्वार पर धरना देने व जुलूस बना कर नारे लगाने मे श्राद्ध-दल के पुरुष भी उनका साथ देने लगे ।

समाचार पा कर पं० कृष्णमाधवजी का भावुक हृदय आँखो में उंमड़ आया । अश्रुरुद्ध स्वर में वे बोले—"वे केवल चन्द्रावत की नहीं, हम सब की, सारे मणिपुर की माँ हैं साथियो ! हम सभी इस

महामहीयसी माँ की सन्तान हैं, और इस नाते संघर्ष के हम सभी सैनिक आपस में भाई-भाई हैं ! हमारा यह भ्रातृत्व कितना पवित्र है ! कितना महान् ! कितना उज्ज्वल !"

रणधीर ने मुसकाते हुए कहा—"किन्तु पंडितजी, शैलेन बाबू तो चाहते हैं कि माँ जल्द-से-जल्द जेल में पहुँचा दी जायँ ताकि प्रतिदिन महिला-वार्ड की ओर से आती हुई हवा माँ के शरीर-स्पर्श से पवित्र बन कर यहाँ बहा करे ! उनकी गरम-गरम साँसों के द्वारा उस महान आत्मा के प्यारभरे संदेशों को हम तक पहुँचाया करे !"

पंडितजी ने सस्नेह नेत्रों से शैलेन्द्र की ओर देख मुसकाते हुए कहा—"शैलेन बाबू माँ के दुलारे पुत्र जो ठहरे ! जल्दी ही उनकी इच्छा पूरी हो जायगी ! अधिकारियों के लिए रास्ता बिलकुल साफ अब हो गया है । अब तक इस संघर्ष में सम्मिलित महिलाओं को गिरफ्तार न करने की उनकी नीति समाप्त हो चुकी है । फिर माँ को ही कब तक बर्दाश्त कर सकेंगे वे ? आज-कल में माँ भी यहाँ पहुँचीं ही समझो !"

वार्तालाप सहसा बन्द हो चला । सामूहिक नारों के दूरस्थ स्वरों ने सबके कान खड़े कर दिये । वे झट बैरेक के बरामदे में खड़े हो कर उन्हें सुनने लगे । आवाज उत्तरोत्तर समीप होती गई । शैलेन्द्र बोल उठा—"आपकी अभी-अभी की भविष्यवाणी तत्काल फलित हो चली पंडितजी ! शत-प्रतिशत ! जादू के अद्भुत करामात की तरह ! स्वयं माँ की ही फौज है यह ! माँ की आवाज भी सुनाई दे रही है !"

"और आपकी इच्छा भी तत्काल पूरी हो चली !"—पंडितजी ने मुसकाते हुए जवाब दे कर सहसा गंभीर हो कर कहा—"और जो कुछ भी हो, पर इतना तो स्पष्ट हो गया होगा मणिपुर-सरकार के समक्ष कि मणिपुर की किसी वृद्ध महिला में भी स्वाभिमान और संकल्प का उबलता हुआ नया खून मौजूद है ! उसमें प्रबल राज-शक्ति को ललकारने का साहस और निर्भीकता विद्यमान है !"

सामूहिक आवाज बिलकुल निकट आ गई। महिला-वार्ड में भी हलचल, चहल-पहल आरंभ होने और नारे लगाने के सम्मिलित स्वर पुरुष-वार्ड मे भी अब सुनाई देने लगे। पुरुष-बन्दी भी अब चुप न रह सके। उनके सवेग व समवेत नारों ने भी जेल को हिलाना आरंभ कर दिया। जेल के भीतर-बाहर नारों की त्रिधारा के समागम से जैसे कुछ समय के लिए वहाँ परम पावन त्रिवेणी बह चली।

तोम्बी तो माँ की आवाज पहचानते ही खुशी से नाच उठी। अपनी सखियों से सोल्लास सोत्साह स्वर मे वह बोल उठी—"आ गई मेरी चाची! हमारी सबकी प्यारी, दुलारी माँ! भला वे कैसे अकेली रह पातीं हमारे बिना अपने घर में! खूब जोर से बोलो बहनो-ओ-ओ!—

'मणिपुर की वीर माता की जय!!!' "

और सभी सखियो द्वारा सबल समवेत स्वर में इस नारे को दुहराने के बाद उनके मुख से नीचे-लिखे नारे भी रह-रह कर गूँजने लगे—

"अन्याय का नाश हो!!!"

"श्राद्ध-कर का विनाश हो!!!"

"हम अपने मृतकों की आत्मा को कलंकित न होने देंगे!!!"

"हम नहीं झुकेंगे! नहीं झुकेंगे!! नहीं झुकेंगे!!!"

पुरुष-वार्ड में से भी इस प्रकार के नारे गूँज-गूँज कर आकाश मे फैल चले। कुछ मिनट के लिए ऐसा लगने लगा जैसे शान्त सागर में अचानक तूफान आ गया हो! माँ के स्वागत का यह तूफान अब शान्त हुआ। थम्बाल पोम्बी जेल के द्वार के बाहर से आती राधे की आवाज सुन कर मुसकाते हुए बोल उठी—"अरी, ओ तोम्बी! वो देख! तेरी सौत भी आ पहुँची तेरे पास! सौतें हों तो ऐसी कि एक-दूसरी को देखे बिना पल भर भी चैन नहीं! तू दिन-रात उसकी चर्चा किया करती थी न! देख, आ गई तेरी वो!"

तोम्बी सना ने भी दूर से राधे की आवाज पहचान ली। तनिक

गर्वभरे स्वर में बोली वह—"ज़रा आने तो दो मेरी सासजी को ! आज उनकी आरती उतारेंगी हम यहाँ मिल कर !"

लेकिन जेल का फाटक खुलने के बावजूद राधे फाटक से बाहर पुलिस के सिपाहियों द्वारा रोक ली गई। राधे उनसे हाथ छुड़ा कर जेल में घुसने का ज़ोरदार प्रयास करने लगी। और पुलिस के एक सिपाही ने उसे व्यंगभरे अशिष्ट स्वर में डाँटा—"अरी, ओ छोकरी ! जा, लौट जा अपनी माँ के पास ! तीन-चार साल बाद जब ससुराल में आने लायक बन जायेगी तो पालकी में बैठा कर तुझे ले आयेंगे यहाँ !"

राधे की माँ भी अपनी बेटी को रोकने के प्रयास मे उसके पीछे-पीछे वहाँ तक आ पहुँची थीं। उस कांस्टेबल के अशिष्ट लहजे पर आँखें तरेर कर बोलीं उससे—"बेहया ! क्या पुलिस की नौकरी माँ-बहनों से भी तमीज से बातें करने की लियाकत छीन लेती है ? छी ! मै इसे ले कर अभी चली 'प्रेसीडेंट' के पास ! तुम्हारे बाप के पास ! पूछूँगी उससे कि ऐसे ही कुत्तों को पाल रखा है आपने ? वह सात समुद्र पार का गोरा साहेब हुआ तो क्या, मगर तुम देशी कुत्तों से तमीज उसमे अधिक है ! वह विदेशी औरतों से भी आदमियत से व्यवहार करना जानता है !"

'प्रेसीडेंट' का नाम सुनते ही सचमुच पुलिस वाले डर गये। प्रेसीडेंट की सभ्य मनुष्यता से, और ऐसी हरकतों के प्रति उसकी घोर घृणा और क्रोध से वे परिचित थे। और जिसकी पुत्री इतनी निर्भीक है उसकी माँ भी उससे कम न होगी इस तथ्य का सबूत उनके सामने था। पुलिस के कुत्तों की तनी हुई पूँछें सहसा टाँगों के भीतर जा घुसीं। पुलिस-इंस्पेक्टर ने उस बदतमीज़ सिपाही को डाँट कर झट राधे की माँ से माफी माँग ली। और साथ में यह भी बताया कि प्रेसीडेंट साहब ने ही सख्त हिदायत उन्हें दे दी है नाबालिग लड़कियों

को किसी भी सूरत में गिरफ्तार न करने की !

राधे की माँ ने झट क्षमा दे दी। पर राधे बड़ी मुश्किल से माँ द्वारा घर वापस ले जाई जा सकी।

× × ×

उन बन्दी महिलाओं पर बाकायदा अदालत में मुकदमा न चलाकर उन्हें जेल में नजरबन्द रखा गया था। नजरबन्दी की अवधि यद्यपि काफी लम्बी होती गई, पर सश्रम-दंड-प्राप्त पुरुष कैदियों की अपेक्षा वे सुविधापूर्ण स्थिति मे रखी गईं। उन्हें नजरबन्द रखने मे शायद प्रेसीडेंट की उदारता ही प्रेरक थी। अन्यथा उनपर भी शासन को उलटने के षड्यन्त्र का आरोप और अभियोग आसानी से लगाया जा सकता था। बल्कि उन महिलाओं की गिरफ्तारी में पुलिस को कहीं अधिक परेशानी का मुकाबला करना पड़ा था। बड़े कौशलपूर्ण नाटकीय तरीके से वे पकड़ मे आ सकी थीं। लेकिन उन सबके पकड़े जाने पर वास्तव मे सघर्ष की आग बुझ चली। पर सिर्फ ऊपर से। उसकी राख के ढेर में सुलगती हुई चिनगारी उचित अवसर की आशा के सहारे जैसे प्राण को सँजोये थी।

उधर 'राउड-टेबुल-कानफ्रेंस' का परिणाम निष्फल वागाडम्बर के बवंडर में उड़ चला था। भारत से लार्ड इरविन के चले जाने के बाद अब नये वायसराय लार्ड विलिंगडन ने दमन का दौर-दौरा आरंभ कर दिया। फलतः भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस का देशव्यापी सघर्ष भी बिलकुल शिथिल हो चला था। उसका प्रत्यक्ष प्रभाव मणिपुरी संघर्ष पर भी पड़ कर रहा। और लार्ड विलिंगडन की उस दमन-नीति ने ही मणिपुर की इन बन्दो महिलाओं की नजरबन्दी की अवधि भी लंबी कर दी।

लेकिन जेल के भीतर भी महिलाओं का जीवन हास्य-तरल बना रहा करता। तोम्बी सना हास्य-रस की अवतार ही थी मानो। सघर्ष के

चरणों में साक्षात् दुर्गा की प्रचंड प्रतिमूर्ति! वज्र से भी कठिन और कठोर! पर सखियों की गोष्ठी में मधु-मिश्रित सुपुष्प के सौरभ से भरपूर! इन नैसर्गिक गुणों के कारण ही वह सबकी दुलारी थी और किसी आपसी वैमनस्य या निराशा की छाया के उठते ही वह सरस हास्य का बवंडर छोड़ कर उस छाया को पल में मिटा देती। सबको हँसा देती। अपने प्रति किये गये मजाकों को भी हँस-हँस कर ही वह बर्दाश्त करती। और अपने इस गुण को भी उसने जैसे सबके दिलों में ठूँस-ठूँस कर भर दिया था।

नजरबन्दी की स्थिति में होने के कारण उन्हें बाहर से चीजें मँगाने की भी सुविधा थी। वे पत्र-पत्रिकाएँ व पुस्तकें मँगातीं, और खाने-पीने की चीजें भी। और इन चीजों को चोरी-छिपे पुरुष-वार्ड के अपने साथियों को पहुँचा देतीं। उत्तरोत्तर उनका बौद्धिक विकास भी हुआ करता। शैलेन्द्र, चन्द्रावत व प० कृष्णमाधव से दूर-दूर से ही विचार-विनिमय भी। पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों द्वारा अनेक नये विषयो की जानकारी भी वे प्राप्त करती जा रही थीं। और इस प्रकार उस जेल-जीवन को वे एक सुन्दर वरदान के रूप मे समझने लगी थीं।

इस प्रकार लगभग ढाई साल नजरबन्दी में बिताने के बाद एक दिन एकाएक उनके सामने जेल से सामूहिक मुक्ति का सन्देश भी आ पहुँचा। पर इस सामूहिक रिहाई मे पुरुष बन्दियों को शामिल नहीं किया गया। उनसे जेल की पूरी सजा भुगतवाये बिना सरकार उन्हें छोड़ने को तैयार न थी। अपने पुरुष साथियों को जेल में ही छोड़ इन महिलाओं को बाहर आने में कम मानसिक कष्ट न हुआ, पर थी लाचारी। जेल की दीवारो और ईंट-पत्थरों से भी अनजाने उनके मन मे एक लगाव पैदा हो चला था। जेल से विदाई के वक्त उन ईंट-पत्थरों से भी विदा लेते हृदय में एक टीस, एक कसक, भी उभर चली जिसे वे बाहर आने के उल्लास में ठीक से महसूस न कर सकीं।

जेल से निकलते ही उनके सामूहिक नारे गूँजने लगे। उनकी रिहाई का आदेश और समय गुप्त रखा गया था। इस कारण जेल के द्वार पर स्वागत के निमित्त जनता की भीड़ एकत्र न हो सकी। पर जगह-जगह मार्ग अब स्वागत-स्वरो के कल्लोलों से मुखरित हो उठे।

(३४)

जेल से बाहर आते ही मुक्ता अपने संघटन-कार्य में पुनः जोर से जुट पड़ी। पुनः उसके नये-नये गुप्त अड्डे सप्राण हो उठे। पुनः जनता के सघर्ष में जान आ गई। गरीब मृतकों के सामूहिक श्राद्ध-कर्म पुनः कराये जाने लगे। श्राद्ध-कर की अदायगी रोकने के लिए पुनः धरने दिये जाने लगे। मणिपुर-सरकार फिर बेचैन हो उठी। वह पुनः इन प्राणवती निर्भीक महिलाओं की सामूहिक गिरफ्तारी के सम्बन्ध में सोचने लगी।

लेकिन कुछ समय बाद एकाएक मणिपुर की जनता के सामने एक नई परिस्थिति पैदा हो गई। इस परिस्थिति का श्राद्ध-कर अथवा गरीब मृतको के श्राद्ध से कोई सम्बन्ध न था। पर गरीबों के पेट से सम्बन्ध अवश्य था। मणिपुर की उपजाऊ उपत्यका में उस साल भी अन्न की फसल अच्छी हुई थी, लेकिन एकाएक चावल का अकाल पड़ गया। चावल के बाजार में मँहगाई और चोरबाजारी का खूब जोर हो चला। चावल का भाव रुपये-सवा-रुपये मन से बढ़ कर एकाएक चार-पाँच रुपये मन तक पहुँच गया। और सारी उपत्यका की खेती-योग्य जमीन पर कुछ मुट्ठी भर लोगों का अधिकार होने के कारण बटाई पर की गई खेती से कम लोगों का गुजारा हो पाता। इम्फाल जैसे नगर के अधिकांश लोग या तो नौकरी पर निर्भर थे, अथवा कपड़े की बुनाई और उसे बेचने से प्राप्त अल्प-स्वल्प मजदूरी पर। चावल की कीमत बढ़ गई, पर उस अनुपात से उनकी अपनी चीजों की कीमत न बढ़ी। उनका

वेतन न बढ़ा। फलस्वरूप उनकी क्रय-शक्ति नष्ट हो गई, पर पेट उनका नष्ट न हो सका। भूख नष्ट न हो सकी। बल्कि पेट की ज्वाला और भी अधिक भभक उठी। अतः इस भात-भक्षी समाज मे चावल के अभाव और महँगाई से हाहाकार मच गया। बेचैनी और विक्षोभ बढ़ गया।

इस अकाल की स्थिति पर विचार करने के लिए मुक्ता के यहाँ आज स्त्री-पुरुषो की एक विशाल गोष्ठी इकट्ठी हुई।

थम्बाल बोल रही थी—"अब सबसे पहले इस अकाल की स्थिति से निबटने के उपायो पर विचार किया जाय। पेट का प्रश्न सबसे आगे आता है। अगर हम मर जायेंगे, तो मृतको के उद्धार का आन्दोलन भी मर जायगा! और मारे भूख के जनता ही मर गई, तो स्वय मणिपुर मर जायगा! इसलिए अपने देश और अपनी जनता को जीवित रखने के उपायों पर हमे पहले सोचना चाहिए! बाद मे मरे हुए लोगों के सम्बन्ध में!"

और तब अमू सना भी बोली—"मुझे तो लगता है यह सारा षड्यत्र महाराजा का है! हमारे आन्दोलन से खिसिया कर हमे भूखों मार कर वह बदला चुकाना चाहता है!"

और तब रजना क्रोधभरे स्वर में बोली—"जेल और लाठियो से हमे नहीं डरा सके तो हमे भूख से डराना चाहते हैं अब! मूर्खों को सोच लेना चाहिए कि मरता क्या नही करता? भूखों मरने से पहले हम षड्यन्त्रकारियो को मार कर मरेंगे! उनकी ईंट-से-ईंट बजा कर मरेंगे! हम कीड़े-फतिगे नहीं हैं! पशु नहीं हैं कि चुपचाप मर जायँ! हम मनुष्य हैं, मनुष्य!"—कहते-कहते उसके चेहरे पर मानो मानवता का ज्वलन्त क्रोध चमक उठा।

और तब युवक नन्दलाल शर्मा ने कहा—"बहन अमू सना की बात ठीक है भाइयो! मैने सुना है उस बेईमान बंगाली सेक्रेटरी ने

मारवाड़ियों से घूस-रिश्वत ले कर यहाँ का सारा चावल खरीद कर बाहर भेजने की सरकार से उन्हें इजाज़त दिला दी है। जब तक हमारे मणिपुर में ये बंगाली हरामी रहेंगे, हमारा कल्याण कभी होने का नहीं !"

और उधर से इबोमचा सिंह ने गुस्साभरे स्वर में ललकार भरी—"तो मारो इन हरामी बंगालियों को ही पहले ! मणिपुर की धरती से मार भगाओ इन घूसखोर बंगालियों को ! सभी बंगालियों को !"

इस ललकार पर बहुत-से चेहरे क्रोध से तमतमा उठे।

और तब युवक कुंजविहारी ने इज़ाफ़ा करते हुए कहा—"केवल घूसखोर बंगालियों को भगा देने से ही काम नहीं बनता ! इन चोर मारवाड़ियो को भी भगाना पड़ेगा ! हिन्दुस्तान के कई दूसरे बड़े शहरो मे रह कर मैं देख आया हूँ ! ये स्वभाव से होते ही बड़े हरामी हैं ! जहाँ कहीं भी बैठ जायेंगे जोक बन कर वहाँ की जनता का खून बेदर्दी से चूस-चूस कर खूब मोटे बन जायेंगे ! देखो तो हरामी सालों को ! मणिपुर का सारा चावल सस्ते में खरीद कर बाहर भेज दिया ! और जो थोड़ा 'स्टाक' यहाँ बच रहा है, उसे भी मँहगे भाव बेच-बेच कर हमें भूखों मारना चाह रहे हैं ! हमारी ही अपनी चीज दूसरो के कब्जे मे चोरी से चली गई, और हम दाने-दाने को मुँहताज बन गये !"

और तब तोलचउ शर्मा ने भी कहा—"और वह जो है न इम्फाल का सबसे बड़ा मारवाड़ी सेठ ! क्या तो विचित्र नाम है उसका—नत्थू या भत्थूमल ! आनन-फानन मे कैसे धन-सेठ बन गया, मालूम है तुम लोगों को ?"

"मालूम क्यों नहीं ?"—इबोतोन ने जैसे भंडा-फोड़ करते हुए कहा—"सारा जगत् जानता है कि गाँजे के व्यापार में वह मालोमाल हो गया ! भइया, आइन-कानून सब दिखावे के हैं ! केवल गरीबो को सताने के लिए ! सारे हिन्दुस्तान में गाँजे का व्यापार गैरकानूनी है,

इतना कह कर उसने एक हलकी नजर अपने साथियों पर डाली। उसने लक्ष्य किया, सब उसकी बातें बड़ी उत्सुकता से ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं।

गला खखार कर वह फिर गम्भीर स्वर में बोली—" 'मरना एक दिन है ही! फिर मृत्यु से डरना क्या?' इस सत्य को मान कर चलने वाले भी यदि अन्याय के विरोध में गलत मार्ग अपना बैठें तो उनकी यह निर्भीकता भी अपना उचित मूल्य खो बैठती है। निर्भीकता भी एक साधन है, साध्य नहीं! एक उपाय मात्र! बिना डरे हम कॉटों-बिछे मार्ग पर भी चलना चाहते हैं जल्द-से-जल्द अपने लक्ष्य तक पहुँचने के के लिए, न कि बीच मार्ग में ही कॉटों से छिद कर विनष्ट होने के लिए? अकाल हमारी जनता के सामने मृत्यु बन कर आया है! यह सच है कि चुपचाप कीड़े-फतिंगों या पशुओं की तरह मर जाने से बेहतर होगा मृत्यु से और मृत्यु पैदा करने वालों से लड़ते-लड़ते मरना!' लेकिन लड़ना क्यों है? जीने के लिए!"

मुक्ता ने फिर लक्ष्य किया कि उसकी बातें ध्यानपूर्वक सुनी जा रही हैं। उसने कहना जारी रखा—"कोई भी शासक, कोई भी सरकार, चाहे भ्रष्ट हो या ईमानदार, वह कानून को जनता के हाथ जाते देखना न पसन्द करेगी, न बर्दाश्त! बड़े अफसरों की तो बात क्या, यदि हम किसी अदना सरकारी कर्मचारी को भी दंड देने का अधिकार अपने हाथ में ले लें तो अपने सम्मान की रक्षा के लिए, अपना रोब और दबदबा कायम रखने के लिए सरकार अपनी सारी शक्ति के साथ हम पर भूखे भेड़िये की तरह टूट पड़ सकती है! यह सोच लें आप लोग!"

"तो चोर मारवाड़ियों से ही क्यों न निबटा जाय?"—नन्दलाल शर्मा ने पुनः प्रश्न किया।

और मुक्ता ने इस सुझाव का प्रतिवाद करते हुए जवाब दिया—"यहाँ भी सरकार दंड का अपना अधिकार हाथ से न जाने देगी! चोर

केवल मारवाड़ी ही नहीं ! चोरी मारवाड़ी जाति का कोई मौलिक स्व-भाव या धर्म नहीं ! मैं स्वयं इतिहास में पढ़ चुकी हूँ कि किसी समय मारवाड़ी जाति ने बड़े-बड़े वीर पैदा किये ! बड़ी-बड़ी वीरागनाएँ पैदा कीं। लेकिन मारवाड़ी जनता के कुछ कूड़े-करकटों को भारत के विभिन्न नगरों में फैले देख उन्हीं से उस जाति का अन्दाजा हम नहीं लगा सकते ! सारी मारवाड़ी जाति को हम जोक और हरामी कह कर उस प्रदेश की जनता का अपमान नहीं कर सकते ! समाज की कुत्सित पूँजीवादी व्यवस्था मे बँधा हुआ, विश्व का कोई भी बनिया मारवाड़ी बनियों से आचार-व्यवहार में अच्छा होगा मै नहीं मान सकती !"

एक बार गला खखास कर उसने फिर कहना शुरू किया—"घूस-खोर बंगाली अफसर भी घृणित शासन-व्यवस्था के ही परिणाम हैं, न कि घूस-रिश्वत लेना उनका जातीय धर्म है ! अन्यथा इस जाति ने अनेक देशभक्त, चरित्रवान एवं परम साहसी क्रान्तिकारी और विचारक न पैदा किये होते ? और उसी जाति में उत्पन्न शैलेन बाबू जैसा ऊँचे चरित्र का साथी हमे मिला न होता ? अतः सारे बंगालियों को हरामी और बेईमान कह कर उन्हें मणिपुर से निकाल बाहर करने के विचार का समर्थन मै नहीं कर सकती !"

कुंजविहारी ने उतावले स्वर मे प्रश्न किया—"तो फिर आखिर किया क्या जाय ? सरकार के घूसखोर अफसरों को हम दड दे नही सकते ! मारवाड़ी बनियों और बगालियों को हम निकाल नही सकते ! फिर किस उपाय से मनुष्य द्वारा जान-बूझ कर पैदा किये गये इस अकाल को हम मणिपुर की उपजाऊ धरती से मिटा सकते हैं ?"

मुक्ता ने इस बार विश्वासभरे दृढ़ स्वर में उसे आश्वस्त किया—"इस अकाल को हम मिटा कर रहेंगे कुजविहारी दादा ! यदि मनुष्य समझदारी और दृढ़ संकल्प से आगे बढे तो किसी भी विपत्ति को पार कर सकता है ! किसी भी मुसीबत को मिटा सकता है !"

"तो बताओ हमें सही रास्ता ! हम तुम्हारे पीछे चलने को सदैव तैयार हैं ! हर हालत में तैयार हैं ! इस अकाल से निबटने की खातिर हम खुद मर मिटने को तैयार हैं !"

मुक्ता ने मुसकरा कर जवाब दिया—"मै तुम्हे पिछलग्गू नही बनाऊँगी दादा ! मै केवल तुम सबो का विश्वास और साथ चाहती हूँ ! हम सब साथ चलेगे ! हम साथी हैं न ?"—कह कर वह एकाएक गम्भीर हो कर बोली—"भाइयो ! बहनो ! हम एक निश्चित तिथि मे भूखी जनता का एक ऐसा विशाल जुलूस निकालेगे जैसा कि शायद मणिपुर के इतिहास मे कभी निकला न हो ! कभी वैसा हुआ न हो ! और उस जुलूस मे भाग लेंगी केवल मणिपुर की महिलाएँ, जिनके बच्चो के मुख से, जिनके भाई-बहनो के मुख मे, आततायियो ने आहार छीन कर उन्हे भूखों मारने का षड्यन्त्र रच रखा है !"—कहते-कहते उसका स्वर एकाएक तीव्र हो उठा—"याद रखो साथियो ! महिलाएँ सारे कष्ट बर्दाश्त कर सकती है, पर अपने बच्चो, अपने भाई-बहनो को भूख से तड़प-तड़प कर मरते देखना बर्दाश्त नही कर सकती ! क्योंकि वे माँ हैं ! बना-पका कर खिलाने की जिम्मेदारी उनपर है ! इस जिम्मेदारी से प्रेरित हो कर रसोई-घर मे प्रविष्ट हो चूल्हो को जला न सकने की असमर्थता उनके हृदय को जला देती है ! उनके हृदय मे आग पैदा करती है ! मै अपने सभी साथियो से प्रार्थना करती हूँ कि वे मणिपुर के कोने-कोने मे जा कर इसी जलती आग को अभी से सघटित करना शुरू करें ! उस आग पर दीनता, मजबूरी और मौत का पानी पड़ने दे कर उसे ठंडा न होने दे ! जुलूस की तिथि हम बाद में निश्चित करेंगे ! लेकिन जाओ साथियो ! अभी से सघटन के काम मे जी-जान से जुट जाओ !"

एक दृढ़ नेता के स्वर में आदेश दे कर मुक्ता चुप हो पड़ी । लेकिन जुलूस में केवल महिलाएँ ही शामिल हो सकेंगी यह जान कर तोमदोन

ने निराशा जाहिर की—"तो जुलूस में शामिल न हो हम पुरुष क्या मुँह ताकते रहेगे ? घर पर बाजा बजाते कीर्तन किया करेंगे ?

और जवाब मे मुक्ता इस बार हँस कर बोली—"बाजा बजाना और कीर्तन करना भी कम महत्त्व का काम नही तोमदोन दादा ! नृत्य मे गर्मी तो तब आती है जब बजनिए अपनी हद चोट से उसमे प्रेरणा और प्राण भरते हैं ! और उन्ही बाजों के लय-ताल के सहारे कीर्तन के स्वर हमारे मन और मानसिक सकल्प को भगवान मे लगा कर अपने कर्तव्य के प्रति हममे श्रद्धा और विश्वास भरते हैं ! महिलाओ के इस तांडव-नृत्य में पुरुषो का तांडव बाजा भी बजेगा भाइयो ! और यह तांडव बाजा होगा गॉव-गॉव मे, घर-घर मे जा कर सबमे चेतना और प्रेरणा की आग भरना, आग फूँकना, और उस आग को सघटित करना !"

और तब तोम्बी मुक्ता के समर्थन मे बोल उठी—"मुक्ता की योजना लाजवाब है साथियो ! मणिपुर, भारत के दूसरे प्रदेशो मे 'स्त्रियों का देश' इस रूप मे प्रख्यात है ! अतः हम स्त्रियों को ही आगे बढ़ने दो इस काम मे ! और एक दूसरा पहलू भी है। पुरुषो को देख कर पुरुषो की लाठियाॅ बहुत जल्द तन जाती हैं ! सगीनों की नोकें और बन्दूको की नलियाॅ बहुत जल्द उतावली हो उठती हैं ! हम अपने भाइयों के सीने पर गोलियाॅ दगते देखना नही चाहती ! हम उन्हें जीवित रखने के उद्देश्य से इस काम में आगे बढ़ना चाहती हैं ! यद्यपि हमारा यह आन्दोलन राजनीतिक न होगा, लेकिन राजनीति व कूटनीति के खिलाड़ी हमारे दुश्मनों का मुँह काला अवश्य होगा यदि वे हम निहत्थी भूखी महिलाओं पर लाठियाॅ बरसाने या गोलियाॅ चलाने के कमीनेपन पर उतर आये ! और मुझे विश्वास है कि हमारा वह दुश्मन आज के अखबारी युग में बहुत जल्द अपना मुँह काला करने पर उतारू न हो पड़ेगा ! ऐसा करने से पहले अपनी अकल

से वह बार-बार सलाह लेगा ! सलाह करेगा !"

तोम्बी की बात सबको जॅच गई। इसके बाद मुक्ता ने उन्हे सघटन के तौर-तरीके समझा-बुझा कर वहाँ से विदा किया। सभी विश्वस्त और आश्वस्त हो चले। आशा और उत्साह से भर चले।

(३५)

अखबारो द्वारा इस प्रकार की खबरे मणिपुर की जेल मे भी पिछले कई वर्षो से पहुँचने लगी थीं कि—"सारे विश्व मे, केवल 'सोवियत-संघ' (रूस) को छोड़ कर मन्दी का प्रकोप अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है; भूख और बेकारी के भूकम्प से सारा पूँजीवादी विश्व कम्पित और आतकित हो उठा है; पूँजीपतियो और लक्ष्मी के सबसे बड़े गढ़ अमेरिका मे यह आतक और प्रकपन तो और भी उग्र हो उठा है, कुल १३-१४ करोड़ की आबादी वाले 'सयुक्त राज्य अमेरिका' में लगभग एक करोड़ सत्तर लाख मजदूर बेकारी के क्रूर चगुल मे जा फँसे हैं; उनकी कमाई पर पलने वाले दूसरे करोडो मुँह भी मौत के मुँह की ओर धकेल दिये गये हैं; और जब कि करोड़ो मुँह मास के लिए तरस रहे हैं, सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने पचास लाख सुअर खरीद कर नष्ट कर दिये, पर उन भूखे मुखो मे उन्हें जाने नहीं दिया; और बाजार-भाव को गिरावट से बचाने के लिए करोड़ों टन गेहूँ खरीद-खरीद कर जलाये जा रहे हैं, पर उन करोड़ो भूखे इनसानो को जबरन भूखा रखा जा रहा है जिनकी मेहनत ने ही धरती माता की छाती से उन गेहुँओ को पैदा किया ; और यह सब इसलिए किया जा रहा है ताकि मनुष्य के मोल से बाजार का मोल मँहगा रखा जा सके ! पूँजीपतियों का गरीबों पर दबदबा क़ायम रखा जा सके !"

इन क्रूर हथकंडो की खबरो से देश-विदेश के अखबारो के कालम रँगे जाने लगे थे । और चूँकि स्वय मणिपुर अभी व्यापक अकाल के

कारण भूख और बेकारी के चगुल में जा फँसा था, अतः इन खबरों का महत्त्व, प्रभाव और आकर्षण जेल के उन देशभक्त बंदियों के लिए और भी बढ़ चला। ये खबरें वहाँ आपस में गंभीर एव उत्तेजनाभरी चर्चाओ का विषय बन चलीं। विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक सिद्धान्त और आदर्श इस विश्व-घटनाचक्र की कसौटी पर कसे भी जाने लगे।

व्यापक दुख-दर्द की अनुभूति दिल मे उदासीनता भी पैदा करती है, और व्यापक सक्रियता भी। उदासीनता हमारी चेतना को जड़ बना छोड़ती है, और अनुभूति की व्यापक सक्रियता हममे व्यापक सहानुभूति और उत्तेजना भर कर मन के चैतन्य को अधिकाधिक सजग बना देती है। हमे बहुत कुछ सोचने पर मजबूर कर देती है।

समाचार-पत्रो मे इन खबरो को पढ़-पढ़ कर कृष्णमाधवजी का मन कभी उदासीन बन जाता और कभी उसमें सक्रियता की उत्तेजना बढ़ जाती। लेकिन शैलेन्द्र और चन्द्रावत के मन इन दिनों हमेशा उत्तेजित और विक्षुब्ध रहा करते। हमेशा सक्रिय! मणिपुर के व्यापक अकाल को वे विश्व के पूँजीवादी देशो की व्यापक मन्दी, बेकारी और भुखमरी की पृष्ठभूमि पर पढ़ने और परखने का प्रयास करते। और फलस्वरूप राजनीति के विभिन्न आर्थिक सिद्धान्तों की परीक्षा और शव-परीक्षा मे वे लगे रहते। मणिपुर की पीड़ित-दलित जनता को विश्व की दलित दुखी जनता की श्रेणी मे रख कर उनकी वर्तमान जीवन-दशा के कारण-कार्य-सम्बन्ध पर विचार किया करते। इस सम्बन्ध की राजनीति और अर्थशास्त्र की पुस्तकें पढ़ा करते। आपस मे वाद-विवाद किया करते। और फलतः 'वर्ग-सघर्ष' के मार्क्सवादी सिद्धान्त मे उनकी श्रद्धा और आस्था बढ़ती जाती। शैलेन्द्र ने कलकत्ते मे रहते ही मार्क्सवाद का बहुत कुछ अध्ययन कर लिया था, पर वह केवल बौद्धिक अध्ययन था। किन्तु वर्तमान व्यापक घटना-चक्र ने उस 'वाद' में अब उसकी

श्रद्धा और आस्था को मजबूत कर दिया।

किन्तु पं० कृष्णमाधवजी की आस्था वेदान्ती साम्यवाद और गाँधीवाद में बनी रही। मणिपुर के अकाल की चर्चा छिड़ चली। कृष्णमाधवजी जरा उदासीन स्वर मे अपने साथियों से बोले—"जब सारे विश्व का यही हाल है तो अकेला मणिपुर ही उससे अलग कैसे रह सकता है? व्यर्थ मे किसी को दोषी ठहराने से लाभ क्या?"

शैलेन्द्र ने, उनके इस मन्तव्य पर अपने मन में उठे विक्षोभ को दबाते हुए शान्त-संयत स्वर मे झट जवाब दिया—"लेकिन यह व्यापक दुःस्थिति पैदा कैसे हुई इसपर सोचने और विचारने से उदासीन रह कर हम अपनी जिम्मेदारी तो नही निभा सकते पडितजी? जब कि स्वयं प्रकृति द्वारा पैदा की गई परिस्थितियों के मूल कारणो को ढूँढ़ने और उनपर सोचने से मनुष्य विरत नहीं होता, तो संसार के निकृष्ट मनुष्यो द्वारा लगभग सारे विश्व मे पैदा की गई इस दुखद परिस्थिति पर सोचने और क्रुद्ध होने से हम कैसे उदासीन रह सकते हैं?"

पडितजी ने शैलेन्द्र के छिपे क्रोध को लक्ष्य किया। शान्त स्वर में वे फिर बोले—"सोचना और क्रुद्ध होना भी मनुष्य का स्वभाव है! किन्तु मै तो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखता हूँ शैलेन बाबू! और साथ ही गीता के इस वाक्य में भी—'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति, भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया!' अर्थात् ईश्वर ही सब प्राणियों के हृदय मे बैठा हुआ अपनी माया से उन्हें यन्त्र (मशीन) की तरह घुमाता रहता है। अतः इस सारी करुणाजनक परिस्थिति का यदि कोई दोषी है तो वह ईश्वर है! और ईश्वर सर्वशक्तिमान है! उसकी इच्छा मे कोई कैसे व्याघात डाल सकता है? फिर किसी अन्य को क्यों दोषी ठहराया जाय?"

आज पंडितजी की मनोदशा पर शैलेन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। आइ-कर के विरोध में मणिपुर की सामन्ती और साम्राज्यशाही शक्ति

से लोहा लेने वाले कृष्णमाधव से आज के इस कृष्णमाधव का कोई मेल न था ! उसे बड़ा क्रोध भी हुआ । वह क्रुद्ध स्वर में बोला—"लेकिन मै तो उस सर्वशक्तिमान ईश्वर को बिलकुल नहीं मानता, और न ही आपकी 'गीता' की निकम्मी बातों को ! आपका अपना कार्य ही आपके इस मन्तव्य और इस विश्वास का खडन कर रहा है पंडितजी ! मणिपुर मे 'श्राद्ध-कर' द्वारा उत्पन्न दुखद स्थिति को ईश्वर-कृत ही मान कर आप क्यो नहीं उदासीन बने रह गये ? मणिपुर-नरेश या अचउबा शर्मा जैसे लोगो के मन को आखिर आपके ईश्वर ने ही तो नचाया होगा ? नचा रहा होगा ? फिर नाहक मणिपुर की यह जेल भरने की क्या जरूरत थी ? लाठियाँ और गोलियाँ खाने की क्या जरूरत थी ?"

पडितजी शैलेन्द्र के उग्र क्रोध को देख अप्रतिभ हो चले । अपने प्रति ऐसी उग्रता उसमे कभी देखी न थी उन्होने । उसके तर्क का कोई बुद्धिसगत उत्तर भी उन्हें नहीं सूझा । लेकिन ईश्वर के अस्तित्व को इतनी आसानी से कुछ शब्दो द्वारा खडित होने देना भी वे नही चाह रहे थे । क्योंकि उनके धार्मिक श्रद्धालु मन को ईश्वर से कम मोह न था । किन्तु मनुष्य का जहाँ मस्तिष्क काम नही करता, वहाँ वह मन की—हृदय की—और उसकी आस्था की शरण गहता है । अतः अब आस्था-विश्वास के शस्त्र का सहारा लेते हुए उन्होने जवाब दिया—"ईश्वर ने ही हमे इस संघर्ष की प्रेरणा दी, और ईश्वर ही हमें नचा भी रहा है !"—कह कर उन्होने समर्थन में गोसाईं तुलसीदास की एक हिन्दी चौपाई भी पढ़ दी—'सबहि नचावत राम गोसाईं, उमा दारु-योषित की नाई ।' और पढ़ कर उन्होंने अर्थ भी समझा दिया ।

लेकिन शैलेन्द्र इसे स्वीकार कर चुप होने के बजाय और भी उग्र हो उठा । क्रुद्ध स्वर मे बोला—"लेकिन यदि हम ऐसे निकम्मे वाक्यो पर विश्वास करें पंडितजी, तो कहीं के भी न रह जायँ ! यह किसी कवि की थोथी कविता हो सकती है, पर सत्य का यथार्थ नही हो सकता !"

शैलेन्द्र का उग्र रुख देख कर पंडितजी को अब साहस न हुआ पुनः अपने पक्ष के समर्थन का। वे दुराग्रही न थे। और शैलेन्द्र की ईमानदारी, जानकारी और बौद्धिक विद्वत्ता में उनका दृढ़ विश्वास भी था। सो, अब वे अपने पक्ष का परित्याग कर केवल जिज्ञासुभाव से बोले—"आप नाराज न हों शैलेन बाबू! लेकिन क्या आप सचमुच ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते?"

इस बार शैलेन्द्र अपेक्षाकृत शान्त और सयत स्वर में किन्तु खूब दृढ़ता से बोला—"नहीं करता! क्योंकि जगत् का सत्य और यथार्थ ईश्वर-विश्वास में मेरा साथ नहीं देता! तनिक सोचिये ठढे दिल से पंडितजी, कि यदि ईश्वर सारी सृष्टि का कर्ता है; वह यदि सबका करुणामय समदर्शी पिता है; तो ससार के कुछ मुट्ठी भर लोगो पर ही वह कृपालु क्यों है? क्या संसार के ये सारे गरीब उसके पुत्र नहीं हैं? क्या ये उसके दुश्मन हैं? क्या पिता की कृपालुता पर कुछ मुट्ठी भर हरामखोरों का ही अधिकार है जब कि ससार के गरीब, अमीरो की अपेक्षा ईश्वर में कहीं अधिक श्रद्धा और विश्वास रखते हैं? मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों में वे कहीं अधिक आस्था और आदर से जाया करते हैं? फिर, इन अधिक श्रद्धालु पुत्रों के प्रति ही सबके पितास्वरूप ईश्वर का प्रकोप क्यों? यह अन्याय और अन्धेरगर्दी क्यों?"

"सो तो अपने-अपने कर्मों का—भाग्य का—फल है शैलेन बाबू! ईश्वर का इसमें कोई अपराध नहीं!"—पडितजी ने मानो फिर शास्त्रार्थ की तरंग में आ कर जवाब दिया।

और शैलेन्द्र ने इस बार जोर से हँस कर पुनः प्रश्न किया—"और इन कर्मों का निर्माता कौन? भाग्य-विधाता कौन? यदि सबके हृदय में बैठा हुआ ईश्वर ही उनके कर्मों का प्रेरक भी है तो उन कर्मों द्वारा निर्मित दुर्भाग्य के दुष्परिणामों को भोगने का अधिकारी भी उसे ही होना चाहिए? फिर उन दुष्परिणामों को जबरन गरीबों के सिर ही लादने

वाला आपका ईश्वर क्या बेईमान नहीं ? छली, धूर्त और कपटी नहीं ? फिर इस छली, धूर्त और कपटी में विश्वास करने से लाभ, पंडितजी ? उसकी पूजा-अर्चा के लिए मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों में व्यर्थ दौड़ने से फायदा, गुरुजी ?"—कह कर वह फिर ठठा कर हँस पड़ा।

चन्द्रावत भी हँसा और कई दूसरे लोग भी हँसे। और कटुता का वातावरण अचानक तनिक सरस भी हो उठा। और अपने प्रति प्रथम बार शैलेन्द्र के मुख से 'गुरुजी' यह सम्बोधन सुन कर कृष्णमाधवजी भी हँसे बिना न रहे। शैलेन्द्र के तर्कों का खरोंचा खा कर उनका दृढ विश्वास जैसें कुछ शिथिल हो पड़ा। शास्त्रार्थ करने का अब साहस उनमें नहीं रहा।

लेकिन हँसते हुए ही वे फिर बोले—"गुरुआई की योग्यता मुझमें अब नहीं रही शैलेन बाबू ! यहाँ सभी उपस्थित व्यक्तियो मे यदि यह योग्यता किसी मे है तो केवल आपमें ! आप वय में भले ही लघु हों पर ज्ञान में यहाँ सर्वश्रेष्ठ हैं ! ज्ञान के सूर्य के समक्ष हम खद्योतों या दीपकों की क्या बिसात ? क्या सामर्थ्य भला ?"—कह कर वे फिर हँसे।

"आप तो लज्जित करने लगे पडितजी !"—शैलेन्द्र ने तनिक लजा कर जवाब दिया—"मुझे अपने ज्ञान का कतई अहंकार नहीं विश्वास रखें आप !"

और उधर से दूसरे लोगों ने मानो शैलेन्द्र की आकस्मिक लज्जा दूर करते एक स्वर से कृष्णमाधवजी के मन्तव्य का समर्थन किया—"नहीं शैलेन बाबू ! लज्जा न करें आप ! आप सचमुच हमारे गुरु बनने लायक हैं ! आपकी बातें सचमुच आँखे खोल देने वाली हैं !"

उन लोगो के स्वरों में व्यंग न था। शैलेन्द्र ने लक्ष्य किया। वह मन-ही-मन उत्साहित हुआ। उसे यह जान कर खुशी हुई कि उसका कथन अरण्य-रोदन नहीं बना।

"तो समझाइए न शैलेन बाबू, हमें इस सारी मुसीबत के मूल

कारणों को !"—ब्रजविहारी ने जिज्ञासाभरे स्वर में अनुरोध किया। और ब्रजविहारी के इस अनुरोध का सबने समर्थन किया।

शैलेन्द्र ने अब पूरे इतमीनान से गम्भीर स्वर में कहना आरम्भ किया। उसने सबसे पहले उनसे एक छोटा-सा प्रश्न किया—"पहले मेरे इस छोटे-से प्रश्न का जवाब दीजिए कि मणिपुर में चावल का अकाल क्यों पड़ा ?"

और ब्रजविहारी ने झट जवाब दिया—"क्योंकि मारवाड़ियों ने यहाँ का सारा चावल खरीद कर मणिपुर से बाहर भेज दिया !"

"मारवाड़ियों ने चावल खरीद कर बाहर क्यों भेजा ?"—शैलेन्द्र ने पुनः प्रश्न किया।

और ब्रजविहारी ने पुनः निर्धोक जवाब दिया—"मुनाफे के लोभ मे !"

"और यह मुनाफा जाता कहाँ है ? मुनाफे पर अधिकार किसका होता है ?"

"वह मुनाफा जाता है उन्ही सेठो की तिजोरी मे ! उसपर उन्हीं सेठों का अपना व्यक्तिगत अधिकार होता है !"

"तो बस, समझ लीजिए कि विश्व की आज सारी मुसीबतो का मूल इन्हीं दो चीजों में है—'मुनाफा और मुनाफे पर व्यक्ति का निजी अधिकार !"—इतना कह कर शैलेन्द्र ने और भी स्पष्टता से समझाना शुरू किया—"जिस प्रकार मणिपुर के मारवाड़ी बनियों ने अपने मुनाफे के लोभ में इस समाज के हित का जरा भी ख्याल न रखा, उसी प्रकार विश्व के सारे बनिये अपने व्यक्तिगत मुनाफे के सामने अपने समाज का, अपने देश और देश की जनता का रंचमात्र भी ख्याल नहीं रखते ! जग-जाहिर है कि मणिपुर की भूमि खूब उपजाऊ है ! इस वर्ष भी उपज खूब हुई ! पर खेद कि अपनी उपजाई और पैदा की हुई वस्तु पर समाज का सामूहिक अधिकार न रहा ! वह उत्पादित वस्तु

समाज के सामूहिक अधिकार से निकल कर कुछ व्यक्तियों के व्यक्तिगत अधिकार मे चली गई! अर्थात् उन मुट्ठीभर जमीन-मालिकों के हाथ मे, जो स्वय जमीन पर श्रम नहीं करते; और उन्हीं से खरीदी जा कर फिर उन मुट्ठीभर मुनाफाखोर बनियों के हाथ मे, जिनका इस वस्तु के उत्पादन मे कोई हाथ नही! इस प्रकार जीवित रहने के मुख्य साधन पर समाज का सामूहिक अधिकार न रहने के कारण समाज के समूह के हाथ लगी है केवल भूख, बेकारी और मौत!"

गला खखास कर उसने पुनः कहना शुरू किया—"आप लोग अखबारों द्वारा जानते हैं कि 'संयुक्त राज्य अमेरिका' संसार का सबसे धनी देश है! और आज अखबारों द्वारा ही यह भी जान रहे हैं कि भूख और बेकारी का दौर-दौरा वहाँ किसी भी अन्य पूँजीवादी देश से कम नही है! अखबारो की ही खबर है कि अमेरिका मे बेरोजगारो की संख्या 'एक करोड़ सत्तर लाख' तक पहुँच चुकी थी। अब वहाँ के नये प्रेसीडेंट फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने उन्ही बेरोजगारो की संख्या कम करने के उद्देश से 'टेनेसी-नदी-घाटी-योजना' को कार्यान्वित करना शुरू किया है ताकि वे करोड़ों क्रुद्ध-विक्षुब्ध बेरोजगार मजदूर समूहबद्ध हो कर पूँजीवादी सरकार का सिंहासन न छीन सकें! लेकिन बेरोजगारी की मूल समस्या वहाँ अब भी हल नहीं हो सकी! वहाँ न अन्न की कमी है, न धन की! फिर छाती पर हाथ रख कर सोचिए कि वहाँ बेरोजगारों की इतनी बड़ी सख्या क्यों है? इतने बड़े पैमाने पर उस अन्न-धन-संपन्न देश मे इतनी विशाल भूख और बेकारी क्यो है?"

स्नाहल सिंह ने झट जवाब दिया—"क्योंकि वहाँ भी समाज द्वारा, जनता द्वारा, पैदा की हुई वस्तु-राशि पर समाज का सामूहिक अधिकार न हो कर गिने-चुने मुनाफाखोरों का व्यक्तिगत अधिकार है! और वे मुनाफाखोर अपने मुनाफे के लोभ में वस्तुओं की कीमत बाजार मे न गिरने देने के लिए जान-बूझ कर पैदावार को कम कर रहे हैं! और

बड़े पैमाने पर पहले पैदा की हुई चीजों को बड़ी बेदर्दी से नष्ट कर अभाव की स्थिति कायम कर और रख रहे हैं ! फलस्वरूप उत्पादन के बहुत सारे साधन—कल-कारखाने आदि—बेकार और बन्द कर दिये गये हैं ! और इसी कारण वहाँ 'एक करोड़ सत्तर लाख' मजदूर बेकार हो चुके हैं ! 'टेनेसी-नदी-घाटी-योजना' के आरंभ के बावजूद समस्या बिलकुल हल होती दिखाई नहीं दे रही ! और पूँजीपतियों द्वारा मँहगी की गई खाद्य एवं अन्य वस्तुओं को खरीदने के लिए पास में पैसे के अभाव के कारण बेरोजगार लोग भूखों मरने पर मजबूर बन गये हैं !"

शैलेन्द्र उसके उत्तर से संतुष्ट हो कर बोला—"आपने बिलकुल ठीक समझा स्नाहलजी ! और यदि पैदा की हुई चीजो, और पैदावार के साधनों—कल-कारखानों पर—समाज का, जनता का, सामूहिक अधिकार होता तो वे अपनी पैदा की हुई चीजो को नष्ट करने के बजाय उनका खुल कर उपभोग व उपयोग करते ! और पैदावार को कम करने की मूर्खता न कर उसे खूब बढ़ाते ! पैदावार के साधनों को भी बढ़ाते रहते ! और समाज के सारे लोग मिल कर उत्तरोत्तर बढ़ती पैदावार का अधिकाधिक मात्रा में उपयोग करते ! तब न यह भूख रह जाती, न यह विशाल बेकारी, और न मृत्यु के भय का यह दारुण हा-हाकार पैदा होता !"

अब कृष्णमाधवजी ने भी प्रश्न किया—"तो शैलेन बाबू, वहाँ की सरकार इन चीजों को नष्ट करने पर रोक क्यों नहीं लगाती ?"

"क्योंकि सरकार पर भी उन्ही हरामखोर पूँजीपतियों का अधिकार है पंडितजी !"—शैलेन्द्र ने झट जवाब दिया—"अन्यथा यह अनर्थ हो नही पाता !"

"तो तात्पर्य यह कि सरकार पर स्वयं समाज का अधिकार हुए विना यह अनर्थ दूर नहीं हो सकता ?" कृष्णमाधवजी ने फिर जिज्ञासा की।

और शैलेन्द्र ने खुश हो कर कहा—"आपने सही तात्पर्य समझ लिया पंडितजी !"

कृष्णमाधवजी खुश हो कर बोले—"और आप-जैसा कोई समझाने वाला भी तो हो? आप सचमुच हमारी आँखें खोल रहे हैं शैलेन बाबू! आप सचमुच हमारे धन्यवाद के पात्र हैं! हम सचमुच हृदय से आपके कृतज्ञ हैं!"

और शैलेन्द्र स्वयं रंचमात्र भी अभिमान प्रकट किये विना तनिक भावुक बन कर बोला—"आप धन्यवाद दीजिए उस महापुरुष को, कृतज्ञता के फूल अर्पित कीजिए उस महापुरुष के चरणों में, जिसने इस सम्बन्ध मे जीवन भर घोर खोज और शोध करके हम-जैसों को समझाया है! हम-जैसो की आँखें खोली हैं!"

प० कृष्णमाधवजी ने, सस्कृत के विशिष्ट विद्वान् एवं हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं के पाठक होने के बावजूद, इस प्रकार का विश्लेषण कहीं पढ़ा न था। गाँधीवाद की हिन्दी पुस्तकें वे अवश्य पढ़ चुके थे। गाँधीवाद को अपने वेदान्ती साम्यवाद से बहुत कुछ मेल खाते देख कर, और भारत की राजनीति में गाँधीजी के सर्वोच्च व्यक्तित्व एवं उस व्यक्तित्व मे साधुता को देख कर वे गाँधीवादी भी बन चुके थे। मार्क्स और मार्क्सवाद का नाम भी उन्होने सुना था। उस सम्बन्ध के लेख भी कहीं पढे थे। लेकिन शैलेन्द्र अभी-अभी जो कुछ बता गया वह मार्क्सवाद है अथवा मार्क्सवादी सिद्धान्त का आधार है वे समझ न सके।

अतः उन्होंने जिज्ञासा-भरे स्वर मे शैलेन्द्र से फिर पूछा—"तो उन महापुरुष का नाम क्या है शैलेन बाबू?"

और शैलेन्द्र ने अत्यन्त आदर और स्वाभिमान से भरे स्वर में बताया—"उस महापुरुष का नाम है 'कार्ल मार्क्स' पडितजी, जिसने हमें सुझाया और सिखाया है कि—'सारे जगत् मे केवल दो ही जातियाँ हैं, दो ही वर्ग हैं! एक अमीरो का, अर्थात् मुफ्तखोरों का, अर्थात् दूसरो द्वारा पैदा की हुई चीजों को हथिया कर स्वयं 'मोटे होने वालों का! और दूसरी जाति या वर्ग है गरीबों का, अर्थात् मेहनतकशों

का, अर्थात् अपना एड़ी-चोटी का पसीना एक करके समाज के लिए उपभोग्य वस्तुएँ पैदा करने वालों का !' और उस महापुरुष ने स्पष्ट शब्दों में समाज मे फैले सारे शोषण का, समस्त अन्याय-अत्याचार का निदान और इलाज खूब विस्तार और गभीरता से बताते हुए संसार के गरीबों को स्पष्ट शब्दों मे सन्देशा भी दिया है—'ससार के मेहनतकशो! शोषितो ! संघटित हो जाओ ! और सघटित हो कर अपने शोषकों से, अर्थात् तुम्हारी मेहनत का फल चुराने अथवा लूटने वाले मुफ्तखोरों के हाथ से शासन का अधिकार छीन लो ! मेहनतकशों की सरकार बना कर सारी धरती पर, और पैदावार के समस्त साधनो पर, समाज का सामूहिक अधिकार कायम करो ! और उसका उपयोग सारे समाज के हित मे करो ! समाज को सुखी और समृद्ध बनाने मे !' और मार्क्स के इसी आदेश-उपदेश को राजनीति के शब्दों मे कहते हैं 'समाजवाद' साथियो !"

फिर एकाएक आवेश मे आ कर दोनो हाथ उठा कर तनिक जोर से भावना-भरे स्वर मे वह बोला—"कार्ल मार्क्स का यह आदेश है साथियो—'संसार के मेहनतकशो ! सघटित हो कर आगे बढ़ो ! तुम्हारे पास गँवाने के लिए सिर्फ अन्याय-अत्याचार की बेड़ियाँ हैं, और जीतने के लिए सारा ससार है ! सुन्दर सुखद भविष्य है !' " और फिर जोरदार शब्दों मे सबको आमन्त्रित करते हुए वह फिर बोला—"मणिपुर के वीर साथियो ! आप लोग भी संघटित हो कर दृढ़ सकल्प से आगे बढ़ो ! मणिपुर की शासन-सत्ता को मुफ्तखोरों के हाथ से छीन कर बनाओ अपनी सरकार ! शोषित-पीड़ित जनता की सरकार ! समाज की सरकार ! और तब मणिपुर की पवित्र धरतो से मिटा दो जड़-मूल से सदा के लिए सारे अन्याय और अत्याचार ! सिवा इसके कोई दूसरा चारा नहीं ! समाज को सुखी समृद्ध बनाने का कोई अन्य प्रशस्त मार्ग नहीं ! सिद्धान्त नहीं !"

श्राद्ध-कर-विरोधी आन्दोलन ने अपने गर्भ से मानो आज स्पष्ट रूप में एक दूसरी राजनीतिक विचार-धारा को भी जन्म दिया। प्रथम राजनीतिक विचार-धारा 'गाँधीवाद' के रूप मे पं० कृष्णमाधव के सहारे वहाँ जन्म ले चुकी थी। उसमे उग्रता न थी। लेकिन आज मणिपुर के भयानक अकाल एव पूँजीवादी देशो की विश्वव्यापी मन्दी और बेकारी की पृष्ठभूमि में प्रोढ युवक शैलेन्द्र के सहारे वहाँ जन्म लेने वाली यह दूसरी विचार-धारा जन्म-काल मे ही अत्युग्र प्रतीत हुई। शैलेन्द्र के अतिरिक्त इसका दूसरा जन्मदाता चन्द्रावत था। क्योंकि वे ही दोनो बौद्धिक रूप मे वहाँ सबसे आगे थे। मार्क्सवाद को समझने का प्रथमतः केवल उन दोनों ने ही सम्मिलित रूप से प्रयास किया था। अब शेष लोगो को या तो कृष्णमाधवजी के साथ होना था, अथवा शैलेन्द्र-चन्द्रावत के साथ !

शैलेन्द्र द्वारा मार्क्सवादी पथ, पद्धति और सिद्धान्त को अपनाने के निमित्त आह्वान किये जाते ही मानो प्रथम सैनिक और अनुयायी के रूप में सबसे पहले चन्द्रावत ने अपनेको पेश किया।

शैलेन्द्र के चुप होते ही, चन्द्रावत, एकाएक दोनो हाथ उठा कर सबका आह्वान करते हुए बोल उठा—"बोलो !!! खूब जोर से एक स्वर मे साथियो !!!—'जय समाजवाद !!!' "

और सबने राजनीतिक पक्ष-प्रतिपक्ष का तनिक भी विचार न कर, दोनो हाथ उठा कर सम्मिलित स्वर मे उद्घोष किया—"जय समाजवाद !!!"

और चन्द्रावत ने फिर उसी प्रकार हाथ उठा कर पुनः आह्वान किया—"पुनः बोलो साथियो !!!—'जय मार्क्स !! जय मार्क्सवाद !!!' "

और पंडित कृष्णमाधवजी को छोड़ कर सबने पुनः सम्मिलित स्वर में खूब जोर से दोहरा दिया—"जय मार्क्स !! जय मार्क्सवाद !!!"

इन जय-घोषों के शान्त होने पर शैलेन्द्र ने फिर कहना शुरू किया—

"महापुरुष मार्क्स ने मानव-समाज को समाजवादी स्थिति तक ही सीमित न रख कर उसे और भी आगे बढ़ने का सन्देशा दिया है ! केवल समाजवाद ही हमारा अन्तिम लक्ष्य न होना चाहिए साथियो !"

फिर नई जानकारी के लिए सब एकाएक उत्सुक हो उठे ।

रणधीर ने बीच में ही प्रश्न किया—"तो क्या मानव-समाज का कोई इससे भी सुन्दर लक्ष्य है शैलेन बाबू ?"

"हाँ साथी !"—शैलेन्द्र ने दृढ़ स्वर मे उस सुन्दरतम लक्ष्य की ओर इगित करके फिर स्पष्टता से सबको समझाने के उद्देश्य से आगे कहा—"समाज को 'समाजवादी' रूप मे बदलने के लिए पहले देश की समस्त अचल सम्पत्ति और पैदावार के समस्त साधनो पर समाज का सम्मिलित या सामूहिक अधिकार स्थापित करना होगा ! और मार्क्स के बताये-अनुसार सबसे योग्यता के अनुसार काम लिया जायेगा, और काम के अनुसार उसे मजदूरो दी जायेगी ! और चूँकि सरकार स्वय मजदूरों की होगी, अतः 'समाजवादी समाज' मे अच्छे-से-अच्छा मजदूर होना गर्व की बात समझी जायेगी !

"लेकिन योग्यता के अनुसार काम और काम के अनुसार वेतन इस सिद्धान्त के अनुसार समाज में आर्थिक समता नहीं आ सकेगी ! और जब तक आर्थिक समता नहीं आ सकेगी, समाज के नागरिकों मे मानसिक समता भी नहीं आ सकती ! एक प्रकार का वर्ग-भेद कायम रहेगा ! किन्तु मार्क्सवाद का अन्तिम लक्ष्य है 'वर्ग-विहीन समाज' की स्थापना का ! अतः इस वर्ग-भेद को दूर करने और मानसिक समता लाने के लिए समाज को और आगे बढ़ना होगा ! आगे बढ़ने के लिए निरन्तर सघर्ष करना होगा ! और इस सघर्ष के फलस्वरूप आगे बढ़ कर समाज जिस स्थिति मे प्रवेश करेगा उसका नाम मार्क्स के अनुसार 'साम्यवाद' या 'कम्युनिज्म्' होगा, जिसमें काम करके खाना हर नागरिक का स्वभाव बन जायगा ! निठल्ले बैठ कर खाना उस समाज मे किसी व्यक्ति के

लिए सबसे बड़ी गाली समझी जायगी ! शक्ति और योग्यता के अनुसार काम और आवश्यकता के अनुसार उपभोग और उपभोग के साधन ! और तब हर नागरिक स्वभाव से इतना ईमानदार और शिष्ट बन जायेगा कि न राज्य की जरूरत रहेगी, न सरकार की, न फौज की, न पुलिस की, न न्याय और न्यायालय की ! क्योंकि तब न झगड़ो के कारण रह जायेंगे, न बेईमान बनने की परिस्थितियाँ ही रह जायेंगी ! सारा विश्व-मानव मानो एक विशाल परिवार होगा ! हर मानव एक दूसरे मानव के प्रति पारिवारिक आत्मीयता और स्नेह से भरा होगा ! पर विकास की इस उच्चता पर पहुँचने के लिए मानव-समाज को घोर संघर्ष करना ही पड़ेगा ! इस चरम विशाल लक्ष्य को ध्यान मे रख कर हर ईमानदार मानव को इसके लिए सघर्ष मे कूदना ही पड़ेगा ! हर प्रकार के बलिदान के लिए सदा तैयार रहना ही पड़ेगा !"—कह कर शैलेन्द्र चुप हो गया ।

तब चन्द्रावत ने एकाएक पुनः दोनो हाथ उठा कर सबका आह्वान करते हुए पुनः खूब जोर से नारा लगाया—"बोलो साथियो !!! एक स्वर से—'जय साम्यवाद !!!' "

और फिर "जय साम्यवाद" की सामूहिक ध्वनि से आकाश गूँज उठा ! जेल की दीवारे गूँज उठी !

(३६)

प० कृष्णमाधवजी मे असहिष्णुता की उग्रता न थी । हृदय उनका कम उदार न था । लेकिन अपने वेदान्ती साम्यवाद से सयुक्त गाँधीवाद को त्याग कर मार्क्सवाद को अपनाने को वे कतई तैयार न थे । 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' गीता के इस आदेश-उपदेश को वे खूब मानते थे । वेदान्त उनका अपना था । गाँधी अपने थे । लेकिन मार्क्स के प्रति अपनत्व न था ।

लेकिन फिर भो वे समन्वयवादी मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। मार्क्स का सिद्धान्त उन्हें अपने अपनाये सिद्धान्त से अधिक भिन्न दिखाई नहीं दिया। सो, मार्क्सवाद को मानो अपने निकट खींच लाने के उद्देश्य से, शैलेन्द्र द्वारा मार्क्स-प्रतिपादित 'समाजवाद' और 'साम्यवाद' की सरल और संक्षिप्त व्याख्या सुन लेने के बाद उन्होंने तनिक आत्मीयता-भरे स्वर में कहा—"मगर शैलेन बाबू! मार्क्स का यह 'साम्यवाद' तो मुझे अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त से भिन्न नहीं दिखाई देता! और आप यदि नाराज न हों तो मै तो कहूँगा कि वेदान्त का सिद्धान्त और भी आगे है! जहाँ मार्क्स का 'साम्यवाद' केवल मानव-मात्र के समत्व का प्रतिपादक है, वहाँ वेदान्त का 'अद्वैतवाद' प्राणिमात्र के समत्व का!"

शैलेन्द्र नाराज होने के बजाय हँस पडा। बोला—"आप अपने वेदान्ती रास्ते से ही उस ओर बढ़ने का प्रयास करें यदि उस सिद्धान्त से इतना मोह और उसमे इतना दृढ़ विश्वास है आपका! पर मै तो उसे एक महज दिमागी उडान से अधिक महत्त्व देने का नहीं! वेदान्त की जन्मभूमि स्वय इस भारतवर्ष मे फैले क्रूर शोषण और अत्याचार को देख कर, और वेदान्त की गद्दियों पर बैठे शंकराचार्यों और महन्त-मंडलेश्वरों के शान-शौकत व आडम्बरमय जीवन को देख कर, और उनके मठों मे सञ्चित प्रचुर धन-सम्पत्ति को देख कर, और समय-समय पर उन गद्दियों के लिए उनके आपसी झगड़ो और मुकदमेबाजियों को देख कर, मुझे तो आपके वेदान्त की सचाई मे रंचमात्र की विश्वास नहीं पंडितजी!"

इस आक्षेप से मानो खूब आहत हो कर अब पंडितजी भी कमर कस कर शास्त्रार्थ के लिए तैयार हो पड़े। ईंट का जवाब पत्थर से देने के लहजे में वे बोले—"यदि आपको वेदान्त की सचाई में विश्वास नहीं तो हम ही क्यों मार्क्सवाद की सचाई में विश्वास करें? हाँ, आपके कहे-अनुसार मार्क्स का सिद्धान्त अवश्य सुन्दर और सुखद है, किन्तु

वेदान्त का सिद्धान्त उससे भी कहीं अधिक सुन्दर और सुखद है! गाँधीवादी सिद्धान्त भी कम सुन्दर नहीं है! किन्तु यदि समाज के धूर्तजन वेदान्त अथवा गाँधीवाद अथवा मार्क्सवाद की आड़ मे अपनी व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि की भूमिका मे उलझ जाये तो इसमें इन वादों और सिद्धान्तो का क्या दोष शैलेन बाबू ?

"आप मार्क्सवादी 'रूस' की बार-बार प्रशसा कर चुके हैं! बार-बार किया करते हैं! किन्तु आप आज के रूस को अपनी आँखो से तो देख आये नही? आपके इस विश्वास और आपकी प्रशंसाओं का आधार केवल पुस्तको और पत्र-पत्रिकाओ से उपलब्ध ज्ञान ही तो है? किन्तु आपके इस विश्वास के विपरीत मै भी मार्क्सवादी रूस के अमानवीय अत्याचारो की कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओ मे अनेक बार पढ़ चुका हूँ! और न मै यही विश्वास करने को तैयार हूँ कि आज रूस मे न भूख है, न अकाल है, न बेकारी है, न महामारी है! और न मै यही विश्वास कर सकता हूँ कि रूस के सारे-के-सारे कम्युनिस्ट नेता दूध के धोये हैं! जिस प्रकार मानव-समाज के समस्त उच्च सिद्धान्त और आदर्श समाज के ठगों और धूर्तों के स्वार्थ के खिलौने बन चले हैं, उसी प्रकार मार्क्सवाद भी बन सकता है! मै नही मान सकता कि रूस के मार्क्सवादी नेताओं मे और अनुयायियो में महत्त्वाकांक्षी ठगो और पाखण्डियो का दल नही होगा! और मै स्वय गाँधीवाद के प्रति श्रद्धावान होते हुए भी विश्वासपूर्वक नही कह सकता कि आज के सारे गाँधीवादी नेता या अनुयायी दूध के धोये होगे! समाज के महत्त्वाकांक्षी ठग और बदमाश गाँधीवाद को भी कलुषित कर सकते हैं, और मार्क्सवाद को भी, और किसी भी ऊँचे-से-ऊँचे सिद्धान्त और आदर्श को भी!"

पडितजी अपने स्वभाव के विपरीत अभी खूब उत्तेजित हो उठे थे। बोलते गये—"आपने अभी-अभी जोश मे आ कर 'मार्क्स' और 'मार्क्सवाद' की जय बार-बार बुलवाई है! किन्तु मै कहता हूँ कि

हम 'गाँधी' और 'गाँधीवाद' की जय क्यों न बोलें? वेदान्त और उसके अद्वैत सिद्धान्त की जय क्यों न बोलें? आखिर हम भारतीय हैं! शास्त्र ने कहा है—'अक्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत् ?' यदि घर में ही शहद मिलता हो तो उसके लिए पर्वत पर जाने की जरूरत क्या? इससे अधिक और मूर्खता क्या? और यदि हमारे अपने देशी सिद्धान्तों में ही समाज को सुखी और सुन्दर बनाने के उपायों का स्पष्ट प्रतिपादन है, तो सात-समुद्र-पार से 'मार्क्सवाद' को यहाँ घसीट लाने की जरूरत क्या? अथवा किसी व्यक्ति-विशेष का नाम न लेते हुए केवल 'साम्यवाद' या 'समाजवाद' की ही जय क्यो न बोली जाय? किसी व्यक्ति-विशेष के साथ किसी भी सिद्धान्त का सम्बन्ध जोड़ने से वह वाद या सिद्धान्त बिलकुल साम्प्रदायिक बन जाता है, और उससे अलग करके व्यापक! हम व्यापकता को ही क्यों न अपनायें शैलेन बाबू?"

शैलेन्द्र ने जवाब दिया—"आप किसी भी मार्ग पर चलने और किसी भी सिद्धान्त या आदर्श मे विश्वास रखने को स्वतत्र हैं पंडितजी! और उसी प्रकार हम जैसे लोग भी! हाँ, लेकिन मणिपुर के इस जनवादी सघर्ष के आप हमारे नेता अवश्य हैं! हमारे अगुआ हैं! श्रद्धेय हैं! हम आपके इस नेतृत्व के प्रति अभी भी पूरी तरह वफादार हैं! लेकिन क्षमा करें, यदि मै साथ में यह भी कह दूँ कि अपनी समझ-बूझ और दिमाग को आपके पीछे बाँधने या चलाने को हम कतई तैयार नहीं हैं!"

शैलेन्द्र का जवाब सुन कर पंडितजी जरा चौंक उठे। लेकिन साथ ही अपने नेतृत्व के प्रति उसकी वफादारी की प्रतिज्ञा सुन कर उन्हें सन्तोष भी हुआ।

लेकिन शैलेन्द्र बोलता गया—"वेदान्त-सिद्धान्त की असंगतियाँ मै अनेक बार बता चुका हूँ! और गाँधीवाद की असंगतियाँ भी! मुझे क्षमा

करें कुछ और कहने के लिए! स्वयं महात्मा गाँधी की एक जबर्दस्त बौद्धिक अथवा आस्था की असगति को भी तनिक धैर्यपूर्वक सुन लें! जग-जाहिर है कि गाँधीजी 'श्रीमद्भगवद्गीता' के बड़े भक्त हैं! वे गीता को अपनी 'डिक्शनरी' अर्थात् ज्ञान-कोश मानते हैं! और अपनी इस श्रद्धा-भक्ति को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने के निमित्त अपनी प्रार्थना-सभाओ मे वे नियमित रूप से प्रतिदिन गीता के श्लोकों का पाठ भी करवाते हैं! लेकिन सोचिए तो जरा! कुरुक्षेत्र की समर-भूमि के प्रथम दिन के उस प्रसंग को आप याद कीजिए जब महावीर अर्जुन महाभारत के उस भीषण हत्याकांड, उस भीषण नर-सहार की कल्पनामात्र से विचलित हो युद्ध करने से साफ इनकार कर रहा था। तब अर्जुन को उसी भीषणतम हिंसा-कांड में प्रवृत्त करने के लिए ही तो श्रीकृष्ण को गीता का लबा-चौड़ा उपदेश देने की जरूरत पड़ी थी? इस प्रकार सूर्य के प्रकाश की भाँति यह तथ्य स्पष्ट है कि गीता की रचना का मूल और मुख्य उद्देश्य हिंसा है, न कि अहिंसा! उस भीषण सामूहिक हिंसा को उचित सिद्ध करने के लिए ही ज्ञान-विज्ञान की उतनी लम्बी-चौड़ी बातें करने की जरूरत पड़ी थी श्रीकृष्ण को! फिर तनिक छाती पर हाथ रख आप स्वय बतायें पंडितजी, कि परम अहिंसावादी श्रीगाँधीजी महाराज का एक परम हिंसावादी ग्रन्थ में श्रद्धा और विश्वास रखना, उसका प्रचार करना कितनी बड़ी असंगति है! सत्य के प्रति कितना बड़ा बौद्धिक विश्वासघात है!"

चन्द्रावत ने मुसकरा दिया। और शैलेन्द्र के पक्ष के दूसरों ने अचानक उद्दंड आवेश मे आ कर ताली भी पीट दी। लेकिन शैलेन्द्र कहता गया—"यदि सच कहा जाय तो गाँधीजी का प्रार्थना-सभा का आडम्बर और गीता कुरान बाइबल आदि धर्मग्रन्थों में विश्वास का प्रदर्शन राजनीतिक चाल के सिवा और कुछ नही! एक जबर्दस्त

राजनीतिक और धार्मिक पाखण्ड ! अन्ध-विश्वासी जन-मानस को अपनी ओर खींचने का चालाकीभरा षड्यन्त्र !"

"बस कीजिए शैलेन बाबू ! बस कीजिए !"—कृष्णमाधव शर्मा ने दायाँ हाथ उठा कर बारबार हिलाते क्रोध-गुफित स्वर मे शैलेन्द्र को सावधान किया—"मै यह सब नहीं सुनना चाहता ! नहीं सुनना चाहता !! निन्दा करने की आदत है आपकी ! कीचड़ उछालना जैसे धर्म बन गया है आपका ! जो राष्ट्र का गौरव है; जो विश्व की विभूति है; जो कोटि-कोटि जन-मानस की श्रद्धा का अधिष्ठान है; उस महापुरुष की ईमानदारी पर इस प्रकार कीचड उछालना ! छी ! मै किसी भी रूप मे इसे उचित नहीं समझता ! किसी भी रूप मे क्षम्य नहीं मानता !"

कृष्णमाधव शर्मा का चेहरा मारे क्रोध के तमतमा रहा था। उनके चेहरे को देख कर, और इस क्रोधोद्गार को सुन कर शैलेन्द्र भी अप्रतिभ हो चला और दूसरे भी। और पडितजी वहाँ क्षणमात्र भी रुके बगैर गोष्ठी से उठ कर 'बैरेक' से बाहर चल दिये। गोष्ठी भग हो चली। शैलेन्द्र और चन्द्रावत अपने साथियों के साथ पंडितजी की ओर दौड़ पड़े। बड़ी आरजू-मिन्नत की। और तब स्वभाव से गंभीर, सयमी और सहृदय कृष्णमाधव शर्मा के क्रोध का पारा भी बहुत जल्द नीचे आ गया।

किन्तु रात के एकान्त मे बिछौने पर लेटे-लेटे, पंडितजी, तटस्थ हो कर आज की गोष्ठी की हर बात पर सोचने लगे—"शैलेन्द्र ने बुरा क्या कहा ? जब कि वेदान्त की गद्दियों पर बैठे लोगों का ही अद्वैत सिद्धान्त में सच्चा विश्वास नहीं, तो दूसरे समझदार क्योंकर विश्वास करें इस सिद्धान्त में ? 'संन्यास' शब्द का अर्थ है—'हर कर्म का सम्यक् परित्याग, भोग और आडम्बर के साधनों को उपलब्ध करने के हर कर्म का परित्याग !' पर व्यवहारतः शायद ही कोई वेदान्ती संन्यासी ऐसा करता हो ! बरन् विपरीत इसके गद्दीनशीन मठाधीशों में भोग-

आडबर की बीमारी कहीं ज्यादा दिखाई देती है! और इस भोग व आडंबर के साधनों और सुविधाओं को हस्तगत करने के लिए उनकी आपस मे प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता भी कम दिखाई नही देती!'

इतना सोचते ही उनके मानस-मंच पर चाँदी-सोने के छत्र की आडबरमयी छाया के नीचे शकराचार्यों के उच्चासन या सिंहासन के कई दृश्य उपस्थित हो पड़े। और तब स्मृति के फुहारे में वह दृश्य भी ताजा हो उठा जिसे उन्होंने स्वयं प्रयाग के कुंभ-मेले के अवसर पर बरसो पहले देखा था। जगद्-गुरु शकराचार्य के चार प्रमुख मठों मे से किसी एक मठ के 'जगद्-गुरु' के 'कैंप' में झाँकी-दर्शन के निमित्त वे पहुँचे थे। घास-फूस की टट्टियो की एक बड़ी चारदीवारी के अन्दर घास-फूस की ही एक शानदार कुटिया बनाई गई थी और कुटिया के अगल-बगल दो-तीन छोटे तंबू तने हुए थे। और इस 'कैंप' के द्वार पर ही भगवे रग के विशाल पट पर सुनहले कटे कागजो के अक्षरो मे उनके नाम का विशाल 'साईन बोर्ड' भी लगा था। और चारदीवारी से लगा कर भगवे वस्त्र पर कागजी अक्षरो के ऐसे अनेक परिचय-पट्ट भी थे जिनपर उपनिषदो के चुने-चुने वाक्य अंकित थे। कुटिया का द्वार किन्तु बन्द था। और उस द्वार पर भी भगवे पट पर सुनहले कागजी अक्षरो मे यह लंबा वाक्य भी चमक रहा था—"श्री १००८ अनन्तश्री-विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य...जी महाराज का पवित्र झाँकी-दर्शन!" और इस झाँकी-दर्शन के निमित्त कुटिया की दीवार मे एक छोटा-सा छेद था। इस छेद से निगाहें भीतर डाल कर पं० कृष्णमाधवजी ने स्वर्णजटित पर्यंक पर, स्वर्णजटित कालीन बिछे आसन पर आसीन सचमुच के एक अनन्तश्री-विभूषित महापुरुष, स्वयं श्रीशकराचार्यजी महाराज का झाँकी-दर्शन किया था। ऊपर सोने-चाँदी के तारों से जड़े झिलमिलाते 'चँदोवे' का शोभा-सौन्दर्य भी वहाँ अनन्तश्री बिखेर रहा था! और उस पर्यंक पर निश्चल-निस्पन्द ध्यानावस्थ मुद्रा मे

आसीन जगद्गुरु का अपना 'भगवा लिबास भी अपनी बहुमूल्यता और अनन्तश्रीसम्पन्नता को छिपा नहीं पा रहा था।

उस समय भी पं० कृष्णमाधवजी के हृदय में बारंबार यह प्रश्न उठा था—"एक सन्यासी के लिए इस आडंबर की आवश्यकता क्या ?" और इस क्षण वही दृश्य पुनः ताजा बन कर उनके मन को आन्दोलित करने लगा। इस मानसिक आन्दोलन ने उनकी स्मृति में एक अन्य घटना को भी ताजा कर दिया। उन दिनों वे काशी में छात्र-जीवन में थे। समाचार-पत्रो में उस घटना की चर्चा कम न थी। घटना यों थी कि क्षय-रोग से एकाएक एक शंकराचार्य महाराज की मृत्यु हो गई। गद्दी के उत्तराधिकार का निर्णय न तो उनके जीवित रहते हो सका था, न उनकी मृत्यु के बाद हो सका। अनेक पक्ष थे, और उन पक्षों के अपने-अपने उम्मीदवार थे। गद्दी एक, उम्मीदवार अनेक! अदालत की शरण ली गई। अपील-पर-अपील होते मुकदमा 'हाईकोर्ट' तक जा पहुँचा। लेकिन फिर भी उत्तराधिकार का निश्चित निर्णय खटाई में ही पड़ा रहा। अखबारो मे एक पक्ष ने अपने प्रतिपक्ष पर यह अभियोग भी छपाया था कि 'गद्दी के लोभ मे उस तथाकथित उम्मीदवार ने ब्रह्मीभूत (स्वर्गीय) शंकराचार्य को जहर दे कर मारा।' और इस बीच गद्दी का एक अन्य उम्मीदवार अपनी सफलता की कोई सभावना न देख मठ की लाखों की सम्पत्ति—नगदी व जेवर-जेवरात—ले कर कही चंपत भी हो चला था।

कृष्णमाधवजी के मन ने फिर कहा—"यह कैसा वेदान्तवाद? यह कैसा संन्यासवाद? इससे तो लाख दर्जे अच्छे वे गृहस्थ-पशु, जो किसी ऊँचे आदर्श के आडंबर की आड़ में छिपे बिना ही अपनी ओछी स्वार्थ-सिद्धि में लगे रहते हैं! किसी ऊँचे आदर्श और गद्दी को कलंकित, तो वे नहीं करते? ''शैलेन! तुमने ठीक कहा! बिलकुल ठीक कहा!"

शैलेन्द्र के प्रति उनका रहा-सहा आक्रोश भी मानो अब जल्द

समाप्त हो चला। लेकिन वेदान्त के अद्वैतवादी ऊँचे आदर्श के मोह से उनका मन मुक्त न हो सका। वे मन-ही-मन फिर बोलने लगे—"इसमें वेदान्त के सिद्धान्त का क्या दोष यदि धूर्तों ने उससे दगा किया? और मार्क्स के 'समाजवाद' और 'साम्यवाद' का क्या दोष यदि मार्क्सवादी मठाधीश उससे दगा करें? धोखा और फरेब करें? मार्क्सवाद के महन्त-मंडलेश्वर क्या मार्क्सवाद को धोखा नहीं दे सकते? क्या उनमें गद्दी का लोभ और स्वार्थ पैदा नहीं हो सकता? रूस में स्टालिन के कुकृत्यो और क्रूरताओं की जो कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओ में मै पढ़ चुका हूँ क्या वे सब-की-सब झूठ हैं? मनगढ़न्त हैं? हो सकता है कि स्टालिन की इन सभी क्रूरताओं के पीछे गद्दीनशीनी का मोह और स्वार्थ ही कहीं ज्यादा काम कर रहा हो? और जब दिल में दगा हो तो अपने किसी भी कृत्य के समर्थन मे दलीलो की कमी नहीं रह जाती!"

अब उनका मन शैलेन्द्र के उस कटु-कठोर आक्षेप पर भी जा टिका जो उसने आज ही गाँधीजी की ईमानदारी पर किया था। उन्होने इस आक्षेप का कोई समुचित जवाब ढूँढ़ने की लाख कोशिश की, पर सफल न हो सके। गाँधी और गाँधीवाद पर भी उनकी श्रद्धा कम न थी। इस प्रबल श्रद्धा ने जवाब की तलाश में उनके मन को 'कणाद' के वैशेषिक दर्शन की ओर मोड़ दिया। पदार्थों और तत्त्वो के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विभाग करते हुए जब महर्षि कणाद का मस्तिष्क परमाणु तक पहुँचा तो किसी शिष्य ने प्रश्न किया—"परमाणु से भी सूक्ष्म तत्त्व कौन गुरुदेव?" और गुरुदेव ने जवाब दिया—"कोई नही! परमाणु में विशेष गुण-धर्म है! उसका विभाग नही किया जा सकता!" और इस 'विशेष' गुण-धर्म पर जोर देने के कारण ही तब से 'कणाद-दर्शन' का नाम 'वैशेषिक दर्शन' भी पड गया।

कृष्णमाधवजी ने गाँधीजी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में भी, हार मान कर, ऋषि कणाद के उसी तर्क का सहारा लेते हुए कहा—"गाँधी-

जी में भी विशेष गुण-धर्म है ! इस विशेष गुण-धर्म के कारण ही तो उन्होंने आज सारे भारत में जन-जागृति की ऐसी प्रचंड लहर पैदा की है ? किसी दूसरे ने ऐसा क्यों नहीं किया ? कोई दूसरा ऐसा क्यों नहीं कर सका ? क्योंकि उसमें वह विशेष गुण-धर्म नहीं है जो गाँधीजी में विद्यमान है ! विशेष-गुण-धर्म-संयुक्त महापुरुष की नीयत को, उसके चरित्र को सामान्य जन नहीं समझ सकते ! सामान्य कसौटी पर उसे कसा नहीं जा सकता ! मर्यादा हमें चाहिए ही ! मर्यादा के आधार पर ही संसार की, विश्व-ब्रह्मांड की व्यवस्था टिकी हुई है ! हम हर वस्तु, हर पदार्थ और हर व्यक्ति के बाल-की-खाल नहीं निकाल सकते ! अन्यथा परिणाम होगा अराजकता, उच्छृंखलता और मर्यादा-हीनता !"

लेकिन दूसरे ही क्षण शैलेन्द्र भी उनके मन पर उभर उठा। उच्छ्वसित हृदय से वे सोचने लगे—"किन्तु यह युवक भी कितना महान विद्वान, कितना चरित्रवान और कितना ईमानदार है ! कितना साहसी है ! उसमें भी तो विशेष गुण-धर्म है ! और इस विशेष गुण-धर्म के कारण ही तो वह हर बार मुझे पछाड़ देता है ! .. हमें उदार होना चाहिए, उदार ! गाँधीजी ने स्वयं कहा है कि विरोधियों के मन्तव्य को भी हमें धैर्यपूर्वक, उदारतापूर्वक सुनना चाहिए !" और यह सोचते ही उनके स्मृति-पट पर वे वाक्य अंकित हो पड़े जो अंग्रेजी में गाँधीजी की कुटिया के द्वार पर लिखे रहते थे और जिनका हिन्दी अनुवाद उन्होंने कुछ ही दिन पहले किसी 'पत्र' या 'पत्रिका' में पढ़ा था—"जब तुम्हारा मत सही हो तो तुम्हें उत्तेजित होने की जरूरत नहीं ! और जब तुम्हारा मत ही गलत हो तब भी तुम्हारा उत्तेजित होना अनुचित है !"[१]

---

१. When you are in the right, you can afford to keep your temper. And when you are in the wrong, you cannot afford to lose it. —G. C. Larimer

यह याद आते ही वे पश्चात्ताप-तप्त स्वर में मन-ही-मन बोले—"हाय ! मैने आज क्षणिक-उत्तेजना मे आ कर इस गाँधीवादी आदर्श का उल्लंघन करके कितनी बड़ी भूल, कितना बड़ा पाप कर लिया है ! उफ्, मैंने आज अकारण क्रोध प्रदर्शित करके अच्छा नहीं किया ! नहीं किया !!"

अब वे खूब भावुक हो कर मन-ही-मन क्षमा माँगते हुए बोले—"शैलेन्द्र ! मै तुम्हारी विद्वत्ता और चरित्रवत्ता के लिए तुम्हें प्यार करता हूँ ! तुम्हारा सम्मान करता हूँ ! मैने आज बड़ी गलती की ! बड़ा अपराध किया ! महान पाप ! मुझे क्षमा कर दो मेरे प्रिय साथी !"—कहते-कहते उनके नेत्र सजल हो उठे। और इस चिन्ता के जजाल से निवृत्त हो निद्रा का आश्रय वे ढूँढ़ने लगे।

(३७)

उधर आज रात शैलेन्द्र को भी काफी देर तक नींद न आ सकी। आज उसने पहले-पहल वाद-विवाद मे पं० कृष्णमाधवजी को इतना उग्र और कटु होते देखा था। कृष्णमाधवजी के लिए उसके हृदय मे कम श्रद्धा न थी, कम स्नेह न था ! उनके विचार, आदर्श और विश्वास से पूरी तरह सहमत न होते हुए भी उनके उच्च व्यक्तित्व, चरित्र और दृढ़ निष्ठा से वह कम प्रभावित न था। वह सोच रहा था—"आखिर मणिपुर में सामन्तशाही के क्रूर अत्याचारों के सक्रिय विरोध में इस व्यक्ति ने ही तो बड़े साहस से पहला पग उठाया ? इस व्यक्ति ने ही तो व्यापक और सजीव स्तर पर जन-चेतना को जाग्रत और संघटित किया ? इस व्यक्ति ने ही तो चन्द्रावत और शैलेन्द्र जैसे नवयुवकों को एक नये सजीव जीवन की ओर आकृष्ट किया ? नये जीवन के पथ पर निर्भीक हो अग्रसर होने को ललकारा ? प्रेरित किया ? वह आज भी कितनी वफादारी और ईमानदारी से अपने साथियो और

• मणिपुरी जनता का नेतृत्व कर रहा है? वह सबका सम्मान्य है! सबका आदरणीय! सबका श्रद्धाभाजन!"—यह सोचते ही अपने उसी श्रद्धेय और स्नेही नेता के दिल को कटु तर्कों के खरोंचे मार कर दुखाने का पश्चात्ताप इस क्षण शैलेन्द्र के दिल को दुखी किये बिना न रहा! •

भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस, और इस कांग्रेस का नेतृत्व, और उस नेतृत्व के पीछे विभिन्न विचारों और आदर्शों वाले लोगों का अनुगमन भी उसके मन में उभर उठा। वह फिर सोचने लगा—"कांग्रेस के सर्वोच्च नेता गाँधीजी हैं! उनके नेतृत्व में चलने वाली इस कांग्रेस मे गाँधीवाद-विरोधी सोशलिस्ट भी हैं, कम्युनिस्ट भी हैं, और व्यक्तिगत सम्पत्ति और पूँजीवाद मे दृढ विश्वास रखने वाले पूँजीपतियो के सबल 'एजेंट' भी हैं! गाँधीजी के परम प्रिय शिष्य और सहयोगी पं० जवाहरलाल नेहरू भी अपने को सोशलिस्ट कहते हैं! गाँधीवाद में विश्वास वे नहीं रखते! लेकिन फिर भी ये लोग साथ-साथ चल रहे हैं! गाँधीजी को नेता मान कर ही तो? उन विभिन्न विचारो का नेतृत्व न सही, आजादी के आन्दोलन का सर्वोच्च नेतृत्व तो गाँधीजी का ही है?"

उसने फिर सोचा—"किसी ऊँचे से-ऊँचे आदर्श, सिद्धान्त और वाद मे विश्वास व्यक्त करने और नारा लगाने वालों मे ईमानदार भी हो सकते हैं, बेईमान भी! परले दरजे के बेईमान और परले दरजे के ईमानदार भी। वास्तव में वेदान्त का आदर्श कितना ऊँचा है! पर इसी ऊँचे आदर्श का जामा पहने, इसका नेतृत्व और अनुगमन करने वाले असंख्य साधु-सन्यासी ऐसे भी हैं जिनके जीवन को निकट से देख और परख कर घृणा और वितृष्णा हुए बगैर नहीं रह पाती! अहिंसा-वादी बौद्ध धर्म का सिद्धान्त और आदर्श भी कम बुद्धिसंगत और कम ऊँचा नहीं है! पर इसी धर्म का जामा पहने, इसका नेतृत्व और अनु-

गमन करने वाले भिक्षुओं एवं जनता में कम शैतानी नहीं है! घृणा और हिंसा की भावना कम नहीं है! उन बौद्ध भिक्षुओं में कम अनाचार-व्यभिचार नहीं है! और यही दशा अन्य सभी धर्म-नेताओ और प्रचारको की भी है! और इस धर्म की आड़ में ही तो मणिपुर के शैतान धर्मवादियों ने श्राद्ध-कर जैसे क्रूर कानून का निर्माण किया? पर इसी धर्म में आस्था और श्रद्धा रखने वाली हमारी माँ और धर्म-माँ कितनी महान हैं! पं० कृष्णमाधवजी कितने महान हैं! और इसी प्रकार अन्य धर्मों के अनुयायियो में भी व्यक्तिगत रूप से अच्छे और बहुत अच्छे लोग होंगे ही!"—सोचते-सोचते इस बार अपनी धर्म-माता के प्रति उसका हृदय भाव-विह्वल हो उठा।

उसने फिर सोचा—"गाँधीवाद मे मै विश्वास नही रखता! क्योकि उसकी व्यावहारिक और बौद्धिक असंगतियाँ उस ओर मुझे प्रेरित नही कर पाती! और अनेक धूर्त गाँधीवादियो को मै निकट से देख और परख भी चुका हूँ! पर इसी गाँधीवाद और वेदान्तवाद मे सयुक्त रूप से विश्वास रखने वाले कृष्णमाधवजी जैसे ईमानदार व्यक्ति को भी मै देख रहा हूँ! मै स्वयं मार्क्सवाद मे दृढ़ आस्था रखता हूँ, किन्तु विश्वासपूर्वक यह भी कह सकता हूँ कि सभी मार्क्सवादी दूध के धोये नही हैं! दूध के धोये नही हो सकते! जाने मानव-समाज के कितने महत्त्वाकांक्षी शैतान इस 'वाद' की आड़ मे अपने नेतृत्व और स्वार्थ की बुनियाद पक्की करने मे लगे हों! और मानव-समाज के जाने कितने नर-रत्न अपने खून और पसीने से, और बलिदानों की आग से इस 'वाद' की बेल को आज सीच रहे हैं! सजीव बना रहे हैं!

"कृष्णमाधवजी ने आज क्रोधावेश मे सोवियत-सघ में हो रहे अनाचारो के बारे मे स्पष्ट चर्चा की है! उनकी इस जानकारी का आधार समाचार-पत्र हैं, पत्रिकाएँ हैं, अथवा कम्युनिस्ट-विरोधियों द्वारा लिखे लेख और लिखी पुस्तकें! और सोवियत-सघ की आर्थिक एवं

मानवतावादी प्रगति के बारे में मेरे सपक्षी ज्ञान, विचार और विश्वास के आधार भी तो समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ हैं, अथवा कम्युनिस्ट या कम्युनिस्ट-पक्षी या स्वतंत्र लेखको द्वारा लिखे लेख और लिखी हुई पुस्तकें ही ! मैंने भी तो आखिर सोवियत-संघ की यात्रा कभी नहीं की ? उसके जीवन में घुस कर निकट से उसका स्वयं अध्ययन नहीं किया ? अधिक-से-अधिक केवल भारतीय समाज के विभिन्न तत्त्वों के जीवन के रूप ही मैंने देखे हैं ! उन्हें पढ़ने और परखने का प्रयास मैंने किया है ! अतः मै भारतीय समाज के विभिन्न तत्त्वो के जीवन के सम्बन्ध में साधिकार कुछ अवश्य सोच सकता हूँ, साधिकार अपना मत अवश्य अभिव्यक्त कर सकता हूँ, पर सोवियत-सघ के जीवन की खुली और उन्मुक्त प्रशसा करने का मेरा क्या अधिकार है ? यह तो निरा प्रचार और 'प्रोपेगैंडा' होगा ? बगैर अपनी आँखो से देखे और अपनी बुद्धि से परखे किसी व्यक्ति या समाज के सम्बन्ध मे साधिकार कुछ कहना और लिखना मूर्खता ही तो है ? ऐसे व्यक्ति को ही तो अग्रेजी मे 'ईडियट' कहा जाता है जो किसी भी बुद्धिवादी के लिए बड़ा ही घृणित विशेषण है !"

उसने मन-ही-मन फिर कहा—"लेकिन हाँ, गाँधीवाद और मार्क्सवाद का तुलनात्मक अध्ययन कर चुके होने के कारण मार्क्सवाद की श्रेष्ठता की प्रशंसा मैं साधिकार अवश्य कर सकता हूँ ! वफादारी के साथ उसका प्रचार अवश्य कर सकता हूँ ! उस 'वाद' के आधार पर समाज के सघटन के लिए संघर्ष अवश्य कर सकता हूँ ! मेरे इस अधिकार को चुनौती देने वाली सरकार के विरुद्ध, समाज और व्यक्ति के विरुद्ध सघर्ष अवश्य कर सकता हूँ ! इन तत्त्वों के समक्ष सिर और सीना तान कर खड़ा अवश्य हो सकता हूँ !"

उसके मन की गति पुनः सोवियत-सघ की ओर जा मुड़ी। वह फिर सोचने लगा—"सम्भव है, स्टालिन ने वहाँ बहुत सारी क्रूरताएँ बरती

हो, बरत रहा हो ! और यह भी सम्भव है कि अपनी निजी महत्त्वाकांक्षा के नशे में ही उसने अनेक ईमानदार, प्रभावशाली कम्युनिस्टो को भी मरवा कर अपना निज का रास्ता साफ किया हो ! लेकिन आज इस विश्वव्यापी मन्दी, बेकारी और भुखमरी के युग मे अनेक समाचार-पत्र उस क्रूर और महत्त्वाकांक्षी स्टालिन के सोवियत संघ को ही तो इस मुसीबत से मुक्त बता रहे हैं ? सो कैसे ? माना कि ये समाचार-पत्र भी निष्पक्ष नहीं, ईमानदार नहीं, अथवा ईमानदार होते हुए भी ठीक से जानकार नही, लेकिन अभी-अभी कुछ वर्ष पूर्व रूस की—सोवियत-सघ की—यात्रा पर गये विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ने अपनी 'रसियार चीठी' (रूस की चिट्ठी) नामक पुस्तक मे क्या लिखा है ? रवीन्द्रनाथ न तो स्वय कम्युनिस्ट हैं, न कम्युनिस्टों के एजेंट हैं ?"

अब एकाएक उसके स्मृति-पट पर तत्कालीन सोवियत-जीवन के सम्बन्ध मे रवीन्द्रनाथ के नीचे-लिखे वाक्य भी चलचित्र की तरह उभर उठे—

"...और सब विषयो मे स्वाधीनता है, पर अधिकारियो के विधान के विरुद्ध बिलकुल नही ! यह तो हुई चन्द्रमा के कलंक की दिशा, परन्तु मेरा तो मुख्य लक्ष्य था प्रकाश की दिशा पर। उस दिशा मे जो दीप्ति देखी, वह आश्चर्यजनक थी ! जो एकदम अचल थे, वे सचल हो उठे हैं !

"...इन (सोवियत-अधिकारी) लोगों ने मनुष्य के शरीर को पीड़ित किया है, मन को नहीं किया ! जो लोग वास्तव मे अत्याचार करना चाहते हैं, वे मनुष्य के मन को ही पहले मारते हैं। मगर इन लोगो ने मन की जीवनी-शक्ति बढ़ाई ही है, घटाई नहीं। बस, यहीं मुक्ति का मार्ग खुला रह गया !

(६ अक्तूबर सन् १९३०)"

अपने स्मृति-पट पर इन वाक्यों के खचित होते ही शैलेन्द्र बोल

उठा—" 'सोवियत-संघ' के जीवन के बारे में एक विश्व-विख्यात, निष्पक्ष साहित्यकार और विचारक के ये वाक्य किस सर्वश्रेष्ठ प्रमाण-पत्र से कम श्रेष्ठ हैं ? संसार के मिथ्यावादी पूँजीवादी पत्रों, पत्रकारों और लेखकों के बेईमानीभरे वाक्यों पर विश्वास किया जाय, अथवा विश्व-कवि के इन निष्पक्ष और तथ्यभरे वाक्यों पर ?"

रवीन्द्रनाथ का यह वांक्य कि—"इन लोगों ने मन की जीवनी-शक्ति बढ़ाई ही है, घटाई नहीं। बस, यहीं मुक्ति का मार्ग खुला रह गया !"—बारंबार उसके मन को झकृत करने लगा। वह फिर सोचने लगा—"विश्व-कवि ने बहुत ठीक कहा है, ठीक लिखा है ! आखिर प्राणियों में मनुष्य सबसे बड़ा है, और मनुष्य से भी बड़ा है मनुष्य का मन, और इस मन से भी बडी है मनुष्य की ऊँची उदार भावना ! विज्ञान और वैज्ञानिक प्रगति मनुष्य के मस्तिष्क की देन हैं। वैज्ञानिक प्रगति से उपलब्ध साधनो के सहारे विश्व-मानव को बाह्य रूप से सनिकट अवश्य लाया जा सकता है, पर उसे मानसिक रूप से संनिकट ला सकती है केवल मानव-मन की ऊँची-उदार भावना ! विना इस उदार भावना के विश्व-मानव-समाज कभी एक हो नहीं सकता ! हो नहीं सकता !! और मार्क्सवाद भी अपने चरम लक्ष्य तक पहुँच नहीं सकता ! पहुँच नहीं सकता !!! मानव-समाज का यही मुख्य साध्य है ! अन्य सारी प्रगतियाँ—वैज्ञानिक आदि, केवल साधन हैं, साध्य नहीं !"

अब पुनः कृष्णमाधवजी ने उसके मन को झकृत किया। और उसकी धर्म-माता ने भी। वह फिर सोचने लगा—"माना कि ये लोग बौद्धिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, पर मन की दृष्टि से तो नहीं ? ईमानदारी और मानवता की दृष्टि से तो नहीं ? फिर क्यों न प्यार किया जाय इन्हें ? क्यों न श्रद्धा की जाय इन्हें ? और जो कम्युनिस्ट-नामधारी शैतान, केवल महत्त्वाकांक्षा के कुत्सित कीटाणुओं से ही भरे हों, उनसे क्यों

न घृणा की जाय ? मनुष्यता आखिर सभी वादो से ऊपर है ! सभी वादों से श्रेष्ठ ! इसके अभाव मे ही किसी भी वाद और आदर्श को अपना कर भी, उसका नारा लगा कर भी इनसान 'इनसान' नहीं रह जाता ! इनसान नही बन पाता !"

"बस !"—अब वह दृढ़ सकल्प के साथ बोल पड़ा—"शैलेन्द्र सभी शैतानो के खिलाफ सघर्ष करेगा ! और सभी सच्चे इनसानो को प्यार करेगा ! शैतानों की बिरादरी सर्वत्र एक है ! और सच्चे इनसानो की भी एक !"

कुछ देर बाद वह नींद के खर्राटे लेने लगा।

(३८)

"मार्क्सवादी-गोष्ठी" की 'रिपोर्ट' झट मणिपुर-नरेश के पास जा पहुँची। 'प्रेसीडेंट' और 'पोलिटिकल एजेंट' के पास भी। मणिपुर के धर्म-प्राण प्रदेश मे इस खतरनाक नास्तिकवाद से कैदियो के प्रभावित होने की खबर उन्हे एकाएक ऐसी लगी जैसे दिल पर पहाड़ आ गिरा हो ! जैसे बिलकुल निकट में खतरनाक बम का जबर्दस्त धड़ाका सुनाई पड़ा हो ! पारी-पारी से मि० राबर्टसन और हौगसन दोनों की वहाँ से बदली हो चुकी थी। अब उनके स्थान पर दो नये गोरे आये थे। दोनो ही 'आई० सी० एस०। नरेश के साथ उन दोनों को भी कम घबराहट न हुई। कम क्रोध न हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य के इस भारतीय प्रदेश मे मार्क्सवाद का यह नारा ! गाँधीवाद का अहिंसापूर्ण आन्दोलन और नारा भी जब वे बर्दाश्त करने को तैयार न थे, फिर मार्क्सवाद का शक्तिशाली हिंसक नारा वे क्योकर बर्दाश्त करते ? उनकी दृष्टि मे यह मानो किसी घोर अपराध से भी घोर था ! किसी भीषण विद्रोह से भी भीषण ! ब्रिटिश पूँजीवाद और साम्राज्य के

मूल पर ही कुठाराघात के खतरनाक संघटित प्रयास का शक्तिशाली बीजारोपण या जबर्दस्त समारंभ !

और मणिपुर-नरेश तो महल मे बैठे दाँत किटकिटा-किटकिटा कर मन-ही-मन बोल रहे थे—"कमीने बगाली ! नमकहराम ! तू चला है मणिपुर की पवित्र धार्मिक धरती मे 'मार्क्सवाद' का विष फैलाने ! कमीने ! तेरे जैसों की दृष्टि मे हम हरामखोर हैं ! मुफ्तखोर हैं ! मेरे हाथ से और मेरी सन्तानो के हाथ से शासन का सिंहासन छिनवाने का उपदेश करने चला है तू ! हमारे पूर्वजो के पौरुष ने, भुजाओ के बल ने, जिस राज्य को कायम कर अपने पवित्र वश का अधिकार जिसपर कायम किया, उसे तू हरामखोरी बता रहा है ! कमीने ! उसे तू लूट और डकैती का फल बता रहा है ! नीच ! हम लुटेरे हैं ? डाकू हैं ? हरामखोर हैं ? लुटेरों, डाकुओं और हरामखोरों की सन्तान हैं ? ठहर नीच ! तुझे और तेरे सहकर्मी, उस नीच कृतघ्न मइतेइ को फाँसी पर न लटकवा दूँ, कुत्तों से तुम दोनों की बोटी-बोटी न नुचवा दूँ, तो मेरा नाम मणिपुर-नरेश नही ! महावीर अर्जुन और बभ्रुवाहन का मै वंशज नहीं ! अपने पितरों की शतशः सौगन्द जो तुम दोनो का नामोनिशान भी इस पृथ्वी पर मै रहने दूँ !"

इस प्रकार की अनेक सौगन्दें और शपथें खाते, प्रतिज्ञाएँ दुहराते वे सारी रात अपनी शय्या पर बेचैन पड़े रहे। करवटें लेते रहे। बहुत कुछ सोचते रहे। फिर एकाएक उनके मन की आँखों में कम्युनिस्ट रूसी क्रान्ति का भयानक कल्पित दृश्य उपस्थित हो गया। वे अखबारों और किताबों मे स्वय पढ़ चुके थे और अनेक देशी-विदेशी पढ़े-लिखों के मुँह से सुन भी चुके थे कि किस प्रकार महाशक्ति-शाली 'जार' को वहाँ पहले सिंहासन से च्युत किया गया और बाद में बाल-बच्चों-सहित उसे गोलियों से भून भी डाला गया ! यह सब याद आते ही वे मारे भय के काँप उठे ! मारे भय के उनके रोंगटे खड़े हो उठे ! वे भयभीत हृदय से फिर सोचने लगे—"तो क्या, ये कमीने मणिपुर में भी उसी

इतिहास को दुहराना चाहते हैं ? हमसे गद्दी छीन कर मुझे बाल-बच्चों-सहित गोलियों से उड़ाना और उड़वाना चाहते हैं ?" मारे पसीने के उनका सारा बदन तर-बतर हो गया। जैसे स्वय मृत्यु उन्हें सामने खड़ी दिखाई दी। अति भयानक मृत्यु, जिसमे कोई दया न थी ! करुणा न थी ! मानो उसमे युग-युग के पद-दलितो का भीषण सामूहिक पुंजीभूत प्रतिशोध छिपा हुआ था! उस प्रतिशोध की सरोष हुंकार छिपी हुई थी! आरंभ मे ही इस प्रतिशोध की शक्ति को कुचलने और नेस्तनाबूद कर देने के लिए ससार के अमीरों ने कितना सामूहिक प्रयत्न किया! कितनी माथापच्ची की ! लेकिन उन संघटित शोषितों के शौर्य और सकल्प के समक्ष यह सब अन्त में व्यर्थ और निरर्थ साबित हुआ !

यह तथ्य उनकी आँखों मे प्रकट हो उनसे मानो बार-बार कहने लगा, चुनौती देने लगा—"तूने मणिपुर की बागी जनता को धर्म और समाज से बहिष्कृत करा दिया ! उनका हुक्का-पानी बन्द करा कर उन्हे तरह-तरह से नीचा दिखाने और सताने का प्रयत्न किया ! क्या इसी प्रकार के हथकडे ससार की पूँजीवादी शक्तियों ने मजदूरो के एक-मात्र स्वतन्त्र राष्ट्र 'सोवियत-संघ' के साथ नहीं बरते ? उसे हर तरह से नीचा दिखाने, सताने, नष्ट करने और अछूत बनाने के प्रयत्न क्या नहीं किये ? लेकिन अन्त मे हुआ क्या ? सूरज सूरज बना रहा, और जुगनू जुगनू ! सत्य सत्य साबित हुआ, और झूठ झूठ ! देख ले अपनी आँखें फाड कर राजा ! स्वयं पूँजीवादी पत्रों मे छपे समाचारो पर गौर कर कि आज जब कि विश्व के सारे पूँजीवादी देशों मे भूख, बेकारी और सामूहिक मृत्यु की संभावनाएँ अठखेलियाँ कर रही हैं, दहाड़ रही हैं, आज मजदूरों के उसी देश में, उसी सोवियत-संघ मे, ये सारी समस्याएँ जैसे अपनी मौत आप मर चुकी हैं ! अन्य पूँजीवादी देशों में जब कि जान-बूझ कर ये समस्याएँ पैदा की गई हैं, वहाँ सोवियत-सघ इस समस्या को कभी भी पैदा न होने देने के लिए कटिबद्ध है ! कृत-सकल्प

है ! और पूरी शक्ति से मुट्ठी बाँधे भूख, बेकारी और अकाल-मृत्यु पैदा करने वाली ससार की समस्त शैतानी शक्तियो को चुनौती भी दे रहा है ! उनके इने-गिने दिनो को उन्हे चेतावनियाँ दे रहा है !"

इस चुनौती और चेतावती मे मानो स्वयं उनके निज के इने-गिने दिनों की सूचना थी ! एक परम अशुभ सन्देशा ! वे भयभीत हो उठे। घोर निराशा जैसे सामने साकार हो उठी। अपने स्वार्थ और सत्ता की मृत्यु स्वय उनकी अपनी मृत्यु थी। उनकी सन्तानों की, वंश-परंपरा की ! इस मृत्यु की ललकार ने ही मानो निराशा के पेट से अब फिर उनमे क्रोध प्रकट किया। आसन्न मृत्यु के उस क्रोध में और भी उग्रता आ गई। और उस उग्रता ने सहसा उठे भय को भी दबा दिया और निराशा को भी। अपने स्वार्थ और सत्ता के शत्रुओं के समूल विनाश के उपायो पर वे फिर सोचने लगे। रह-रहकर दाँत किटकिटाने लगे। रात की अन्तिम घड़ी मे कुछ देर के लिए निद्रा ने उनके क्रोधाविष्ट मन को दबोच लिया। लेकिन फिर भी अवचेतन मन की गति शान्त न रह सकी। स्वप्न मे भी यह भय व समस्या उनका साथ न छोड़ सकीं। वे निद्रा में ही कई बार चीख उठे। चिल्ला उठे। इस चीख और चिल्लाहट में निराशा भी थी; भय और क्रोध भी था।

और दूसरे दिन नींद खुलते ही झट हाथ-मुँह धो कपड़े बदल कर अपनी कार पर 'पोलिटिकल एजेंट' के बँगले की ओर दौड़ पड़े।

(३९)

ऊपर का आदेश पा कर जेल का सुपरिंटेंडेंट पसोपेश मे पड़ गया। एक तो बंगाली, तिस पर स्वभाव से कुछ उदार ! शैलेन्द्र बंगाली है, विद्वान् है ! चन्द्रावत भी भूतपूर्व मजिस्ट्रेट ! इन दो भद्र पुरुषों पर जेल के साधारण श्रेणी के उद्दंड कैदियों के प्रति बरते जाने वाले घृणित तरीकों का कैसे इस्तेमाल किया जाय ? और शासन के आदेश की अव-

हेलना भी असंभव ! स्पष्ट परिणाम होगा नौकरी से, रोजी-रोटी से हाथ धोना ! अफसरी के शानदार पद से हटाये जा कर इस घोर बेकारी के युग में दर-दर की ठोकरें खाना ! अपने को और अपने बड़े परिवार को भूखो मारना ! उसे याद आ गई वह दुर्घटना जिसमें ब्रिटिश भारत की एक जेल के एक बंगाली सुपरिटेंडेंट को केवल इस कारण पदच्युत कर दिया गया कि उसने जेल के 'विप्लवी' बन्दियों के प्रति तनिक नरमी दिखाई थी और अन्त मे पदच्युति के फलस्वरूप उसे आत्महत्या तक करनी पडी थी।

"आत्महत्या ! मृत्यु ! कितने भीषण शब्द हैं ये ! आज मणिपुर-नरेश भी अपने जीवन और सिंहासन की सुरक्षा के लिए ही ऐसे हिंस्र पशु बन चले हैं ! अंग्रेज शासक भी इसलिए ही क्रूर पशु बने हुए हैं ! और हम जैसे लोग भी इस जीवन के लिए ही दूसरो की चाकरी के गुलाम—घृणित पशु बने हुए हैं ! शासन की यह सारी शृखला ही हिंसा और पशुत्व से सश्लिष्ट है ! और दूसरी ओर हैं शैलेन्द्र और चन्द्रावत ! एक, यहाँ की सर्वोच्च शिक्षा-संस्था का भूतपूर्व प्रधानाध्यापक ! और दूसरा, भूतपूर्व मजिस्ट्रेट ! अपने पदो और जीवन की सुविधाओ की रत्तीमात्र भी परवाह न कर वे अन्याय के विरुद्ध तन कर खड़े हो गये ! दूसरों को जिलाने की खातिर आज वर्षों से इस जेल की आग मे अपने प्राणों की आहुति दिये जा रहे हैं !"

इतना सोचते ही शैलेन्द्र और चन्द्रावत के व्यक्तित्व के प्रति उसके हृदय में भावुकताजन्य श्रद्धा उमड़ आई। पर अपने जीवन के प्रति, अपने प्रति बड़ी गहरी ग्लानि भी ! लज्जा भी ! वह किस नैतिक संबल के सहारे इन दो महापुरुषों को अभी अपने कार्यालय मे पेश करा कर उनसे बातें कर सकेगा ? अपना और शासन का रोब जता सकेगा ? बिना गहरी निर्लज्जता और पशुता के उन पर रोब नहीं जमाया जा सकता ! उन्हें फटकारा नहीं जा सकता ! उन्हें अपमानित करके सताया

नहीं जा सकता !

लेकिन अपनी और अपने परिवार की रोटी और उनके जीवन की समस्या ? असाधारण अडिग चरित्र-बल के बिना न कोई असाधारण पशु बन सकता है, न असाधारण मनुष्य ! असाधारण पशुता मे चरित्र की असाधारण निष्ठुरता और निर्लज्जता छिपी होती है, जब कि असाधारण मनुष्यता मे चरित्र का असाधारण उच्च आदर्श ! किन्तु वह तो साधारण मनुष्य है ! रोजी-रोटी की समस्या से अहर्निश परि-चालित विशाल मशीन का क्षुद्र यत्रमात्र ! पर राजाज्ञा का परिपालन तो होना ही चाहिये ! वह जेल का सर्वोच्च अधिकारी है ! जेल की हर अवांछित घटना का सर्वोच्च उत्तरदायी !

किन्तु फिर भी उसने स्वय शैलेन्द्र और चन्द्रावत को अपने सामने उपस्थित करा कर अथवा स्वयं उनके सामने उपस्थित हो कर उन्हें दंडित करने के बजाय अपने 'जेलर' को आदेश-उपदेश दे कर उनके वार्ड मे भेज दिया। जेलर मणिपुरी था, मणिपुरी जातिवाद की संकीर्णता का प्रतीक ! वह बगाली मात्र से घोर घृणा किया करता। और मन-ही-मन अपने सिर पर बैठे उस बगाली अधिकारी से भी। चन्द्रावत के प्रति उसके हृदय मे भी तनिक आदर था, पर वह शैलेन्द्र को फूटी आँखों भी देखना पसन्द न करता। सो, शैलेन्द्र को दंडित करने का आदेश पा कर वह मन-ही-मन खूब खुश हुआ।

जेल के दो सिपाहियों के साथ वह राजनीतिक बन्दियों के वार्ड में पहुँचा। रविवार को दिन के भोजनादि से निवृत्त हो कर बन्दियों की गोष्ठी जम चली थी। इस समय भी मार्क्सवाद पर ही विचार-विमर्श चल रहा था।

जेलर उस बैरेक में प्रविष्ट होते ही तर्जनी तान कर अपमानभरे लहजे में शैलेन्द्र पर बरस पड़ा—"तुम्हीं इस सारी शरारत की जड़ हो ! तुम्हीं इन सारी खुराफातों के 'लीडर' हो ! तुम्हीं जेल का अनु-

शासन भंग करवाते हो ! तुम्हीं सरकार के खिलाफ जहरीला प्रचार करते और करवाते हो ! कमीने बंगाली ! बदमाश ! तुम सबको यहाँ 'मार्क्स-वाद' का पाठ पढ़ाते हो !"—इतना कह कर मारे क्रोध और रोष के थरथर काँपते हुए उसने सिपाहियो को आदेश दिया—"डाल दो इस कमीने बंगाली के पैरो में बेड़ी और बन्द कर दो इसे 'सेल' में ! चन्द्रावत सिंह के पैरों मे भी बेड़ी डाल कर सेल मे बन्द करो ! आखिर एक कमीने के बहकावे में आने का फल तो भोगना ही चाहिए इन्हें भी !"

किन्तु आदेश का परिपालन होने से पहले ही चन्द्रावत एकाएक गुस्से में मानो पागल हो कर जेलर के पास जा पहुँचा। और मारे क्रोध के फड़कते हुए ओठो से—"बदमाश ! बदतमीज ! इनसान की खाल मे हैवान ! किसी इनसान से इनसान की तरह बोलने की भी तुझमे तमीज नहीं ! तिसपर अफसर बन चला है तू !"—कहते हुए उसने जेलर को सम्हलने तक का मौका न दे कर ताबड़तोड़ उसके मुँह पर मजबूत हाथों से कई थप्पड़ लगा दिये।

जेलर की आँखों के आगे जैसे अँधेरा छा गया ! हक्का-हक्का रह गया ! सिपाही भी डर कर कई कदम पीछे हट गये ! चन्द्रावत पहले स्वयं मजिस्ट्रेट रह चुका था, इसे वे अच्छी तरह जानते थे। बागी और कैदी बन जाने के बावजूद उसका रोब नष्ट हुआ न था। बल्कि छिपे-छिपे उसमें वृद्धि ही हुई थी। इसलिए उन दो सिपाहियों को आगे बढ़ने का साहस न हुआ। और दूसरे राजनीतिक कैदियों मे भी एकाएक क्रोध का उबाल आ गया। सब तन कर खड़े हो गये। एक साथ जैसे एक स्वर मे बोलने लगे—"खबरदार, अगर हमारे साथ ऐसे लहजे में बातें करने की कोशिश की ! टुकड़खोर कुत्ते ! कुत्तों की जात ! मालिक का इशारा पाते ही पूँछें तान कर भौंकना शुरू कर देंगे ! बदमाश ! हम तुम्हारे जैसे टुकरखोर पशु नहीं, यह ख्याल कर

लो जेलर ! ख्याल कर लो कि हम मरने से डरते नहीं !"

किसी ने जेलर की बाँह पकड़ कर झकझोर दी, और किसी ने उसके कान पकड़ कर ऐंठ दिये। किसी ने मुक्के से पीटने का आयोजन भी किया। किन्तु पं० कृष्णमाधवजी ने झट बीच मे पड़ कर सबको समझा-बुझा कर शान्त किया। और जेलर ने अब तनिक सम्हल कर उनकी ओर एवं अगल-बगल इस प्रकार भयभीत आँखों से देखा जैसे स्वयं उसके आगे मृत्यु मुँह बाये खड़ी हो ! स्वय मौत उसे धमका रही हो ! उसने पुनः अगल-बगल देखा, किन्तु इन क्रोधोन्मत्त बागी कैदियों से निबटने के लिए पर्याप्त सिपाही भी वहाँ न थे। और वे दोनो सिपाही भी हक्का-बक्का भौंचक्का हो कर देखते रहे ! जेलर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो चला। अतर्कित आक्रमण से जैसे अचानक घबरा कर वह होश-हवास खो बैठा। उसे लगा कि सचमुच उसकी जान सकट मे है ! क्षणमात्र मे सारा रोब और क्रोध भूल कर गिड़गिडाते हुए वह बोला—"मैं सचमुच टुकड़खोर हूँ ! जो कुछ कह लीजिए सब कुछ हूँ ! पर करूँ क्या ? नमक खा रहा हूँ ! हुकुम बजा रहा हूँ ! आप लोग तो नाहक नाराज हो रहे हैं मुझ गरीब पर !"

और भीड़ में से पुनः किसी एक ने फटकारा उसे—"नमक मणिपुर की जनता पैदा करती है, या मणिपुर का महाराजा ? तुम तो जनता द्वारा पैदा किया हुआ जनता का नमक खाते हो, महाराजा का नहीं ? जनता के नेता का इस प्रकार अपमान करने के अपराध की अब माफी माँगो ! दोनों हाथों से कान पकड़ कर शपथ खाओ कि, 'मैं फिर ऐसा नहीं करूँगा !'"

"पकड़ो कान ! खाओ शपथ !"—पहले के आदेश से प्रोत्साहित हो दो-तीन और आदमियों ने भी कैदियों में से झट आगे बढ़ कर उसके दोनों हाथ पकड़ कर झकझोरते हुए खूब रोबीले लहजे में आदेश दिया—"खाओ शपथ ! नहीं तो हम छोड़ेंगे नहीं तुम्हें !"

इस विकट परिस्थिति के समक्ष जेलर के लिए पूर्ण आत्म-समर्पण के सिवा और कोई चारा न रहा। वह भय-विकंपित गिड़गिड़ाते स्वर में कहने लगा—"खा रहा हूँ, अभी खा रहा हूँ! शपथ खाता हूँ भाइयो! फिर ऐसी गलती नहीं करूँगा कभी! भूल हो गई! अपराध हो गया! माफ कीजिए! माफ कीजिए मुझे!"

और उसकी इस व्याकुल प्रार्थना पर और पूर्ण आत्म-समर्पण पर लोगों ने उसके हाथ छोड़ दिये। और तब सचमुच उसने अपने दोनों कान एक साथ पकड़ कर शपथ भी खा ली। माफी भी माँग ली।

कैदियों मे बहुत लोग ठहाका मार कर हँस पडे। जेलर और सिपाही वहाँ से तुरन्त चल पड़े। लेकिन उनके वापस जाते ही वातावरण मे गंभीरता आ गई। शैलेन्द्र, चन्द्रावत और कृष्णमाधवजी खूब गंभीर बन गये। उत्तेजना के तनिक शान्त होते ही जैसे परिस्थिति की गंभीरता एकाएक उनके सामने आ गई। उन्हें समझते देर न लगी कि एक नये अत्याचार का अभी आरम्भ ही हुआ है। अन्त कैसा होगा पता नहीं! वह टुकडखोर जेलर केवल जेलर न था, बल्कि राज्य का एक प्रतिनिधि; कानून द्वारा स्थापित सत्ता का प्रतिनिधि! उसका अपमान केवल उसका अपमान न था, बल्कि स्वय मणिपुर-सरकार और मणिपुर-नरेश का अपमान! और इस बात की आशा करना ही मूर्खता थी कि सरकार इस अपमान को चुपचाप बर्दाश्त कर लेगी! अपमान-कर्ताओं को इस अपमान का दंड देने से बाज आयेगी! बल्कि अब वह और भी क्रूर बन कर अपने रोब और दबदबे को कायम करने का प्रयास करेगी!

जेलर के साथ आये सिपाही चन्द्रावत द्वारा जेलर पर अचानक आक्रमण से किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गये थे। जेलर पर आक्रमण होते ही उन्हें तत्काल सीटी बजानी चाहिए थी। अब उस वार्ड से बाहर निकलते ही उन्हें होश आया, और उन्होंने जोर-जोर से सीटी बजानी

आरंभ की। सिपाहियों की सीटी के प्रत्युत्तर में 'गुमटी'[1] पर से 'पगली'[2] घंटी जोरों से बज उठी। वार्डरों ने कैदियों को बैरकों मे धकेल कर ताले बंद करना शुरू कर दिया।

अब कैदी भी घबरा उठे। उनकी गोष्ठी फिर बैठी। इकट्ठे हो कर परिस्थिति की गंभीरता पर वे सोचने लगे। विचारने लगे। अपने नेताओं को गंभीर हुए देख दूसरे भी गंभीर हो चले। लेकिन शैलेन्द्र जरा हँस कर मुसकाते हुए बोला—"देखा तो मार्क्स और मार्क्सवादी चर्चा का परिणाम? अभी तो कुछ हुआ भी नहीं! केवल चर्चा मात्र से शासकों का आसन डोल उठा! दिल दहल उठा! और अपने सभावित विनाश के खतरे से घबरा कर झट क्रूरता और कमीनेपन पर उतर आये! खतरे की घटी बजाने लगे! मार्क्सवादी बनना कोई खेल नहीं साथियो! किसी भी मुसीबत से जूझने के सकल्प और तैयारी के विना कोई मार्क्सवादी नहीं बन सकता!"

चन्द्रावत ने गभीर स्वर मे जवाब दिया—"इतिहास की यह कोई नई घटना नही है शैलेन! पडितजी ने ही तो बताया था उस दिन कि, 'अपने स्वार्थ पर आघात या आघात की आशंकामात्र से महाशक्ति-सम्पन्न शासक भी अपनी सारी शूरता, बुद्धिमत्ता और वैभव के बावजूद एक कुत्सित हिंस्र पशु या पिशाच के सिवा और कुछ नहीं रह जाता! एक क्रूर हिंसक पशु से भी गिरा हुआ! पिशाच से भी घृणित और गया बीता हुआ!' अभी इतिहास का ताजा उदाहरण हमारे सामने है! ससार के ये सारे पूँजीपति अपनी सारी बुद्धिमत्ता और वैभव के बावजूद आज किस क्रूर हिसक पशु से कम हैं? किस पिशाच से कम घृणित हैं? अपने ही देश में, अपनी ही जाति के, अपने

---

१. जेल के केन्द्र में स्थित घटाघर।

२. खतरे की घटी।

ही धर्म के, अपने ही रंग और नस्ल के मनुष्यों को मजबूर बना कर भूखों मारने वाले इन नरपिशाचों से किस इनसानियत की, किस नैतिकता और उच्चता की आशा की जा सकती है शैलेन ? मार्क्सवाद से ये घबराते इसलिए हैं कि यह 'वाद' इनकी सारी कमीनी हरकतों की जड़ को ही काट डालने का उपाय बताता है ! आदेश और उपदेश देता है !" और फिर एकाएक साहस और विश्वास के साथ वह बोला— "चलो, आगे देख लेंगे कि 'क्या-क्या गुल खिलाता है यह चमन !' अब मरने से डरना क्या जब सर पर कफन बाँध कर निकल पड़े हैं ?"

और चन्द्रावत की बातों से प्रोत्साहित हो, सभी युवक बन्दी एक साथ बोल उठे—"हम नहीं डरेंगे ! मृत्यु क्या, मृत्यु का राजा स्वयं यमराज भी हमें अब नहीं डरा सकता ! नहीं डरा सकता !! पीछे नहीं हटा सकता, साथियो !!!"

और फिर एकाएक दोनों हाथ उठा कर युवक रणधीर सबका आह्वान करते हुए खूब जोर से बोल उठा—"बोलो साथियो, खूब जोर से—'समाजवाद की जय' !!! 'मणिपुर-समाज की जय' !!! 'कार्ल मार्क्स की जय' !!!"

और प० कृष्णमाधव एवं उनके प्रभाव के दो-चार कैदियों को छोड़ अन्य सबके सम्मिलित नारों से आकाश गूँज उठा। जेल की दीवारें गूँज उठीं। और उन सबका हृदय मानो अद्भुत साहस और बलिदान की भावना से भर उठा।

'पगली घंटी' अनवरत बज रही थी। लेकिन उन राजनीतिक कैदियों द्वारा प्रत्याशित परिस्थिति अब भी वहाँ उपस्थित न हो सकी। केवल हर वार्ड के द्वार को दुबारा बन्द करके हथियार-बन्द वार्डर चारों ओर मोर्चों पर तैनात किये जा रहे थे। मणिपुर-जैसी छोटी रियासत की वह जेल भी छोटी थी और भारत की ब्रिटिश जेलों की तरह जेल-पुलिस का प्रबन्ध भी तगड़ा न था। जेलर ऊपर से शेर बन कर भीतर से श्रृगाल

था जिसका परिचय उसने अभी-अभी पेश कर दिया था। और तिस पर उन राजनीतिक कैदियों की संख्या भी पर्याप्त थी। अतः जेल के मुट्ठी भर सिपाहियों के साथ वह पुनः प्राणों को हथेली में थामे उन निर्भीक कैदियों के समक्ष जाने में भय भी महसूस कर रहा था, लज्जा भी। सुपरिंटेंडेंट भी, कैदियों के उद्दंड व्यवहार से अब खूब क्रुद्ध-विक्षुब्ध होने के बावजूद दमन के अपने सीमित साधनों से उनका तत्काल सामना करने में अपने को असमर्थ अनुभव कर रहा था। अतः उसने जेलर के परामर्श से तत्काल ऊपर के अधिकारियो को फोन द्वारा सूचित करके अतिरिक्त सशस्त्र पुलिस की सशक्त टुकड़ी मँगवाने का निर्णय किया। फलस्वरूप उसने महाराजा के प्राइवेट-सेक्रेटरी को फोन किया, स्टेट-दरबार के प्रेसीडेंट को, और एस० पी० को भी।

महाराजा ने प्राइवेट-सेक्रेटरी के हाथ से स्वयं फोन का 'रिसीवर' थामा, फोन पर ही सुपरिंटेंडेंट और जेलर को लाखों गालियाँ दीं, और तत्क्षण कार पर सवार हो प्रेसीडेंट के बँगले की ओर दौड़ पड़े।

इधर प० कृष्णमाधवजी खूब चिन्तित हो चले। प्रत्याशित परिस्थिति के अबतक उपस्थित न होने के बावजूद जैसे वह दुःस्थिति अपनी सारी भयानकता के साथ उनके नेत्रों में साकार हो उठी। वे खूब समझ रहे थे 'पगली घंटी' के हृदयबेधी स्वरों का तात्पर्य! खूब तैयारी के साथ जेल के विद्रोही बन्दियों पर पुनः हमले की योजना को मानो स्पष्टतः वह सूचित कर रही थी।

वे सचिन्त स्वर में बोले—"शैलेन बाबू! किन्तु हमारा यह क्रोध-प्रदर्शन उचित नहीं रहा! परिणाम पर तनिक भी विचार न कर व्यर्थ ही हम अकस्मात् उत्तेजित हो उठे!"—इतना कह कर अपने समर्थन में उन्होंने महाकवि भारवि का यह वाक्य भी उद्धृत किया—"'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्!' सहसा किसी कार्य को कर बैठना न चाहिए! अविवेक परम विपत्तियों की जड़ है!

हमें सोचना चाहिए कि इस जेल में हम स्वतन्त्र कतई नहीं ! न अपने मन की कुछ करने के लिए, न मन की कुछ कहने के लिए !"

चन्द्रावत इस बार अपने नैसर्गिक गंभीर स्वभाव के विपरीत तनिक उत्तेजित हो कर बोला—"और किस जगह हम अपने मन की कुछ करने और कहने के लिए स्वतंत्र हैं पंडितजी ? अपने अधिकार की सीमा के भीतर किस स्थान को शासकों ने स्वतंत्र रख छोड़ा है जहाँ कोई खुले-आम अपने मन की कुछ कह और कर सकता है ? हम अपने मन की कुछ कहने और करने के अपराध में ही तो इस जेल में पशुओं की तरह बन्द किये गये हैं ? लेकिन यह तो हमारी विशेषता है कि वर्षों से जेल में बन्द रह कर भी हम पशु नहीं बन सके ! अन्यथा उस कुत्ते जेलर के अपमान-भरे व्यवहार को हम आसानी से बर्दाश्त कर लेते ! यदि हमें 'सेल' में ही बन्द करना था उसे, तो सीधे-मुँह एक मनुष्य की तरह हमसे बात करनी चाहिए थी ? हम विना किसी विरोध के सेल में बन्द हो जाते !" फिर अचानक आँखों से चिनगारियाँ-सी बरसाते हुए तर्जनी तान कर—"लेकिन इतना याद रखिए पंडितजी, कि चन्द्रावत न तो अपना अपमान बर्दाश्त कर सकता है, न अपने किसी मित्र और साथी का ! वह अपने प्राण दे कर भी आत्म-सम्मान की रक्षा सदैव करेगा ! करता रहेगा ! इससे बढ़ कर मनुष्य की सम्पत्ति और कोई नहीं ! 'अद्य वाब्द-शतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः' यह आपके ही परम श्रद्धास्पद शास्त्र का कथन है पंडितजी !"

चन्द्रावत के उत्तेजित चेहरे को देख पंडितजी निरुत्तर हो गये। सहसा कुछ बोल न सके। लेकिन मन-ही-मन व्यथाभरे स्वर में वे बोले अवश्य—"चन्द्रावत और शैलेन्द्र जैसे लोग बार-बार पैदा नहीं होते !" फिर प्रकट रूप में—"चन्द्रावत ! तुम्हें और शैलेन बाबू को कुछ समझा सकने की योग्यता मुझमें नहीं है ! किन्तु अभी-अभी हमने उचित या अनुचित जैसा भी आचरण यहाँ किया है उसके हम सभी

समान साझेदार हैं ! जैसी भी परिस्थिति आयेगी उससे मिल कर हम निबटेंगे ! मिल कर ही…"

कृष्णमाधवजी का अन्तिम वाक्य पूरा भी न हो पाया कि एकाएक उस वार्ड का द्वार खड़खड़ाकर खुल गया। और उस तरफ अचानक सबकी नजर जाते ही उन्होने देखा कि स्वयं डी० एस० पी०, जेल-सुपरिंटेंडेंट और जेलर के पीछे-पीछे गोर्खा-पुलिस की बन्दूक-लाठी-बन्द एक टुकड़ी उस वार्ड में प्रवेश कर रही है।

× × ×

मणिपुर-दरबार के नये प्रेसीडेंट अल्फ्रेड एन्थोनी को अपनी अंग्रेजी सभ्यता, सस्कृति और अंग्रेजी 'डेमोक्रेसी' (प्रजातन्त्र) पर बड़ा अहंकार था। स्वय हृदय से अत्यन्त अनुदार होते हुए भी वह अंग्रेज जाति की उदारता पर कम गर्व न करता। जैसे सांप्रदायिक संकीर्णता से स्वयं आपादमस्तक आक्रान्त अनेक पढे-लिखे हिन्दू भी अपने धर्म और संस्कृति की उदारता पर खूब गर्व किया करते हैं ! मार्क्स को युरोप के अनेक पूँजीवादी देशों ने जब कि पारी-पारी से अपने यहाँ से निर्वासित कर दिया, ब्रिटेन की पूँजीवादी साम्राज्यवादी सरकार ने आजीवन उसे ब्रिटिश भूमि पर रहने दिया। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की इस उदारता पर अन्य अंग्रेजों की तरह अल्फ्रेड एन्थोनी को भी कम गर्व न था। और मार्क्सवाद से अत्यन्त घृणा रखते हुए भी मार्क्सवाद की रचना 'ब्रिटिश-भूमि' पर ही हुई यह सोच कर जब-तब उसका हृदय भी कम गर्वित न हुआ करता। क्योंकि मार्क्सवाद अब केवल एक किताबी वाद न रह कर एक जबर्दस्त व्यावहारिक वाद बन चुका था। पृथ्वी के छठे भाग पर इस वाद से ही प्रेरणा ले कर मजदूरो का एक विशाल राष्ट्र 'सोवियत-संघ' कायम हो चुका था। मार्क्स के व्यक्तित्व से घृणा रखते हुए भी अल्फ्रेड को इस बात का भी कम गर्व न था कि सारे विश्व के मजदूरों के 'मसीहा' मार्क्स की समाधि भी स्वयं ब्रिटेन में है ! ब्रिटिश

भूमि पर है !

सो, जब मणिपुर-नरेश ने अल्फ्रेड से आग्रह किया कि मार्क्सवादी नेता शैलेन्द्र और चन्द्रावत को सीधे गोलियों से उड़वा दिया जाय, अथवा फाँसी पर लटका दिया जाय, तो वह बड़े गर्व से बोला—"हम अंग्रेज हैं 'योर हाइनेस' ! हम मार्क्सवादियो से निबटना खूब अच्छी तरह जानते हैं ! हमने स्वय मार्क्स को अपने देश में उस वक्त जगह दी जब कि संसार का कोई भी देश उसे शरण देने से घबराता था ! हमने उसे अध्ययन का अवसर दिया ; उसे अपनी बकवासो को पोथियों मे लिखने का अवसर दिया; और उसे यह झूठी भविष्यवाणी करने का मौका भी दिया कि मजदूरो की प्रथम क्रान्ति ब्रिटेन जैसे समुन्नत पूँजीवादी देशों मे होगी ! लेकिन हम घबराये नहीं ! और न ही वहाँ मजदूरों की कभी क्रान्ति होने दी ! बल्कि सिर्फ वैधानिक तरीके से मजदूर-पार्टी की एक सरकार बनी भी तो हमने उसे अभी-अभी फेल कर दिया है ! उसे बिलकुल नाकामयाब बना दिया है !"—कहते-कहते उसके चेहरे पर पुनः अहकार की लाली उभर आई ।

अहंकार-भरे स्वर मे वह फिर बोला—"मणिपुर के इन अधकचरे और नौसिखिये मार्क्सवादियो को एकाएक गोली से उड़वा कर या फाँसी पर लटकवा कर मै अंग्रेज जाति का नाम कलकित नही करना चाहता ! अपना नाम कलकित नहीं करना चाहता ! और न आपका नाम कलंकित होने देना चाहूँगा ! जल्द घबरा उठना तो अपनी कमजोरी जाहिर करना होगा ! यह खुली बर्बरता होगी 'योर-हाइनेस' ! अखबारों के बदमाश सवाददाता इसे ले उड़ेगे ! तिल का ताड़ बना डालेंगे ! और तब न केवल सारे भारत मे, बल्कि सारी दुनिया मे ब्रिटिश साम्राज्य का नाम कलकित होगा ! मेरा नाम कलंकित होगा ! और आपका नाम भी ! अपनी इस हिन्दुस्तानी कहावत पर विश्वास रखें आप—'लेट दि डॉग्स बार्क एँड एलीफेंट पासेज ऑन' (कुत्ते भौंकें हजार, हाथी

चले बाजार)! क्या हम इतने कमजोर हैं कि इन कुत्तों के भौंकने से ही परेशान हो जायँ? डर जायँ?"

अल्फ्रेड के इस गर्वभरे कथन ने जैसे महाराजा में भी गर्व का भाव उभार दिया। विश्वास और निर्भीकता ला दी। लेकिन फिर भी महाराजा ने कहा—"लेकिन उन बदमाशों ने हमारे 'जेलर' को जो पीटा है? यह तो स्वयं मणिपुर-सरकार का अपमान है मिस्टर प्रेसीडेंट? इस भयानक अपराध का दंड तो उन्हें मिलना ही चाहिए?"

"अवश्य!"—मिस्टर अल्फ्रेड एन्थोनी ने मुँह के किनारे से लगी सिगार का एक धीमा कश ले कर दृढ़ स्वर में महाराजा का समर्थन करते हुए कहा—"गुंडों को गुंडागीरी की सजा तो मिलनी ही चाहिए! उन्हें कोड़े लगवाये जायेंगे, कोड़े योर हाइनेस! अभी ही बेड़ियाँ पहना कर 'सेल' में डाल दिया जायेगा! जब तक वे अपराधों की माफी नहीं माँग लेते उन्हें जेल में स्वतन्त्र जीवन की पहली सुविधा नहीं दी जायेगी! चिन्ता न करें आप! उपद्रव बढ़ने न दिया जायेगा!"

प्रेसीडेंट से शैलेन्द्र और चन्द्रावत को बेड़ियाँ पहना कर 'सेल' में कैद करने का आश्वासन पा कर महाराजा खुश हो उठे। चापलूसी-भरे स्वर में बोले—"शासन के कार्य में अभी आप लोगों से हमें बहुत कुछ सीखना है मिस्टर प्रेसीडेंट! मैंने निवेदन कर दिया! अब जैसा ठीक समझें करें आप!"

अल्फ्रेड भी खुश हो उठा। बोला—"दुश्मन को एकाएक गोली से उड़वा देना या फाँसी पर लटकवा देना उसके प्रति बहुत बड़ी दया होती है 'योर हाइनेस'! बुद्धिमानी इसमें है कि उसे खूब तड़पा-तड़पा कर मारा जाय! उसे यथासम्भव अधिक दिनों तक जीवित रख कर महसूस कराया जाय कि उसने अपराध किया है! उसने अपने से सबल और श्रेष्ठ शक्ति का अपमान किया है! और इसका फल उसे क्या मिल रहा है वह देखा करे! अपनी झूठी अकड़ का फल भुगता

करे ! यही तो खूबी है आज की 'डेमोक्रेटिक' सभ्यता के विधि-विधानों की, कि दुश्मन से कस कर बदला भी ले लिया जाय, और उसे यथा-सम्भव जीने भी दिया जाय, ताकि हम 'बर्बर' इस घृणित नाम से पुकारे न जायँ !"—कहते हुए वह हँस भी पड़ा।

महाराजा भी हँसे। खुश हो कर चापलूसीभरे स्वर में फिर बोले—"तभी तो मैंने कहा कि अभी आप लोगों से बहुत कुछ सीखना है हमे ! आपके इस मनोवैज्ञानिक पहलू के आगे श्रद्धा से मस्तक झुक ही जाता है मिस्टर प्रेसीडेंट ! अच्छा तो जैसा उचित समझें, करें आप ! मै अब आज्ञा चाहता हूँ !"—कह कर उससे हाथ मिला वे विदा हो पडे।

प्रेसीडेंट ने तत्काल 'एस०पी०' को तलब किया। 'एस०पी०' पहले ही खबर पा कर वहाँ मौजूद था। 'सैल्यूट' करके हुक्म के इन्तजार मे बड़े विनय से खडा हो गया। और प्रेसीडेंट ने उसे आवश्यक आदेश और उपदेश देकर विदा कर दिया, और 'एस०पी०' ने 'डी०एस०पी०' को आवश्यक आदेश और उपदेश देते हुक्म दिया। 'डी०एस०पी०' सशस्त्र पुलिस की एक टुकडी ले कर जेल की ओर रवाना हो पड़ा।

'डी०एस०पी०' श्रीफणीन्द्रनाथ मजूमदार का स्वभाव अल्फ्रेड एन्थोनी से मिलता-जुलता था। शैलेन्द्र उसकी नजरों मे पहले गद्दार बंगाली अवश्य था, किन्तु फिर भी वह 'बगाली' था। और अब वह सामान्य बगाली न रह कर मणिपुरियो का नेता बन चुका था। वह मणिपुरियों में प्रथम मार्क्सवादी प्रचारक था। मणिपुरियो का प्रथम मार्क्सवादी गुरु ! भिन्न समाज मे एक बगाली की इस प्रभाव-वृद्धि से वह मन-ही-मन खुश था। अन्य अनेक जात्यभिमानी बगालियो की तरह वह भी मन-ही-मन सोचा करता—"बगाली चाहे जिस क्षेत्र मे भी रहे, श्रेष्ठ बन कर ही रहे ! नेता बन कर ही रहे ! उसे होना

भी ऐसा ही चाहिए! यह हर बंगाली के लिए गर्व का विषय है! सारे बंगाल के लिए गर्व का विषय है!"

सो, जब उसे शैलेन्द्र को कोड़े लगा कर सेल में बन्द कराने का आदेश हुआ, वह मन-ही-मन विचलित हो पड़ा। मणिपुरियों के सामने एक बंगाली की बेइज्जती सारे बगाल की बेइज्जती होगी! बगालियों की बेइज्जती होगी! वह बड़े पसोपेश मे पड़ गया! क्योंकि हुकुम न तामील करने का साफ मतलब नौकरी से हाथ धोना था। रोटी-रोजी गँवानी थी। और यो अपनी शानदार जाति का अपमान करना था। 'भइ गति साँप छछूँदर केरी' वाली समस्या उसके सामने थी।

वह जेल की ओर बढ़ने लगा और अपने मानसिक द्वन्द्व के इन दोनों पहलुओं से लड़ने लगा। फिर एक बात उसे सूझी। वह खुश हुआ। सोचने लगा—"चन्द्रावत को ही कोड़े लगवा कर किसी कौशल से शैलेन्द्र को अवश्य बचा लेना होगा! हाँ, उन दोनों को एक साथ 'सेल' मे बन्द अवश्य कराना होगा! शैलेन्द्र के लिए यही क्या कम सजा होगी? साँप भी मर जाय, और लाठी भी न टूटे! बाद मे समझ लूँगा! 'एस०पी०' को समझा दूँगा! वह प्रेसीडेंट को समझा देगा!"

अब वह उपाय सोचने लगा और झट एक उपाय भी सूझ ही गया—"जेल मे पहले सामूहिक उपद्रव पैदा करा दिया जाय! मणिपुरियों को खूब पिटवा दिया जाय! और उसी धक्कम-धक्के में किसी कौशल से शैलेन्द्र को बचा लिया जाय, अथवा केवल लाठी से पिटवा दिया जाय!" और इस शैतानी योजना के मन में उभरते ही वह खुश हो उठा। अब वह निश्चिन्त हो जेल में सदल-बल प्रविष्ट हुआ। और राजनीतिक कैदियों के 'बैरेक' में जेल-सुपरिटेंडेंट एवं जेलर के साथ पहुँचते ही अपने लाठीबन्द कांस्टेबलों को आदेश दे दिया—"मारो, इन हरामी बदतमीज मणिपुरियों को, जिन्होंने जेलर को पीट कर स्वयं

मणिपुर-महाराजा का अपमान किया है ! मणिपुर-सरकार का अपमान किया है ! नमकहलाली का सबूत दो सिपाहियो !!!"

कांस्टेबल गोर्खे थे। उनके दिल मे मणिपुरियों के लिए दर्द कैसा ? सो, आदेश पाते ही वे भूखे भेडियों की तरह टूट पडे। लाठियो की अन्धाधुन्ध वर्षा होने लगी। शैलेन्द्र झट मोर्चे पर आगे जा बढ़ा। उसके ठीक सिर पर लाठी की एक जबर्दस्त चोट पड़ते ही क्रोध मे मानो पागल हो झट तनिक झुक कर उस लाठी चलाने वाले कास्टेबल के पेडू मे इतने जोर से सिर का धक्का उसने दे मारा कि वह चारो खाने चित्त हो गिर पड़ा। शैलेन्द्र ने उसकी छाती मे खूब जोर से एक एड़ी भी मार कर झट उसके हाथ से लाठी छीन ली। कास्टेबल इस अतर्कित आक्रमण और मर्मस्थान पर अचानक की चोट से झट बेहोश-सा हो चला। चन्द्रावत ने पहले ही एक लाठी पर अधिकार जमा लिया था। शैलेन्द्र की देखा-देखी दूसरे साथियो ने भी लाठियों पर अधिकार जमाने की कोशिश की। कुछ सफल हुए कुछ असफल। दोनो ओर से अन्धाधुन्ध लाठियाँ चलने लगीं। क्रोध का उन्मत्त नशा दोनों पक्षो पर सवार हो चला। दोनों पक्ष के लोग घायल हो-हो कर गिरने लगे। फिर उठ-उठ कर लडने लगे।

'डी० एस० पी०' कुछ देर इस नाटक का दृश्य देखता रहा। परिस्थिति को काबू से बाहर जाते देख अब उसने एकाएक हवा मे फायर किया। उसने अपनी पिस्तौल तान ली, और साथ ही उसके कई दूसरे कांस्टेबलो की बन्दूकें भी तन उठीं। उसने खूब कड़कते स्वर मे बन्दियो को चुनौती दी—"सीधी तरह हथियार डाल दो हरामियो !!! नहीं तो हम एक-एक को गोलियो से भून देंगे !!!"

प० कृष्णमाधवजी ने देखा कि अब अनर्थ होने ही वाला है। वे नहीं चाहते थे कि गोलियों से उनके सारे साथी भून डाले जायँ। और न वे कैदियों की ओर से इस लाठी-युद्ध के पक्ष में थे। उन्होने

गाँधीवादी तरीके से ही चुपचाप मार खा ली थी। वे अपने खून से लथपथ माथे को लिये हुए ही झट शैलेन्द्र और चन्द्रावत के आगे बढ़ कर एक सुदृढ़ नेता की भाँति दाँये हाथ की तर्जनी तान कर कठोर स्वर मे आदेश देते हुए बोले—"अपने नेता का आदेश मान कर लाठियाँ चलाना बन्द करो साथियो !!! बन्द करो !!!"

आदेश का असर हुआ। अपने नेता के कठोर आदेश को सुनते ही यत्र-चालित पुतली की भाँति वे अचानक लाठियाँ चलाना छोड़ चुपचाप खड़े हो गये। अनुशासन का आदर करना वे जानते थे। और अपने नेता का भी। यद्यपि पुलिस की ओर से विना चेतावनी के लाठियो की उस अन्धाधुन्ध वर्षा के समय शायद वे अपने को भूल चले थे, अथवा नेता का स्पष्ट आदेश उन्हे मिला न था। 'डी० एस० पी०' ने भी अपने सिपाहियो को रुक जाने का आदेश दिया। कुछ क्षणो मे ही दोनों पक्षो की उग्रता अनुशासन की जजीर से खीची जा कर मानो खूब तेज रफ्तार से दौड़ती 'तूफान-मेल' की तरह एकाएक रुक गई।

अब कृष्णमाधवजी एकाएक आगे बढ़ कर 'डी० एस० पी०' से बोले—"आप चाहते क्या हैं, साफ शब्दों मे बताइए? जेल की दीवारो के अन्दर बन्द हम निहत्थे कैदियों के लिए इतनी तैयारी की जरूरत तो न थी 'डी० एस० पी०' साहब? और न इतने क्रोध और उग्रता की?"

किसी समय पंडितजी महाराजा के प्रियपात्र और सम्मान्य रह चुके थे, यह 'डी० एस० पी०' को भी मालूम था। उनका रोब अब भी बिलकुल खत्म हुआ न था। बल्कि कुछ बढ़ ही चला था। अतः 'डी० एस० पी०' को साहस न हुआ रोब जताने अथवा अपमानपूर्ण शब्दों में उन्हें जवाब देने का।

कुछ क्षण के लिए अपना सारा रोब एकाएक भूल कर वह

बोला—"हम तो हुक्म के गुलाम हैं पडितजी ! जैसा हुक्म हुआ उसे तामील करने-कराने मै चल पड़ा ! लेकिन आप अपने साथियों को समझा दीजिए कि जेल के अनुशासन को वे भग न करें, ताकि सरकार को भी किसी तैयारी की जरूरत न पड़े ! आपके दो उद्दंड साथियों ने अभी कुछ देर पहले 'सेल' मे बन्द किये जाने के सरकारी आदेश का अपमान किया है ! मिल कर जेलर को पीट कर स्वय मणिपुर-सरकार का घोर अपमान किया है ! क्या कोई भी सरकार ऐसी हरकतो को बर्दाश्त कर सकती है ? मै अभी दुबारा हुक्म ले कर आया हूँ आपके उन दो खतरनाक साथियो को 'सेल' मे बन्द करने और बेड़ियाँ लगवाने के लिए ! चन्द्रावत सिंहजी स्वय मजिस्ट्रेट रह चुके होने के नाते कानून को खूब समझते होगे ! अतः उन्हें चुपचाप अपने-आपको 'सेल' और बेड़ी के हवाले कर देना चाहिए ! इसमे उन्हें कोई आपत्ति न होनी चाहिए !" और फिर एकाएक मुसकाते हुए—"और शैलेन बाबू तो स्वय महान् विद्वान् ठहरे ! उन्हें समझाने का साहस मै कैसे करूँ ? उन्हें भी चाहिए कि चुपचाप 'सेल' और बेड़ी के हवाले अपने-आपको कर दे ताकि फिर हमारी इस तैयारी को अपना रोब दिखाने का मौका ही न मिले !"

"तो यही बात आप आते ही कह दिये होते ?"—पडितजी ने प्रश्न किया—"फिर व्यर्थ मे इतना खून बहाने की जरूरत तो आपको न पडती ? और कुछ देर पहले आपके जेलर-महोदय को गन्दी गालियों से अपना मुँह कलकित करने के बजाय इनसानी लहजे मे सीधे राजाज्ञा को सुना देना चाहिए था ! फिर जो कुछ अभी, और तब घटित हुआ उसके घटित होने की नौबत ही न आती ?"

'डी० एस० पी०' ने जरा लज्जित स्वर में जवाब दिया—"जो हो गया, सो हो गया ! अब आगे की सुध लीजिए !"

फिर कृष्णमाधवजी क्षण भर सोच कर शैलेन्द्र और चन्द्रावत से

गंभीर, पर भावना-भरे स्वर में बोले—"मणिपुर की जनता के सौभाग्य को मैं गोलियों के हवाले नहीं करना चाहता! शैलेन्द्र और चन्द्रावत जैसे नर-रत्न बार-बार इस झूठे संसार में उत्पन्न नहीं होते! और यदि कुछ दिनों के लिए मणिपुर के ये सौभाग्य बेड़ियों और 'सेल' के हवाले हो ही गये, तो मै इसे मणिपुरी जनता की पराजय नहीं मानता! हमारे हाथ भले ही हथकड़ियों से जकड़ दिये जायँ; हमारे पैर भले ही बेड़ियों से बाँध दिये जायँ, हमारे शरीर भले ही 'सेल' में बन्द हो जायँ, पर हमारी आत्मा कभी बँध नही सकती! बँध नही सकती!! वह हमेशा जनता के साथ रहेगी! हमेशा अजेय बनी रहेगी! और तब जनता के हृदय के और भी निकट पहुँच कर हम उसे और भी अजेयता के अनुपम साहस और सकल्प से भर सकेंगे!"

फिर एकाएक गद्गद स्वर मे उन दोनों को सम्बोधित करते हुए बोले वे—"हमारे सौभाग्य! हमारे वीर साथी! अपने साथी नेता का आदेश मानते हुए जाओ, अपनी इच्छा से अपने-आप को हथकड़ियों के हवाले कर दो! 'सेल' मे बन्द हो जाओ!"—कहते हुए सहसा अपनी भर-आई आँखें उन्होंने उन दोनों पर टिका दीं।

वे दोनों भी अनुशासित सैनिक की भाँति हथकड़ियों के आगे अपने दोनों हाथ बढ़ाते हुए एक साथ खूब जोर से बोल उठे—"मणिपुर की जनता की जय!!!"

और दूसरे कैदियों ने भी तत्क्षण इस नारे को अपने हृदय के उसी आवेग के साथ दुहरा दिया। और जब वे दोनों, हथकड़ियों से बँधे, 'सेल' की ओर ले जाये जाने लगे, कृष्णमाधवजी अपने हृदयोच्छ्वास पर काबू करते दोनों हाथ उठा कर खूब ज़ोर से बोले—"साथी शैलेन्द्र की जय!!! साथी चन्द्रावत की जय!!!"।

और पुनः सबने हाथ उठा कर आकाश को कँपाते और गुँजाते हुए खूब जोर से दुहराया—

"साथी शैलेन्द्र की जय !!!"
"साथी चन्द्रावत की जय !!!"
"मणिपुरी जनता की जय !!!!"

(४०)

इम्फाल नगर के बीच में 'इम्फाल' नदी की सहायक 'नम्बुल' नदी के बॉये किनारे पर नागाओं की एक बस्ती है और बस्ती की दूसरी बगल मे एक गन्दा पोखरा। नदी तो अपनी सारी गन्दगी को लिये मील-डेढ़ मील आगे अपनी बड़ी बहन 'इम्फाल नदी' मे जा मिलती है, लेकिन पोखरा अपनी सारी अस्वच्छता उदर मे छिपाये वहीं जड़वत् जमा हुआ था। हर घर के पास सुअरो के 'खोभाड़' थे। और उन खोभाड़ो में बन्द या नजरबन्द सुअरो की 'चो-चों' और 'कों-को' की आवाज से रह-रह कर वह बस्ती मुखरित हो रही थी। कुत्ते भी जब-तब भौक रहे थे। पर रात का समय होने के कारण मुर्गों की 'कुकड़ू-कूँ' और बच्चो-सहित मुर्गियों की चहल-पहल बन्द थी। किन्तु नागा स्त्री-पुरुषों की चहल-पहल में खूब मस्ती आ गई थी। उनकी उल्लास-भरी आवाज बस्ती की सीमा को चीरती हुई दूर-दूर तक पहुँच रही थी। और नगाड़ों की 'डिमडिम' की आवाज और सामूहिक लय-ताल पर रह-रह कर धरती पर बजारते हुए भालों की मूठों के सम्मिलित स्वर, पुरुषों की सामूहिक 'हो-ओ-ओ, हो-ओ-ओ' की ध्वनि में मिल कर बस्ती की बगल मे दीवार की तरह खड़ी बॉस की बीटो की कतार से टकरा कर आकाश को गुँजा रहे थे। और इन सबके लय और ताल में मानो बिलकुल खोई हुई एक नागा तरुणी भीड़ के ठीक बीच मे नाच रही थी। उसके चमकीले गेहुँए रग के चेहरे पर तरुणाई की बड़ी आकर्षक अरुणाई थी। और सुघटित शरीर का सौदर्य नृत्य-भगिमा में मिल कर खूब, खूब खिल रहा था! नेत्रो की बादामी दीवारो से मानो घिरी उसकी

काली-काली पुतलियाँ इस क्षण और भी चंचल बन चली थीं। कमर से नीचे काली लुंगी और बदन में काली चोली थी। और उस चोली के ऊपर, उभरे वक्षोजों पर बँधी कामदार पट्टी में उसका सौंदर्य और भी लुभावना बन चला था। और सिर पर काले-काले बालों की लटें नृत्य-भंगिमा से सजीव बन कर कुछ तेजी से यों लहरा रही थीं जैसे गुलाब के फूल पर भौरों के झुंड नाच रहे हों। पर कपाल के ऊपरी किनारे के बाल तराशे होने के कारण अलकों की लहराती काली लटें जैसे चाह कर भी उसके मुख-सौन्दर्य का स्पर्श नही कर पा रही थी।

एक नागा पुरुष 'पेट्रोमेक्स' की रोशनी को नर्तकी के मुँह के सामने किये तनिक दूर खड़ा था। और उस तेज प्रकाश के प्रतिबिम्ब में तरुणी के मुख का प्रकाश जैसे और भी तीव्र बन चला था। मुख के उस तीव्र प्रकाश मे मानो मदिरा का माधुर्य और रंग भर दिया गया हो! तारुण्य एवं नृत्य के नशे से मिल कर जैसे मदिरा का नशा उस पर खेल रहा हो! मचल रहा हो!

दर्शकों की आँखे उस नर्तकी के मुँह पर जमी हुई थीं। उसके नृत्य की विविध भंगियों मे विकसित होते मुख-सौन्दर्य में बिलकुल जैसे खोई हुई! शराब का सामूहिक नशा मानो नृत्य के रसास्वाद के उनके नशे को और भी मधुर और तीव्र बना रहा था। और जब बाजे और 'हो-ओ-ओ, हो-ओ-ओ' की सामूहिक आवाज की चरमता से मिल-कर युगपत् नर्तकी का नृत्य भी 'चरमता' मे प्रविष्ट हो दोनों पैरों को समान लय-ताल पर आगे-पीछे नचाने लग जाता तो चरम कला भी जैसे स्वयं साकार हो जाती! मानो युगपत् दर्शकों के दिलों को बिजली की भाँति छू कर उछाल देती!

दर्शकों में कुछ मणिपुरी 'हिन्दू' भी थे, जो अछूत नागाओं के शरीर-संपर्क के भय से जरा दूर-दूर खड़े थे। शराब की तीखी-तीखी दुर्गन्ध उन्हें नाक पर कपड़ा रखा चुकी थी। लेकिन हृदय उनका ढका न था। जैसे

वह खुलकर नृत्य के रस-बोध से उल्लसित हो चला था। नृत्य के चरम रस का अन्तिम फुहारा छोड़ जब वह नर्तकी झट-घर के भीतर जा घुसी तो जैसे उनके दिलो को भी वह कैद करके लेती गई! लेकिन तत्काल दूसरा दृश्य भी प्रकट हो पड़ा। और इस नये दृश्य ने उन दिलों को जैसे झट अपनी ओर खीच लिया। प्रथम नर्तकी के घर के भीतर प्रविष्ट होते ही उसी घर के अन्दर से सजी-धजी चार तरुणियाँ भीड़ के ठीक बीच मे आ कर उसी लय से, उसी भाव-भंगी से नाचने लगीं। अब नृत्य यद्यपि सामूहिक था, पर तरीका समान। कुछ देर नगाड़े की लय-बद्ध चोटो और 'हो-हो' के सबल समवेत स्वरो मे मिल कर नाचती रहने के बाद उसी प्रकार रस की चरमता का सामूहिक फुहारा छोड़ वे भी घर मे प्रविष्ट हो गईं। और नागा पुरुष भालो की मूठ को धरती पर एक ताल से बजारते और 'हो-हो' करते हुए बगल के एक दूसरे घर मे प्रविष्ट हो गये। कुछ देर अन्दर भी 'हो-हो' का रंग जमा रहा। फिर उस घर मे एकाएक शान्ति यों छा गई ज्यो चीखते-चिल्लाते बच्चे मनचाही वस्तु को पाते ही शान्त हो जाते हैं।

घर के भीतर अब भोज-भात का रग जम गया। स्त्री-पुरुष मिल कर जीमने बैठे। रसोई के बरतनो के अतिरिक्त पालिशदार टीन और एलुमिनियम के बरतन भी थे। मिट्टी की कड़ाहियों में अलग-अलग पक्के सुअर, कुत्ते और मुर्गी के मांस अपनी भीनी-भीनी गन्ध से उनकी रसना को गीला किये जा रहे थे। माछ भी बना था। एक बड़ी हॉडी मे रखी 'जुखा'[1] की नशीली गन्ध उन्हें अपनी ओर खीच रही थी। 'कुबलोय' नामक तरुणी भात परोस रही थी, 'चिडनू' मांस और 'नेमनू' काठ के गिलासो मे 'जुखा' भर-भर कर सबके आगे रखती जा रही थी।

खान और पान का सिलसिला चालू हो चला। 'यिमकोड' ने

---

१. चावल की शराब।

अपना शराब का गिलास 'नेमनू' के ओठों से भिड़ा दिया। नेमनू जरा नखरे करती बोली—"धत्! तेरे हाथ से मैं नहीं पीती! क्या मेरे गिलास में जुखा नहीं?"—कह कर जरा जोर से हँसी भी। और अपने गिलास से धीरे-धीरे वह शराब पीने लगी।

और 'मेवा' ने व्यगभरे स्वर मे शह दी—"मै जानता हूँ तुम दोनों की लीला नेमनू! छिप-छिप कर आँखें भी लड़ाती है! और दूसरों के सामने ये नखरे भी!"

नेमनू इस व्यंग से तनिक झेंप चली। चेहरे पर कौमार्य-सुलभ सकोच की लाली दौड़ चली। फिर एकाएक खिलखिला कर शराब के साथ कुत्ते की एक बोटी मुँह मे डालते हुए उसने भी व्यग कसा—"तू भी तो मेवा, कुबलोय से आँखें लड़ाता है! मगर देख, कुबलोय तुझसे आज रूठ के दूर बैठी है!"

कुबलोय शराब से तनिक लाल हुई आँखों से नेमनू को घूर कर बोली—"तू झूठ क्यों बोलती है नेमना? तेरे तो जाने कितने हैं—तेखा, लामे, मेवा! इन सब पर तू छिप-छिप कर जादू चलाया करती है! तेरा तो ठिकाना ही कोई नहीं!"

इस आक्षेप और व्यंग से नेमनू तिलमिला उठी। आँखें लाल करके वह कुछ जवाब देने जा ही रही थी कि बुजुर्ग 'हेइबा' ने उसे रोक दिया—"वर्ष भर का त्योहार है छोकरियो! झगड़ने का नहीं, आज तो खाने, पीने, नाचने और खुशी मनाने का दिन है! देख, कुत्ते का मांस आज कितना जायकेदार बना है!"—कह कर शराब की घूँट के साथ एक बोटी अपने मुँह मे डाल उन्हें उत्साहित और प्रसन्न करते हुए उसने फिर कहा—"आज तुम सबका नाच खूब, खूब जमा! कुबलोय भी आज खूब अच्छा नाची, नेमनू और चिडनू भी! 'मनजो' का नाच भी कमाल का रहा!"—कह कर मानो एकाएक खुशी के आवेश में आ कर उसने फिर सबको प्रोत्साहित

किया—"हुर्रर्र !! लो, खाती जाओ खूब ! पीती जाओ खूब ! सुअर का मांस, मुर्गी का मांस, कुत्ते का मांस ! और तिसपर जुखा की मीठी-मीठी गन्ध ! मीठी-मीठी घूँट ! किसी अभागे हिन्दू को नसीब होता है ऐसा जायकेदार खाना ! हिन्दू भी कोई जात है भला ! छी !"—कह कर उसने थूक का एक लौंदा बगल मे ही फेंक दिया। मानो घृणा के आवेग मे ही सारी चीजें वह गपागप खाने लगा, और दूसरों को भी बार-बार प्रोत्साहित करने लगा।

अब नवतरुण 'रिसाङ' मुर्गी की बोटी के साथ 'जुखा' की घूँट पी कर बोला—"हेइबा चाचा ! पादरी साहेब हमको बोला—'चल बेटा ! पढ़ हमारे इस्कूल में ! पढ़ कर बड़ा बनेगा ! और तब हिन्दू लोग तुमको अछूत नहीं बनाने सकेगा ! तुमसे हाथ मिलायेगा !"

हेइबा ने घृणा से भौंहें सिकोड़ कर मना करते हुए कहा—"ना बेटा, ना ! पादरी साहेब बड़ा चालाक है ! तुम्हारा नाम बदल देगा ! पहिनावा बदल देगा ! और अपने देवता के आगे रोज-रोज फतेआ पढ़ा कर तुमको 'नागा' न रहने देगा ! ना बेटा, ना !"—कहते हुए उसने कई बार अपने निषेधपूर्ण हाथ हिला दिये।

यिमकोङ भी अब बोला—"पादरी साहेब हमको भी बोला रहा चाचा, कि मणिपुर के असली राजा तो नागा है, हिन्दू नहीं ! सो कहने लगा—'पढ़-लिख कर बड़ा बनो, और अपना राज फिर दखल करो !' "

हेइबा ने फिर अरुचि जाहिर की—"झूठ बोलता है साला ! अगर हम नागा ही नही रहे तो राज ले कर क्या करेंगे ? कई नागा लड़का लोग को पढ़ा-पढ़ा कर उनका नाम बदल दिया ! मै गया एक बार 'चूड़ा चाँदपुर' ! देखा कि वहाँ के पाइते म्हार लड़का लोग का पुराना नाम बदल-बदल कर आरथर, नेलसन, डेवी, फेवी जाने क्या-क्या नाम रख दिया है बेईमान ने ! और सबको अपना कपड़ा पहना कर साहेब भी

बना दिया है ! ना बेटा, ना ! हम तुम लोग को साहेब नहीं बनने देगा ! हमारा अपना नाम क्या खराप है ? हमारा अपना जात क्या खराप है ? हमारा अपना लिवास क्या खराप है ?"

लड़के चुप हो गये। और तब मेवा ने कहा—"चाचा ! जानते हो न, जेहल मे हिन्दू लोग को राजा ने कैद कर दिया है ! उनमें दो ठो बाबू बड़ा अच्छा आदमी है ! हमको और तेखा को बड़ा प्यार करता है ! बोलता है—'मेवा, हम तुम्हारा साथी है ! तुम्हारा भाई है ! हम मणिपुर को किसी दिन ऐसा बना देगा कि तुम लोग अछूत रह नहीं जायेगा ! तुमको यह भंगी का काम नहीं करना पड़ेगा !' जेहल के दूसरे हिन्दू लोग की तरह वो दोनों ठो बाबू हमसे छुआछूत नहीं रखता ! बड़ा अच्छा आदमी है ! मगर राजा के सिपाही ने दोनो को पीट-पीट कर हथकड़ी लगा के सेहल में बन्द कर दिया है !"

हेइबा ने मांस के शोरबे के साथ भात का कौर मुँह मे डाल कर चबाते हुए कहा—"अच्छा बनना बड़ा खराप काम है मेवा ! खराप बनो, खराप काम करो, सब तुमसे खूब डरेगा ! बाबू को कह देना मेवा, वह अच्छा न बने !"—कह कर उसने शराब का गिलास खाली कर दिया।

इतने में उस कमरे मे एक नये नागा-युवक का प्रवेश हुआ। देखते ही मेवा खुशी से खिल कर बोल उठा—"आ जा तेखा, तू भी आ जा ! शामिल हो जा !"—कह कर उसने उसके लिए झट अपनी बगल में जगह खाली कर दी।

तेखा के बैठ जाने पर वह फिर बोला—"तेखा, तू तो अभी जेहल से आ रहा है न ? बता, बाबू कैसा है ? उसके बदन का घाव अब कैसा है ? अच्छा तेखा, बता तो दे इन सबको—वो दोनों ठो बाबू खूब अच्छा है न ? हम दोनों को खूब प्यार करता है न ?"

"खूब ! खूब अच्छा ! खूब प्यार करता है !"—कह कर तेखा मेवा

की थाली में से झटपट भात-मांस का कौर हाथ में ले कर आगे बोला— "मगर हम ज्यादा देर नहीं रुकेगा मेवा! जल्दी-जल्दी खा कर तू भी चल! तू अपने घर चल! एक बड़ा जरूरी काम है तेरे से!"—कह कर वह स्वयं जल्दी-जल्दी खाने लगा।

पानी की जगह शराब के दो गिलास खतम कर वह मेवा को साथ लिये उसके घर आ गया। चुपके-चुपके उससे बोला—"उस दोनों ठो बाबू के पास आज दो ठो 'रोती' यो चुपके से रख दिया है मेवा, कि साला कोई को भी मालूम नहीं पड़ सकेंगा! रेती से खराद-खराद कर दोनो ठो बाबू पैर की बेड़ी काट लेगा, सिकल भी! आज बाबू जरूर से भाग निकलेंगा मेवा! बाबू का दो ठो साथी उधर का दीवार फॉद कर 'सेहल' के भीतर पहुँच कर चुपके से ताला तोड़ देंगा! और हम दोनो लोग जेहल के बाहर से भीतर रस्सा फेकेंगा!"—फिर एकाएक बीच की अंगुली को अँगूठे से चटकाते हुए—"फिर तो बाबू को यो निकाल देगा कि साला जेलर-सुपरडंड का बाप भी पता नही पाने सकेगा! चल-चल, मेवा! रात खूब अँधेरा है! बरखा भी गिरने लगा है! चल! बाबू हमारा भाई है! अपना आदमी! चल, जेहल से निकल कर वो दोनों ठो जरूर से गरीबो का वास्ते काम करेगा! चल, जल्दी कर! तूने 'जुखा' तो नहीं पिया ज्यादा रे?"

"नहीं रे! बहुत कम! बाबू को निकालने का बात हमको नही भूला था!"

जंगली जाति के सरल हृदयो को जीतना भी आसान और नाराज करना भी। विना सरलता के प्रगाढ़ निष्ठा पैदा नही होती। शैलेन्द्र और चन्द्रवत ने अपने सरल निश्छल व्यवहार से उन सरल हृदयों को जीत लिया था। जेल के वे दोनों भंगी अपने भावी नेता व परम स्नेही बन्धुओं को जेल से निकालने की खातिर अपनी जान पर खेलने को तैयार हो झट चल पड़े।

शैलेन्द्र और चन्द्रावत को 'सेल' में पाँच दिन से अधिक हुए न थे। तरह-तरह की यातनाएँ उन्हें दी जाने लगी थीं। लेकिन वे जल्द-से-जल्द जेल से निकल भागने को दृढ़-सकल्प हो चले। बहुत पहले से ही वे दोनों तरुण नागा भगी उनके अपने बन चले थे। दूसरे वार्ड के अपने साथी बन्दियों से उनके संपर्क का वे माध्यम भी बन चले। चन्द्रावत और शैलेन्द्र के दो विश्वस्त साथी और अनुयायी—रणधीर और तोम्पोक—योजनानुसार वार्ड और सेल के बीच की अपेक्षाकृत कम ऊँची दीवार को फाँदने का गुप्त अभ्यास करने लग पड़े थे। दोनों बड़े साहसी थे, बड़े कुशल! अतः बहुत जल्द अभ्यस्त हो चले। और कृष्णमाधवजी के आदेशानुसार रणधीर और तोम्पोक को अपना काम कर के जल्द-से-जल्द दीवार लाँघ फिर वापस अपने वार्ड में आ जाना चाहिए ताकि व्यर्थ मे उस वार्ड के बन्दी भी अन्ततः 'सेल' मे बन्द न कर दिये जायँ। कृष्णमाधवजी अन्ततः इस बात से सहमत हो चुके थे कि शैलेन्द्र और चन्द्रावत जेल से बाहर निकल कर अकाल-जन्य परिस्थिति की पृष्ठभूमि पर सघर्ष को संघटित और उत्तेजित करें। छिपे-छिपे मुक्तावती के सघर्ष को सबल बनायें।

निर्णायक घड़ी आ पहुँची। सयोगवश वर्षा की झड़ी भी शुरू हो चली। सेल-वार्ड के सन्तरी की आँखों पर जैसे वर्षा के कुहासे ने पट्टी बाँध दी। और पूर्व-योजनानुसार उन दो भंगी नागाओं ने भी उस वार्ड में बाहर से ही सकेत-चिह्न फेंक कर अपनी उपस्थिति और सतर्कता की सूचना दे दी। हाथ में रेती थामे तोम्पोक और रणधीर झट तैयार हो पड़े। और उनके वे दूसरे साथी भी जिनके कन्धों की सीढ़ियों से उन्हें दीवार फाँदनी थी। कोई विघ्न-बाधा नहीं हुई। बात-की-बात में दीवार फाँद वे सेल के वार्ड में जा पहुँचे। शैलेन्द्र और चन्द्रावत रेतियों के सहारे अपनी बेड़ियाँ काट चुके थे। अब अपने-अपने कमरों के तालों और साँकलों पर अन्दर से ही

रेतियो का इस्तेमाल कर रहे थे। रणधीर और तोम्पोक ने झट पहुँच कर ताले तोड़ डाले। चन्द्रावत और शैलेन्द्र ने झट बाहर निकल कर पारी-पारी से उन दोनो को छाती से लगाया। उन दो नागाओ द्वारा फेंकी और थामी हुई रस्सी दीवार से झूल रही थी। बाहर से भी तैयारी की संकेतात्मक आवाज आई। रणधीर और तोम्पोक ने भीतर से रस्सी थामी। बात-की-बात मे वे दोनों जेल की दीवार फॉद कर बाहर निकल गये। रणधीर और तोम्पोक भी अपने वार्ड से फेंकी हुई रस्सी के सहारे झट भीतरी दीवार लॉघ अपने स्थान पर वापस चले गये। और दूसरे दिन सुबह यह खबर बिजली की तरह सारे इम्फाल मे फैल गई कि शैलेन्द्र और चन्द्रावत जेल की दीवार फॉद कर निकल गये! अदृश्य हो गये! यह खबर घर-घर की चर्चा का विषय बन गई। और मणिपुर-सरकार ने झट उनकी गिरफ्तारी का 'वारंट' जारी कर पकडने या पकड़वाने वाले के लिए भारी रकम के पुरस्कार की घोषणा भी कर दी।

(४१)

जिस दिन जेल मे कैदियो पर 'लाठी-चार्ज' होने और चन्द्रावत तथा शैलेन्द्र के सिर फूटने व उनके सेल मे बन्द किये जाने की खबर मुक्ता और तोम्बी के कानों मे पहुँची, दोनो ही मारे क्रोध के अधीर हो उठीं। और मॉ तो बुढ़ापे में भी क्रोध में जैसे पागल हो बोलने लगीं—"ऐं! राक्षस अब मेरे बच्चों के प्राण भी लेने का संकल्प कर चुके हैं! गरीबो को भूख से तड़पा-तड़पा कर मारने से मन नही भरा तो अब मेरे बच्चों को भी मार डालना चाहते हैं! बड़े निर्दयी हैं! महापापी! इनपर अब दया न करनी चाहिये बेटी! चलो! सबको ले कर चलो! जेल का दरवाजा तोड़ कर मेरे बच्चों को छुड़ा ले आओ! मै सबसे आगे-आगे चलूँगी! अपने बच्चों के लिए प्राण दूँगी! मै खुद कुल्हाड़ा

ले कर राजा के घर में घुस कर उस पापी का बध करूँगी ! मैं माँ हूँ, माँ ! अपने बेटों के लिए मैं मरने से नहीं डरती ! शपथ खा कर कहती हूँ !''' चलो न, चलो न बेटी ! तुम लोग देर क्यों कर रही हो ? डर क्यों रही हो ?'' इत्यादि-इत्यादि ।

लेकिन मुक्ता अपने अधीर क्रोध को दबा कर, माँ के दर्दनाक पागलपन पर पसीज कर गद्गद कंठ से समझाते हुए, धैर्य देते हुए बोली—"धीरज धरो इमाँ ! मैं तुम्हारी कोख से पैदा नहीं हुई तो क्या, मगर हूँ तुम्हारी धर्म की पुत्री ! तुमने अपने धर्म से सैकड़ों धर्म की बेटियाँ पैदा कर ली हैं ! सैकड़ो-हजारो धर्म के बेटे पैदा कर लिये हैं ! जिनकी माँ नहीं डरती उस माँ की बेटियाँ भला क्यों कर डरेंगी ? उसके बेटे भला क्यों डरेंगे ? मगर हमारे रहते तुम क्यो प्राण दोगी इमाँ ? तुम वीर-माता हो ! अपनी बेटियो की वीरता और बुद्धि पर विश्वास रखो ! हमारे वचन पर विश्वास रखो ! शपथ खा कर कहती हूँ, यदि बदला लिये बिना रह जाऊँ तो मेरा नाम 'मुक्ता' नहीं! तुम्हारे बेटों को जेल से निकाले बिना रह जाऊँ तो तुम्हारी सच्ची बेटी नहीं ! विश्वास करो इमाँ !"

इतना कह कर वह माँ को अपनी गोद में खींच कर बड़े स्नेह से उनकी पीठ पर हाथ फेरने लगी । और माँ मानो शिशु की तरह उसकी गोद में मुँह छिपा कर रोने लगीं ।

उन्हें इस प्रकार रोते देख तोम्बी भी स्नेह-भरे स्वर में, लेकिन ताना मारते हुए बोली—"तुम वीर बेटे-बेटियों की माँ हो चाची ! तुम्हें इस तरह रोना शोभा तो नहीं देता ! तनिक ख्याल तो करो ! तुम्हारे वीर बेटों ने किस वीरता से लाठियाँ सहीं ! किस प्रकार ईंट का जवाब पत्थर से देते हुए जनता की जय बोल कर अपनी इच्छा से, बिना किसी भय के, 'सेल' में बन्द होना उन्होंने स्वीकार कर लिया ! फिर उनकी माँ हो कर इस तरह रो कर उनकी वीर आत्मा को कलंकित तो न करो चाची !"

और उसके इस ताने के तीर से मानो बिंध कर वे एकाएक मुक्ता की गोद से सिर हटा कर उठ बैठी। 'इनकी' में आँखें पोंछते हुए बोलीं—"तो बता, तू ही बता मै क्या करूँ ? मै तो सपने में भी अपने बेटो के नाम को कलंकित करना नहीं चाहती ! उनके काम को कलंकित करना नहीं चाहती ! तू विश्वास रख, मै कभी अपने बेटों की आत्मा को कलंकित न करूँगी ! नहीं करूँगी !! कभी उनका सिर नीचा नही होने दूँगी ! नही होने दूँगी !! बता तोम्बी ! बता मेरी बेटी ! तू ही बता ! मै क्या करूँ ?"

और तोम्बी अत्यन्त प्रसन्न हो कर स्नेहभरे स्वर मे बोली—"बस ! तुम सचमुच हमारी सच्ची माँ हो चाची ! तुम्हे भला करना क्या है ? करना कुछ नही पड़ेगा ! केवल हृदय से आशीर्वाद दो हमे ! और चुपचाप बैठी देखती रहो कि हम क्या करने जा रही हैं आगे ! महाराजा को हम वो नाच नचायेंगी कि देख लेना तुम ! विश्वास रखो चाची !"

माँ आश्वस्त हो उठी। मन-ही-मन प्रसन्न भी। और जब आज उन दोनो के जेल से निकल भागने की खबर सुन कर माँ पुनः दुखी और चिन्तित हो उठीं, तो तोम्बी ने फिर समझाया उन्हे—"देखो चाची ! व्यर्थ का दुख न करो ! बल्कि खुशी मनाओ कि तुम्हारे वीर बेटो को महाराजा की जेल भी बन्द न रख सकी ! लोहे की मजबूत बेड़ियाँ भी उन वीरो को बाँध न सकीं ! मेरा विश्वास है कि वे जहाँ कही भी रहेगे, वीर बन कर रहेगे ! सच्चे आदमी बन कर रहेगे ! और सच्चे आदमी की रक्षा स्वयं भगवान करता है चाची !"

"तुम्हारे मुँह मे घी-शक्कर बेटी !"—माँ भी आश्वस्त स्वर मे आशीष देते हुए बोलीं—"मैने अब तक जो भी नेम-व्रत किया है, ठाकुर की जो कुछ भी सेवा-अर्चा की है, उस सबके सहारे उन्हें मै आशीष देती हूँ बेटी, कि वे जहाँ कही भी रहें, सच्चे आदमी बन कर

रहें ! वीर बन कर रहें ! हर जगह भगवान उनकी रक्षा करें !"—कहते-कहते सजल नेत्रों से, गद्‍गद कंठ से, आँचल पसार कर राधा-कृष्ण के मन्दिर की ओर मुँह करके वे फिर बोलीं—"मेरे बच्चों को तुम देखना ठाकुर ! उन्हें तुम्हें सौंपती हूँ ठाकुर !"—कह कर वे 'इनफी' की किनारी से आँखें बार-बार पोछने लगीं।

और तोम्बी ने उन्हें पुनः आश्वासन दिया—"तुम्हारे सच्चे मन की यह सच्ची आशीष, और ठाकुर से तुम्हारे सच्चे मन की यह सच्ची प्रार्थना कभी अकारथ न जायगी चाची ! विश्वास रखो !"

माँ को आश्वस्त कर लेने के बाद तोम्बी ने मुक्ता से जिज्ञासाभरे स्वर मे अब पूछा—"सुन चुकी हूँ कि उन दोनो को 'सेल' मे डाला गया था 'मार्क्सवाद' की चर्चा और प्रचार करने के अपराध मे ! तो तुम जानती हो मुक्ता, कि यह मार्क्सवाद क्या चीज है ? मैने तो यह नाम भी कभी नहीं सुना ! तुम ज्यादा पढ़ी-लिखी हो ! यदि जानती हो, बताओ कि इस मार्क्सवाद में बात क्या है कि जिसकी चर्चा से महाराजा इतना चिढ़ गया ! इतना घबरा गया !"

और मुक्ता ने जवाब दिया—"पूरी जानकारी तो मुझे भी नहीं बहन ! मगर नाम जरूर सुन चुकी हूँ ! कुछ-कुछ पढ़ भी चुकी हूँ ! पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित लेखो को जब-तब पढ़ कर केवल इतना भर जानती हूँ कि इस 'वाद' मे संसार के सभी गरीबों के केवल हित का सन्देशा ही नहीं, बल्कि बड़ी स्पष्टता से समझाया भी गया है कि कोई गरीब कैसे बनता है, और अमीर कैसे ? अर्थात् गरीबों द्वारा पैदा की हुई वस्तु पर अनेक छल-छन्दों से कब्जा जमा कर कोई अमीर कैसे बन जाता है, राजा और महाराजा कैसे बन जाता है, सेठ और साहूकार कैसे बन जाता है ? पर संसार के गरीब मजदूर अपनी नासमझी के कारण इस सत्य को समझ नहीं पाते ! अथवा समझ कर भी संघटित नहीं हो पाते ! और संघटित हो कर अमीरों से अपना हक छीनने के

युद्ध में सम्मिलित नहीं हो पाते ! इसी कारण वे गरीब बने रहते हैं, और कुछ दूसरे मुट्ठी भर मक्कार लोग अमीर ! इसीलिए महात्मा मार्क्स ने संसार भर के मैजदूरों को सन्देशा दिया है संगठित हो कर अमीरो के हाथ से पैदावार और हुकूमत के सारे साधनों का छीन लेने के लिए ! सरकार पर अपना अधिकार जमा लेने के लिए ! समझी तोम्बी ?"

तोम्बी एकाएक खुश हो कर बोल उठी—"हाँ बहन ! समझ गई ! अच्छी तरह समझ गई ! तभी तो हरामखोर महाराजा इतना चिढ़ गया इस 'वाद' की चर्चा मात्र से ! यह तो बड़ा अच्छा 'वाद' है मुक्ता !" फिर एकाएक उलहना-भरे स्वर में—"तुमने पहले से बताया क्यों नहीं ?"

"पहले कभी प्रसंग जो नहीं आया ?"

"अच्छी बात के लिए प्रसंग नहीं ढूँढ़ा करते ! अब समझ मे आया कि वे दोनों क्यो इस 'वाद' को पसन्द करते हैं ! और क्यों इसमे विश्वास रखते हैं ! मेरा तो विश्वास है बहन, कि वे दोनों कभी किसी बुरी बात मे विश्वास कर ही नही सकते ! कभी किसी बुरे मार्ग पर चल ही नहीं सकते !"

"इतना अन्ध-विश्वास ! इतनी दृढ़ निष्ठा !"—मुक्ता ने मुसकाते हुए जैसे व्यग किया ।

और तोम्बी ने मुसकाते हुए जवाब दिया—"विना दृढ़ निष्ठा के मनुष्य नाव पर बैठा हुआ भी विना पतवार का होता है भाभी ! और सच्ची दृढ़ निष्ठा से अन्धविश्वास का उत्पन्न होना न असंभव है, न अस्वाभाविक !"

मुक्ता ने मुसकाते हुए भौंहों पर बल दे तर्जनी तान कर कहा—"फिर 'भाभी' कहा तो ! तो मैं भी तुझे 'तोम्बी भाभी' कहा करूँगी ! याद रख !"

और जवाब में तोम्बी झट मुक्ता की गरदन से लिपट कर उसके ओठों को चूम कर मुसकाते हुए बोली—"मेरी अच्छी भाभी !"

और मुक्ता भी उसके ओठों का चुम्बन ले कर बोली—"मेरी तोम्बी भाभी ! मेरी वीर भाभी !"

मुक्ता की गरदन से लिपटे हुए ही उसके कन्धे पर सिर रख कर तोम्बी भावना-विह्वल स्वर में बोली—"तुम जन्म-जन्म की बहन हो मेरी ! जन्म-जन्म की होने वाली भाभी ! जिस प्रकार वे दोनों केवल देह से दो हैं, मगर आत्मा से एक, प्राण से एक, उसी प्रकार हम भी एक हैं न बहन ? मैं झूठ तो नहीं कहती भाभी ?"

और जवाब मे मुक्ता उसे छाती से कस कर सहसा-उठे उच्छ्वासों पर काबू पाने का प्रयत्न करती गद्गद कठ से बोली—"मेरी तोम्बी कभी झूठ बोल भी सकेगी ?"

वह आगे बोल न सकी। तोम्बी को मानो पूरी तरह आत्मसात् करने के प्रयास में उसे और भी छाती से कसे कुछ क्षण अपने-आप मे वह खोई रही। भावना-विह्वल नेत्रों को मूँदे रही।

इतने में थम्बाल, रंजना, चन्द्रा, रुक्मिणी आदि अनेक सखियाँ वहाँ आ धमकीं। पर वे दोनो मानो पूरे मनोयोग से एक-दूसरे को पीती हुई अब भी बेखबर रहीं।

थम्बाल क्षणभर ठिठक कर ठोडी से तर्जनी भिड़ा व्यग और आश्चर्य से आँखें फैला कर बोली—"अरी, यहाँ तो इन दोनों की प्रेम-लीला चल रही है भाई ! और हम हैं कि दूसरी ही लीला में परेशान हैं !"—इतना कह कर वह एकाएक हँस भी पड़ी।

दूसरी सखियाँ भी हँसीं। और इस सामूहिक हँसी से वे दोनों सहसा चौंक कर अलग हो गईं।

तोम्बी झट सम्हल गई। थम्बाल की ओर झट बढ़ कर मुसकाते हुए बोली—"आज हमारे नेता का यह हुक्म हुआ है थम्बा, कि हम

सभी साथी सखियाँ आपस में ही प्रेम-लीला किया करें ! क्योंकि दुष्टों ने हमारे पुरुष साथियों को हमसे अलग जेल मे बन्द कर रखा है !"—कह कर उसने झट थम्बाल को छाती से कस कर उसका मुँह चूम लिया।

और थम्बाल उससे अपने को छुड़ाते हुए व्यंग और विनोद से भरे स्वर मे बोली—"हट ! छोड़ दुष्टा ! तुम्हारी पकड़ बड़ी मजबूत होती है ! इतने जोर से कस दिया कि हड्डी-हड्डी कड़क उठी !"

और तोम्बी थम्बाल से अलग हो पारी-पारी से सबके गले मिली। सबके ओठ चूमे। मानो इस प्रेम-प्रदर्शन की आड़ मे कुछ क्षण पहले की अपनी अप्रतिभ स्थिति को उसने ढक दिया। यों उनसे कई दिन बाद के इस आकस्मिक सम्मिलन में प्रेम-प्रदर्शन का उचित अवसर भी था।

और चन्द्रा ने मुसकाते हुए व्यंग किया—"तू तो तोम्बी, अब हम सबका पति बन गई ! तो अब से हम तुझे 'पतिदेव' कहा करेंगी ! क्यों ?"

सभी सखियाँ फिर हँस पड़ीं।

"कह लेना !"—तोम्बी ने सहमत हो झट आगे की बात चलाई—"अच्छा, बताओ बहनो ! कहाँ-कहाँ की खाक छान डाली तुम लोगों ने ? किस-किस गाँव मे क्या-क्या कर आईं ? कहाँ की माताएँ, बहने किस हद तक हमारा साथ देंगी ? बताओ ! जल्दी बताओ !"

लेकिन थम्बाल मुसकाते हुए भौहें चमका कर बोली—"तू तो जैसे महाराजा का सुपरडेंट पुलिस ही बन गई तोम्बी !"

और तोम्बी ने झट मुक्ता की ओर अंगुली का इशारा करके कहा—"वो देखो ! हमारी महारानी साहेब को ! मैं उन्ही की सुपरडेंट पुलिस हूँ !"

सभी तरुणियाँ फिर खिलखिला पड़ीं। और थम्बाल ने एकाएक गभीर हो कर पूछा—"अच्छा, पहले तू बता कि तुम लोगों ने इम्फाल

का मोर्चा दुरुस्त कर लिया ?"

"यहाँ तो सब ठीक है ! केवल शंख-ध्वनि की देर है अब ! अपने मोर्चे का हाल बता !"—तोम्बी ने विश्वासभरे स्वर में जवाब दे कर उत्सुकता से फिर पूछा ।

"हमारे मोर्चे का हाल भी बिलकुल ठीक है ! निश्चिन्त रहो ! और शंख-ध्वनि भी फूँकी जा चुकी है, कल ही कूच कर देने के लिए ! अपने अनेक पुरुष साथी गाँव-गाँव मे फैल गये हैं ! कल गाँव-गाँव से जुलूस को हाँकते हुए यहाँ ठीक समय पर पहुँच जायेंगे !"

इतने में माँ कमरे में आ पहुँचीं । सबने अत्यन्त प्रेम से माँ का अभिवादन किया । और माँ ने अपने स्वर और आँखों मे मानो सारा हृदय उँडेल कर उन्हें 'मंगल ओयु ! मगल ओयु !'—कह कर आशीर्वाद दिया । फिर सबको सबोधित करते हुए बोली वे—"मै भात-दाल का अदहन चढ़ा चुकी हूँ बेटियो ! तुम लोग झटपट नहा-धो कर तैयार हो जाओ ! मारे भूख के तुम सबका मुँह सूखा हुआ है ! रास्ते की थकी हुई भी हो !"

"हाय री हमारी इमाँ !"—थम्बाल मुसकाते हुए स्नेहसने स्वर में बोली—"माँ की चिन्ता सबसे पहले अपनी बेटियों का पेट भरने की ! हम तो रास्ते में ही पेट भरने को तैयार थीं, मगर रुक्मिणी ने नहीं माना ! बोली—'आज चाची के हाथ का भात खायेंगे ! बहुत दिन हो गये उनके हाथ का खाये !' और हमारी चाची पहले से ही बैठी हैं भूखी बेटियों के इन्तजार में !"

और माँ स्नेहसने फटकार के स्वर में बोलीं—"बात बनाना छोड़ कर जाओ तुम लोग जल्दी नहाने-धोने ! भात खाने के बाद तुम लोगों की मीठी-मीठी बातें सुनूँगी ! बहुत दिनों से मेरे भी कान प्यासे हैं !" फिर एकाएक मुक्ता और तोम्बी को आदेश देते हुए—"इन्हें पोखर में ले जाओ ! नहला ले आओ !"

और तोम्बी झट सिपाही के लहजे में खड़ी हो तर्जनी हिलाती सबसे बोली—"चलती चलो ! हुकुम हो गया ! नहीं तो मैं डंडे से खबर लूँगी तुम सबो की ! लाठी-चार्ज कराऊँगी ! गोलियाँ चलवाऊँगी !"

माँ मुँह पर कपड़ा रख कर हँस पड़ीं। बोलीं—"बड़ी बतकट और नटखट है यह लड़की तोम्बी ! अच्छा जाओ ! लड़ती-झगड़ती नहा-धो कर जल्दी आ जाओ ! मैं जाती हूँ तरकारी भी चढ़ा देने !"—कह कर माँ पुनः रसोई-घर में जा बढ़ी। आदेश पा कर वे सब पोखरे की ओर चल पड़ीं।

मणिपुर की इन गिनी-चुनी कन्याओं का जीवन अब भी गृहस्थ-धर्म मे प्रविष्ट न हो सका था, यद्यपि अब उम्र उनकी यौवन के अन्तिम छोर को छूना चाह रही थी। सघर्ष के आदर्शवादी नशे मे जैसे जीवन के यौन पक्ष को वे भूल चली थीं। किन्तु जब-तब आपस के इन सरस परिहासों में वह दमित पक्ष भी उभर ही आता। सघर्ष के बन्दी पुरुष सैनिको मे भी कई अब तक क्वॉरे थे। और जब कभी यौन-जीवन की दमित आकांक्षाएँ इन चिर-कुमारियो के मन मे उभर आतीं तब जेल में बन्द वे चिर-कुमार उन्हें याद आ जाते। मुक्ता और तोम्बी की ही तरह इस क्षेत्र मे उनके मानसिक सम्बन्ध भी पृथक्-पृथक् जुड़ चुके थे। अतः वे अत्यधिक निष्ठा और संकल्प के साथ इस संघर्ष को शीघ्र सफल बनाने के कार्य मे जुट पड़ी थीं ! 'आशा बलवती राजन् !' और अपनी अन्तिम विजय की आशा मे वे अब भी शिथिल न हो सकी थीं।

भोजनादि के बाद वे अपने भावी जुलूस को सचालित करने के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श करने लगीं। अब तक सघटन-कार्य को सरकार से गुप्त रखने में वे खूब सतर्क सावधान रही थीं। और अन्त मे सचालन के सम्बन्ध मे भी निर्णय यह किया गया कि आरंभिक गति-विधियों को गुप्त रख कर ही प्रदर्शन का बिगुल अचानक फूँक दिया जाय ताकि सरकार को पहले से ही हस्तक्षेप करने का अवसर न मिल सके।

आज इम्फाल के मारवाड़ी बनियों का एक प्रतिनिधि-मंडल स्वयं मणिपुर-नरेश की सेवा में उपस्थित हुआ। सभी के चेहरे भय और चिन्ता की रेखाओं से उद्विग्न थे। हृदय में आतंक और आशंका की उठती हिलोरें उनके चेहरों को यों कॅपा रही थीं जैसे हवा के झोंके में पेड़ के पत्ते कॉप रहे हों! उनके नेत्रों में दीनता की रेखाएँ यों उद्वेलित हो रही थीं जैसे उनमें 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' की मूक-ध्वनि खूब स्पष्ट हो उठी हो!

भेंट-नजराने से महाराजा की पूजा-अर्चा कर के मडल की ओर से सेठ मिट्ठूमल ने दोनों हाथ जोड़ बैचेनी-भरे स्वर में फरियाद की—"अगर अन्नदाता की दया-द्रष्टि की पवित्र छाया हमसे छिन जाय, तो मणिपुर में हम गरीबों का अब एक दिन भी रहना दुश्वार बन जाय अन्नदाता! जाने कैसा जमाना आ गया! यह रीत तो सनातन से चली आ रही है कि अगर ब्योपार में दो पैसा लिया न जाय, कमाया न जाय, तो पूरी कैसे पड़े? आखिर इतनी दूर परदेस में अन्नदाता की छत्रछाया में हम दो पैसे के लिए ही तो बैठे हैं? दिन-रात सिर रगड़ते हैं, एड़ी-चोटी का पसीना एक करते हैं, तब कहीं दो पैसा कमा पाते हैं, कुछ खा पाते हैं! फिर भी लोग हमें कहते हैं—हरामखोर, मुफ्तखोर, चोर, डाकू, बेईमान वगैरह वगैरह! अगर इतना ही कह कर रह जायँ तो कोई हरज नहीं! हमारा काम ही इन शब्दों को सह लेने की सीख हमे देता है! मगर अब तो लोग खुले-आम मार-पीट पर उतर आये हैं अन्नदाता! शरारतियों ने लोगों को भड़का दिया है—'मारो इन हरामी सालों को! चोरों को! बेईमानों को! भगाओ इन्हें मणिपुर से! मणिपुर की धरती से!' अगर इस तरह अन्नदाता के राज में कानून पर गुंडे अधिकार जमा लें, तो कैसे कोई गरीब आदमी अपनी जान-माल और इज्जत-

आबरू की हिफाजत में भरोसा रख सकेगा अन्नदाता ?"

यद्यपि मुक्ता ने अपने साथियो को किसी प्रकार का उपद्रव या मार-पीट न करने की हिदायत दे दी थी, पर लोगो का क्रोध रोके रुक नहीं पा रहा था। मानो भूख का बारूद चट्टानो से लग कर नियन्त्रण से बाहर हो चुका था। तिसपर उन्हें स्पष्टतया मालूम हो चुका था कि अकाल की मुख्य जिम्मेदारी कुछ खास मारवाड़ी बनियों पर है। उन्होंने ही रुपये कमाने के लोभ मे मणिपुर की जनता को मौत के मुँह में धकेल दिया है। लेकिन उनका क्रोध उन खास मारवाड़ी बनियों तक सीमित न रह कर सभी मारवाड़ियों पर बरस पड़ा था। 'मरता क्या नही करता' इस कहावत के अनुसार वे सब कुछ करने पर उतर आये थे। बिलकुल उतावले हो पड़े थे। मुक्ता के आदेश और परामर्श भी उनके उबलते क्रोध को नियन्त्रित रखने मे असमर्थ हो चुके थे, जैसे चोरीचौरा के हत्या-कांड में गॉधीजी के आदेश और उपदेश। महाराजा चुपचाप इस फरियाद को सुनते जा रहे थे। और सेठ मिट्ठूमल ने अपने वर्ग की दुर्दशा के स्पष्ट प्रमाण पेश करने के विचार से अपने मडल के एक सदस्य को संबोधित करते हुए कहा—"जरा अपनी दुर्दशा तो दिखा दो अन्नदाता को लच्छी राम ! अगर पुलिस ने ऐन मौके पर पहुँच कर इसे बचाया न होता, इसके जीता बच सकने की कतई उमीद न थी अन्नदाता !"

और लच्छीराम ने इशारा पा कर अपनी पीठ पर नालदार जूतों के लगे अनेक निशान कमीज हटा कर महाराजा को दिखा दिये। पर चूतड़ नंगे करने का साहस उसे न हुआ।

लच्छीराम के पिता महावीर प्रसाद का हृदय एकाएक उच्छ्वसित हो पड़ा। सहसा व्यथा से चीख कर हाथ जोड़ अश्रु-भरे नेत्रो से उसने निजी फरियाद की—"दुहाई अन्नदाता की ! माई-बाप की ! मेरा यह अकेला लड़का है ! मेरा वंश निर्वंश हो जाता अगर पुलिस

ने इसे बचा न लिया होता ! गुंडे तो इसे नंगा कर के—"

वाक्य पूरा किये बिना ही वह गमछे से आँखें पोंछने लग पड़ा। हिचकियाँ लेने लगा।

अब नेता सेठ मिट्ठूमल ने फिर हाथ जोड़ फरियाद की—"दुहाई अन्नदाता की ! अगर अन्नदाता की कृपा-द्रष्टि न होगी तो हम परदेसी दिन-दहाड़े लूट लिये जायेंगे ! मार डाले जायेंगे ! महावीर के गोदाम के चावल के सारे बोरे बदमाशों ने लूट लिये ! सिर्फ मार-पीट तक ही बात नहीं रह गई ! परदेस मे दो जूते सह लेने की आदत हमें डालनी पड़ती है ! मगर रोजी-रोटी पर किया गया हमला तो मार-पीट से भी बुरा है अन्नदाता ! दुहाई माई-बाप की !"—कहते हुए वह भी जैसे रो पड़ा। दूसरे बनियों की आँखे भी अब गीली हो उठीं।

एक तो यों भी महाराजा के मन मे आज वर्षों से क्रोध की आग जल रही थी। पर इस क्षण अपने अधिकार और दबदबे पर इस प्रकार जनता द्वारा हो रहे खुले प्रहार से वे और भी विचलित हो उठे। क्रोध की आग की अचानक भभकी लपटों में जैसे सारे मणिपुर को जला डालने का भीषण संकल्प उनके नेत्रों में नाच उठा।

आँखें लाल करके क्रोध-भरे स्वर में वे बोले—"बस, इस तरह रो कर मेरी इज्जत को धूल में न मिलाओ सेठजी ! जाओ, निश्चिन्त हो कर अपना कारोबार चालू रखो ! निर्भीक बन कर गुंडों की हर शरारत की पुलिस में रिपोर्ट दो ! सरकार की शक्ति में विश्वास रखो ! प्रजा समझ कर अब तक उनसे जो नरमी का बरताव किया जाता रहा है, उसने उन गुंडों को गलतफहमी में डाल रखा है ! मगर अब उनकी वो खबर ली जायगी कि छठी का दूध उन्हें याद न आ जाय तो कहना मुझे ! जाओ ! निश्चिन्त हो कर कारोबार चालू रखो !"—कह कर उन्होंने एकाएक दरबार बर्खास्त कर अन्तःपुर की ओर प्रयाण

कर दिया।

बनियों को भी चल देना पड़ा। लेकिन अब उनका आतंकित मन जैसे एकाएक एक मजबूत कवच से ढक कर बहुत कुछ निश्चिन्तता अनुभव करने लगा। अन्य दरबारियों को भी भेंट-नजराने से खुश करते वे राजमहल से विदा हो अहाते से बाहर सड़क पर आ० पहुँचे। लेकिन इम्फाल नदी का पुल पार कर कुछ कदम आगे बढ़ते ही कुछ दूर से आ-रहे सामूहिक नारों के उद्घोष से वे एकाएक डर कर ठिठक गये। जैसे आतंक की बेड़ियों से उनके पैर एकाएक बँध गये! कुछ क्षण रुक कर फिर धीरे-धीरे कदम बढ़ाते आगे चले। लेकिन कानों में उत्तरोत्तर तेज होती नारो की आवाज के अतिरिक्त अब उनके नेत्रों के समक्ष भी कुछ प्रकट हुआ। दूर से ही उस भयानक दृश्य को देख वे इस प्रकार भयभीत हो पड़े जैसे विशाल अजगर को देख जंगल के डरपोक जीव-जन्तु! आगे बढ़ने का साहस उनका खत्म हो गया। महिलाओ के जुलूस का वैसा विशाल दृश्य उन्होने कभी देखा न था। जुलूस क्या था मानो महिलाओ का विशाल सागर उमड़ कर राजमहल की ओर इस प्रकार बढ़ता आ रहा था जैसे अपनी सवेग लहरो में मार्ग के हर जीव-जन्तु और वस्तु को डुबोते हुए स्वय राजा और राज-महल को डुबोने आ रहा हो! और दिशाएँ जैसे जनता का साथ देती हुई क्रोध मे भर-भर कर उनके नारों को गुँजा रही हो! आकाश काँप उठा था! पृथ्वी काँप उठी थी!

जुलूस के नारे थे—

"चोर-बाजारी मारवाड़ियों को दण्ड दो !!!"

"घूस-खोर अफसरों को नौकरी से बर्खास्त करो !!!"

"भूखी जनता को रोजी दो! रोटी दो! नहीं तो गद्दी छोड़ दो !!!"

इत्यादि-इत्यादि।

दण्डनीयों की सूची में सबसे पहले अपना नाम सुन कर उन बनियों

के भय का ठिकाना न रहा। उन्हें लगा यदि अब एक कदम भी आगे बढ़े तो उन महिलाओं के क्रोध की आग में सबसे पहली आहुति हमारी! फिर तो कोई चिह्न भी शेष न रह जायगा! सिवा यमराज के घर फरियाद करने के मणिपुर-महाराज के दरबार में दुबारा जा सकने का सौभाग्य भी सदा के लिए छिन जायगा! यह सोच कर वे उलटे पैर मुड़ कर महाराजा की शरण में फिर भाग चले। मारे भय के पसीने से लथ-पथ, हाँफते हुए वे पुनः राजमहल में जा पहुँचे।

जुलूस की खबर पा कर सारा राजमहल पहले से ही सतर्क और सावधान हो उठा था। वहाँ अभूतपूर्व खलबली मच उठी थी। पुलिस-सुपरिंटेंडेंट पहले ही अपने पूरे स्टाफ और सशस्त्र कांस्टेबलों के साथ राजमहल की ओर रवाना हो पड़ा था। सुपरिंटेडेंट ने झट महल में पहुँच कर विशाल अहाते के चारों किनारे पुलिस की कतार से बन्द कर दिये। महल के प्रवेश-मार्गों पर सशस्त्र गोर्खे संतरी सन्नद्ध कर दिये गये। और जुलूस को पुल पार कर आगे बढ़ने से रोकने के लिए लाठियों और बन्दूकों से लैस कांस्टेबलों की मजबूत टुकड़ियाँ पुल के उस पार ही तैनात कर दी गईं।

लेकिन इन तैयारियों और सतर्कताओं के बावजूद राजमहल अशान्त हो उठा। राजमहल की ऊँची छतों पर खड़ी रानियाँ और दासियाँ उस सीमाहीन जुलूस को भय, कौतूहल, आतंक और उत्सुकता से निहारने लगीं। उसके गगन-भेदी नारों तथा मृदंग, ढोल, झाल, करताल आदि बाजों के हृदयवेधी स्वर आकाश को चीरते हुए वहाँ भी पहुँचने लगे। भूखी पीड़ित निःशस्त्र जनता के कीर्तनों के स्वर जैसे गोले बन-बन कर राजमहल की छतों पर पहुँचने लगे। और उन कीर्तन के स्वरों के ऊपर रह-रह कर उठते हुए नारे जैसे तोप के गोलों के भयानक विस्फोट बन कर! इन विस्फोटों से रह-रहकर राजमहल जैसे काँप रहा था! जैसे रह-रह कर भूकंप के धक्के महसूस हो रहे हों!

छत की मुडेर के किनारे खड़े राजकुमार और प्राइवेट सेक्रेटरी आँखों से दूरबीन भिड़ाये खड़े थे। दूरबीन की मदद से भी जुलूस का अन्तिम छोर देखने में वे सफल न हो सके। और प्राइवेट सेक्रेटरी की आँखें तो भय और आश्चर्य से एकाएक यों फैल गई जैसे वह स्वय संभावित आक्रमण का शिकार होने जा रहा हो! उसके मुँह से भय और आश्चर्य की चीख भी निकल पड़ी—"बाबा रे! सारे मणिपुर की औरतें दल बाँध कर आ गई! प्रलय होने वाला है! बाबा रे!"

लेकिन राजकुमार को उसका यह कायरपन-भरा उद्गार बड़ा बुरा लगा। आँखों से दूरबीन हटा कर उसे तीखी आँखो से घूरते हुए राजकुमार ने जोर की झिड़की दी—"छी! इसी हिम्मत पर तुम मणिपुर-नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी बने हो विजय? तुम्हें लज्जा......"

इतने मे स्वयं मणिपुर-नरेश भी छत पर आ पहुँचे। राजकुमार की झिड़की को बीच मे ही छोड़ प्राइवेट सेक्रेटरी स्वामी के स्वागत मे दौड पड़ा। दूरबीन उनके हाथ मे थमा दी। अब महाराजा ने दूरबीन की मदद से उस जुलूस का मुआयना करना शुरू किया। मन मे क्रोध और विक्षोभ की आग जल उठी थी। लेकिन साथ ही भय की छिपी भावना भी परेशानी बन कर चेहरे पर उभर आई। प्रेसीडेंट एन्थोनी की कार उन्हें पुल की ओर बढ़ती हुई दिखाई दी। मन में विश्वास का भाव जाग उठा, लेकिन क्रोध और विक्षोभ की आग न मिट सकी। प्रभुता का अहंकार और भी उत्तेजित हो उठा। वे खड़े-खड़े दाँत किटकिटा-किटकिटा कर वहाँ से ही मानो परामर्श और आदेश देते बोलने लगे—"गोलियाँ प्रेसीडेंट! गोलियाँ! भून डालो इन बदजात औरतों को! उसी तरह भून डालो जिस तरह 'जार' के शरद्-महल के सामने दल बाँध कर इकट्ठे हुए बदमाशों को भूना गया था! जरा भी नरमी या दया दिखाने की जरूरत नहीं प्रेसीडेंट! जरा भी नहीं!"

मारे क्रोध के नरेश की मनोदशा उस वक्त पागलों की मनोदशा से

बेहतर न थी। उनका यह क्रोधोद्गार प्रेसीडेंट तक तो क्या पहुँचता, लेकिन पास में खड़ी बड़ी महारानी उसे सुन कर अवश्य क्रोध में पागल हो बोल उठीं—"पागल तो नहीं हो गये तुम? बड़बड़ किये जा रहे हो! क्या तुम भी 'जार' बनना चाहते हो? रूस का जार? मगर उस अभागे जार का अन्त क्या याद नहीं तुम्हें? निहत्थी जनता पर, और खास कर स्त्रियों के निहत्थे जुलूस पर गोलियाँ दगवा कर, उन्हें गोलियों से भुनवा कर, तुम स्वयं क्या बन जाओगे जरा ख्याल है तुम्हें?"—कहते-कहते ही महारानी का चेहरा मारे क्रोध के और भी लाल हो उठा। जैसे काली करालवदना उनके चेहरे पर साकार हो उठी हों!

महारानी के मुँह से ऐसे शब्द सुनने और उनका ऐसा चेहरा देखने का नरेश के जीवन में यह पहला मौका था। दूसरी रानियों और दासियों के सामने ही उच्चरित इन अपमानभरे वाक्यों से वे और भी विचलित हो उठे। आँखें लाल करके क्रोध-भरे स्वर मे दहाड़ उठे—"खबरदार, अगर फिर जीभ चलाई तो! मुझे ऐसी जीभों को काट डालने का भी हुक्म जारी करना पड़ेगा! याद रख!"—कह कर मारे क्रोध के वे थर-थर काँपने लगे। आगे कुछ बोला भी न जा सका।

लेकिन महारानी दबने के बजाय और भी दबग बन गई। राज-कन्या और राज-पत्नी होने का अहंकार जैसे रगों में खौल उठा। अपनी सौतों और दासियों के सामने वे वाक्य उनके हृदय में जहरीले तीर-जैसे जा चुभे। इस बार और भी उग्र स्वर में तर्जनी तान कर वे बोलीं—"और तुम भी याद रखो! मणिपुर-महारानी की जीभ काटने और कटवाने वाले की जीभ भी हुक्म देने के लिए बरकरार न रह जायगी!"

महाराजा क्रोध में और भी उन्मत्त हो उठे। लेकिन यह उन्मत्तता जबान पर उतर कर भी जबान से बाहर न आ सकी। मानो हर अंग की नसों में प्रविष्ट हो उन्हें जोर-जोर से कँपाने लग पड़ी। जैसे महाराजा पर अचानक 'मिरगी' का दौरा शुरू हो चला हो!

अपने काँपते दाँये हाथ को उठा कर, काँपते स्वर में हेकलाते हुए महारानी की ओर वे लपक पडे—"तू-तू मे-मेरी, जी-जीभ कटवायेगी ? ब-ब-बदजात औरत !"

और महारानी डर कर हटने के बजाय तन कर खडी हो गई। कड़कते स्वर में वे बोली—"खबरदार, अगर हाथ जरा भी हिलाया तो ! लो, यह खड़ी हूँ तुम्हारे सामने ! तनिक हाथ चला कर देखो अगर हिम्मत हो !" और फिर एका-एक जीभ भी निकाल कर—"यह लो ! काटो या कटवाओ तो इसे, अगर साहस हो !"

लेकिन इसी बीच बड़ा राजकुमार उन दोनो के बीच आ कर खड़ा हो गया। महाराजा ने अपने ऊपर-उठे काँपते हाथ से राजकुमार को महारानी की ओर धकेलते हुए अपमान-भरे स्वर मे कहा—"हट, हरामजादा मेरे सामने से ! माँ की रक्षा करने आया है तू ! बड़ा वीर बनता है ! बड़ा वीर है तो क्यों नहीं आगे बढ़ कर जुलूस की उन बदजात औरतों को गोलियो से उड़ा देता ? हट ! भाग यहाँ से !"

राजकुमार ने धक्का खा कर भी कोई जवाब न दिया और महारानी उसका हाथ पकड़ कर खींचते हुए बोली—"चल इबुडो ! हट अपने पागल बाप के आगे से ! अब मणिपुर की गद्दी पर बैठेगा तू ! पागल को गद्दी पर बने रहने का अब कोई भी औचित्य नहीं ! कोई भी अधिकार नहीं !"

महाराजा फिर हाथ उठा कर हेकलाते हुए महारानी की ओर दौड़े—"मैं-मै-मैं पा-पा-पागल हूँ ! तू-तू बे-बे-बेटे को गद्दी पर बैठाना चाहती है ! बे-बे-बेटे को गद्दी पर बैठाना चाहती है ! बे-बे-बेईमान औरत !"

लेकिन पुनः राजकुमार ने उनका हाथ थाम लिया। बड़ी दृढ़ता से उनका हाथ पकड़ इस बार उन्हें मानो आदेश देते बोला—"सचमुच आपका मन अभी ठीक नहीं है पाबुङ ! चलिये ! विश्राम कीजिये अपने महल में !"—कह कर जबर्दस्ती ही उन्हें खींचते हुए उनके कमरे में ले

जा कर उन्हें पलंग पर लिटा दिया। महाराजा इस प्रकार निरुपाय हो कर खिंचते चले गये जैसे पुलिस के सिपाही के हाथ से घिसटता हुआ कोई कमजोर कैदी या अपराधी जेलखाने या थाने की ओर।

लेकिन महाराजा फिर भी बड़बड़ाते रहे—"तू-तू-तू, गद्दी पर बैठना चाहता है ना-ना-नालायक!"

उनकी बातों पर जरा भी ध्यान न दे महाराज-कुमार ने तत्काल उनके डाक्टर को बुला भेजने का आदेश दे दिया। राजमहल में कोलाहल मच गया! दूसरी रानियाँ भी इधर-उधर दौड़ने लगीं। अपनी बड़ी सौत के उद्देश से क्या-कुछ बोलने लगीं, बकने लगीं।

किन्तु बड़ी महारानी राजमहल मे टिकी न रह सकीं। अपने बेटे के कान में चुपके से कुछ कह कर वे झट पौड़ियों से खट-खट कर उतरती एकाएक नीचे आ गईं। और बगैर किसी को साथ लिये वायु-वेग से अहाता पार करते सीधे वहाँ जा पहुँचीं जहाँ प्रेसीडेंट, एस० पी० और नगर एव जिला मजिस्ट्रेट वगैरह जुलूस को रोके पुल के इस पार खड़े थे।

"प्रेसीडेंट साहब!"—महारानी वहाँ पहुँचते ही घबराई हुईं, विनय-भरे स्वर में बोलीं—"मेरी अर्ज है उन्हें रोका न जाय! उन्हें सीधे राजमहल के द्वार तक आने दिया जाय प्रेसीडेंट साहेब!"

महारानी के इस अनुनय-भरे स्वर से चौंक कर आश्चर्यभरे नेत्रों से प्रेसीडेंट ने देखा उन्हें। महारानी को इस रूप में देखने का उसका पहला अवसर था। राज-काज में महारानी ने स्वयं कभी हस्तक्षेप किया न था। कभी कोई प्रार्थना की न थी। लेकिन यह पहली प्रार्थना थी, और प्रार्थना के स्वरों में बड़ी बेचैनी थी! बड़ी परेशानी!

प्रेसीडेंट ने हिचक और आशंका से भरे स्वर में जवाब दिया—"लेकिन उन्हें सीधे राजमहल तक जाने देना क्या खुद खतरा मोल लेना नहीं है महारानी साहब?"

महारानी ने दृढ़ स्वर में जवाब दिया—"लेकिन उन्हें यहाँ रोके रख कर तो और भी बड़ा खतरा मोल लेना है प्रेसीडेंट साहब!"

प्रेसीडेंट को यह जवाब ऊट-पटाँग लगा। उसकी शासन-शिक्षा और धारणा के बिलकुल विपरीत! आश्चर्य-भरे स्वर में उसने पूछा—"क्यों? कैसे?"

और महारानी ने युक्तिपूर्ण ढंग से उत्तर दिया—"क्योंकि उनका लक्ष्य राजमहल तक जा कर मणिपुर-नरेश से फरियाद करना है! बीच में ही उन्हें रोक कर क्या उनके क्रोध को और भी उत्तेजित करना नहीं होगा?"

"तो इससे क्या?"—प्रेसीडेंट ने हँस कर अवज्ञाभरे स्वर में जवाब दिया—"उनके उत्तेजित क्रोध को दुरुस्त करने के लिये हम खड़े जो हैं?"

"यही तो सबसे बड़ा खतरा है प्रेसीडेंट साहब! सबसे बड़ा खतरा! इसी बड़े खतरे से मै मणिपुर को, मणिपुर-नरेश और मणिपुर-राजवंश को बचाने की खातिर अभी आपसे अर्ज करने आई हूँ! महिलाओं की इस निःशस्त्र-निहत्थी भीड़ को व्यर्थ मे भभका कर आप उपद्रव पर उतारू न करें प्रेसीडेंट साहेब! यही आपसे मेरी प्रार्थना है!"

इस उत्तर से जैसे प्रेसीडेंट के आत्म-सम्मान को बड़े जोर की ठेस लगी। शासन-शास्त्र के आचार्य किसी 'आइ० सी० एस०', सो भी अंग्रेज आइ० सी० एस०, का किसी भारतीय महिला के मुख से ऐसी बात सुनना स्वभावतः कम अपमानजनक न था! और तिसपर यह जबर्दस्त अभियोग भी कि वह भीड़ को रोक कर उपद्रव को प्रोत्साहित करना चाहता है!

प्रेसीडेंट गुस्साभरे स्वर में बोला—"बेहतर होगा महारानी साहब, कि आप राजमहल में सीधी वापस चली जायँ! कानून और व्यवस्था

को कायम रखने के काम की मुझे काफी 'ट्रेनिंग' मिल चुकी है! बेहतर होगा आप अपनी सलाह अपने पास रखें! मुझे फिर से आपसे इस काम की 'ट्रेनिंग' लेने की जरूरत नहीं है!"—कहते-कहते मारे क्रोध के उसका चेहरा और भी लाल हो उठा।

"लेकिन मैं तो आपको 'ट्रेनिंग' देने नही आई? प्रार्थना करने आई हूँ?"

"प्रार्थना का यह समय नहीं है! आप सीधी राजमहल में चली जायँ!"

प्रेसीडेंट के इस रूखे और अपमानजनक जवाब ने महारानी के आत्म-सम्मान पर भी बड़ी गहरी चोट की। मारे क्रोध के वे विचलित हो उठीं। उन्होंने भी निर्भीक हो दृढ़ स्वर मे जवाब दिया—"मैं राजमहल मे सीधी वापस चली जाने की खातिर यहाँ नहीं आई हूँ प्रेसीडेंट साहब! कानून और व्यवस्था के इस भद्दे नाटक की वेदी पर या तो मैं स्वयं बलिदान हो जाऊँगी, अथवा उन महिला-विद्रोहियों में स्वयं शामिल हो इस नाटक के विरुद्ध विद्रोह का झंडा मैं भी बुलन्द करूँगी! याद रखें आप!"—कहते-कहते उनका चेहरा भी अतिशय क्रोध से तमतमा उठा। वे उसी लहजे मे फिर बोलीं—"और तब सारे जगत् में मणिपुर-सरकार की शासन-व्यवस्था का सुयश फैलेगा! आपके प्रेसीडेंटी शासन का सुयश! और ब्रिटिश साम्राज्य का सुयश! याद रखिए!"

महारानी के तमतमाते चेहरे को देख, और दृढ़ एव निर्भीक व्यंग-भरा उत्तर सुन कर प्रेसीडेंट अवाक् रह गया। अप्रतिभ भी हो गया। उसे ऐसे उत्तर की उमीद कतई न थी। किसी 'नेटिव स्टेट' की एक रानी एक 'आइ० सी० एस० अंग्रेज' अधिकारी के सामने इस प्रकार तन कर खड़ी हो सकेगी अथवा ऐसा करारा जवाब दे सकेगी, उसने स्वप्न में भी कल्पना की न थी। क्रोध उसे अवश्य हुआ, लेकिन साथ

ही सभावित परिणाम से वह मन-ही-मन डरा भी। स्त्रियों का हठ ठहरा! यदि हठ के नशे मे वे सचमुच वैसा करने को उतारू हो गईं तो स्वय प्रेसीडेंट का मुँह भी काला हुए विना न रहेगा! शासन-शास्त्र में सुदक्ष और सभ्यतम होने का जातीय अहकार भी धूल में मिले बगैर न रहेगा!

अब वह एकाएक नरम पड़ कर बोला—"तो क्या आप स्वयं जिम्मेदारी लेने को तैयार हैं?"

महारानी ने पुनः दृढ़ स्वर मे जवाब दिया—"अवश्य प्रेसीडेंट! मणिपुर की महारानी अपनी जिम्मेदारी समझे विना यहाँ नहीं आईं यह आपको स्वयं समझना चाहिए!"

प्रेसीडेंट पुनः अप्रतिभ हो चला। इस उत्तर में कम गहरा व्यग न था। और अपने अधिकार का सगर्व उद्घोष भी। मानो वे स्पष्टतः कह रही हो कि प्रेसीडेंट राज्य का एक निरा नौकर है और वे स्वय राज्य की महारानी हैं! प्रेसीडेट ने शायद इसे महसूस किया। लेकिन उसने भी व्यग-भरे स्वर मे जवाब दिया—"और मणिपुर-स्टेट-दरबार का प्रेसीडेट भी अपनी जिम्मेदारी समझे बगैर यहाँ नही आ खड़ा हुआ महारानी साहब!"—कह कर जोर से हँस भी पड़ा।

"मै जानती हूँ प्रेसीडेट साहब!"—महारानी ने किन्तु विना हँसे व्यगभरे गंभीर लहजे में जवाब दिया—"और मणिपुर की महारानी होने के नाते आपको इस जिम्मेदारी की भावना के लिए मै बधाई भी देती हूँ! लेकिन साथ ही यह सलाह भी देती हूँ कि आप अपनी ईमानदारी की उग्रता में उन विद्रोही महिलाओं को भी उग्र बनने पर मजबूर न करें! बाहरी दुनिया में, अखबारो के कालमो मे, अपने और अपने नरेश के नाम को अब अधिक बदनाम होने न दें! मै फिर हाथ जोड़ प्रार्थना करती हूँ आपसे!"

प्रेसीडेंट अप्रतिभ हो गया। नरम पड़ गया। क्योंकि महारानी भी

अन्त में प्रार्थना के लहजे पर उतर आई थीं। प्रेसीडेंट ने कहा—"लेकिन उन महिलाओं पर अभी कोई जुल्म तो नहीं किया जा रहा? उन पर लाठियाँ तो नहीं चलाई जा रहीं? उनपर गोलियाँ तो नहीं दागी जा रहीं? फिर आप इतनी परेशान क्यों हो पड़ीं महारानी साहब?"

"क्योंकि आपकी पुलिस के हाथ में लाठियाँ भी हैं! गोलियाँ भी!"

"लेकिन उनका इस्तेमाल तो नहीं किया जा रहा? इस्तेमाल किया तो नहीं गया?"

"मगर हैं वे इस्तेमाल के लिए ही अगर महिलाएँ शान्त बनी न रह सकीं या आगे बढ़ने से रुक न सकीं? मगर सोचना चाहिए कि इतनी तैयारी के साथ वे चली हैं आगे बढ़ने के लिए ही! अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए ही!"

"तो हमारा दोष? हमारा अपराध?"

"हमारा दोष और अपराध यही कि हम उन्हें हथियारों से लैस हो कर रोकना चाहते हैं! और संघटित सशस्त्र भय के पेट से सदा महान अनर्थ पैदा होता आया है प्रेसीडेंट साहब!"

प्रेसीडेंट पुनः अप्रतिभ हो गया। मन-ही-मन चिढ़ कर व्यंग-भरे लहजे में बोला—"जब आपमें इतनी अक्ल और समझदारी है। तो महाराजा को पहले से ही समझाया क्यों नहीं? तब मणिपुर में वर्षों से व्यर्थ का ऐसा अनर्थ खड़ा तो न हो पता? अब तक खड़ा तो न रह पाता?"

"क्योंकि पहले मुझे महाराजा की अक्ल पर भरोसा था! मगर अब अपने प्रेसीडेंट की अक्ल पर भरोसा रख कर ही यहाँ पहुँची हूँ! यदि यहाँ भी निराश ही मुझे होना पड़ा तो इसी पुल के सामने मैं आमरण अनशन शुरू करूँगी! धरना दूँगी! मणिपुर-राज्य का मुँह पूरी तरह काला होने से पहले ही संसार से कूच कर दूँगी!"—कह कर वे

मानो दृढ़ संकल्प से धम् से आसन मार कर नीचे बैठ भी गईं।

उनकी दृढ़ता के आगे अब प्रेसीडेंट को झख मार कर झुकना पड़ा। क्योंकि महारानी ने विनय-भरे लहजे में उसकी अक्ल पर भरोसा जाहिर किया था। महारानी के अनुरोध और आग्रह के अनुसार उसे पुलिस की वह सारी फौज वहाँ से हटा लेनी पड़ी। सिवा दो सन्तरियों के राजमहल के अहाते में पुलिस का एक बच्चा भी अब नहीं रहा। और महारानी ने स्वयं आगे बढ़ कर जुलूस को निमन्त्रित किया शान्तिपूर्वक आगे बढ़ने के लिए। जुलूस बेरोक-टोक अपने नारों से आकाश को गुँजाते राजमहल के अहाते में जा पहुँचा। और वहाँ तिल धरने तक की भी जगह न रहने के कारण जुलूस का काफी अंश अहाते के बाहर भी फैल गया।

(४३)

जुलूस पूरी तरह अनुशासन में बँधा रहा। महारानी द्वारा उपद्रव और उत्तेजना का मूल कारण दूर कर दिये जाने के कारण उपद्रव की आशंका न रही। राजमहल के सामने विशाल मैदान मे जगह-जगह सामूहिक कीर्तन का स्वर अब मुखरित हो पड़ा। मृदग, ढोल, झाल, करताल के सधे-सुरीले लय में मिल कर महिलाओं के मधुर स्वर आकाश में गूँजने लगे। महाकवि जयदेव-कृत 'गीत-गोविन्द' की दशावतार-स्तुति के प्रथम श्लोक से कीर्तन आरंभ किया गया।

वे गा रही थीं—

"प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदम्,
विहित-वहित्र-चरित्रमखेदम्,
केशव धृतमीनशरीर !
जय जय देव हरे !"[1]

---

१. "मत्स्य-शरीर धारण करने वाले हे केशव (कृष्ण)! तूने

इस प्रकार प्रत्येक अवतार के नाम पर रचित प्रत्येक श्लोक के अन्त मे 'जय-जय देव हरे!'—की सामूहिक ध्वनि उन सघटित कोकिल-कठों से निकल-निकल कर आकाश को गुँजाती हुई मानो चारों ओर मीठे-मीठे जादू का जाल फैला देती। मानो सारा राजमहल भी इस जादू के माधुर्य में एकाएक मग्न हो उठा। लोगों के मन से मानो सारा द्वेष और वितृष्णा इस माधुर्य मे खो कर विनष्ट हो गया। सबके मन में सहानुभूति के भाव जैसे जाग उठे। पर किकर्तव्य-विमूढ़ सहानुभूति !

'गीत-गोविन्द' के पदो के समाप्त होते ही मणिपुरी भाषा मे भी कीर्तन के पद मुखरित हो उठे। वाद्य के लय मे अपने मधुर स्वरो को मिला कर वे फिर गाने लगीं—

"मणिपुर सना लैवाकसे,
चीगना कोईना पनशारे,
हाओना कोईना पनडाकले।"[२]

इन पदो को गा-गा कर फिर एकाएक मानो भक्ति के नशे मे आ कर नीचे लिखे पद बार-बार दुहराती हुई वाद्यों के लय-ताल की चरमता मे मिल कर वे खूब उछलने भी लग जातीं—

"हो, हो, होरि हो, राम राम !
होरि हे नारायण !"

उधर राजमहल मे महाराजा का उपचार चालू था। मारे परेशानी, क्रोध और चिन्ता के उनका स्वास्थ्य बहुत दिनो से यों भी गिर चुका था, दिनोंदिन गिरता ही जा रहा था, लेकिन आज महारानी के व्यवहार से

प्रलयकालीन समुद्र मे विना किसी थकान के बाह्य लीलाएँ करते हुए वेदों को धारण किया। हे देव ! हे हरि ! तेरी जय हो ! जय हो !"

२. "मणिपुर स्वर्ण का देश है ! पहाड़ी किलों से सुरक्षित है ! और पहाड़ी लोग इसके प्रहरी हैं !

मन में उठे क्रोध की असह्य अग्नि में मानो स्वास्थ्य की बची-खुची पूँजी भी जल चुकी थी। यह कितना महान अपमान था कि सबके सामने ही महारानी ने उन्हें पागल घोषित कर दिया! और ज्येष्ठ महाराजकुमार ने सारे विनय का परित्याग कर उन्हे जबरन खींचते हुए उनके शयन-कक्ष मे बन्द कर दिया! वे क्रोध, व्यथा और वितृष्णा के मारे और भी बड़बड़ाने लगे। डाक्टर ने भी घोषित कर दिया—"महाराजा साहेब का दिमाग अभी सचमुच ठिकाने नहीं है! सचमुच वें उन्माद रोग के पूर्व-लक्षणों से ग्रस्त हो चले हैं! लेकिन बहुत जल्द उनके सही-दिमाग हो जाने की आशा भी है!"

खबर पा कर प्रेसीडेंट और पोलिटिकल एजेंट भी उन्हें देख गये। डाक्टर को पूरी सावधानी और तत्परता से चिकित्सा का आदेश दे वे चले गये। नगर के कई दूसरे नामी डाक्टर और वैद्य भी बुलाये गये। इन चिकित्सको का दल देख महाराजा और भी आग-बबूला हो गन्दी गालियो की बौछार करने लग जाते। फलस्वरूप उनके पागल होने में किसी को भी सन्देह न रह गया। अपने दिमाग की दुरुस्ती पर विश्वास रखने वाले को भी यदि पागल मान लिया जाय और पागल मान कर चिकित्सा आरम्भ कर दी जाय तो पागलपन दबने के बजाय और भी बढ जाता है। यही मनोदशा इस समय महाराजा की भी हो चली थी।

रात हो चुकी थी। श्रीगोविन्दजी की आरती भी घंटा, घड़ियाल, मृदग, ढोल, झाल, करताल व नगाड़े की मिलित आवाज के साथ सम्पन्न की जा चुकी थी। पर महिलाओं के कीर्तन मे कोई शैथिल्य न आ सका। जिस प्रकार होली के अवसर पर गोविन्दजी के विशाल मडप में गवैयो के विभिन्न दल पारी-पारी से अपने गीतों और वाद्यों के लयबद्ध स्वरों से मडप को गुँजाया करते हैं, उसी प्रकार महिलाओं के विभिन्न दल भी पारी-पारी से अपने कीर्तन के स्वरों मे खुले आकाश को गुँजा रहे थे।

भादों का महीना था। काली घटा के घिर आते देर न लगी। वर्षा भी हो चली। मणिपुर की वर्षा ठहरी! लेकिन उस वर्षा के जोर में कीर्तनियों का उत्साह ठंढा पड़ने के बजाय और भी उग्र हो चला। एक साथ अनेक दलों की आवाजें और भी तेज हो चलीं। मुक्ता, तोम्बी, रंजना, थम्बाल आदि तरुणियाँ अलग-अलग दलों में बँट कर जगह-जगह जा कर उन्हें उत्साहित करने लगीं, धीरज बँधाने लगी—"माताओ! बहनो! हमारी अन्तिम परीक्षा की घड़ी है यह! घबराना हमें न चाहिये! घर में चुपचाप भूखों मरने के बजाय हम मौत से लड़ने चली हैं! इन क्षणिक कठिनाइयों से घबरा कर न हम मौत से लड़ सकती हैं, न अन्याय-अत्याचार से!"

और तब एकाएक मानो स्वयं मृत्यु को चुनौती देते हुए, हाथ उठा कर मानो शक्ति का आह्वान करते हुए वे पूरे जोर से बोल देतीं—"बोलो माताओ, बोलो बहनो!—'हम नहीं डरेंगी!!! बिना अपनी माँगें मनवाये हम पीछे नहीं मुड़ेंगी!!!' "

और उनकी यह सामूहिक चुनौती वर्षा के घनघोर आवरण को चीरते हुए, भवनों की सुदृढ़ दीवारों से जूझते हुए राजमहल मे भी पहुँच ही जाती!

× × ×

घनघोर वर्षा में भीगते हुए जुलूस को देख बड़ी महारानी खूब बेचैन हो उठीं। माताओं की गोदों में और पीठों पर उस समय भी उनके जीवन के पुष्प रो रहे थे, या मुसकरा रहे थे, अथवा नींद में खो-कर बेखबर हो चुके थे। उन भीगते हुए शिशुओं की कल्पना करते ही महारानी का मातृ-हृदय व्यथा और बेचैनी से विमूढ़ हो उठा। रो उठा। उन्होंने झटपट एक दासी के हाथ जुलूस की नेत्री 'मुक्तावती' को राजमहल में आने का सन्देशा भिजवाया। लेकिन मुक्तावती ने दो टूक जवाब दे दिया—"वर्षा में भीगती अपनी साथिनों को छोड़ मैं क्षण भर

के लिए भी राजमहल में सिर छिपाने का अपराध नहीं कर सकती !"

और महारानी ने फिर सन्देशा भिजवाया—"कुछ महिलाएँ गोविन्दजी के मंडप में चली जायँ, कुछ 'महाबली ठाकुर' (हनुमानजी) के मन्दिर में, और कुछ महल के मकानो में ! मै तुमसे जरूरी बात करना चाहती हूँ मुक्ता !"

लेकिन मुक्ता फिर भी अडिग रही। किन्तु फिर उन शिशुओ की दशा भी उसे याद आ गई। उसने जवाब में महारानी को कहला भेजा—"आपका आदेश मान कर बच्चों वाली माताओं से गोविन्दजी के मंडप मे चले जाने का अनुरोध और प्रार्थना मैं कर रही हूँ। लेकिन जुलूस की सभी महिलाएँ न आपके राजमहल में अमा सकेंगी, न 'महाबली ठाकुर' के मन्दिर मे ! इसलिए शेष भीगती साथिनों को छोड़ महल मे आने का आपका आदेश मानने में समर्थ नहीं हूँ माताजी !"

मुक्ता के इस दृढ़ उत्तर से महारानी मन-ही-मन चिढ़ उठी। मुक्ता के मन पर आदर्शवाद की सनक अथवा दृढ़ता सवार थी। विना इस दृढ़ सनक के वह क्योकर राज-सुख को ठुकरा कर निर्धन की पत्नी बन जाती ? और क्योकर ब्रिटिश शासन की छत्र-च्छाया मे पल रही सामन्तशाही के विरुद्ध वह तन कर खड़ी होती ? आखिर वह स्वयं सामन्त-कन्या थी ! और उसी आदर्शवादी प्रबल भावना ने इस समय उसे ऐसा उत्तर देने को प्रेरित किया। लेकिन महारानी उसके उत्तर से चिढ़ कर भी उदासीन न रह सकीं। मानो उनपर भी कुछ क्षण के लिए आदर्शवादी नशा सवार हो चला। उन भीगती हुई महिलाओं ने मानो उन्हें भी कुछ देर के लिए वर्षा में निकलने को प्रोत्साहित किया। छाते की छाया के नीचे अपनी दासियो से घिरी हुई वे स्वय मुक्ता से मिलने खुले मैदान की ओर चल पड़ीं।

मुक्ता से सामना होते ही वे वात्सल्य-भरे उलहने के लहजे में बोलीं—"तू हमेशा से बड़ी हठी लड़की है मुक्ता ! ले, मै हारी और तू

जीती ! अब तो मान जा ! अब तो खुश हो जा !"

और मुक्ता तनिक मुसकरा कर अपने सिर और कपाल से बारिश का जल पोंछते हुए बोली—"लेकिन हम आपको हराने तो यहाँ आईं नहीं माताजी ?

"तो किस लिए आई है इतना बड़ा दल बाँध कर ?"—महारानी ने भी मुसकाते हुए व्यंग किया।

मुक्ता ने भी व्यंग-भरे स्वर में जवाब दिया—"दुखी जनता की फरियाद ले कर माताजी ! हम हराने आयेंगी कैसे जब कि न हमारे पास फौज का बल है, न पुलिस का ?"

जवाब सुन कर महारानी तनिक अप्रतिभ हो नरम स्वर में बोलीं—"इसी लिये तो आज मैं तुम लोगों की ओर से लड़ी मुक्ता ! तुम लोगों को सीधे महाराजा साहब के पास पहुँचा कर फरियाद कराने के विचार से ही तो तुम्हारे मार्ग से मैंने फौज-पुलिस को हटवाया ! और उसी का अवसर देने के लिए अभी मै तुझे राजमहल मे बुला रही थी ! लेकिन तू है कि व्यर्थ के हठ पर अड़ी ही रही !"

"आपकी उच्चता, उदारता और साहस पर मुझे कम गर्व नहीं है माताजी ! आज आपने सचमुच मणिपुर का, और हम महिलाओं का सिर ऊँचा कर दिया उस अंग्रेज प्रेसीडेंट के आगे ! मगर जब फरियाद करने का अवसर दे कर आपने हमें यहाँ तक पहुँचा ही दिया तो राज-महल के अंदर अब जाने की जरूरत क्या ? क्या हम लाखों की आवाज इतनी निर्बल और निःशक्त है माताजी, कि केवल कुछ गज आगे राजमहल के भीतर भी वह नही जा सकती ?"

मुक्ता के जवाब से महारानी मन-ही-मन गर्वान्वित हो उठीं। लेकिन अन्तिम वाक्य की गर्वभरी उक्ति से वे मन-ही-मन क्रुद्ध भी हुईं। पर क्रोध को दबा कर मीठे स्वर में बोलीं—"हमारी मुक्ता ने भी तो जनता का साथ दे कर हम राजवंशी महिलाओं का मस्तक ऊँचा किया है ?

तू इस जुलूस की नेत्री है ! और बात नेता से ही की जाती है ? हर व्यक्ति से तो नहीं ? अतः केवल तुझे बुलाने का आग्रह मैंने किया था !"

उनके इस जवाब से मुक्ता भी मन-ही-मन चिढ़ उठी । लेकिन मन की नाराजी को दबा कर गर्वभरे स्वर मे वह बोली—"राजवश का अहंकार और शानदार नकाब तो मैं उसी दिन पिताजी के पोखरे में फेंक आई माताजी, जिस दिन एक गरीब और गैर-राजवंशी श्वसुर-गृह की ओर रवाना हो पड़ी ! अब तो मै केवल एक निर्धन इनसान की पत्नी हूँ ! मणिपुर की एक सामान्य नागरिक ! मणिपुर की एक सामान्य महिला ! मणिपुर की एक सामान्य पुत्री !"

इस जवाब से महारानी एकाएक अप्रतिभ हो उठीं । झट अपनी झेप मिटाते हुए मधुर स्वर मे वे फिर बोलीं—"मै भी मणिपुर की एक पुत्री ही हूँ बेटी ! अहकार अब मै भी नहीं करती ! भूल हो गई ! और सवाल-जवाब मे तुझसे जीत भी तो नहीं सकती ! लेकिन आँचल फैला कर एक भीख तुझसे माँगूगी ! वचन दे ! निराश तो न करेगी ?"

महारानी के चारों ओर अब तक काफी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी । उनके इस प्रश्न पर मुक्ता को बड़ा आश्चर्य हुआ । दूसरों को भी । मुक्ता विनयभरे स्वर मे बोली—"एक निर्धन की पत्नी भला स्वयं मणिपुर-महारानी को भीख देने का साहस करे, उन्हें वचन दे, यह तो पागलपन ही कहा जायगा माताजी ?"

महारानी अब बिलकुल निरहकार स्वर मे बोलीं—"मै अभी-अभी बता चुकी हूँ कि मै भी मणिपुर की एक पुत्री हूँ ! महारानीपन का अहकार ले कर तुम्हारे सामने मै नहीं आई ! और तू स्वयं क्या है, मै यह अच्छी तरह जान चुकी हूँ ! जानती हूँ ! मुझे अब निराश न कर बेटी !"—कहते-कहते सचमुच उनके स्वर में दीनता उभर आई ।

"मैं आपकी पहेली नही समझ पा रही माताजी ?"

और महारानी ने पुनः दीनता-भरे गद्गद स्वर में कहा—"मै

पहेली में नहीं बोल रही बेटी ! अपने हृदय की व्यथा बता रही हूँ !" और फिर एकाएक आँचल फैला कर—"तुझसे और तेरी सभी साथिनों से मैं 'सोहाग' की भीख माँग रही हूँ बेटी! महाराजा की बीमारी का हाल शायद तुम्हें मालूम होगा ! मणिपुर के ये झगड़े उन्हें मृत्यु के मुँह में पहुँचा चुके हैं ! अब समझौता कर के उनका जीवन-दान मुझे दे दे मुक्ता !" कहते-कहते उनकी आँखों से अश्रु की कई बूँदें भी टपक पड़ीं।

उनकी मनोदशा पर पसीज कर मुक्ता बोली—"आप स्वयं सब कुछ जानती हैं माताजी, कि हम किसलिए यहाँ आई हैं ! हम आई हैं फरियाद पेश करने ! पेट की आग में उबलते हुए आँसुओं को दिखाने ! झगड़ा करने या उसे बढ़ाने हम नहीं आईं ! हम तो हमेशा समझौते के लिये तैयार थे ! अब भी तैयार हैं ! और महाराजा साहब की बीमारी की बात सुन कर हमे भी कम कष्ट नहीं हुआ ! उन्हें दुखी करने का ख्याल न हमारा तब था, न अब है ! आखिर हम मनुष्य हैं माताजी ! किसी मनुष्य को दुखी करके कैसे कोई मनुष्य सुखी रह सकता है !"—कहते-कहते मुक्ता का स्वर सहसा भारी हो उठा।

मुक्ता के अन्तिम वाक्य से महारानी अप्रतिभ हो उठीं, यद्यपि मुक्ता का तात्पर्य व्यंग कसने का कदापि न था। लेकिन फिर भी उस वाक्य से यह ध्वनि तो निकल ही गई कि मणिपुर की जनता को दुखी करके महाराजा सुखी रह कैसे सकते हैं !

महारानी सहसा-क्षुब्ध मनोभाव को दबा कर इस बार पूरी तरह समझौते के स्वर में बोलीं—"अच्छा तो अपनी सारी माँगें बता दे मुझे, जिनके आधार पर समझौता करना चाहती हो तुम लोग ! मैं पूरा जोर लगाऊँगी उन माँगों को मनवा लेने के लिए !"

और मुक्ता अपनी साथिनों पर एक नजर डाल कर एक-एक कर अपनी माँगें बताने लगी—

"(१) श्राद्ध-कर-कानून रद्द किया जाय ;

"(२) उस आन्दोलन के सभी कैदियों को विना-शर्त रिहा कर दिया जाय; और जिन दो के विरुद्ध गिरफ्तारी का 'वारंट' अभी जारी है उस वारंट को भी रद्द किया जाय;

"(३) अकाल के लिए जिम्मेदार सभी लोगों को दंड दिया जाय ;

"(४) बाजार में बचे चावल के स्टाक पर स्वयं कब्जा जमा कर सरकार उसे सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर जनता को बेच दे ;

"(५) और, धान की अगली फसल तैयार होने तक जनता को सस्ते-से-सस्ते मूल्य पर भर-पेट चावल देने की जिम्मेदारी स्वयं सरकार स्वीकार करे !"

इनमे पहली और दूसरी शर्तों ने महारानी के मन में निराशा पैदा कर दी। वे इस जुलूस को केवल अकाल के सम्बन्ध मे मान रही थीं। बोलीं—"लेकिन तुम्हारा यह प्रदर्शन तो केवल अकाल के सम्बन्ध में है न मुक्ता ? श्राद्ध-कर-आन्दोलन के सम्बन्ध में तो नहीं ?"

और मुक्ता ने दृढ़ता से जवाब दिया—"मगर एक साथ सारे झगड़ों को निबटाये विना कैसे मणिपुर मे शान्ति आ सकेगी माताजी ? और जब तक पूरी शान्ति कायम नहीं हो जाती, तब तक महाराजा साहब की मनोदशा भी कैसे पूरी तरह शान्त हो सकेगी ?"

कुछ क्षण के लिए महारानी मौन हो गईं। और थम्बाल पोम्बी बीच में ही बोल पड़ी—"हमारी पहली दो शर्तें अन्य शर्तों से किसी भी तरह कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं माताजी ! फिर सारा झगड़ा कैसे मिट सकेगा ?"

बीच में थम्बाल का बोलना महारानी को जरा भी पसन्द न आया। लेकिन जब थम्बाल के समर्थन में दूसरी सखियाँ भी बोल उठी, तो उन्हें जवाब देना पड़ा—"बेटियो ! मै अपनी ओर से इन शर्तों को मनवाने में कोई कोर-कसर उठा न रखूँगी ! विश्वास रखो ! मगर तुम लोगों को सोचना चाहिए कि मणिपुर-नरेश इस सम्बन्ध में स्वतन्त्र

नहीं है ! मुझे यह स्वीकार करते कम लज्जा नहीं हो रही कि अंग्रेजी साम्राज्य के यहाँ बैठे दो प्रतिनिधियों की स्वीकृति के विना कुछ अन्तिम निर्णय नहीं हो सकता ! लेकिन फिर भी मैं हिम्मत न हारूँगी ! आखिर अंग्रेज प्रेसीडेंट को मना कर ही तो तुम लोगों को उपद्रव-अत्याचार से बचा सकी ? तुम्हारे जुलूस को यहाँ तक आने देने के प्रयत्न में सफल हो सकी ?······अच्छा !"—कह कर वे एक ठंढी लंबी साँस छोड़ गोविन्दजी के मन्दिर की ओर दोनों हाथ सिर से सटा कर बोलीं—"तुम साक्षी रहो प्रभु !"—कह कर वे श्रद्धा से बिलकुल झुक चलीं।

उन्होंने छाता अपने ऊपर से हटवा दिया था। भीगते हुए ही वे अब मुक्ता से बोलीं—"तुम लोगों के भोजन का क्या प्रबन्ध होगा बेटी ? रात भर भूखी रहना भी तो ठीक नहीं ?"

और मुक्ता ने निधड़क जवाब दिया—"भोजन के लिए ही तो यहाँ हम आई हैं माताजी ! और भूख जब हमेशा के लिए सामने खड़ी है, तो आज की यह रात भी उसके बावजूद कट ही जायगी !"

महारानी संकुचित हो पड़ीं। सहसा कुछ जवाब उनसे दिया न जा सका। और उतनी बड़ी भीड़ को वे एक-एक मुट्ठी भी दे सकने की स्थिति में उस समय न थीं।

उन्हें संकुचित हो चुप हुए देख मुक्ता ने फिर कहा—"आप अभी इसकी चिन्ता छोड़ अपने प्रयत्न में लग जायँ माताजी ! हमारा तो उपवास यहाँ तब तक चालू रहेगा जब तक हमें पूर्ण सफलता नहीं मिल जाती !"

मुक्ता के स्वर में चुनौती थी। महारानी ने लक्ष्य किया। जवाब न दे सकीं। लेकिन फिर भी संकुचित स्वर में बोलीं—"मुक्ता ! जिस प्रकार मेरा अनुरोध मान कर तुमने बच्चों को माताओं-सहित मंडप में भेज दिया है, उसी प्रकार मेरा यह भी अनुरोध है कि उन बच्चों के लिए मैं अभी जो कुछ महल से भिजवाऊँ उसे विना किसी हठ के स्वीकार

कर लेना बेटी !"—कहते-कहते उनके स्वर मे व्यथा उभर आई। आँखों मे आँसू भी। "अच्छा! अब मै चलती हूँ!"—कह कर अपनी दासियों के साथ भीगती हुई ही वे महल की ओर चल पड़ी।

और सारा मैदान पुनः कीर्तन के सामूहिक स्वरों से मुखरित हो उठा।

महारानी का आज रात उपवास रहा। अपने राजमहल के सामने हजारो-लाखो भूखी महिलाओं के रहते उन्हें मुँह में अन्न डालने का साहस न हुआ। दूसरे, महाराजा की अस्वस्थता भी बाधक थी। और तीसरे, मानो मन के अन्तर्यामी ने सकल्प कर लिया कि प्रयत्न मे सफल हुए विना वे भी एक दाना मुँह मे न डालेंगी! खाना हराम समझेंगी!

वे महाराजा के शयन-कक्ष मे जा पहुँचीं। महाराजा की आँखें मुँदी हुई थीं। चेहरे पर क्रोध, घृणा, निराशा और अस्वास्थ्य की मिली-जुली रेखाएँ उसे और भी विकृत बना चुकी थीं। महारानी का इशारा पा कर दूसरे लोगों ने कक्ष खाली कर दिया। कुछ देर वे सचमुच पतिदेव के मनोविकार-विकृत चेहरे को व्यथाभरी आँखों से निहारती रही। और एक समय महाराजा की आँखे खुलीं भी। क्षणभर शून्य दृष्टि से इधर-उधर निहारने के बाद महारानी को अपने पैताने में बैठी देख वे अचानक पुनः क्रोध में पागल हो उठे।

खूब जोर से महारानी के पेट पर अपने पैर का प्रहार करके क्रोधोन्मत्त स्वर मे वे खूब चीख कर बोले—"हट कलंकिनी!!! बदमाश!!! मेरे सामने से हट! तू किस साहस से आई है मेरे पलग पर बैठने? खुले-आम पति का मुँह काला करने वाली! उसे जबरन पागल बनाने वाली! धूर्त! बदमाश औरत! भाग मेरे सामने से!"—कहते हुए वे एकाएक पलंग पर उठ बैठे, और क्रोध मे अवश हो उनके मुँह पर एक चपत भी लगा दी।

लेकिन महारानी इस बार क्रुद्ध होने के बजाय बिलकुल शान्त

रहीं। और महाराजा एकाएक थक कर हाँफते हुए धम् से तकिये के सहारे लुढ़क पड़े। कुछ क्षण के लिए वे बेहोश भी हो पड़े। और महारानी ने बड़े धैर्य से पंखा झल कर और मुँह पर पानी के छींटे दे कर उन्हें शीघ्र होश मे ला दिया।

महाराजा पुनः बड़बड़ाने लगे—"धूर्ते! पतिते! पापीयसी! क्या मेरी मृत्यु के बाद तेरे बेटे को गद्दी नहीं मिलती? इतनी उतावली! तू असमय मेरे प्राण लेना चाह रही है! मुझे पागल बना रही है! तो ले! मैं मरूँगा! जरूर मरूँगा! तू राजमाता बनना चाहती है न? तो बन राजमाता! मै मरूँगा! जरूर मरूँगा! तूने मेरा मुँह काला कर दिया बदमाश! पतिते! धूर्ते!"—कह कर वे फिर थकान से अवश हो बेहोश-से हो चले।

महारानी ने फिर तात्कालिक उपचारों से उन्हें होश में ला दिया। लेकिन किसी दूसरे को वहाँ दाखिल होने की सख्त मनाही कर दी। सौतें कोशिश करके भी प्रवेश न पा सकीं, क्योंकि बड़े महाराजकुमार की ओर से कड़ा पहरा तैनात कर दिया गया था।

महाराजा ने उनके पंखा-झलते हाथ से पंखा छीन कर एक ओर फेंकते हुए फिर फटकारा उन्हें—"निर्लज्ज! तू भागती क्यों नहीं मेरे सामने से?"

महारानी ने इस बार अश्रु-भरे नेत्रों को पोंछ कर भर्राये स्वर में जवाब दिया—"अपने पति के सामने से भाग कर अब कहाँ जाऊँ मेरे प्राण-नाथ! मेरे जीवन-धन! अभी तुम नहीं समझोगे! मैंने तुम्हारा मुँह काला नहीं किया, बल्कि मुँह पर लगी कालिख को दूर करने का प्रयत्न कर रही हूँ! तुम पागल नहीं हो मैं जानती हूँ! और इसी से तुम्हें समझाने का साहस भी कर रही हूँ! तुम राजा हो! धर्म और मर्यादा के परिपालक हो! उसके ज्ञाता हो! धर्म ने ही पत्नी को पति की अर्धांगिनी कहा है! सचिव कहा है! सखी कहा है! क्या मैं अपने इस

अधिकार को भूल जाऊँ प्राणनाथ ? अपनी जिम्मेदारी को भूल जाऊँ ? यदि क्षणिक क्रोध में आ कर तुम्हें पागल कह ही दिया तो वह मैंने अपने-आपको कहा ! पति के पृथक् पत्नी का कोई अस्तित्व नहीं ! पति की इज्जत ही पत्नी की भी इज्जत है ! पति का मन ही पत्नी का भी मन है ! तुम्हारी इज्जत और सम्मान पर तुम्हारे चापलूस शत्रुओं द्वारा पुती कालिख क्या स्वय मेरी इज्जत और सम्मान पर पुती कालिख नहीं है ? मै अब उसी को धो कर अपने पूज्य पति को ससार और समाज के सामने निष्कलक और उज्ज्वल बना कर पेश करना चाहती हूँ प्राणनाथ ! मेरे जीवन-धन ! मेरे सर्वस्व !"—कहते हुए वे पति के चरणो मे गिर पड़ीं।

महाराजा अपनी पत्नी के उद्‌गारों को चुपचाप सुनते रहे। अपने चरणों पर गिरी पत्नी का अपमान करने का इस बार उन्हें साहस न हुआ। पत्नी द्वारा अर्धांग-धर्म की याद दिलाने और पति की इज्जत को ही अपनी इज्जत स्वीकार कर लेने पर जैसे सचमुच उनमे तादात्म्य-बोध सा उत्पन्न हो चला। अपने पैरों पर महारानी के गिरते गरम-गरम आँसुओं को महाराजा चुपचाप महसूस करने लगे। मानो उनके मन मे छिपा अन्तर्यामी उन आँसुओं को पढ़ने का प्रयत्न करने लगा। और महारानी का मन भी उनके पैरों मे उतरी हुई आत्मा को। महाराजा को अब सचमुच कुछ सुख अनुभव होने लगा। और महारानी को भी इस रोने में जैसे सती नारी के हृदय का आनन्द !

अब कुछ आश्वस्त और प्रोत्साहित हो वे सिर उठा कर सचिवत्व के स्वर में बोलीं—"तुम धर्म और धर्म-शास्त्रों के ज्ञाता हो राजन् ! तुम्हें समझाने की अब धृष्टता मैं नहीं कर सकती, पर याद अवश्य दिलाऊँगी ! शास्त्रों ने राजा को प्रजा का पिता कहा है ! और पिता का वह हृदय क्या जो संतान के दुख से पसीज न उठे !" फिर एकाएक मैदान की ओर से आ रही कीर्तन की सामूहिक ध्वनि की ओर उनका ध्यान

आकृष्ट करते हुए—"वह सुन लो अपनी हजारों लाखों प्रजा की दर्द भरी आवाज को ! अपने पूज्य पिता, अपने पूज्य राजा के द्वार पर एकत्र हो दुख-दर्द सुनाने आई हुई अपनी लाखों निरीह सन्तानो की आवाज तनिक ध्यान से सुनो ! वे झगड़ने नहीं आई ! लड़ने नही आई ! वे तुम्हारी शत्रु नहीं हैं, इसे अपने शान्त सयत और सुशिष्ट व्यवहार से वे साबित कर भी चुकी हैं ! कर भी रही हैं ! वे तुम्हारी प्रिय सन्तान हैं राजन् ! उनकी माँगो को सन्तान-हठ समझ कर ही यदि सहर्ष स्वीकार कर लो तो कौन होगा तुमसे बढ़ कर प्रजा-वत्सल इस ससार में ? अपनी उदारता और वात्सल्य का परिचय दे कर उनके दिलो को जीत लो राजन् ! सुबह का भूला यदि शाम को लौट आये तो भी उसे भूला नही मानते ! मनुष्य की उच्चता मे विश्वास करो ! मनुष्य अपने प्रति किये गये समस्त अन्याय-अत्याचारो को बहुत जल्द भुला देता है यदि समय रहते उनका समुचित प्रतिकार कर दिया जाय ! उदारता का परिचय दे दिया जाय !"

महाराजा आँखे मूँदे अपनी सचिवरूपा पत्नी की सारी बाते ध्यान से सुनने लगे। उनके चेहरे से कुछ देर पहले की विकृत छाया भी अब मिटने लगी थी। उनके चेहरे को देख महारानी के मन मे अब आशा और विश्वास का अकुर फूट चला। आशा के कोंपल फूट चले।

वे गला खखार कर इस बार अधिक आशान्वित हो कर स्नेह-भरे स्वर में फिर बोलीं—"मेरे प्राण ! मृत्यु के बाद तो हर व्यक्ति त्यागी बन जाता है ! लेकिन सच्चा त्याग तो जीवित रहते किये गये त्याग को ही कहा जायगा ? हर मनुष्य अपने वंश के लिए, अपनी सन्तान के लिए मृत्यु के बाद अपना अधिकार स्वतः त्याग जाता है ! तुम अन्यथा न मानो मेरे प्राण-धन ! मणिपुर की राजमाता कहलाने की अपेक्षा मैं 'मणिपुर की महारानी' इस शब्द में कहीं अधिक गौरव

अनुभव करती हूँ ! राजमाता बन इस महल में पूजित होने के बजाय अपने पति के चरणों में रह कर उनकी दासी बनने और कहलाने मे कहीं अधिक गर्व और सुख अनुभव करूँगी ! मैं हिन्दू ललना हूँ ! एक हिन्दू ललना के लिए पति से बढ़ कर कोई ऐश्वर्य नहीं ! सौभाग्य नही ! और वैधव्य से बढ़ कर कोई विपत्ति नही ! श्रीगोविन्दजी की साक्षी रख कर यह निवेदन कर रही हूँ नाथ ! विश्वास करो !"—कहते-कहते उनके चेहरे पर जैसे सचमुच सतीत्व की आभा और अहकार फूट पड़ा। आँखो मे आँसू उमड़ पड़े ।

वे स्नेह-भरे दृढ़ स्वर मे फिर बोलीं—"शास्त्रो ने 'वान-प्रस्थ' का माहात्म्य कम नहीं बताया ! फिर तो अब छोड़ो इन सारे झंझटो को ! और चलो महाप्रभु की लीला-भूमि 'नवद्वीप'[1] को ! जीवन के शेष दिन वहीं शान्ति से प्रभु की आराधना मे बिता देंगे ! और उस समय तुम्हारे चरणो की सेवा में दासी बनी रह कर आज की महारानी होने की अपेक्षा मै कहीं अधिक शान्ति और सन्तोष अनुभव करूँगी नाथ ! कहीं अधिक गर्व अनुभव करूँगी ! तैयार हो जाओ, पूर्ण साहस के साथ इस त्यागपूर्ण प्रस्थान के लिए मेरे जीवन-सर्वस्व ! तब तुम सचमुच 'राजर्षि' के रूप मे याद किये जाओगे ! प्रजा तुम्हें सचमुच श्रद्धा और स्नेह से याद किया करेगी !"

महाराजा के नेत्र अब आँसुओं से तर हो उठे। चेहरे पर सचमुच शान्ति और सन्तोष की रेखा उभर आई। जैसे गहन अँधेरे पथ पर अचानक किसी ने उजाला कर दिया हो ! हृदय मे एकाएक सात्विकता की शुभ्र सरिता जैसे फूट पड़ी ! सचमुच यदि स्वेच्छा से राजगद्दी

---

१. चैतन्य-सम्प्रदाय के आराध्य 'गौरांग महाप्रभु' बंगाल के नवद्वीप (नदिया) में उत्पन्न हुए थे, अथवा वहीं से उन्होंने अपने वैष्णव धर्म का प्रचार आरंभ किया था।

त्याग कर 'वानप्रस्थ-यात्रा' पर प्रस्थान कर दिया जाय तो अब तक के उनके सारे पाप अवश्य धुल जायेंगे ! प्रजा में वे खोये सम्मान को अवश्य प्राप्त करेंगे ! वे सचमुच राजर्षि के नाम से याद किये जायेंगे ! कलियुग के एक आदर्श नरेश माने जायेंगे ! पत्नी की यह सलाह उन्हें सारे रोगों की अमोघ औषध जैसी लगी।

आँखें पोंछ कर स्नेहपूर्ण गद्‌गद स्वर में वे बोले—"कुछ और कहो 'प्रेम' ! कुछ और कहो ! सचमुच तुम्हारी बातों से इस समय मुझे अत्यन्त शान्ति और सन्तोष मिल रहा है ! तुम्हारी बातों ने सचमुच मेरे नेत्र खोल दिये हैं ! तुम सचमुच मेरी सच्ची मित्र और सच्ची सचिव हो 'प्रेम' ! सच्ची अर्धांगिनी ! आह, तुमने पहले ही यदि यह सब सुझाया होता तो आज वर्षों से मै क्यों परेशान रहता ? क्यो प्रजा पर इतना अत्याचार होता ? आह प्रेम ! तुम बड़ी अच्छी हो प्रेम !"—कहते-कहते उनका स्वर और भी विह्वल हो उठा।

महारानी का एक दूसरा नाम उन्होने स्वय 'प्रेम-लता' रखा था। प्रेम के मधुर मादक क्षणों मे वे 'प्रेम' इसी लघु नाम से उन्हें संबोधित किया करते थे। महारानी को अब सचमुच विश्वास हो गया कि उनके प्रेम ने पति के खोये हुए अमूल्य प्रेम को जीत लिया है ! प्राप्त कर लिया है ! वे पति के चरणों में पूर्ण आत्म-समर्पण कर चुकी थीं। पर इस आत्मसमर्पण में पराजय-जन्य आत्म-ग्लानि न थी। बल्कि पथभ्रष्ट पति को पूर्ण रूप से प्राप्त करने के निमित्त अनुष्ठित संपूर्ण आत्मसमर्पण के साफल्य का परम, चरम आनन्द ! विजय मिल गई ! पति ने भी संपूर्ण आत्म-समर्पण करते हुए प्रेम-विह्वल स्वर में उनकी विजय का उद्‌घोष कर दिया—"बस, अब मैं पूरी तरह तुम्हारे हाथ में हूँ प्रेम ! जैसा उचित समझो करो अब ! मेरा सब कुछ तुम्हारा है ! यह मणिपुर का राज्य भी, और राज्य का मेरा अधिकार भी ! इसे त्यागना चाहो त्याग दो ! रखना चाहो रख लो ! पर मुझे कभी न त्यागना प्रेम !"

नवद्वीप चलने का विचार है ? तो चलो, ले चलो मुझे नवद्वीप इसी क्षण ! जीवन के शेष दिन अब वहीं तुम्हारे साथ रहते शान्ति से व्यतीत होंगे ! राज-काज के झंझट से अलग तब हम वास्तव में सुखी रहेंगे प्रेम !"—कहते-कहते उनके नेत्र सजल हो उठे। स्वर रुद्ध हो उठा।

महारानी जिस पति को कुछ वर्षों से खो चुकी थीं, उस अमूल्य धन को सूद-दर-सूद सहित अपने हाथ में इस रूप मे वापस आया देख परम लोभी महाजन की तरह निहाल हो उठीं। मानो जनता का विशाल आन्दोलन उनके लिए वरदान बन गया। वे एकाएक अपने पति के गले से लिपट कर रो पड़ी।

कुछ देर निश्चल-निस्पन्द अपने पति के अंक में पड़ी रहने के बाद अश्रु-गद्गद कठ से वे बोलीं—"आज अपना वर्षों से खोया हुआ सर्वस्व मैंने पा लिया प्राणनाथ ! मै आज तुम्हें सपूर्ण रूप मे पा कर ससार की सौभाग्यवती स्त्रियो मे अपने को सबसे सौभाग्यवती अनुभव कर रही हूँ प्राणेश !" फिर पति के पलँग से उठ खड़ी हो गृह-देवता श्रीगोविन्दजी की ओर हाथ जोड़, सिर से सटा, भक्ति-विह्वल स्वर मे सजल नेत्रो से वे बोलीं—"मेरे महाप्रभु ! तुम बड़े दयालु हो नाथ ! वृन्दावन-नाथ ! महासती वृन्दा की भाँति अपने पति मे मेरी निष्ठा को भी अचल करो प्रभु !"

पति-निष्ठा की इस शपथ और सकल्प के शब्दों ने महाराजा को इस क्षण और भी शान्ति और सन्तोष प्रदान किया। आनन्द दिया। आनन्द के आँसू उनकी आँखों में उभर कर गालों पर लुढ़कने लग पड़े।

(४५)

मि० अल्फ्रेड एन्थोनी को कम आश्चर्य न हुआ। महारानी स्वयं महाराजा के त्याग-पत्र के कागज के अलावा उस कागज के साथ भी वहाँ पहुँची थीं जिसमें महिला-सत्याग्रहियों की सारी माँगें महाराजा द्वारा

स्वीकार कर ली गई थीं। और महाराजा ने हस्ताक्षर भी कर दिया था। अभी सुबह के लगभग नौ बजे थे। एन्थोनी नाश्ता-पानी के बाद अपने निजी कार्यालय मे मौजूद था। उसने उन कागजों को बडी अरुचि और आश्चर्य से पढ़ कर समाप्त किया। और कई मिनट के लिए वह मौन भी हो चला। चेहरे पर अरुचि की रेखाएँ जैसे खेलती रहीं। उन रेखाओं ने महारानी को शका-ग्रस्त कर दिया। और साथ ही उन्हें बड़ी गहरी ग्लानि भी हुई। मन-ही-मन सोचने लगीं—"हम लोगों का बड़प्पन और बड़प्पन का अहकार कितना खोखला है! कितना ओछा! हमारी यह राजगद्दी कितनी खोखली है! हमारा अधिकार कितना खोखला है! सात समुद्र पार के इन बन्दर-मुँहों के सामने हमे हर बात के लिए इस प्रकार दीन बन कर खड़े होना पड़ता है जैसे हम भिखारी हों! और अपनी गरीब प्रजा के सामने हम इस प्रकार शेर बन कर खड़े होते हैं जैसे हम ही संसार मे सर्वशक्तिमान हों! वास्तव में, भारत के देशी-नरेशों की स्थिति क्या कुत्तों से बेहतर है? अंग्रेजो के सामने हम दुम दबा कर खड़े होते हैं और देशवासियों के सामने उसे तान कर, खड़ी करके! कैसी उपहासजनक स्थिति है देशी राज्यों और राजाओं की!"

नेत्रों में घृणा को छिपाये वे एन्थोनी के चेहरे के चढ़ाव-उतार को ध्यान से देखती रहीं। और एन्थोनी ने तीखी निगाह से महारानी को देखते हुए आखिर मौन भंग किया—'लेकिन उन औरतों की माँग की पहली दो शर्तें तो किसी भी तरह मान्य नहीं महारानी साहब! और दूसरी शर्त तो और भी नहीं! उन बदमाश मार्क्सवादियों की गिरफ्तारी का 'वारंट' रद्द कर देने की शर्त तो बिलकुल शरारत से भरी हुई है!"

एन्थोनी इस बात से और भी मन-ही-मन नाराज हो पड़ा था कि उससे या पोलिटिकल एजेंट से पूछे या अनुमति लिये विना ही महाराजा ने यह पागलपन क्यों किया? मणिपुर राज्य महाराजा का नहीं, ब्रिटिश

सरकार का है! ब्रिटिश सरकार के एक निरे दयापात्र कठपुतले के अतिरिक्त उसकी स्थिति और है क्या? उसे क्या अधिकार है इस प्रकार के मनमाने फैसला करने का? इस प्रकार तो उसने खुद ब्रिटिश ताज के अधिकार को चुनौती दी है! इससे बढ़कर अपराध उसका हो क्या सकता है! और स्वय प्रेसीडेंट और पोलिटिकल एजेंट के अधिकार पर भी यह बड़ा ही प्रबल आघात है!

वे दोनो वहाँ ब्रिटिश ताज के प्रतिनिधि रूप मे मौजूद होते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के अधिकार और सम्मान को दी गई इस चुनौती को चुपचाप कैसे बर्दाश्त कर जायें? चुपचाप महाराजा की इस धृष्टता को समर्थित कर राजनीति के गुडो को क्योंकर प्रोत्साहित करें? "यदि वर्षो से राजगद्दी का सुख भोगते हुए महाराजा को सुख और सम्मान से अरुचि हो चली हो तो भाग कर जहाँ जाना चाहता हो, चुपचाप वहाँ चला जाय अभागा! उसके बेटे को हम गद्दी पर बैठा देंगे! लेकिन मनमानी करने का यह अधिकार उसे दिया किसने? यह तो एक प्रकार का खुला विद्रोह है उसका?"

एन्थोनी का मन इस प्रकार के विक्षुब्ध तर्क-वितर्कों से आन्दोलित हो रहा था। पर महारानी अपने किये-कराये पर पानी फेरने को तैयार न थीं। उनके सामन्ती अहकार और स्वाभिमान-भावना को इस क्षण की परिस्थिति जैसे व्यग-भरे नेत्रों से देख-देख कर मजाक उडा रही थी! सामान्य जनता के स्वाभिमान का स्तर भी सामान्य होता है। पर वे ठहरीं मणिपुर की बड़ी महारानी! अपनी गुलामी की यह निकृष्टतम स्थिति उन्हे बड़े वेग से महसूस होने लगी। पर थी लाचारी! विद्रोह का रंचमात्र भी संकेत या प्रदर्शन कम खतरनाक न था। अपने बेटे को राजगद्दी पर अपनी आँखो बैठते देखने की मातृ-जीवन की सर्वोच्च आकांक्षा भी खतरे में पड़ सकती थी। महाराजा से गद्दी त्याग कराने में अपनी इस आकांक्षा की पूर्ति वे स्पष्ट देख रही थीं। आखिर वे

सामन्त-पुत्री थीं ! और सामन्तों की परंपरागत महत्त्वाकांक्षा के साधक कूटनीति के षड्यन्त्रों का संस्कार उनके रक्त में भी कूट-कूट कर भरा था।

सो, अब कूटनीतिक चतुराई के लहजे में विनय-भरे स्वर में एन्थोनी से वे बोलीं—"हम कभी भूल नहीं सकते प्रेसीडेंट साहब, कि हम ब्रिटिश राजमुकुट के वफादार सेवक हैं, वफादार प्रजा हैं ! आप स्वयं बड़े विद्वान हैं ! आपकी समझ बहुत गहरी है ! आप स्वय समझते हैं कि जहाँ गहरी वफादारी होती है वहीं गहरी आत्मीयता भी होती है ! हम ब्रिटिश शासन की प्रजा हैं ! हमारे हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार राजा या सम्राट् का स्थान पिता के तुल्य होता है और प्रजा का सन्तान के तुल्य ! पिता और सन्तान की आत्मीयता बड़ी ही गहरी होती है ! और उसी गहरी आत्मीयता के नाते सन्तान अपने पिता की सपत्ति और अधिकार को अपनी ही वस्तु समझती है ! सन्तान यदि कोई ऐसा-वैसा सौदा कर ले जो पिता को पसन्द नही तो कम-से-कम सन्तान के सम्मान का ही ख्याल करके पिता उसको मान जरूर लेता है ! क्योंकि सन्तान का सम्मान पिता के सम्मान से भिन्न नहीं होता ! आप यहाँ ब्रिटिश राजमुकुट के प्रतिनिधि के रूप में हमारे लिए पिता के तुल्य हैं प्रेसीडेंट साहब ! यदि हमसे कोई भूल हो भी गई हो तो हमारे सम्मान को स्वय निज के और स्वयं ब्रिटिश राजमुकुट के सम्मान-तुल्य समझ कर ही हमारे सौदे-समझौते का सम्मान आप अवश्य करेंगे ! क्योंकि समझौते से मुकर जाने जैसा अपमान एक मनुष्य के लिए और हो नहीं सकता ! यदि संभव होता, अपना हृदय चीर कर अपनी वफादारी का सच्चा सबूत आपको दे देती ! क्योंकि वफादारी का एकमात्र स्थान हृदय होता है प्रेसीडेंट साहब !"

चापलूसी का जादू सभी जादुओं से बढ़ कर होता है। पत्थर को भी मोम बना देने की क्षमता से परिपूर्ण ! कुछ क्षण पहले अचानक पत्थर-बने एन्थोनी के चेहरे को अब धीरे-धीरे मोम बनते महारानी ने

लक्ष्य किया। उस मोम को पिघलाने के विचार से उसमें जैसे माचिस की जलती तीली लगाते हुए वे फिर बोलीं—"आप ब्रिटिश जाति में उत्पन्न हुए हैं प्रेसीडेंट साहब! और ब्रिटिश जाति की उदारता विश्व-विख्यात है! इसी कारण 'डेमोक्रेसी' जैसी उदार राजनीतिक विचार-धारा भी सर्वप्रथम ब्रिटिश जाति मे उत्पन्न हुई, और सर्वप्रथम उसे व्यावहारिक रूप भी प्राप्त हुआ 'ग्रेट ब्रिटेन' मे! आप लोगो की उदारता मे हमारा विश्वास दिनोदिन बढ़ता जा रहा है! इस विश्वास का सबूत मुझे कल भी मिल चुका है! और विश्वास की उसी दृढ़ता को लिये हुए आज भी मै आपके दरबार मे हाजिर हुई हूँ! मुझे पूर्ण विश्वास है, निराश नही लौटूँगी! मै आँचल फैला कर यह भीख माँग रही हूँ कि मणिपुर-नरेश के हस्ताक्षर का अपमान आप न करेंगे! नही ही करेंगे!!"

मोम पिघल चला। एन्थोनी के चेहरे पर मुसकान की आभा चमक उठी। अपने सिगार को मुँह के एक किनारे व्यवस्थित करते मुसकाते हुए वह बोला—"आप किसी स्वतन्त्र देश में, जहाँ स्त्रियो को भी पुरुषो के बराबर दर्जा हासिल हो, जन्म ले कर निश्चित रूप से राजदूत बन सकती थीं अथवा 'आनरेबल मिनिस्टर' महारानी साहब! आपकी बुद्धि और समझदारी पर मैं सचमुच चकित हो चला हूँ! लेकिन जल्दबाजी में किया गया यह समझौता बिलकुल ठीक नहीं हुआ! उन बागियों की सारी माँगें मान लेना राजनीतिक दृष्टि से बड़ी गहरी भूल हो गई है आप लोगो से! आखिर सरकार की 'प्रेस्टिज' भी तो बहुत माने रखती है महारानी साहब? इस प्रकार तो सरकार का दबदबा ही खत्म हो चलेगा! और शासन विना दबदबे के कभी हो नहीं पाता! कायम रह नहीं पाता!"

"लेकिन मैं तो पहले ही निवेदन कर चुकी हूँ कि महाराजा का 'प्रेस्टिज' भी तो आपका अपना प्रेस्टिज है प्रेसीडेंट साहब! जो कुछ

भूल हमसे हो गई है उसे मैं सविनय स्वीकार करती हूँ ! किन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि हमारी भूल को आप अपनी भूल समझ कर महाराजा के हस्ताक्षर का अपमान न होने देंगे !"

सिगार का एक हलका कश ले कर पुनः मुसकाते हुए एन्थोनी ने जवाब दिया—"अपमान की तो कोई खास बात दिखाई नहीं दे रही महारानी साहब ! अभी 'हिज हाइनेस' (महाराजा) की मंजूरी की खबर बाहर तो गई नहीं ? आपके ही कहे-अनुसार उन औरतों को भी अभी खबर नहीं दी गई ? फिर तो मामला अभी बिलकुल घरेलू है ! और घर में सलाह-मशबिरा करके उसमें रद्दोबदल की अभी काफी गुंजाइश भी है ! मणिपुर-सरकार की यह भी मामूली उदारता न होगी यदि उन दो भगोड़े कैदियों की गिरफ्तारी का 'वारंट' रद्द किये जाने की माँग को छोड़ शेष सभी माँगो को स्वीकार कर लिया जाय ?"

महारानी को अब काफी आशा बँधी। अब मामला केवल एक माँग पर अटका रह गया। लेकिन उन्हें मालूम था कि इस मामले का हल हुए बिना उस उदारता का कोई मूल्य नहीं। क्योंकि मुक्तावती आखिर कैसे स्वीकार कर सकेगी अपने पति की भगोड़ी स्थिति को, और उसे पुनः गिरफ्तार कर जेल में डाले जाने की संभावना को ? महारानी के सारे किये-कराये पर पानी फिरने की स्थिति तो फिर ज्यों-की-त्यों मौजूद रह गई ? फिर इतना दीन बन कर गिड़गिड़ाने का लाभ क्या रहा ? उनमें और सफलता के बीच अब केवल बाल बराबर का अन्तर ही तो रह गया है ! लेकिन वही सूक्ष्म अन्तर अब 'प्रेस्टिज' और राजनीतिक स्वार्थ के प्रश्न पर जैसे सुदृढ़ चट्टान बन कर खड़ा था !

अब महारानी ने इस चट्टान को भी चतुराई के बारूद से उड़ा देने का निश्चय किया। कूटनीतिक लहजे में वे फिर बोलीं—"आपका कथन सोलह आने सही है प्रेसीडेंट साहब ! आखिर मैं भी एक कुलीन राजघराने की कन्या हूँ ! मणिपुर-नरेश की सहधर्मिणी ! अपने रक्त

और पद-प्रतिष्ठा का संस्कार और अहंकार ही मार्क्स और मार्क्सवादियों से घृणा करने की शिक्षा हमें देता है ! उन दो भगोड़े मार्क्सवादियों के लिए हमारे हृदय में सिवा घृणा के और हो ही क्या सकता है ? किन्तु प्रश्न अभी इस परिस्थिति से निबटने का है ! परिस्थिति अब राजनीतिक बन चुकी है ! मणिपुर की महिलाएँ अब संघटित हो कर मोर्चे पर आ चुकी हैं ! आपको मालूम होगा ही कि यहाँ की महिलाएँ भारत के अन्य प्रान्तो की महिलाओं की तरह दब्बू या डरपोक नहीं हैं ! यदि इस एक प्रश्न को ले कर समझौते मे बाधा आ खड़ी हुई तो वे सब-की-सब राजनीतिक लहजे में सोचना और आचरण करना आरंभ कर देंगी ! क्योंकि अभी उनके पेट मे भूख की आग जल रही है ! फिर परिस्थिति और भी खतरनाक हो उठेगी ! इन महिला विद्रोहियों को दबाने और कुचलने के लिए सरकार की ओर से किये गये सारे बल-प्रयोग तब न केवल मणिपुर-राज्य के मुँह को ससार मे काला करेंगे, बल्कि स्वयं ब्रिटिश शासन के मुँह को भी ! और यह भी निश्चित ही समझिए कि उन दो भगोड़ो की गिरफ्तारी का वारट रद्द कराये विना वे किसी भी सूरत में समझौते के लिए तैयार न होगी ! क्योकि उनकी नेत्री मुक्तावती है ! और उन दो भगोड़ों मे एक स्वयं उसका पति है ! पत्नी के लिए पति का मूल्य क्या है, मै स्वय एक पति की पत्नी होने के नाते इसे खूब महसूस करती हूँ प्रेसीडेट साहब ! इसलिए इस समस्या से फिलहाल निबटने का एक सुझाव आपकी सेवा मे मैं पेश कर रही हूँ ! फिर तो साँप भी मर जायगा, और लाठी भी टूट न सकेगी !"

"सुनाइए !"—एन्थोनी ने तनिक कौतूहलपूर्ण हो कर झट आदेश दिया।

और महारानी ने एक बार सतर्क नेत्रों से अगल-बगल देख धीमे स्वर में कहा—"मेरी राय है प्रेसीडेंट साहब, कि फिलहाल उनकी सारी माँगे स्वीकार कर ली जायँ। और उन माँगों को पूरा करने का काम

भी शीघ्र आरंभ कर दिया जाय। इस प्रकार यह धधकती हुई आग बहुत शीघ्र शान्त हो चलेगी। प्रजा का विश्वास हमें शीघ्र प्राप्त हो जायगा। और तब कुछ दिन बाद उन दो भगोड़ों को दुबारा गिरफ्तार करके जेल में बन्द कर दिया जाय। तब उन्हें गिरफ्तार करना भी आसान बन जायगा। श्राद्ध-कर के विरुद्ध आरम्भ किया गया आन्दोलन मूलतः धार्मिक था। मणिपुर की जनता बड़ी ही धर्म-निष्ठ ठहरी! इसी कारण इस आन्दोलन को इतना बल प्राप्त हो सका। हमारी गलती ने व्यर्थ मे इस आन्दोलन को इस प्रकार बढ़ने दे कर राजनीतिक रूप ग्रहण करने दिया! किन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मणिपुर की धर्म-प्राण जनता उन दो नास्तिक मार्क्सवादियों की दुबारा गिरफ्तारी पर उत्तेजित न हो सकेगी! प० कृष्णमाधव पर जेल मे गाँधीवाद का रंग जरूर चढ़ गया है, किन्तु वह नास्तिक नहीं बना। और उसके साथ ठीक ढग से व्यवहार करने पर उसको अपने पक्ष मे जीता भी जा सकता है। आदमी बुरा नहीं है। किन्तु यदि अभी इस एक प्रश्न को ले कर 'प्रेस्टिज' के झमेले में पड़ कर हमने समझौता न करने की गलती दुहराई तो समझ रखिए कि मणिपुर में दिनों-दिन उन दो भगोड़ों का प्रभाव बढ़ने के साथ ही 'मार्क्सवाद' का प्रभाव भी बढ़ता जायगा! महिलाएँ तक प्रभावित होने से बच नहीं सकेंगी! फिर परिणाम बिलकुल उलटा होगा! बिलकुल घातक! जरा सोच लीजिए आप!"

एन्थोनी को महारानी का यह विश्लेषण बड़ा तगड़ा लगा। बिलकुल सारयुक्त! 'स्त्रियाँ स्वभावतः कूटनीतिज्ञ होती हैं' इस मान्यता में उसका विश्वास मानो दृढ़ हो गया। मन-ही-मन संकोच भी हुआ। क्योंकि राजनीति और कूटनीति की शिक्षा प्राप्त करके स्वयं जीवन भर उस रंग में रँगे रहने के बावजूद उसे लगा जैसे इस महिला के मस्तिष्क के समक्ष उसका अपना मस्तिष्क बिलकुल छोटा है। लेकिन बड़े लोगों

मे मूर्खता का बोध हठधर्मिता को भी जन्म देता है। किन्तु महारानी के विनयपूर्ण गिड़गिड़ाते लहजे ने उस हठधर्मिता को उभरने नहीं दिया। बल्कि वह खूब खुश हो कर बोला—"सचमुच आपकी बुद्धि की पैठ बड़ी गहरी है महारानी साहब! मै इस नेक सलाह के लिए बहुत, बहुत खुश हूँ आपसे! आप जैसा कहेंगी वैसा ही होगा अब! लेकिन अफसोस कि आपके होते हुए भी शुरू का यह छोटा-सा आन्दोलन इतना तूल पकड़ कैसे गया? और आपने श्राद्ध-कर जैसे बेहूदे कानून को बनने देने से 'हिज हाइनेस' को रोका क्यों नहीं?"

महारानी को अपने 'मिशन' मे विजय मिल गई। चेहरा खिल उठा। विनय-भरे स्वर मे बोली—"क्या कहूँ प्रेसीडेंट साहब! राजमहल की स्त्रियो के षड्यन्त्रो को आप स्वय समझते होगे! उन दिनो मेरे पति मुझसे काफी दूर हो चले थे! और उन दिनों मेरी समझ मे भी कोई ऐसी बात आ नही सकी थी! यह तो बिगड़ती हुई परिस्थिति ने ऐसा सोचने को मजबूर कर दिया! नहीं तो आप लोगों की समझ के मुकाबले मेरी समझ की हस्ती ही क्या है? मै तो एक अबला हूँ! परिस्थितियाँ ही मूर्ख मनुष्य को भी बहुत कुछ सिखा देती हैं! यह भी आपकी महान उदारता ही है कि मुझ जैसी मूर्ख अबला की इस तुच्छ सलाह का इतना सम्मान आप कर रहे हैं! यदि आपकी दया से सारी माँगे स्वीकार कर ली गई तो निश्चित जानिए कि मणिपुर के इतिहास मे आप जैसे उदार और बुद्धिमान प्रेसीडेंट का नाम स्वर्णाक्षरों मे लिखा जायगा! सारी ब्रिटिश जाति की उदारता के प्रतीक रूप मे आप याद किये जायेंगे! आज से मणिपुर मे आपकी, ब्रिटिश जाति की और ब्रिटिश साम्राज्य की जय-जय-कार होगी प्रेसीडेंट साहब! आप विश्वास रखे!"

प्रेसीडेंट का हृदय इस चापलूसी के नशे में खूब झूम उठा। और झट उठ कर खड़े होते हुए बोला—"तो चलिए मिस्टर नेल्सन के

असली कुंजी तो वहीं है न ? आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अब आपकी ओर से कुंजी मैं घुमाऊँगा ! ताला खोल कर रहूँगा ! आपकी सफलता निश्चित है ! हुजूर वायसराय भी हमारे किये फैसले को स्वीकार कर लेंगे, मेरा दृढ़ विश्वास है !"

इतना कह कर अल्फ्रेड एन्थोनी मुँह में सिगार लगाये अपनी कार पर महारानी को बैठा कर पोलिटिकल एजेंट के बँगले की ओर चल पड़ा।

(४६)

उधर राजमहल के मैदान में महिलाओं का अखड कीर्तन चालू था। वर्षा बन्द हो चुकी थी, पर सारा मैदान पानी और कीचड़ से भर गया था। उन महिलाओं के कपड़े व शरीर भी कीचड़ से लथपथ हो चले थे। जैसे वे अभी-अभी धान के खेतों में रोपनी से निबट कर आई हों ! चेहरों पर भूख की उदासी थी, पर हृदय में उसी भूख की ज्वाला से उत्पन्न दृढ़ संकल्प ! लेकिन फिर भी वे इस परिस्थिति से जल्द छुटकारा पाना चाह रही थीं। कुछ का सकल्प भी शिथिल होने लगा पड़ा था। और कुछ तो प्रत्यक्ष हिंसा-कार्य के लिए भी उतावली होने लगी थीं। यद्यपि अप्रत्यक्ष हिसा के भाव से सबके मन आन्दोलित हो चुके थे। क्योंकि महाराजा के लिए किसी के मन में न प्यार था, न श्रद्धा थी। थी केवल घृणा की सुलगती हुई आग ! और जहाँ घृणा है वहाँ हिंसा भी। भले ही वह प्रत्यक्ष हिसा का रूप न ले सके।

मुक्तावती अपनी सहयोगी सखियों के साथ भीड़ में घूम-घूम कर सबको ढाढ़स बँधा रही थी। चन्द्रावत की माँ भी उनसे जा-जा कर कह रही थीं—"क्या हुआ यदि दो-चार दिन न भी खाया जाय ? व्रत ही सही ! श्रीगोविन्दजी का मन्दिर तो है ही यहाँ ! आखिर हम कई व्रतों में दो-तीन दिन तक उपवास तो रखती ही हैं ? मरना तो है ही एक दिन !

भूख से घर मे तडप-तडप कर मरने के बजाय श्रीगोविन्दजी के दरबार मे भूख से मरने पर कहीं ज्यादा पुन्न होगा ! जन्म-मरण के झमेले से मोक्ष मिलेगा ! और फिर दुनिया भी तो जानेगी कि हम यहीं मर गये ? तब महाराजा का मुँह खूब काला होगा ! हम सब के मरने का पाप उसे ले डूबेगा ! वह खुद तड़प-तड़प कर मरेगा !"

उस वृद्धा के साहस और उत्साह पर सब चकित थीं। और उस वृद्धा के शब्द उनके शिथिल होते साहस में जैसे प्राण फूँक देते। चन्द्रावत की माँ को लक्ष्य कर वे आपस में बातें करतीं—"देखो तो बुढ़िया की हिम्मत और धीरज को ! इकलौता बेटा बरसों से जेल मे पड़ा रहा ! और अब जेल से भाग कर जाने कहाँ लापता हो गया ! मगर फिर भी बुढ़िया के मुँह पर उदासी की कोई रेख नहीं !" और तब कोई दूसरी बोलती—"बहादुर बेटे की बहादुर माँ है बहनो ! बेटा हाकिम बना ! और फिर गरीबों की खातिर खुद गरीब बन गया ! दुनियाँ में कितने ऐसे मानुस होंगे जो हाथ में आये हुए धन को लुटा दें ? फेंक दें ? सचमुच में वह मानुस नहीं देवता है, देवता ! जोगी, महात्मा !" फिर कोई मुक्तावती को लक्ष्य कर के बोलती—"राज-कुल में पैदा हुई बेचारी ! रूप-गुन से भरी हुई ! मगर सारा राजसी सुख त्याग कर अपने गरीब पति के घर आ गई ! एक बार मन से जिसे पति मान लिया, उसके लिए सदा 'सत' पर अटल रही ! गरीबों के लिए लड़ी और जेल गई ! और आज भी फूल-सी सुकुमारी यह लड़की यहाँ भूखी-प्यासी हमारे लिए ही तो लड़ रही है !" और तब दूसरी आवाज बोल उठी—"यह पिछले जन्म की महासती थोइबी है, थोइबी बहनो ! थोइबी भी तो राजा की लड़की थी ! मगर उसने भी जो एक बार मन से एक गरीब को पति मान लिया तो अन्त तक अपने 'सत' पर अटल रही ! इसी की तरह वह भी तो अपने गरीब पति के घर चली गई थी ? यह धन्न भाग है हम लोगों का कि इस कलिजुग में ऐसी सती के दर्शन

यहाँ हो रहे हैं ! इस सती का कोई भी वचन टालना किसी घोर पाप से कम न होगा बहनो ! अगर वह कहे कि यहीं सब भूख से मर जाओ तो हमें आँख मूँद कर मर जाना चाहिए, मगर इस सती का वचन टालना न चाहिए !" और फिर दूसरी आवाज भी बोल उठी—"चन्द्रावत सिंह किसी देवता का अवतार है, और यह राजकुमारी कोई देवी है ! धन्न भाग उस बुढ़िया के जो देवी-देवता की सास और माँ बनने का नसीब मिला उसे ! बुढ़िया जब कभी इधर आती है, मैं तो उसके चरन छूती हूँ, चरन !"

बीच-बीच में कुछ मिनट के लिए कीर्तन के स्वर शान्त हो जाने पर इस प्रकार का आपसी वार्तालाप आरभ हो जाता। लेकिन फिर अब कीर्तन के सामूहिक स्वर से आकाश गूँजने लग पड़ा—

"प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् !......"

मृदग, झाल और करताल के स्वर उसमें प्राण भरने लग पड़े। लेकिन उन प्राणों से करुणा और क्रोध जैसे एक साथ मुखर हो रहे थे। महाराजा का दिल अब बदल चुका था। वे महल में बिछौने पर पड़े-पड़े कीर्तन के स्वर सुन रहे थे। पहले उनके दिल को क्रोध छुआ करता था, किन्तु अब करुणा छू रही थी। आँखों से प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप के आँसू बह रहे थे। वे बड़ी उत्कंठा से अपनी बड़ी महारानी के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। पूरे हृदय से उनकी सफलता की कामना कर रहे थे। जैसे कीर्तन के स्वर अब उनके हृदय में बिंध-बिंध कर उन्हें अपने पापों की याद दिला-दिला कर उन्हें बेचैन किये दे रहे हों ! वे जल्द-से-जल्द इस बेचैनी से छुटकारा पाना चाह रहे थे।

कीर्तन चालू ही था कि महारानी की कार की 'हार्न' फाटक के पास सुनाई दी। महारानी वहीं कार से उतर कर कीर्तन-गोष्ठी की ओर द्रुत गति से चल पड़ीं। साफल्य का उल्लास जैसे अंग-अंग में समा चुका था। चेहरे पर उस उल्लास की आभा स्पष्ट हो चली थी। कीर्तन-

गोष्ठी मे पहुँचते ही वे मुक्ता का हाथ पकड़ मुसकाते हुए बोल उठीं—"अब बन्द करो कीर्तन ! तुम लोगो की अखंड आराधना ने गोविन्दजी को बहुत शीघ्र प्रसन्न कर दिया !" फिर माँगो की स्वीकृति का कागज उसके हाथ मे थमाते हुए—"ले ! पढ़ इसे ! सम्हाल इसे ! तुम लोगों की सारी माँगे स्वीकार कर ली गई ! अब तो जरा खुश हो जा ! अब तनिक मुसकरा तो दे बिटिया ! मेरा मुँह मीठा कर !"—कहते हुए उन्होने मुक्ता को अपनी स्नेहभरी भुजाओ मे बाँध लिया। उसका मुँह चूम लिया।

कीर्तन बन्द हो गया। विद्युद्-वेग से विजय का समाचार सारी भीड़ मे फैल गया। भूख की व्यथा, निराशा और उदासी पर विजय का उल्लास यों मुखर हो उठा जैसे बादलो से भरे आकाश मे रह-रह कर बिजली चमकने लग पड़ी हो। 'मणिपुर-महारानी की जय' की सामूहिक ध्वनि से आकाश गूँज उठा।

महारानी भी झट इस उल्लास में सम्मिलित हो अपनी दोनों भुजाएँ उठा कर खूब जोर से बोल उठीं—"मणिपुर की वीर बेटियो की जय !!! मणिपुर की वीरांगनाओ की जय !!! महासती मुक्तावती की जय !!!"

सबने इन नारों को दुहरा कर आकाश को गुँजा दिया। लेकिन मुक्ता मारे लज्जा के लाल हो उठी। और तोम्बी झट उसे गोद में उठा कर तनिक उछालती सस्नेह उपालभ के स्वर मे बोल उठी—"तू लजाती क्यो है री ? कौन है आज तुझसे बढ़ कर महासती ? और किस नारी को जीवन में ऐसी शानदार विजय प्राप्त हुई होगी कभी ?"

मुक्ता ने तोम्बी की पकड़ से अपने को छुड़ा लिया। दूसरी सखियाँ भी अब हास-परिहास करने लगीं। और महारानी झट मुक्ता का हाथ पकड़ भीड़ से उसे खींचते हुए बोलीं—"एक और खुशखबरी भी सुनाऊँ तुझे ! अब मैं मणिपुर की महारानी नही रह गई, और न तेरे चाचाजी मणिपुर के महाराज ! अब हम दोनों 'नवद्वीप' विदा हो रहे

हैं सदा के लिए !"—कह कर उन्होंने महाराजा द्वारा सिंहासन के परित्याग का कागज भी उसके हाथ में थमा दिया।

मुक्ता की आँखों में एकाएक अश्रु उमड़ पड़े। इन आँसुओं में न क्रोध था, न विजय की प्रसन्नता! उनमें मानव-हृदय का स्वाभाविक जीवन्त प्रतिफलन था! स्वाभाविक स्पन्दन!

और महारानी पुनः उसे महल की ओर खींचते हुए स्नेह-गद्‌गद स्वर में बोलीं—"अब अपने चाचाजी को अन्तिम प्रणाम तो कर ले! उनसे शुभाशीर्वाद तो ले ले बेटी!"

उपसंहार

(क)

"चेक्‌ला पाइखरबद पोन्‌बि हनजिल लक्‌पदा
चेक्‌लागी काइदोंगफम्‌ खङ्‌दुना
पोन्‌बि चडाओनरे !"

"'चेक्‌ला' (नर-पक्षी) के उड जाने के बाद जब अचानक वहाँ 'पोन्‌बि' (मादा-पक्षी) आई तो अपने प्रिय चेक्‌ला को न पा कर वह वियोग की व्यथा में तडपने लगी !"—इस मणिपुरी लोक-गीत के स्वर अब मुक्तावती और तोम्बी सना के हृदय में अनजाने प्रविष्ट हो अपने अर्थमात्र के साथ मुखरित होने लगे। जैसे हृदय के सरोवर मे छिपा सोया जल-जन्तु अचानक जाग कर तनिक जोर से चहलकदमी करने लग पड़ा हो। एक लबे और कठोर सामाजिक सघर्ष मे बडी शानदार विजय उन्हे मिल चुकी थी। लेकिन इस सघर्ष मे तो वे शामिल हुई थी अपने प्रियतमो के आदर्श के शानदार पथ का अनुसरण करते हुए उन्हे पूर्ण रूप से प्राप्त करने के उद्देश्य से! जैसे सीता ने अपने राम के कठोर जीवन-पथ का अनुसरण किया था। सघर्ष जीने का साधन होता है, साध्य नही। सघर्ष कोई करता है जीवित रहने के उद्देश्य से, जीवन की किसी महान आकाक्षा की उपलब्धि के उद्देश्य से! हर प्राणी जीवित रहने के उद्देश्य से संघर्ष करता है, पर इतर प्राणियो की अपेक्षा मानव-जीवन की सार्थकता निहित होती है किसी महत् उद्देश्य की परिपूर्ति मे! चन्द्रावत और शैलेन्द्र के जीवन का मुख्य उद्देश्य बन चुका था मणिपुर की धरती से सामन्ती अत्याचार का समूल विनाश। मुक्ता और तोम्बी ने उनके इस महत् उद्देश्य के एक विशेष अध्याय को पूरा

करने में संपूर्ण आत्मा से सहयोग दे कर सामन्ती शासन के उन्नत गर्व को धूल चटा दी थी। इस संघर्ष में मणिपुर की नारी-शक्ति ने मानो नारीत्व के गौरव की पताका को हिमालय के सर्वोच्च शिखर पर फहरा दिया। किन्तु मुक्ता और तोम्बी के वे दोनों, यदि अपनी आँखों से इस विजय-पताका को लहराते आज देख पाते! यदि वे दोनों, अपनी उन दोनों के विजय-गर्व-गुम्फित चेहरे की झुकी पलकों में अपने प्रियतमों के शानदार स्वागत की लहरियों को खेलते स्वयं अपनी आँखों से पढ़ और परख पाते!

वे दोनों अभी-अभी ही कुछ घंटे पूर्व महिलाओं के विशाल जुलूस का नेतृत्व करते हुए जेल के द्वार पर पहुँची थीं। उन मुक्त बन्दियों को स्वागत-समारोह के साथ वापस लाने के निमित्त! उन बन्दियों में शैलेन्द्र और चन्द्रावत का अभाव सबकी आँखों में खटक रहा था। लग रहा था जैसे बिना दूल्हे की बरात जा रही हो! प० कृष्णमाधवजी रो पडे थे। मुक्ता और तोम्बी के झुके सिरों को हर्ष-विह्वल वात्सल्यभरे ओठो से चूमते हुए व्यथा-कुंठित स्वर में वे बोले थे—"आह! इस क्षण यदि वे दोनों पुरुष-सिंह अपनी विजयिनी महासतियों को इस रूप में देख पाते! वे हमारे बीच अभी होते!"

सबकी आँखों में आँसू लहरा उठे थे। कितने कीमती थे वे आँसू! वे दोनों पंछी जेल के पिंजरे से उड़ कर अदृश्य हो चुके थे। जेल के द्वार के सम्मिलन-स्थल पर वे दोनों 'पोनूबियाँ' भी अपने उड़े 'चेकूलाओं' के विरह में मन-ही-मन तड़प उठी थीं। उनकी झुकी पलकों में भी व्यथा लहरा उठी थी। पर बड़े संयम से उन दोनों ने व्यथा की उठती लहरों को हृदय-सागर में डुबो दिया था ताकि सबके सामने उनके निजी जीवन का वह दर्द उभर कर आनन्द की उन लहरों पर छा न सके।

बाहर से आई महिलाओं को अपने-अपने घर वापस जाने की जल्दी थी। जुलूस को देख कर ही वे अपने गाँवों को लौट चलीं। मुक्ता

और तोम्बी की सखियाँ भी अपने-अपने घर जा कर भोजनादि में उलझ पड़ीं। आज सबके लिए मानो एक विशाल व्रत की अपूर्व पारणा थी। इस विजय की खुशी मे एक विशाल उत्सव और सहभोज मनाने का निर्णय तब तक के लिए स्थगित रखा गया जब तक कि चन्द्रावत और शैलेन्द्र का पता लगा कर उन्हे ससम्मान वापस नही ले आया जाता। मुक्ता और तोम्बी भी इस व्रत की पवित्र पारणा से निबट कर एक ही पलग पर सट कर लेटी हुई विश्राम कर रही थीं। लेकिन रह-रह कर उन दोनो की याद उन दोनों को सता रही थी। एकान्त स्थल था। विजय का उल्लास तनिक धीमा पडने लग पडा था। कठोर सघर्ष का वह नशा अब समाप्त हो चला था। अब उस नशे पर दाम्पत्य-जीवन की आकांक्षा का नशा तनिक वेग से उभरने लगा। आकांक्षा की नदी मानो हृदय-हिम-सरोवर के गर्भ को फोड़ कर बडे वेग से निकलना चाह रही हो।

जीवन मे रस प्राप्त होता है सुकोमल भावनाओ से, कठोर भावनाओं से नही! पर्वत पर हरियाली का सौन्दर्य मुसकराता है उसमे निहित जल-राशि की सरसता से, चट्टानों की रूक्षता से नही! मानव का जीवन उल्लासमय विकास की ओर अग्रसर होता है सुखपूर्ण भावनाओ के रथ का सहारा पा कर। मुक्ता और तोम्बी की समस्त भावनाओ की डोर जुड़ी हुई थी चन्द्रावत और शैलेन्द्र के जीवन-रथ के साथ। इस रथ की गति ही मानो उन भावनाओं को गति प्रदान किया करती। उत्तेजित किया करती।

नारी मे बलिदान और समर्पण की भावना जितनी तीव्र होती है, उतनी ही प्राप्ति की आकांक्षा भी। प्राप्ति की आकांक्षा में वह बड़े-से-बड़ा त्याग कर सकती है, अखड आत्म-समर्पण भी। माँ के रूप मे सन्तान के लिए वह हर प्रकार का त्याग करती आई है, और प्रेयसी के रूप मे अपने प्रिय के लिए एकान्त आत्म-समर्पण! क्योकि इसके द्वारा वह सन्तान और पति को पूर्ण रूप से आत्मसात् करना चाहती है,

उनपर पूर्ण रूप से अधिकार! यद्यपि चन्द्रावत और शैलेन्द्र पर उनका पूर्ण आत्मिक अधिकार स्थापित हो चुका था, पर अब वे शारीरिक अधिकार के लिए भी उतावली होने लगीं। क्योंकि विना शारीरिक अधिकार के आत्मिक अधिकार वैसा ही होता है जैसा कल्पना के सहारे आकाश में बनाया गया महल! अपने पंखों के सहारे आकाश में उडता हुआ पंछी भी हमेशा उड़ता ही नहीं रह सकता। उसे विश्राम-स्थान की आवश्यकता होती है, घोंसले की, दाम्पत्य-जीवन की!

मुक्ता और तोम्बी एक-दूसरी की पूरक थीं मानो। मुक्ता स्वभावतः गंभीर थी और तोम्बी निरन्तर परिहास-चंचल। मानो एक थी सागर की गभीरता और दूसरी सागर की उछलती हुई लहर। सघर्ष के कठोर क्षणों में भी तोम्बी परिहास की लहरो मे सखियों को उछाल-उछाल कर उनमें जीवन भरा करती मानो। मानो सघर्ष की कठोरता को भी परिहास की तरंगों मे बहा कर विनष्ट करने का सतत प्रयास वह किया करती। गंभीर और दर्दभरी समस्या को भी परिहास के लहजे में ही उपस्थित करने का जैसे सहजात स्वभाव हो उसका।

"अब मैं अपने दादा को ढूँढ़ने निकलूँगी भाभी!"—मुक्ता के कान के निकट मुँह ले जा कर तोम्बी ने मुसकाते हुए उसी परिहास-तरल लहजे में कहा—"नहीं तो मुझे भय है कि मेरी भाभी कही भाग न जाय! और बाद में मेरे दादा मुँह ताकते ही न रह जायँ!"

और मुक्ता झट उसकी गाल पर प्यार की चपत लगा आँखें तिरछी कर मुसकाते हुए बोली—"मै तो तुझे ले कर भागूँगी तोम्बी, अपने शैलेन दादा को ढूँढ़ने! और उन्हें ढूँढ़ कर तुझे उनके हवाले करते हुए कहूँगी—'इस लड़की पर अब से कड़ी नजर रखना दादा!'"

और तोम्बी लेटी-लेटी ही मुक्ता के गले से लिपट कर उसका मुँह चूम कर बोली—"और मैं भी कहूँगी अपने दादा से—'मगर अक्ल में भाभी तुमसे बाजी ले गई दादा! तुम तो आखिर जेल से भाग

निकले ! जाने कितनी लाठियाँ खाईं ! मगर मेरी भाभी ने इस चतुराई से आखिरी लड़ाई जीत ली कि, न किसी को लाठियाँ खानी पड़ी, न जेल जाना पड़ा, और जेल का दरवाजा अपने-आप खुल गया ! तुम तो नाहक जेल से भागे दादा ! अब से तुम मेरी चतुर वीर भाभी के जीवन भर दास बन कर रहो ! तभी तुम इस ऋण से उऋण हो सकोगे दादा !' "

मुक्ता हँस कर बोली—"लगता है तू शैलेन बाबू को जीवन भर अपना दास बना कर रखना चाहती है ? बेईमान ! पति भी कही पत्नी का दास बन सकता है, और पत्नी पति की दासी ?" फिर अचानक गभीर हो तोम्बी का हाथ पकड़ अपनी छाती पर रखते हुए—"देख तो पगली ! अनुभव तो कर ! क्या तेरे दादा नहीं हैं यहाँ ? क्या उनके बोल नही सुनाई दे रहे तुझे ? मगर मै तो हमेशा उनके बोल सुना करती हूँ यहाँ ! हमेशा उनसे ही जीवन के पाठ पढ़ा करती हूँ ! वे भाग कर जायेंगे कहाँ मुझसे ? और कहाँ मै भाग कर जाऊँगी उनसे ? न तो मै उनकी दासी, और न वे मेरे दास ! मै तो स्वय वही हूँ जो वे हैं ! और जो मै हूँ वही वे हैं !"—कहते-कहते उसके नेत्रो में जैसे तादात्म्य-बोध के चमकते मीठे आँसू छलक आये ।

तोम्बी भी गभीर हो चली । उसके नेत्र भी सजल हो उठे । लेटी लेटी ही वह मुक्ता के गले से लिपट गई । मानो मुक्तावती के वे वाक्य उसके अपने हृदय के ही वाक्य हो । मानो वे पवित्र उद्‌बोधक मन्त्र हो उसके लिए भी । मानो मुक्ता के मुख से उस मन्त्र-श्रवण ने स्वय शैलेन्द्र से उसका तादात्म्य स्थापित करा दिया हो ! जैसे पवन-सुत हनुमान का अपनी अपार शक्ति के साथ तादात्म्य कायम होता था किसी दूसरे के उद्‌बोधक शब्दों से !

मुक्ता पुनः गंभीर स्वर में बोली—"अरी, क्या मैने उन्हें सस्ते में पाया है जो मै उन्हें छोड़ सकूँगी, और वे मुझे छोड़ सकेंगे ? और

स्वयं तूने क्या शैलेन बाबू को समाज के बाजारू मोल-भाव से पाया है जो तू उनसे भाग सकेगी, और वे तुझसे भाग सकेंगे? अपने को एक-दूसरे में पूर्ण रूप से विसर्जित किये बिना न पति पत्नी को पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है, न पत्नी पति को! अन्यथा दाम्पत्य-जीवन, वैवाहिक विधियों के आडंबर के बावजूद केवल शरीर के सौदे में सीमित हो पवित्रता से वंचित हो व्यर्थ बन जाता है तोम्बी! किन्तु धार्मिक विधि-विधानों के आडंबर से वंचित होने के बावजूद यह पवित्रता तब तक अक्षुण्ण बनी रह सकती है जब तक कि एकात्मता के बीच कोई दरार नहीं पड़ जाती! दरार पड़ने पर या तो पति दास बन जाता है, अथवा पत्नी दासी! क्योंकि सामाजिक मर्यादा की बेड़ियाँ उन्हें दास या दासी बनने के लिए मजबूर किये रहती हैं।

"इस धर्म-प्राण भारतवर्ष मे शताब्दियो से वैवाहिक आडबर के मंच से सतीत्व के उच्चतम आदर्शों और उपदेशो की झड़ियाँ लगती रहने के बावजूद वास्तव मे कितनी सतियों को जन्म दे सका यह देश? धार्मिक आडंबर के क्रूरतम मंच पर शताब्दियों से 'सती-दाह' के क्रूरतम नाटकों के अभिनय होते रहने के बावजूद कितनी सीताएँ और सावित्रियाँ पैदा हो सकीं इस समाज मे? क्योंकि वे सारे विधि-विधान एकपक्षी थे, सारहीन थे! सती-धर्म की बेड़ियों में केवल स्त्रियों को बाँधा गया था, न कि पुरुषों को भी! किन्तु किसी भी प्रकार के कानूनी अथवा धार्मिक बन्धन दाम्पत्य-धर्म को उत्पन्न नहीं कर सकते! क्योंकि धर्म की ही तरह दाम्पत्य-धर्म का सम्बन्ध भी मन से होता है। और मन सबका अपना-अपना होता है! उसकी रुचि अपनी-अपनी होती है! और चुनाव अलग-अलग होते हैं! दाम्पत्य-जीवन के क्षेत्र में अपनी सन्तान के मन की रुचि और चुनाव में माता-पिता द्वारा हस्तक्षेप होते ही उस धर्म में सदा के लिए विकार पैदा हो जाता है! चाहे वह विकार छोटा हो या बड़ा, पर वह पवित्रता को पूर्णतः कायम नहीं रहने देता! शरीर मे कुष्ठ

रोग की तरह !"

मुक्ता आवेश मे बोले जा रही थी, और तोम्बी श्रद्धालु श्रोता की भॉति बड़े ध्यान से सुने जा रही थी। अतः उन दोनों को यह पता भी न चल सका कि उनकी दूसरी सहेलियॉ भी जाने कब वहॉ पहुँच कर द्वार पर खडी हो श्रोता बन चुकी हैं। थम्बाल दूसरी सखियो को ऑखे मार कर चुपचाप खडी रहने का इशारा कर चुकी थी। लेकिन चन्द्रा ने आखिर गला खखास ही दिया। मुक्ता और तोम्बी की एकाग्रता सहसा भंग हो चली। दोनों की ऑखे सहेलियो पर जा टिकीं और सब-की सम्मिलित हॅसी मे क्षण भर पहले की गभीरता बिलकुल खो चली।

थम्बाल अब गभीरता का नाटक करके अपने साथ की सखियों को कनखियाते हुए बाली—"अरी, चली चलो अभी! ये दोनो औरत-मर्द की तरह आपस मे उलझी जाने किस कथा-पुराण मे, किस काम मे मगन हो चली हैं! हमारा यहॉ रहना अभी पाप होगा! अभी इन्हे लेने दो मजे! चलती चलो अभी! फिर थोड़ी देर बाद हम आयेंगी जब इन दोनो का आपस में खूब मन भर जाय!"

और तोम्बी झट पलंग से उछल पड़ी। आगे बढ़ कर थम्बाल को भुजाओं मे कस कर पलंग पर जबरन लिटाते हुए बोली—"हह्! चलती चलो! कहॉ? देखती हूॅ, कैसे भागती है तू!"—कह कर उसके ओठ उसने जबरन चूम लिये।

"तूने तो अभी से 'प्रैक्टिस' शुरू कर दी तोम्बी!"—थम्बाल उसके नीचे पड़ी-पड़ी ही हॅसती हुई बोली—"बगाली बाबू की तो जान ले कर ही छोड़ेगी तू! बड़ी कड़ी पकड़ है तेरी!"

और तब तोम्बी के ऊपर चन्द्रा अपने-आप लुढ़क पडी। बोली—"अरी, ओ बगालिन बहू! आग अगर इतनी जल उठी है तो चलती क्यो नही अब बंगाली बाबू को ढूॅढ़ने?"

मुक्ता ने अब बीच-बचाव किया। पलग से उठ कर तोम्बी का हाथ

पकड़ खींचते, मुसकाते हुए बोली—"सहेलियों को देखते ही इसके प्यार की आग यों भभक उठती है जैसे कच्ची ही चबा जायेगी! मगर तोम्बी हमारी जान है, जान! अगर यह हँस-हँसा कर हमारी पीड़ा को दूर न किया करती तो अन्त तक लड़तो रहने का हमारा उत्साह जाने कब का मिट जाता! यह तुम लोगों को इतना प्यार करती है कि क्या बताऊँ! शब्दों मे बता नहीं सकती!"

इसी समय वहाँ राधे भी आ पहुँची। अब वह सोलह-सतरह की पूर्ण-यौवना बन चुकी थी। शैशव को चपलता और कैशोर का अल्हड़-पन यौवन मे विलीन हो चुका था। उसे आई देखते ही रुक्मिणी ने तोम्बी से मजाक किया—"देख तोम्बी! आ गई तेरी सौत! अपनी सहेलियों को उठा-पटक करने के बजाय अपनी सौत से निबट ले अब!"

राधे लजा गई, लेकिन दूसरी सब हँसने लगीं। और तोम्बी झट आगे बढ़ कर राधे को भुजाओं मे बाँध उसका मुँह चूम कर बोल उठी—"यह तो मेरी सास है! अच्छी बहुएँ सास से नहीं लड़ा करतीं! प्यार करती हैं!" फिर उसकी ठोडी पकड़ कर प्यारभरे स्वर मे—"सासजी! अब चलिए मेरे साथ अपने बगाली बेटे को ढूँढ़ने! क्यों, चलेगी न तू?"

राधे भी अब हँस पड़ी। और चन्द्रा ने आँखें नचाते हुए कहा—"बड़ी दगाबाज है यह तोम्बी! उस भोली बेचारी को जबर्दस्ती सास बनाके ठगना चाहती है! अरी, देखना राधे! कहीं…"

इतने में माँ कमरे में प्रविष्ट हो कर बोलीं—"पडित कृष्णमाधव-जी आ रहे हैं! बेटी मुक्ता, जरा पटिया तो बाहर ला कर फैला दे! बेटी तोम्बी, तू जरा हुक्का तो भर ले! कई जने साथ हैं उनके!"

हास-परिहास के सरस वातावरण पर एकाएक गंभीरता का बोझ पड़ गया। झट सब कमरे से बाहर दालान में आ गईं। कृष्णमाधवजी अब तक पहुँच चुके थे। झुक कर, दाँये हाथ की अंगुलियों से धरती

छू-छू कर उनका अभिवादन वे करने लगी। और कृष्णमाधवजी उल्लास-भरी मुसकान के साथ दॉया हाथ हिला-हिला कर 'मंगल ओयु, मंगल ओयु' कह कर आशीर्वाद देने लगे।

पटिया बिछ चुकी थी। कृष्णमाधवजी पटिया पर अपने साथियो-सहित बैठ उन तरुणियों को संबोधित करते मुसकाते हुए बोले—"मणिपुर की वीर बेटियो! तुम लोगों ने हमारी शुरू की हुई लड़ाई को अन्तिम विजय तक पहुँचा कर ससार के सामने हमारा सिर ऊँचा कर दिया! दुनिया कहती है—'मणिपुर स्त्रियों का देश है!' दुनिया के ऐसा कहने का मतलब जो भी हो, किन्तु हमे अपनी नारी-शक्ति पर कम गर्व नहीं है! मणिपुर को 'चित्रांगदा' जैसी वीरांगनाओं और महासतियो को उत्पन्न करने का हजारो वर्ष पहले सौभाग्य प्राप्त हुआ था! और मणिपुर की उसी वीर पुत्री के गर्भ से 'बभ्रुवाहन' जैसा वीर पुत्र पैदा हुआ था जिसने महाभारत-विजयी अपने महाबलशाली पिता अर्जुन को इसी मणिपुर मे धूल चटा दी थी! मध्य-युग मे इसी मणिपुर ने महासती थोइबी जैसी नारी को भी जन्म दिया! और आज तुम जैसी वीर पुत्रियों को जन्म दे कर इस पवित्र धरती ने सचमुच हमारा मस्तक ऊँचा कर दिया बेटियो!"

अपनी स्तुति के शब्दो से उन तरुणियों के चेहरे सकोच से लाल हो उठे। मस्तक तनिक झुक चले। और कृष्णमाधवजी ने फिर आगे कहा—"अब तुम लोग झटपट तैयार हो जाओ एक मगलमय यात्रा पर प्रस्थान के निमित्त! हमारे वीर नेता चन्द्रावत और शैलेन्द्र सकुशल हैं यह खबर मुझे अभी-अभी ही मिली है! और उनके गुप्त स्थान का पता भी लग चुका है! अब हमारा परम पुनीत कर्तव्य है कि उन दोनों को खूब स्वागत के साथ इम्फाल ले आयें! स्वय उनके पास पहुँच कर अपनी विजय का शुभ सवाद उन्हें सुना दे! अपनी वीर और बुद्धिमती नेत्री मुक्तावती के नेतृत्व की करामात की कहानी भी सुना दे!"

अपने पति के सकुशल होने के शुभ समाचार से मुक्ता के चेहरे पर अचानक उल्लास की लाली यों उभर उठी जैसे पूर्णिमा के चाँद पर उदयकालिक मनोहर छटा ! किन्तु साथ ही मुँह पर की गई अपनी स्तुति की लज्जा से वह लाल भी हो उठी। आँखें उसकी नीची हो चलीं। सकुचित विनीत स्वर में इस स्तुति का प्रतिवाद करती वह बोली—"हम सबके नेता तो आप हैं चाचाजी ! यह जो कुछ हुआ है सब आपके बलिदान, और प्रेरणा, और कौशलभरे साहसपूर्ण नेतृत्व के सहारे ! साहस-पूर्वक सबसे आगे बढ़ कर सब को आप द्वारा मार्ग दिखाने से ! उस मार्ग पर हम जैसे हजारों को खींच लाने से ! यदि किसी एक व्यक्ति को इस विजय का सबसे अधिक श्रेय दिया जा सकता है तो वह केवल आपको चाचाजी ! शेष तो······"

"कहाँ हैं वे ? कहाँ हैं वे दोनो अभी ?"—उन तरुणियो के सामूहिक उत्सुक प्रश्नो के आवरण मे मुक्ता की अप्रतिभ स्थिति जैसे अपने-आप छिप चली। और पं० कृष्णमाधवजी ने मुसकाते हुए झट उन्हें जवाब दिया—"अपने घर मे ही हैं बेटियो ! किन्तु आश्चर्य कि अपने घर के लोगों को भी उनका अब तक पता नहीं है !"

"आप तो गुरुजी, पहेली में बात कर रहे हैं !"—थम्बाल तनिक मचलती हुई उत्सुकताभरे स्वर में बोली—"बताइये न जल्दी ! कहाँ हैं वे ? घर में होते तो क्या घर वालों को पता नहीं होता ?"

"पहेली में नहीं बेटी, सच बता रहा हूँ !"—पंडितजी ने पुनः मुसकाते हुए उसी लहजे में जवाब दिया—"अपने घर मे ही हैं वे ! सकुशल हैं ! लेकिन वेश बदल कर अभी रह रहे हैं ! इसी कारण उन्हें कोई जल्दी पहचान नहीं सकता ! किन्तु घर के लोगों मे कुछ लोग उन्हें जरूर पहचानते हैं ! पर कड़ी चेतावनी के कारण कोई उनका पता किसी दूसरे को नहीं दे सकता !"

पुनः सबके चेहरों पर आश्चर्य की लहरियाँ दौड़ चलीं। थम्बाल

फिर बोली—"तो यहीं कहीं छिपे हैं क्या? घर तो उनका यही है आखिर? फिर आपने उन्हे स्वागत के साथ इम्फाल लाने की बात क्यों कही?" फिर एकाएक मुक्ता की ओर उलहना-भरे नेत्रो से निहार कर—"तुम भी अच्छी रही भाभी! अपनी सखी-सहेलियों से भी इतना छल! उन्हें घर मे छिपा के रखे हुई हो, और हमें अब भी कुछ पता नही?"

मुक्ता स्वय आश्चर्य में पड़ चुकी थी। जवाब मे उसके कुछ कहने से पहले ही कृष्णमाधवजी ठठा कर हँस पडे, और बोले—"अरी, तू मुक्ता पर क्यों नाराज हो पड़ी बेटी? उस बेचारी को भी उतना ही पता है जितना कि तुम लोगों को! इसी लिए तो कहा कि उनके अपने घर मे रहते हुए भी घर वालों को कुछ भी पता नहीं! वे इम्फाल के अपने घर मे नहीं हैं, बल्कि यहाँ से चौबीस-पचीस मील दूर अपने दूसरे घर मे! चलो, तुम लोग झटपट तैयार हो जाओ! आज की रात कहीं रास्ते मे बितायेंगे! परसों कहीं इम्फाल लौट सकेंगे! लेकिन अब भी तुम लोगो को उस स्थान का पता नहीं बता सकता! सीधे वहीं ले जा कर तुम सबको पहुँचा दूँगा! उनसे मिला दूँगा! अभी तनिक धैर्य रखो बेटियो! चलने की तैयारी शुरू कर दो!"

सब बड़ी उत्सुकता और कौतूहल से प्रस्थान की तैयारी में लग पड़ीं।

(ख)

शैलेन्द्र और चन्द्रावत उस रात जेल से भाग कर लुकते-छिपते इम्फाल से लगभग पचीस मील दक्षिण एक गाँव में जा छिपे थे। इसी गाँव में चन्द्रावत की माँ का मायका था। अतः उन्हें छिपने का स्थान बड़ी आसानी से उपलब्ध हो गया। जिस प्रकार प्रकृति ने समस्त मणि-पुर उपत्यका को पर्वत-प्राचीरों से घेर कर सुरक्षित बना दिया है, उसी

प्रकार 'लोकताक' नामक विशाल सरोवर के बीच लगभग दस पहाड़ियों की एक ऐसी दुर्ग-शृंखला-सी बना दी है जिसे देखने पर लगता है जैसे विशाल जल-परिखा से घिरे अनेक हरे-भरे, छोटे-छोटे सुन्दर द्वीप पृथ्वी के गर्भ से उभर कर उसकी छाती पर मुसका रहे हों ! इन्हीं द्वीप-नुमा पाँच-छह पहाड़ियों पर बसे गाँवों के समूह को 'थाङ' नाम से पुकारते हैं जिसकी कुल जन-संख्या पन्द्रह-सोलह हजार से कम नहीं है।

शैलेन्द्र और चन्द्रावत बस्ती से तनिक अलग पहाड़ी की चोटी पर छोटे-छोटे वृक्षों की झुरमुटी एकान्त छाया मे खुली हवा का सेवन कर रहे थे। शैलेन्द्र मुग्ध हो-हो कर सरोवर और सरोवर के मध्य में उन द्वीपों की शृंखला एवं चतुर्दिक् के अभिराम सौन्दर्य को जैसे आँखों से पी रहा था। वर्षा ऋतु के कारण सरोवर का आकार बड़ा विशाल बन चुका था। एक तो वर्षा की विपुल जल-राशि, तिस पर उत्तर की ओर से उपत्यका की समस्त जलराशि को बटोरे, 'इम्फाल' नदी उस सरोवर मे यों प्रविष्ट हो रही थी ज्यों समुद्र मे कोई नदी। लेकिन समुद्र मे नदियों के समागम से अनोखा एक दृश्य भी था वहाँ। समुद्र नदियों को अपने गर्भ मे आसानी से पचा लेता है, पर 'लोकताक' मानो 'इम्फाल' को न पचा सकने के कारण जैसे पुनः उसे ठेल-ठाल कर दक्षिण दिशा की ओर भगा रहा हो ! लोकताक से मिल कर, फिर लोकताक से निकल कर भागती हुई 'इम्फाल' यों प्रतीत हो रही थी जैसे एक पीला मटमैला विशाल अजगर घायल हो कर आँकी-बाँकी गति से बड़े वेग से भागा जा रहा हो ! पर लोकताक उस धृष्ट अनधिकार-प्रवेशी की पूँछ कस कर पकड़े उसे और भी दड देना चाह रहा हो !

सरोवर के किनारे और मध्य में अनेक कमल-वन थे। लाल, नीले और सफेद रंग के कमल। इन्हीं के बीच बहुरंगी कुमुद भी लहरा रहे थे। वर्षा ऋतु के कारण कमल-वन काफी ऊपर उठ आये थे। हवा के झोंकों में लहराते कमल-नालों पर हिलते फूल यों दिखाई दे रहे थे जैसे

शतशः बहुरगी चामरों से जलदेवी वरुण-देव की आराधना मे लगी हुईं हो ! और सरोवर के सुदूर तटो पर धान के लहलहाते हरे खेत जलदेवी की साड़ी की हरी-हरी किनारियाँ हों मानो ! और सरोवर की सतह पर तैरते अथवा आकाश मे उड़ते बहुरगी और विभिन्नजातीय पक्षियों के झुंड स्वय सरोवर के चचल जीवन्त पुष्प ! घास-पात और कीचड़-काई से बने दर्जनो पुराने द्वीप हवा के झोको से तैरते यो प्रतीत हो रहे थे जैसे स्वय जलदेवियाँ हवा की पतवार से उन्हे खे-खे कर मनोरजन कर रही हो। और उन्हीं द्वीपों पर उड़-उड़ कर बैठते और फिर उडते जल-विहग जलदेवी को रिझा रहे हो मानो ! मानो शिशुओ के झुंड माँ की गोद मे खेल-खेल कर फिर भाग रहे हों ! जल मे तैरती घासो को चरने के प्रयास मे भैसों की कतारें भी धीरे-धीरे तैर रही थी। जैसे काले-काले जीवित पुष्पों की कतारें तैर रही हो ! और छोटी-बडी नावो पर मछुओ के असंख्य झुंड भी देखते ही बन रहे थे !

इन दृश्यों को देख शैलेन्द्र भावना-भरे स्वर में बोला—"प्रकृति ने सचमुच बड़े प्यार और यत्न से मणिपुर-उपत्यका का निर्माण किया है ! किन्तु इस 'लोकताक' के सौन्दर्य को देख इस तथ्य पर विश्वास करना ही पड़ता है कि कोई परम सौन्दर्य भी प्रचार के पख पर सवार हुए बिना लोक-मानस मे प्रविष्ट नहीं हो पाता ! वन-पुष्पो के सौदर्य की भाँति लोक-मानस से अज्ञात वह वन मे ही विनष्ट होता रहता है ! कितने मणिपुरी हैं जो लोकताक के सौन्दर्य को निहारने यहाँ आते हो ? और भारत म ही कितने लोग हैं जिन्होने इस अद्भुत सौन्दर्य की चर्चा भी सुनी हो, उपभोग की बात तो दूर ? और वह सौन्दर्य क्या जो विना उपभोग के व्यर्थ बन जाय ? बल्कि ये विविध जाति के पक्षी कहीं अधिक पारखी होते हैं प्राकृतिक सौन्दर्य के, जिनके उपभोग से लोकताक का सौन्दर्य बिलकुल व्यर्थ न बन सका ! कश्मीर के प्राकृतिक दृश्य-सौन्दर्य का हजारों वर्षों से वहाँ के कवियों ने प्रचार किया है, और आज के

व्यावसायिक लोग भी प्रचार कर रहे हैं! 'मानसरोवर' की सौन्दर्य-महिमा तो जैसे धार्मिक अन्ध-संस्कार की तरह सस्कृत-कवियों के मानस मे प्रविष्ट हो गई! वहाँ उन्होंने झूठ-मूठ के स्वर्ण-कमल खिला दिये! वहाँ मोतियों के दाने चुगने वाले राजहसों का आविष्कार कर लिया! उसे स्वर्ग के देवताओं की ललित विहार-भूमि के महत्त्व से महिमान्वित कर दिया! पर जब सौन्दर्य-महिमा के इस रगभरे प्रचार के जादू से आकृष्ट हो कर कोई प्रबुद्ध व्यक्ति यात्राओं की कठोरता से जूझते हुए 'मानसरोवर' पहुँच कर उसे देखे तो यह सोचे बगैर नहीं रह सकता कि कवियों का वह 'मानसरोवर' कवि-मानस की कल्पना की सन्तान के सिवा और कुछ नहीं! कहाँ वे स्वर्ण-कमल! और कहाँ वे राजहस! और कहाँ वे स्वर्ग के देवता, और उन देवों की वह मनोहर क्रीड़ा-भूमि! इच्छा होती है जल्द भाग कर जान बचायें इस देव-भूमि के अभिशाप से! 'देव' राक्षस को भी कहते हैं। और यदि उस अर्थ में उसे 'देव-भूमि' कहा जाय तो मुझे कोई आपत्ति नहीं!"

"तुमने मानसरोवर को स्वय देखा है शैलेन?"

"मणिपुर आने से पहले मैं कैलास-मानसरोवर की यात्रा कर चुका हूँ चन्द्रावत! कैलास के हिममडित शिखर मे सौन्दर्य का विराट् रूप अवश्य दिखाई दिया! मानसरोवर की नीली-नीली जल-सतह पर तूफान में उछलती लहरों में सवेग हँसते विराट् रूप को भी देखा! और प्रति-दिन तूफानी हवा के गर्भ से अदृश्य राक्षस का हृदय-बेधी हाहाकार भी श्रवण किया! पर उस मुकम्मल सौन्दर्य का वहाँ कहीं भी साक्षात्कार मैं न कर सका जिसके प्रचार-जादू से आकृष्ट हो कर ही वहाँ पहुँचा था! दिगन्तव्यापी बीहड़, वीरान, विस्तृत एक इलाका जो प्रतिपल जैसे काट खाने को दौड़ता हो! राजहसों के बजाय भद्दे, कुरूप, मटमैले हंसों के झुंड भी अवश्य देखे जिनकी लीद से सरोवर के किनारे यों गंदे दिखाई देते हैं जैसे माँ के वस्त्र की किनारियाँ बच्चों की विष्ठा से! पर 'लोक-

ताक' के इस सरोवर में मै सौन्दर्य की उस समस्त सुकोमलता का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर रहा हूँ जिसके लोभ में मैंने कभी मानसरोवर के बीहड़-दुर्गम पथ की यात्रा पर प्रस्थान किया था ! न केवल सौन्दर्य मे, अपितु आकार-प्रकार में भी यह मानसरोवर से मुझे बड़ा दिखाई दे रहा है ! पर खेद कि इस परम सौन्दर्य की महिमा को संस्कृत का कोई कवि देख क्यो नहीं सका ? अन्यथा उसकी लेखनी धन्य हो जाती ! उसकी कल्पना सौन्दर्य की रश्मियों मे चमक-चमक कर हर पाठक के मन को मोह लेती ! काश, मै कवि होता चन्द्रावत ! इस लोकताक की सौन्दर्य-महिमा पर 'महाकाव्य' अवश्य लिख देता !"

चन्द्रावत ठठा कर हँस पड़ा। बोला—"तुममे किसी महाकवि की प्रतिभा से कम प्रतिभा तो मुझे दिखाई नहीं दे रही दोस्त ! लोकताक की सौन्दर्य-सुन्दरी इतने वर्णन-मात्र से तुमपर रीझ कर वरमाला अवश्य डाल देगी विश्वास रखो तुम !"—कहते हुए वह फिर हँसा। लेकिन सहसा गभीर हो कर बोला—"कई आधुनिक पर्यटको ने मणिपुर को भारत का 'पूर्वी कश्मीर' भी कहा है शैलेन ! इस लोकताक की सौन्दर्य-सुषमा पर रीझ कर तुमने भी महाकाव्य लिखने की आकांक्षा प्रकट की है यदि कवि-प्रतिभा का वरदान तुम्हे प्राप्त हो जाय ! किन्तु प्रकृति ने जिस उदारता से मणिपुर को सौन्दर्य दान दिया है, काश, प्रकृति के पुत्र हम मनुष्यो ने हजारो वर्षों से अपने सजातीय मनुष्यों पर ही क्रूर अत्याचारों के धब्बो से इस सौन्दर्य को कुरूप न बनाया होता ! इतिहास मनुष्य का होता है। लोकताक के मनुष्यों के इतिहास मे अत्याचार का कितना गहरा दर्द छिपा हुआ है इसे यदि तुम जान पाते शैलेन ! शायद लोकताक के लोग भी इतिहास के उन क्रूरतम अध्यायों को भूल चुके हैं ! अण्डमन के द्वीपो को हम 'कालापानी' के नाम से जानते हैं ! हम जानते हैं कि ब्रिटिश शासन के भयानक विद्रोहियों अथवा कानून की नजरों मे घोर अपराधियो को वहाँ भारत से

निर्वासित करके भेजा जाता है। अभी कुछ वर्ष पहले 'चटगाँव-शस्त्रागार-कांड' के अनेक विप्लवी विद्रोहियों को आजीवन-कैद की क्रूर सजा दे कर अंडमन के भयानक जेल मे बन्द किया गया है! समझ लो कि यह 'लोकताक' भी लगभग सौ साल पहले तक मणिपुर का 'कालापानी' ही रहा है! मणिपुर के सदियो के सामन्ती शासन-काल मे आपसी युद्धो में पराजित लोगो को मुख्य भूमि से निर्वासित करके लोकताक के इन पहाड़ीनुमा द्वीपों मे कैद या नजरबन्द किया जाता था! उन्हें 'लोइ' करार दिया जाता था! मणिपुरी भाषा मे 'लोइ' का शब्दार्थ होता है "दूषित लोग' अर्थात् दास! उन्ही 'लोइ' लोगो की सतान आज 'थाङ' के पाँच-छह गाँवों मे आबाद हैं! वे भी 'मइतेइ' हैं, हिन्दू धर्म के अनुयायी भी, किन्तु मणिपुर के दूसरे हिन्दू इन्हे अब भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं शैलेन!"

"अच्छाऽऽऽ!"—शैलेन्द्र आश्चर्य से आँखें फैला कर बोल उठा —"तो यह भूतपूर्व विद्राहियों का प्रदेश है? तब तो यह परम पवित्र भूमि है हमारे लिए चन्द्रावत! हम आधुनिक दो विद्रोहियो को इस कारण ही इस भूमि ने बड़ी ममता से अपने आँचल मे छिपा रखा है! यह ता हमारे विद्रोह-कार्य की पवित्र केन्द्र-भूमि बनेगी भइया! बहुत अच्छी जगह आ गये हम लोग! और हमारी माँ की यह पवित्र जन्म-भूमि भी है! इस कारण ही शायद हमारी माँ में, और माँ के हम दोनों पुत्रों में विद्रोह की इतनी प्रबल भावना है चन्द्रावत! आह, ससार का कौन स्थान इससे बढ़ कर हमारे लिए सुन्दर और सुपूज्य हो सकता है अब! इस पर लिखे गये काव्य या महाकाव्य से ससार के किस देश और जाति के काव्य-महाकाव्य सुन्दर हो सकते हैं!"

चन्द्रावत ने मुसकाते हुए कहा—"ठीक है! अपने भावी काव्य और महाकाव्य का कुछ और भी मसाला ले लो मुझसे! मणिपुर की

प्राचीन राजधानी 'मोयराङ' तीन-चार मील से अधिक दूर नहीं है यहाँ से ! तुमने मिस्र देश के 'फराओ' राजाओं के बारे में पढ़ा ही होगा जो अपने को साक्षात् देवता मान कर जनता पर शासन किया करते थे, और जिनके विशाल 'पिरामिड' आज हजारो वर्ष बाद भी संसार के आश्चर्य बने हुए हैं ! हमारे इस मणिपुर मे भी हजारों वर्ष पूर्व ऐसे. अनेक 'फराओ' हो चुके हैं जिन्हें 'थाङजिङ' नाम से पुकारते हैं ! इन थाङजिङो की राजधानी 'मोयराङ' थी। 'थाङजिङ' वंश के भी तेरह राजाओ ने अपने को साक्षात् देवता मान कर ही मणिपुर के मनुष्यों पर शासन किया ! तेरहवीं पीढ़ी के बाद उस वश के राजा देवता न रह कर मनुष्य बन गये अथवा देवावतारी मनुष्य !"—कहते-कहते चन्द्रावत तनिक हँस पडा। बोला—"आज हम देवावतारी एक मनुष्य राजा का अन्याय-अत्याचार स्वयं आँखों से देख रहे हैं ! किन्तु साक्षात् देवता तो आखिर देवता ठहरा ! उसके मनुष्य से बड़ा होने के नाते ही उसका अन्याय-अत्याचार भी बड़ा ही रहा होगा ! क्योंकि मिस्र के 'फराओ' देवताओ ने भी मिस्र के मनुष्यों पर कम अत्याचार नहीं किया था ! पर खेद यही कि हमारे 'थाङजिङ' देवताओ ने पिरामिड की तरह का कोई अमर स्मारक मणिपुर को नहीं दिया ! अन्यथा हमारा मणिपुर भी पुरातत्त्वज्ञों की दृष्टि में ससार की प्राचीनतम सभ्यता के गौरवपूर्ण केन्द्र-स्थान के रूप मे अवश्य महत्त्व प्राप्त करता !"—कहते-कहते वह पुनः ठठा कर हँस पड़ा।

लेकिन शैलेन्द्र ने गभीर स्वर मे जवाब दिया—"यह अच्छा ही हुआ चन्द्रावत ! पिरामिडों के हर पत्थर मे लाखो निरीह मानवो के खून, पसीने और आँसुओं की कहानी गुँथी हुई है ! ससार के सभी राजाओं और श्रीमन्तों की आलीशान अट्टालिकाओ की हर ईंट और हर पत्थर में उसी कहानी का दर्द गुनगुना रहा है ! लेकिन मणिपुर के लिए यह क्या कम गौरव की बात है कि वह उन क्रूर निरकुश

राजाओं के स्मारकों के बल पर विख्यात होने के बजाय अपनी ललित कलाओं के सहारे संसार मे प्रख्यात है। उसके सरस मधुर प्राचीन नृत्यों में हृदय मे कोमलता की सृष्टि की जो क्षमता मौजूद है वह ईंट-पत्थर के किन स्मारकों से कम मूल्यवान है चन्द्रावत ? मनुष्य ईंट-पत्थर के बजाय कोमल कलाओं से ही मनुष्यता की ओर अग्रसर होता है ! किन्तु मणिपुर के इस पुरातन इतिहास के तथ्योद्घाटन से इस सत्य और तथ्य मे मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो चला है कि दुर्जन मक्कार मनुष्यों का मन और मस्तिष्क एक काल मे विश्व के किसी भी कोने मे समान दिशा मे ही परिचालित होता आया है ! और सज्जन मनुष्यो के मन-मस्तिष्क की गति भी समान दिशा मे ही चलती आई है ! वर्गीय स्वार्थ और वर्गीय मन-मस्तिष्क की गति मे भी कितनी गजब की समानता रहती आई है ! कोई दुर्लंघ्य सीमा भी उसकी सांस्कृतिक और व्यावहारिक गति की समानता मे व्याघात नहीं डाल सकती !"

इसी क्षण लबी गरदन वाले सफेद-काले चितकबरे रग के पक्षियो का एक विशिष्ट झु ड उन दोनो के सिर पर से सवेग उड़ता हुआ सरोवर के एक तैरते द्वीप की ओर जा बढ़ा। दोनो का ध्यान सहसा भंग हुआ। शैलेन्द्र ने कहा—"कितने सुन्दर हैं ये पक्षी ! मानसरोवर के उन भद्दे हसों से सौ-गुने सुन्दर !"

चन्द्रावत ने जवाब दिया—"ये भी हस ही हैं शैलेन ! 'काङा' जाति के हंस ! लोकताक में अनेक जाति के हस हैं, राजहस भी हैं ! सूखे मौसम में सरोवर की लबाई लगभग आठ मील रह जाती है और चौड़ाई करीब छह मील ! किन्तु अभी वर्षा ऋतु में यह उत्तर से दक्षिण तक लगभग अठारह मील लबा बन चला है, और पश्चिम से पूर्व तक लगभग बारह मील चौड़ा ! अतः इस विस्तार के कारण अभी सभी जातियों के पक्षियों को इस स्थान से तुम नहीं देख सकते, लेकिन लोकताक जिस प्रकार विभिन्न जाति की मछलियों का

सग्रहालय है, उसी प्रकार विभिन्न जाति के पक्षियों का भी ! मइतुडा, थुइतिङनम्, ताओथरा, तिडी, युमङानु, थरुइचाबी, उफोङ आदि सोलह जातियों की छोटी-बड़ी विभिन्न आकार, विभिन्न रग और आकृति की 'बतखें' तुम्हें लोकताक मे ही दिखाई देंगी ! काले, नीले, सफेद, लाल और पीले रंग की अलग-अलग अथवा सम्मिलित कूचियो से प्रकृति ने इन्हें रँग कर जैसे लोकताक के वरुण-देव को शानदार उपहार भेंट किया हो !" फिर एक तरफ तर्जनी का संकेत करते हुए—"और वह देखो उस तरफ ! वह चक्रवाक का जोड़ा है जो रात पड़ते ही एक दूसरे से बिछुड़ जाता है ! और वह देखो, कबूतर के आकार की, पर तनिक लम्बी गरदन वाली सफेद रग की 'उरोक' नामक चिड़ियो के उड़ते हुए झुंड को ! और उस तरफ लंबी-लम्बी गरदनो वाले 'वाइनू' (सारस) जाति के पक्षियो को भी देखो ! और मछलियो के शिकार मे तत्पर बगुलो और टिटिहरियो के समुदायो को भी देखो ! खूब ध्यान से देखने पर जल-मुर्गे भी अपने झुड के साथ कहीं जल-विहार मे उल्लसित दिखाई देंगे ! प्राणिशास्त्र के पाश्चात्य विद्वानो ने मुर्गे-मुर्गियो के प्रथम उत्पत्ति स्थल को अनुमानतः बर्मा की 'चिंदविन' नदी की ऊपरी उपत्यका को बताया है, किन्तु मणिपुरी लोक-गाथा के अनुसार मुर्गे-मुर्गियो का प्रथम जन्म-स्थान होने का गौरव भी इसी लोकताक सरोवर के 'थाङ' नामक गाँव को प्राप्त है ! और मानसरोवर मे तुम्हें कमलो के अस्तित्व का कोई चिह्न भी नहीं दिखाई दिया, किन्तु लोकताक को 'एक सौ आठ दल' वाले कमल-पुष्पों को उत्पन्न करते रहने का सुगौरव भी प्राप्त है ! यदि हो सका तो कभी तुम्हें दिखाऊँगा भी !

"इसके अतिरिक्त हम इस 'लोकताक' को 'माता' कह कर भी पुकारते और पूजते हैं, गगा-माता की तरह ! क्योंकि लोकताक हमे जीवन देता है ! हमारे प्राणों को सुरक्षित रखता है ! परिपुष्ट करता है !

इसकी हजारों मन मछलियाँ जनता के जीवन का जबर्दस्त सहारा बनी हुई हैं ! और अकाल के दिनो मे इसके गर्भ से सैकडों-हजारो मन सिंघाड़े निकाल-निकाल कर लोग जीवन धारण करते हैं ! इस भीषण अकाल मे भी लोकताक ने अपनी मछलियों, सिंघाड़ों और कमल-नालों से हजारों के प्राण बचाये हैं !

"इस लोकताक के किनारे के जगलों मे कई अन्य दुर्लभ जन्तु भी पाये जाते हैं ! वह जो दिखाई दे रहा है न, एक बड़ा मैदानी जंगल-सा, उसे हम 'कइबुल लमजाउ' कहते हैं। मणिपुरी भाषा में 'लमजाउ' कहते हैं बड़े मैदान को, शायद जानते होगे तुम ! अर्थात् 'कइबुल का बड़ा मैदान'। कइबुल के उस जगल मे एक ऐसा दुर्लभ पशु पाया जाता है जो विशेषज्ञ विद्वानों के कथनानुसार ससार मे अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता ! हम उस पशु को 'शगाई' कहते हैं जिसके सिर पर दस सींग होते हैं, आकृति बारहसिंगे जैसी होती है, आकार घोड़े जैसा होता है, और रग हिरन जैसा ! इस दुर्लभ पशु का शिकार अब कानून द्वारा निषिद्ध करार दिया गया है !"

चन्द्रावत जैसे प्रवचन की तरग मे आ गया था। बोलता गया—"यहाँ से कुछ ही मीले दक्षिण नागा-कूकियों के पहाड़ शुरू हो जाते हैं। उन पहाड़ों मे 'मिथुन' नामक एक विशाल अद्भुत पशु होता है जो देखने मे बहुत कुछ भैंस जैसा है, पर भैंस से बहुत, बहुत मूल्यवान! अक्सर विवाह के अवसर पर वर की ओर से कन्या के पिता को विवाह-शुल्क के रूप में 'मिथुन' ही दिया जाता है। और उस अवसर पर भोज के लिए मिथुन की बलि भी दी जाती है। एक मिथुन का मास ही इतना अधिक होता है कि पाँच-छह सौ व्यक्ति मिल कर उसे खा पाते हैं ! कहते हैं कि जंगल से किसी 'मिथुन' बच्चे को पकड़ कर जिसने उसे एक बार नमक खिला कर जंगल में छोड़ दिया, जवान होने पर वह अपने-आप उस नमक खिलाने वाले के द्वार पर पहुँच जाता है !

ऐसा अद्भुत है लोकताक सरोवर का यह क्षेत्र और प्रदेश शैलेन !"

और शैलेन्द्र ने हँसकर समर्थन किया—"सारा मणिपुर ही अद्भुत प्रदेश है भाई ! अद्भुत है यहाँ का राजा, और अद्भुत है यहाँ का आइ-कर-कानून, और अद्भुत है यहाँ की जनता जो..."

बात आगे बढ़ न सकी। वार्तालाप का प्रवाह सहसा रुक चला। आठ-नौ साल के एक बालक ने अचानक झुरमुट के पीछे से प्रकट हो पीठ-पीछे से ही चन्द्रावत की आँखें दोनो हाथो से मूँदते हुए कनखियों से शैलेन्द्र को चुप रहने को इशारा भी किया ! और शैलेन्द्र भी जैसे उस बालक तानाशाह के आदेश के समक्ष झुक कर सहसा चुप हो गया।

"यह कौन है पाजी ?"—कहते हुए चन्द्रावत ने उन नन्हे-नन्हे हाथो को अपने सबल हाथो से झट अलग कर दिया।

बालक खिलखिला कर हँस पड़ा। उसकी गरदन से लिपट गया। चन्द्रावत उन नन्हे हाथों को पहले ही पहचान चुका था। बालक के गाल पर प्यार की एक चपत लगा उसके दोनों हाथो को अपने दोनो हाथो से पकड़कर मुसकाते हुए पूछा उसने—"क्यों रे गित्तू ! किधर से आ गया चोर की तरह तू ?"

और गितचन्द्र झट अपने पर से चोरी के अभियोग को जैसे बलात् फेंकते हुए बोल उठा—"मै क्यो चोर ? चोर की तरह तो तुम दोनो छिप कर आ बैठे हो यहाँ ! इम्फाल से बहुत लोग तुम दोनो को ढूँढ़ने आये हैं अभी ! बहुत-से मर्द ! बहुत-सी औरतें ! ले जायेंगे पकड़ के तुम्हें ! चलो, जल्दी घर चलो दादा !"

गितचन्द्र चन्द्रावत का ममेरा भाई था। वे दोनों वेश बदल कर मामा के घर रह रहे थे। लेकिन फिर भी गाँव वाले उन्हे जानते थे, किन्तु ग्रामदेवता के नाम पर उन्हें शपथ दी गई थी उन दोनो के भेद को किसी भी बाहरी व्यक्ति के आगे प्रकट न करने की। गितचन्द्र को भी

पूरी ताकीद कर दी गई थी गाँव के किसी बच्चे तक से भी अपने दादा के सम्बन्ध में चर्चा न करने की। लेकिन चन्द्रावत और शैलेन्द्र गितचन्द्र के—"ले जायेंगे पकड़ के तुम्हें!"—इस वाक्य से अचानक चौंक उठे। इम्फाल में महिलाओं की शानदार विजय की सूचना कुछ अस्पष्ट रूप में उन्हें यद्यपि मिल चुकी थी, पर अपने पर से गिरफ्तारी के वारंट रद्द किये जाने की कोई अधिकृत सूचना उन्हें मिली न थी। अतः सदिग्ध, सशंक और सावधान थे वे। लेकिन "बहुत-से मर्द! बहुत-सी औरतें!"—इस वाक्य ने उन्हें बहुत कुछ आश्वस्त भी कर दिया।

चन्द्रावत ने अपने ममेरे भाई को गोद में खींच प्यार-भरे सन्दिग्ध स्वर में पूछा उससे—"बता तो गित्तू भइया! कौन-कौन आये हैं पकड़ने हमें?"

और गित्तू ने हठपूर्वक मचलते हुए कहा—"पहले तुम बताओ दादा! हमारे घर से चले तो नहीं जाओगे?"

चन्द्रावत ने हँस कर आश्वस्त किया उसे—"नहीं जाऊँगा! अब तो बता!"

और तब गितचन्द्र ने उसके कान के निकट मुँह ले जा कर धीरे से जवाब दिया दिया—"फूफी आई हैं, तोम्बी दीदी, भाभी और बहुत सारे दूसरे लोग! एक बूढ़ा पडित भी आया है!"

अब सन्देह का लेश भी नहीं रह गया। शैलेन्द्र और चन्द्रावत के चेहरे आकस्मिक उल्लास के आघात से अचानक यों चमक उठे जैसे किसी तारे से टकरा कर चन्द्र-बिम्ब थिरक कर एकाएक चमक उठा हो! और गितचन्द्र ने उतावलेपन के साथ चन्द्रावत का हाथ पकड़ घर की ओर खींचते हुए कहा—"चलो न जल्दी दादा! ढूँढ़ रहे हैं वे लोग! नहीं तो मैं अभी दौड़ कर घर में फूफी से कह दूँगा—'दादा अपने दोस्त के साथ चोर की तरह उधर छिपे बैठे हैं!' तब फूफी खुद दौड़ पड़ेंगी यहाँ!"

चन्द्रावत ठठा कर हँस पड़ा । गितचन्द्र की गाल पर प्यार की एक मीठी चपत लगा कर उसका मुँह चूमते हुए बोला—"पाजी ! दादा तेरा चोर है रे ? अच्छा चल ! तेरे साथ ही चल रहे हैं !"

लेकिन गितचन्द्र में इतना धैर्य कहाँ ! वह अकेले बड़े वेग से दौड़ पड़ा अपने घर की ओर, और उसके पीछे-पीछे चन्द्रावत और शैलेन्द्र उत्सुक कदमो और समुत्सुक हृदय से चल पड़े ।

(ग)

शैलेन्द्र और चन्द्रावत ने सबसे पहले माँ के चरण छुए। और माँ उन दोनो को एक साथ अपनी स्नेहमयी भुजाओं मे लपेटती अश्रु-गद्गद कठ से बोलीं—"मेरे बेटे ! मेरे सौभाग्य !"

वे इससे अधिक कुछ बोल न सकीं। इन दो छोटे वाक्यों मे ही मानो हृदय के समस्त सचित प्यार और वात्सल्य को उन दोनों पर लुटा कर वे चुप हो गईं । पर आँखें चुप न रह सकीं। स्नेह के आँसू उनके चिपके पीले गालों पर लुढ़कने लग पडे ।

चन्द्रावत और शैलेन्द्र ने अब पारी-पारी से कृष्णमाधवजी के चरणों की वन्दना की । प्रेम आँखो में छलक आया ! वर्षों के सामूहिक सघर्ष की शानदार सफलता एव बिछुड़े हुए साथियों के सम्मिलन का आनन्द जैसे सबकी आँखों मे उमड़ आया ! आँसू जैसे सुख-दुख के सहोदर हों ! अतिशय दुख मे भी उभर आते हैं, अतिशय सुख में भी !

चन्द्रावत ने पं० कृष्णमाधवजी के चरण छू, फिर आँखें पोंछ हर्ष-गद्गद स्वर मे उनका अभिनन्दन किया—"हमारे सफल सेनानी ! मणिपुर के गौरव ! जनता के सच्चे नेता !"

इससे आगे वह बोल न सका। किन्तु कृष्णमाधवजी ने अपने सजल नेत्र पोंछ स्नेह-गद्गद स्वर मे झट चन्द्रावत के अभिनन्दन का

प्रतिवाद किया—"तुमने कहने और समझने में भूल की चन्द्रावत !" और झट उसका हाथ पकड़ खींचते हुए—"आओ ! मणिपुर के गौरव से, जनता के सच्चे नेता से, और हमारे सफल सेनानी से मिलाऊँ तुम्हें !"—कहते हुए वे चन्द्रावत को मुक्तावती के निकट ले गये। और मुक्ता के संकोच-विनत सुन्दर चेहरे को स्नेह-तरल नेत्रों से देख वात्सल्यभरे स्वर मे बोले उससे—"बेटी मुक्ता ! बचपन से ही तुम मुझे 'चाचाजी' कहती आई हो ! तुम्हें अपनी गोद में दुलार भी चुका हूँ ! अतः तुम्हारा धर्म का पिता हूँ ! लो बेटी ! मणिपुर के इस सौभाग्य को अब यत्न से सम्हालो !" और फिर मुक्ता का दायाँ हाथ पकड़ चन्द्रावत की ओर बढ़ाते हुए—"इस परम गौरव के एकमात्र योग्य तुम्हीं हो बेटा ! सदा इस गौरव के योग्य बने रहो यही मेरे हृदय की शुभ कामना है, शुभाशीष है !"—कहते-कहते कृष्णमाधवजी के स्वर कोमल भावना के उच्छ्वासों से उसी प्रकार अवश हो उठे जिस प्रकार किसी परम वत्सल पिता के स्वर और नेत्र कन्यादान के शुभ अवसर पर।

मुक्ता के चेहरे पर अचानक अतिशय लज्जा की लाली यों उभर आई जैसे रेशम के सफेद महीन वस्त्र के नीचे गहरे लाल रग की तली बिछ गई हो ! सकोच-बोझिल स्नेह-तरल नेत्रों की किनारियो से चन्द्रावत के स्निग्ध नेत्रों में एक बार देख उसने झट झुक कर उसके पैर छू लिये। और चन्द्रावत उसके झुके हाथ को झट ऊपर उठाते गर्व और स्नेह से भरे स्वर में बोला—"मैं अपने गौरव को पैरों पर झुकते देखना पसन्द नहीं करता मुक्ते ! जीवन-साथी का गौरवपूर्ण अधिकार दे कर मेरा गौरव पहले ही बहुत, बहुत बढ़ा चुकी हो तुम ! अब मैं साथी की समता तुमसे माँगता हूँ, और कन्धे-से-कन्धा भिड़ा कर जीवन के संघर्षमय पथ पर सदा साथ बढ़े चलने का साहचर्य !"

इस क्षण चन्द्रावत का चेहरा सचमुच गर्व से उद्दीप्त हो उठा था। और उधर से कृष्णमाधवजी ने तनिक हँस कर कहा—"तुम हमारी हिन्दू संस्कृति का गला घोटना चाहते हो चन्द्रावत ?"

जवाब में चन्द्रावत केवल जोर से हँस पड़ा। मुक्ता भी दुबक कर हँस पड़ी।

अब चन्द्रावत ने पारी-पारी से सबसे मिलना आरम्भ किया। बहनो ने मना करने पर भी नीचे झुक कर धरती छू-छू कर उसका अभिवादन किया। अन्य साथियों से वह गले मिला।

कृष्णमाधवजी ने पुनः हँसते हुए कहा—"लेकिन हमारी बेटियाँ अपनी सस्कृति पर सदा अटल रहेगी चन्द्रावत ! तुम्हारी वहाँ न चलेगी ! न चलेगी !!"

चन्द्रावत ने भी हँस कर जवाब दिया—"स्त्रियो मे अन्ध-सस्कार बड़ा प्रबल होता है पडितजी !"

इस जवाब पर स्त्रियाँ भी हँस पड़ीं, पुरुष भी।

उधर शैलेन्द्र माँ और कृष्णमाधवजी के अभिवादन के बाद जब औरो से मिलने आगे बढ़ा तो सबसे पहले राधे उसके सामने आई। उसने झुक कर धरती छू कर शैलेन्द्र का अभिवादन किया। और शैलेन्द्र ने झट दोनों हाथों से उसके झुके सिर को ऊपर उठा कर स्निग्ध आँखों से उसे देख मुसकराते हुए कहा—"मेरी माँ ! तू इतनी जल्दी बूढ़ी हो चली ! मगर अपने बेटे को तू भूल न सकी !"—कह कर लज्जा से झुके उसके सिर को उसने उसी वात्सल्य से चूमा जैसे कोई पिता अथवा ज्येष्ठ भ्राता अपनी पुत्री या भगिनी को चूम रहा हो।

शैलेन्द्र की बातो पर सभी स्त्रियाँ ठठा कर हँस पड़ी। और माँ झट शैलेन्द्र का हाथ पकड़ अतिशय प्यार से खींचते हुए उसे तोम्बी सना के सामने ले गईं। और तोम्बी सना से स्नेहभरे मजाक के लहजे मे वे बोलीं—"ले बिटिया ! मेरे इस बगाली बेटे को सम्हाल अब !

तू भी किसी का कहा जल्दी नहीं मानती ! और मेरा बेटा तो है ही पूरा जानवर ! बड़ा भीषण जानवर ! जेल का लोहे का मजबूत रस्सा भी तुड़ा कर भाग निकला ! ऐसे पर यों ही विश्वास न करना बेटी ! अपने प्यार के मजबूत रस्से से इसे बाँध कर रखना ! सम्हाल कर !"

माँ की बात पर शैलेन्द्र खूब जोर से हँसा ! दूसरी स्त्रियाँ भी खूब हँसीं। और तोम्बी ने मुसकाते हुए झट झुक कर उसके चरण छू लिये।

और उधर से कृष्णमाधवजी ने हँसते हुए पुनः सरस मजाक किया—"मणिपुर में महिलाओं की प्रधानता है शैलेन बाबू ! यहाँ आपकी मार्क्सवादी सस्कृति की दाल वे गलने नहीं देंगी ! याद रखें आप !"

शैलेन्द्र ने भी हँस कर जवाब दिया—"याद रखूँगा पडितजी ! किन्तु आप भी याद रखें कि महिलाओ के मस्तिष्क की गति बडी तेज होती है ! केवल आवश्यकता है उस मस्तिष्क पर लगे घने पर्दे मे केवल एक बार एक गहरा छेद कर देने की ! फिर उस पर्दे को फटने और फट कर चीथड़े-चीथड़े होने से कोई रोक नहीं सकता !"

इस प्रकार के सरस, सप्रेम हास-परिहासों के बाद वे नहाने-धोने चल पड़े। पुरुषों का दल अलग, और स्त्रियों का अलग। गाँव के किनारे का सरोवर स्त्रियों के हँसी-मजाक से सजीव हो उठा। कोई किसी पर पानी उछालने लगी, और कोई परस्पर पीठ का मैल साफ करने और कराने लगी। नहा-धो कर सबने कपड़े बदले। तुलसी की पूजा की। चन्द्रावत के मामा के घर पहुँच कर सिर में तेल डाला। कघी फेरी। गोपीचन्दन की दो खड़ी रेखाओं से ललाट उनके यों चमक उठे जैसे आकाश चाँद की रेखाओं से। फिर स्त्री-पुरुषों ने एक पक्ति में बैठ कर भोजन किया। कमल के पत्तों पर भात, दाल, माछ और कमल-नाल की तरकारी।

भोजन के बाद फिर दालान में बैठक जमी। भरे हुए कई हुक्के

आ गये। चूना और कच्ची सुपारी के टुकड़ों के साथ लवग से गुथी, बगैर कत्थे की पान की गिलौरियाँ केले के पत्ते पर रख दी गईं। अपनी इच्छा के अनुसार लोग पान चबाने लगे, हुक्का पीने लगे। स्त्रियों में वहाँ हुक्का पीने वाली कोई न थी। और वहाँ क्वाँरियाँ तो परहेज रखती ही हैं धूम्रपान से। देखते-देखते पान के रंग से सबके ओठ रँग उठे। चेहरो पर विजयोल्लास की लाली के सपर्क से रँगे ओठ और भी सुन्दर बन चले।

इधर-उधर की चर्चा चल पडी। और खास कर महिलाओ के सघर्ष के सम्बन्ध में। प० कृष्णमाधवजी ने हुक्के का एक हलका कश ले कर शैलेन्द्र को सबोधित करते मुसकाते हुए कहा—"शैलेन बाबू! गाँधीवाद के प्रति आपकी वितृष्णा मेरी समझ मे नहीं आती! बल्कि इस सघर्ष मे हमारी शानदार विजय ने तो गाँधीवाद मे मेरी आस्था और भी मजबूत कर दी है! विजय हमे अहिंसक सघर्ष से मिली है, और इस सघर्ष का एक दूसरा सुन्दर परिणाम हुआ है मणिपुर-नरेश और मणिपुर-सरकार के हृदय-परिवर्तन के रूप मे!"

जैसे किसी ने मनोरजन मे मशगूल शेर को खरोचा मार दिया हो! शेर सजग हो उठा! खरोंचा मारने वाले की ओर उसने रुख किया। लेकिन इस रुख मे कस कर प्रहार करने की पहले जैसी उग्रता न थी। विजय मिल चुकी थी। परिस्थितियाँ बदल चुकी थीं। और यह घड़ी विजयोत्सव के उल्लास की थी, और शैलेन्द्र व चन्द्रावत के लिए जीवन की सरसतम घडी! और खरोंचा मारने वाले की नीयत मे एक प्रकार का माधुर्य था। जैसे कोई मित्र या अभिभावक प्यार का एक खरोचा मार कर गलती की ओर ध्यान आकृष्ट कर रहा हो!

शैलेन्द्र ने मुसकाते नेत्रों से पंडितजी के नेत्रों मे निहारा। फिर विनयपूर्ण गभीर स्वर में उसने जवाब दिया—"पंडितजी! किसी भी राज्य अथवा राज्य-शक्ति का मुख्य आधार 'हिंसा' होती है। विना सेना

और पुलिस की सहायता के किसी राज्य की शासन-व्यवस्था टिकी नहीं रह सकती ! सेना और पुलिस का अस्तित्व ही उसके हिंसापूर्ण आधार को प्रमाणित करता है। और किसी समूचे राज्य अथवा उसके किसी अत्याचारी विधि-विधान के विरुद्ध कोई सघटित निःशस्त्र आन्दोलन भी मूलतः हिंसक भावना से ही प्रेरित और परिचालित होता है ! होता आया है ! क्योंकि उसका उद्देश्य होता है उस प्रतिपक्षी हिंसक राज्य-शक्ति को झुकाना और परास्त करना ! और यदि कभी वह हिंसक राज्य-शक्ति ऐसे आन्दोलनों के समक्ष झुकती भी है, अर्थात् इस झुकाव के लिए उसके हृदय में परिवर्तन आता भी है, तो अपने स्वार्थ या अस्तित्व के विरुद्ध किसी प्रबलतर हिंसात्मक परिस्थिति के उत्पन्न हो जाने की भयजनक सभावना के कारण ! किसी विरोधी शक्ति मे बिना भय के परिवर्तन की भावना नहीं आ पाती !"

शैलेन्द्र की प्रतिपादन-शैली ने गोष्ठी के वातावरण को एकाएक गभीर बना दिया। अनेक लोगों का ध्यान एकाग्र हो उठा। और शैलेन्द्र ने बीड़ी के कश ले कर, तनिक खखार कर गला साफ करते हुए आगे कहा—"मैं यह मानता हूँ कि संघर्ष हिंसक भी होता है, अहिंसक भी ! खेल-कूद की प्रतियोगिता अथवा स्कूल-कालेज में अध्ययन-अनुसन्धान-सम्बन्धी तरह-तरह की प्रतियोगिताओं में परस्पर सघर्ष की भावना के होते हुए भी वे अहिंसक कही जा सकती हैं, क्योंकि उनमें किसी भी पक्ष के हाथ में तलवार की ताकत नहो होती। यद्यपि इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि ऐसी प्रतियोगिताओं में भी अक्सर मार-पीट की नौबत पहुँच ही जाती है। किन्तु किसी राज्य-शक्ति के विरोध में किये गये शस्त्रहीन संघर्ष को 'अहिंसक' कहने अथवा उसे 'सविनय अवज्ञा' आदि आलंकारिक विशेषणों से सजा देने के बावजूद उसका हिंसात्मक स्वभाव नष्ट नहीं हो जाता। क्योंकि वहाँ एक पक्ष के हाथ में शस्त्र-बल की स्वाभाविक हिंसक शक्ति मौजूद होती है। और विरोधी

पक्ष को कुचल देने के लिए मुख्यतया उस शक्ति पर ही वह भरोसा रखता भी है। और निःशस्त्र विरोधी पक्ष के हृदय मे उस शस्त्र-शक्ति के विरुद्ध और उस शस्त्र-शक्ति पर भरोसा रख दहाड़ने वालो के विरुद्ध स्वाभाविक रूप से निरन्तर घृणा की आग जला करती है। घृणा एव हिंसा का स्वभावतः अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। किन्तु अतिशय घृणा के होते हुए भी हम विरोधी हिंसक शक्ति का मुकाबला खुली हिंसक शक्ति के द्वारा इस कारण नहीं कर पाते क्योंकि हम पहले ही निःशस्त्र बना दिये गये होते हैं। शस्त्र-शक्ति का हमारे पास बिलकुल अभाव होता है। अतः एक पक्ष का सघटित शस्त्रहीन आन्दोलन केवल युद्ध के एक दाव-पेंच के अतिरिक्त और कुछ नही होता। गाँधीजी का तथाकथित अहिंसक आन्दोलन भी एक दाँव-पेंच के अतिरिक्त और कुछ नही है! क्योकि भारतीय जनता के मन मे अंग्रेजी शासन के प्रति व्यापक घृणा उत्पन्न किये विना जनता को सघटित हिंसक या अहिंसक आन्दोलनो के लिए तैयार करना कतई सभव न होता! और यही बात अब तक के हमारे मणिपुरी आन्दोलन की विभिन्न अवस्थाओं पर भी शत-प्रतिशत लागू होती है!

"घृणा की सघटित शस्त्रहीन सक्रियता भी तलवार की सघटित सक्रियता से कम सबल और कम क्रूर नहीं होती! सारा समाज जब तक पारिवारिक प्रेम-भावना के आधार पर वर्ग-विहीन नही बन जाता, एवं राज्य तथा उसे कायम रखने के हिंसक साधन—सेना और पुलिस—समाज से मिट नही जाते, तब तक किसी भी राज्य के सपूर्ण अस्तित्व अथवा उसके किसी अन्यायी कानून के विरुद्ध कोई भी आन्दोलन न घृणा से रिक्त रह सकता है, न घृणा से उत्पन्न हिंसक भावना से! मार्क्सवाद का चरम लक्ष्य है अहिंसक साम्यवाद की स्थापना! और मार्क्सवाद यह स्वीकार करता है कि विना अहिंसा के, अर्थात् राज्य सेना और पुलिस के अस्तित्व के नष्ट हुए विना, समाज मे 'साम्यवाद' का अस्तित्व आ नही

सकता! पर आरंभ में हिंसक शक्तियों से जूझने और उन्हें विनष्ट करने के लिए हिंसा का आश्रय भी अनुचित नहीं माना गया है।"—इतना कह कर मुसकाते हुए—"स्वयं गाँधीजी 'राम-राज्य' की स्थापना का स्वप्न देख रहे हैं, किन्तु राम ने रावण के संहार के लिए हिंसा का आश्रय लिया था-अथवा अहिंसा का? यदि स्वयं 'रघुपति-राघव-राजा-राम' ही अहिंसा के द्वारा रावण का हृदय परिवर्तन कर सकने में सफल नहीं हो सके, तो उनके आधुनिक भक्त आधुनिक रावणों का अहिंसा द्वारा हृदय बदल सकेंगे इसमें मुझे तो बड़ा गंभीर सन्देह है पंडितजी!"—कह कर वह हँस पड़ा।

पंडितजी हुक्का पीना छोड़ अब खूब गंभीर बन चुके थे। शैलेन्द्र के इस व्यंग पर तनिक चौंक भी उठे। पर सहसा कोई जवाब उन्हें सूझा नहीं। शायद शैलेन्द्र के तर्कों को काट डालने के निमित्त किसी तर्क की तलवार की तलाश में ही वे मौन थे। चन्द्रावत ऐसे अवसरों पर सदा की भाँति अब भी मन्द-मन्द मुसकरा रहा था। और दूसरे लोग भी एकाग्र बने हुए थे। किन्तु शैलेन्द्र के अन्तिम व्यंग-वाक्य ने बहुतों के चेहरे पर मुसकान की रेखाएँ भी उभार दीं।

लेकिन शैलेन्द्र ने बगैर रुके कहना जारी रखा—"अब हम अपने मणिपुरी संघर्ष पर आयें पंडितजी! जिस प्रकार लंका पर हिंसात्मक अभियान से पूर्व राम ने रावण को समझा-बुझा कर ही सही रास्ते पर लाने का प्रयास किया था, उसी प्रकार ब्रह्म-सभा के क्रूर कानून के विरोध में व्यापक संघर्ष आरम्भ करने से पूर्व और संघर्ष के दौरान में भी आपने स्वयं मणिपुर-नरेश और मणिपुर-सरकार की सेवा में जाने कितनी प्रार्थनाएँ कीं, उन्हें समझा-बुझा कर सही रास्ते पर लाने के, उनके हृदय को परिवर्तित करने के, जाने कितने प्रयास किये, पर सब व्यर्थ और निरर्थ! हमारी प्रार्थनाओं और उपदेशों से शासकों का हृदय रंचमात्र भी बदल न सका! किन्तु जब हमने दृढ़ संकल्प से बिखरी शक्ति को संघटित

करके अपना सघर्ष चालू किया, वर्षों तक जारी रखा, और जब व्यापक अकाल ने मणिपुर की विशाल मातृ-शक्ति को भी संघटित रूप मे मैदान मे उतार दिया तो राज्य-शक्ति को अन्ततः झुकना पड़ा! क्योकि अब घृणा की सीमा सीमा को लाँघने के लिए तैयार हो पड़ी थी! 'मरता क्या नही करता' के अनुसार अब प्रत्यक्ष हिंसात्मक आन्दोलन या आक्रमण का खतरा शासकों के सामने मौजूद हो पड़ा था! अतः हमारी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई सघर्षशील शक्ति मे सन्निहित भयानक हिंसक रूप ने ही उन्हें मजबूर कर दिया हृदय-परिवर्तन के लिए! न कि हमारे उपदेशो ने! हमारी प्रार्थनाओं ने! अतः हमारी इस विजय मे आपके गाँधीवाद की कोई करामात तो दिखाई देती नही पडितजी?"—कहते-कहते वह पुनः हँस पडा।

पंडितजी को भी हँसी आ ही गई। उनमे विश्वासजन्य अनुदारता न थी। कठमुल्लापन न था। दूसरे, उल्लास की घड़ी भी थी। इस घड़ी मे अपने एक श्रद्धेय और विश्वस्त साथी से बहुत जल्द अपनी बौद्धिक पराजय स्वीकार कर लेने मे उन्हे रंचमात्र भी सकोच न हुआ।

"शैलेन बाबू!"—अपनी पराजय को स्वीकार करते मुसकाते हुए वे बोले—"अपनी बौद्धिक शक्ति के सम्बन्ध में मुझे पूरा ज्ञान है कि आपसे तर्कयुद्ध मे मै कभी भी विजयी न बन सकूँगा! किन्तु यदि मणिपुर-सरकार के विरुद्ध हमारी इस विजय में आप अपने मार्क्सवादी सिद्धान्त को ही लागू होते समझ रहे हों तो मुझे कोई आपत्ति नही! और आपको भी कोई आपत्ति न होनी चाहिए यदि मै अपने गाँधीवादी सिद्धान्त को ही लागू होते समझूँ! आपके तर्कों के समक्ष मेरा मस्तिष्क अवश्य पराजित हो चुका है, किन्तु मन पराजित नहीं हो सका!"

और शैलेन्द्र ने भी मुसकाते हुए जवाब दिया—"मुझे भी रचमात्र भी आपत्ति नही, विश्वास रखें पडितजी!" फिर एकाएक भावुक बन कर पंडितजी का अभिनन्दन करते श्रद्धा-भरे लहजे मे वह बोला—

"अपने परम त्यागी और परम साहसी नेता के मन को पराजय के अपमान से दुखी करने की धृष्टता या नीचता मैं नहीं कर सकता ! त्याग और साहस से भरे उस महामानव के उदार मन के मन्दिर में अपने हृदय के समस्त श्रद्धा-पुष्पों को समर्पित करके भी उसका उचित सम्मान मैं नहीं कर सकता !"—कहते-कहते भावना के आवेग में उसकी पलकें तनिक गीली भी हो उठीं।

भावुकता-जन्य उच्छ्वास पर काबू पाने का प्रयास करते हुए उसने फिर कहा—"पंडितजी ! माँ के पेट से ही कोई असाधारण बन कर जन्म नहीं लेता ! परिस्थितियाँ मनुष्य को बनाती भी हैं, बिगाड़ती भी ! उसे संघर्षशील भी बनाती हैं, विद्रोही भी, अकर्मण्य भी ! किन्तु परिस्थितियाँ प्रकृति के अतिरिक्त मनुष्य द्वारा भी निर्मित होती हैं ! कुछ लोग किसी नई परिस्थिति को पैदा करते हैं, और कुछ लोग उसका विरोध ! उसे मिटाने के प्रयास में विद्रोह भी करते हैं ! यह विरोध या विद्रोह ही उभय पक्ष को प्रतिसंघर्ष के लिए प्रेरित करता है ! फलतः उभय पक्ष में सजीवता आती है और जीवन में भी ! इसी उभयपक्षी सजीवता के उदर से नई-नई परिस्थितियों का जन्म होता है, और उन्हीं परिस्थितियों से नये-नये जीवन का भी !"

वातावरण में फिर गंभीरता आ गई। दूसरे पढ़े-लिखे लोगों के साथ पंडितजी भी खूब रुचि और एकाग्रता से सुनने लगे। शैलेन्द्र ने गला खखार कर अपना कथन जारी रखा—"मणिपुर-नरेश ने अपने चापलूस अनुचरों की प्रेरणा और परामर्श से समस्त मणिपुरी समाज के सामने 'श्राद्ध-कर-कानून' के रूप में एक नई दुखद परिस्थिति पैदा कर दी ! फलतः धर्मभीरु गरीब जनता में हाहाकार मच गया ! लेकिन यह हाहाकार काफी दिनों तक अरण्य-रोदन बना रहा ! न नरेश को प्रभावित कर सका, न नरेश की सरकार को ! किन्तु अन्ततः मणिपुर के एक महामानव ने जनता के दर्दभरे हाहाकार को पूरे हृदय से

महसूस किया। उसने बड़े साहस से इस दुखद परिस्थिति को, और ऐसी परिस्थिति पैदा करने वालो को चुनौती दी! फलतः पुनः एक नई परिस्थिति…"

कृष्णमाधवजी को अपनी इस मुख-स्तुति से बड़ा सकोच हुआ। उन्होंने दॉया हाथ हिलाते हुए झट मना किया—"अब मेरे सम्बन्ध मे अधिक कुछ मत कहिए शैलेन बाबू! बहुत हो चुका! आरंभ में मै तो केवल ईश्वरेच्छा से प्रेरित हो कर निमित्तमात्र बन गया था! 'निमित्तमात्र भव सव्यसाचिन्!' यह तो मेरा सौभाग्य था कि ईश्वर ने मुझे अकेला रहने नही दिया! मुझे एक-से-एक तपस्वी और तेजस्वी साथी उसने दे दिये! इस कृपा के लिए मै उस परम शक्ति का कम कृतज्ञ नहीं हूँ! मै स्वयं तो कुछ भी नहीं शैलेन बाबू! ईश्वरेच्छा-प्रेरित केवल एक सामान्य यन्त्र मात्र!"

"किन्तु मै तो ईश्वर को नही मानता पडितजी!"—शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए झट प्रतिवाद किया—"मै तो मनुष्य को ही सर्वोपरि मानता हूँ! उसे ही परम शक्ति! मै तो केवल सघर्ष की परिस्थितियों का विश्लेषण अभी कर रहा था! आपकी प्रशसा तो हम सबकी अपनी प्रशंसा है! केवल आपकी अकेली नहीं! क्योंकि हमने मिल कर युद्ध किया था, और अभी मिल कर विजय की खुशी मे भी शामिल हैं! हमारे मन अब भी एक हैं, मस्तिष्क की पृथक्-पृथक् हरकतो के बावजूद!"—कहते हुए वह हँस भी पड़ा।

पंडितजी के साथ दूसरे भी हँसे। पडितजी ने खुश हो कर कहा—"बस, हृदय की एकता ही सबसे बड़ी एकता है शैलेन बाबू! किसी समाज या राष्ट्र की सबसे बड़ी उपलब्धि! मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मतों के वैषम्य और विभेदों के बावजूद हमारे हृदय की एकता में दरार कभी न पड़ सके!"—कहते-कहते उनके नेत्र सजल हो उठे।

शैलेन्द्र उनके सजल नेत्रों को श्रद्धा-भरे नेत्रों से देखते हुए फिर

बोला—"मैं तो मनुष्य की वैयक्तिक विशेषता अर्थात् उसकी उच्चता मे विश्वास करता हूँ पंडितजी, ईश्वर या ईश्वरेच्छा में कदापि नहीं! मैं आपमें विश्वास करता हूँ! आपके हृदय के मानवोचित उच्चत्व में विश्वास करता हूँ! आपके निष्कपट व्यक्तित्व और निष्कपट आस्था का सम्मान करता हूँ! और इसी कारण मत-भेदों के बावजूद हमारे हृदय की एकता में दरार कभी नहीं पड़ सकी! और इसका सारा श्रेय मैं आपके महान व्यक्तित्व को देता हूँ जो हम-जैसों के कटु-कठोर आक्षेपों से भी कभी विचलित नहीं हो सका! स्वयं कभी कटु-कठोर न बन सका! आपने हमें जीता है निष्कपट प्यार से, ईमानदारी से! हम मार्क्सवादी निष्कपट प्यार को बहुत प्यार करते हैं, निष्कपट ईमानदारी को भी! कोई इन्हीं दो हथियारों से हमें जीत सकता है! लोहे के डंडे से हमें कोई परास्त नहीं कर सकता! सकपट उपदेशों और झूठी आत्मीयता के प्रदर्शन से हमें कोई अधिक दिन भुलावे मे नहीं डाल सकता! हम मित्र और शत्रु की पहचान बहुत जल्द कर लेते हैं!

"इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि आज भारत के राजनीतिक जीवन में दो ही विचार-धाराएँ प्रमुख हो चली हैं—गाँधीवाद और मार्क्सवाद! आह, यदि गाँधीवादी नेताओं में आप जैसे ही निष्कपट व्यक्तित्व के लोग हों तो कभी इस देश के राजनीतिक जीवन में कटुता प्रवेश कर ही नहीं सकती! कुत्सित स्वार्थ का जहर प्रवेश कर ही नहीं सकता! और भारत की स्वतन्त्रता के बाद न कभी राजनीतिक गृह-युद्ध का यहाँ खतरा ही पैदा हो सकता है! तब गाँधीवादी और मार्क्सवादी उसी पारिवारिक प्रेम-भावना से सारे देश में साथ-साथ रह सकेंगे जिस प्रकार अब तक हम यहाँ के संघर्ष में एक साथ रह कर आज एक साथ विजय का आनन्द मना रहे हैं! पारिवारिक प्रेम का गर्वोज्ज्वल आनन्द अनुभव कर रहे हैं!"

"किन्तु मार्क्सवादियों में भी आप और चन्द्रावत जैसे ही सब लोग

भी तो हों? ताली एक हाथ से नहीं बजती शैलेन बाबू?''—कृष्ण-माधवजी ने टोका उसे।

और शैलेन्द्र ने मुसकाते हुए झट जवाब दिया—"भारत के राजनीतिक जीवन मे गाँधीवादी कुल-ज्येष्ठ हैं पंडितजी! कुल-ज्येष्ठो पर समझोते की जिम्मेदारी कुछ अधिक होती है। आपने जिस ईमानदारी से कुल-ज्येष्ठता की जिम्मेदारी यहाँ निभाई है, यदि भारत के प्रमुख गाँधीवादी नेता भी इसी ईमानदारी से कुल-ज्येष्ठ के धर्म का निर्वाह करें तो मार्क्सवादी छुटभैये स्वय अपने-आप उनके अनुगत बन जायेंगे! लौह-दड दिखा कर, या आँखें लाल-पीली करके, अथवा घृणित गालियाँ दे कर कोई हमें अनुगत या आत्मीय तो बना सकता नहीं! स्वयं अपने हृदय मे घोर घृणा और घोर हिंसा का भाव छिपाये कोई प्रेम और अहिसा का पाठ हमे नहीं पढ़ा सकता! हम सच्चे प्रेम और सच्ची अहिसा का जवाब सच्चे प्रेम और सच्ची अहिसा से देंगे, और ईंट का जवाब देंगे पत्थर से!

"कुछ रँगीले बेईमान गाँधीवादियो द्वारा अभी से यह प्रचार किया जा रहा है कि 'मार्क्सवाद' विदेशी है और मार्क्सवादी हैं विदेशी एजेंट! तो फिर इस प्रचार के जवाब मे हम भी छाती फुला कर खूब जोरदार लहजे मे यह कह सकते हैं—'गाँधीवाद भी विदेशी वाद है! इगलैंड के 'रस्किन' साहेब के विचारों को चुरा कर 'गाँधीवाद' यह स्वदेशी नाम दिया गया है स्वदेशी मूर्खों को गुमराह करने के लिए! गांधीवाद पूँजीवाद का परम मित्र है, और जनवाद का परम शत्रु!' फिर परस्पर के ऐसे कटु प्रचारों से समझौता हो कैसे सकेगा पंडितजी? सार्वदेशिक विचार और सिद्धान्त कभी विदेशी हो नही सकते! सार्वदेशिक गुण-धर्म और स्वभाव के कारण ही कोई विचार या सिद्धान्त विश्व-मानव के मन में प्रवेश पा सकते हैं। यदि मार्क्सवाद विदेशी या एकदेशी होता तो क्यों आज विश्व के कोने-कोने में मार्क्सवादियों की

संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है ?"

कृष्णमाधवजी ने कहा—"इस प्रकार के कुत्सित प्रचार को मै गाँधीवाद के कतई अनुकूल नही मानता शैलेन बाबू ! गॉधीवाद तो हमें अन्य मतों और सिद्धान्तों का भी आदर करने की शिक्षा देता है ! वास्तव मे इस प्रकार के प्रचारक सच्चे गॉधीवादी नहीं हैं ! वे पक्के 'स्वार्थवादी' हैं ! आपने बिलकुल सत्य कहा कि परस्पर के ऐसे कटु-प्रचारों से आपस में समझौता कभी नहीं हो सकता ! पारस्परिक प्रेम पैदा नहीं हो सकता ! और परिणामतः किसी दिन देश मे भयानक गृह-युद्ध भी उत्पन्न हो सकता है ! भगवान ऐसा न करें, किन्तु गॉधीवादी होने के नाते मैं स्पष्ट शब्दों मे कह दूँ कि देश मे ऐसी दुष्परिस्थिति उत्पन्न करने की सर्वाधिक जिम्मेदारी होगी उन्ही नामधारी गॉधीवादियों पर जो वास्तव मे 'स्वार्थवाद' के अनुयायो हैं ! पुजारी हैं ! किसी अन्य को दोषी ठहराने से पहले गॉधीवाद के सच्चे अनुयायियों को स्वयं निज के दोषों पर अधिक विचार करना चाहिए !"

"सच्चा मार्क्सवादी भी कपट-सन्तो से ही घृणा करता है, सच्चे सन्तों से नहीं पंडितजी !"—शैलेन्द्र जवाब दिया—"मै इन राजनीतिक मतवादों से भी कहीं अधिक महत्त्व देता हूँ सच्ची मनुष्यता को ! क्योंकि सच्ची मनुष्यता के बिना कोई सच्चा मार्क्सवादी भी नहीं बन सकता ! यों मार्क्सवादी पुस्तकों का रट्टा लगा कर और दल की सदस्यता प्राप्त करके कोई प्रतिभावान 'दुर्जन' भी आसानी से मार्क्सवाद का रगीन जामा पहन कर मक्कारी के सहारे मार्क्सवादी पार्टी के ऊँचे-से-ऊँचे पद पर पहुँच सकता है ! स्वयं मार्क्सवादी होते हुए भी मै ऐसे दुर्जनों से कहीं अधिक घृणा करूँगा किसो भी अन्य दल के दुर्जनों की अपेक्षा ! क्योंकि ऐसे लोग कहीं अधिक खतरनाक शत्रु होते हैं किसी दल के और दल के ऊँचे आदर्शों के ! किन्तु मुझे तो जहाँ कहीं भी सच्ची मनुष्यता दिखाई देगी मैं उसे प्यार करूँगा ! श्रद्धा और सम्मान करूँगा !"

फिर एकाएक उसने गोष्ठी मे चुपचाप बैठी अपनी धर्म-माता की और श्रद्धा-भरा सकेत करते भावना-भरे स्वर में कहा—"हमारी माँ को देखिए पंडितजी! उनके परम उज्ज्वल जीवन को देखिए! विचार-वितर्क की क्षमता से शून्य मस्तिष्क, पर हृदय कितना विशाल! अपने धार्मिक विश्वास में अटल रहते हुए भी सकीर्णता की दीवारो से कितना उन्मुक्त! केवल विचार-वितर्क की प्रतिभा से सपन्न कौन मार्क्सवादी और कौन गाँधीवादी हमारी माँ की तुलना मे आ सकेगा?"—कहते हुए उसने पुनः पवित्र-भावना-भरे नेत्रों से माँ को निहारा।

दूसरे लोगों के श्रद्धापूर्ण नेत्र भी माँ पर निबद्ध हो चले। लेकिन माँ शैलेन्द्र की बातों का तात्पर्य न समझती हुई भी अप्रतिभ-सी हो उठीं। उन्होंने अपने अगल-बगल बैठी मुक्ता और तोम्बी से शैलेन्द्र का तात्पर्य पूछा। और तोम्बी उनके कान के निकट मुँह ले जा कर शरारत-भरे लहजे में बोली—"वे शिकायत कर रहे हैं चाची, कि मेरी माँ आजकल क्यों दुबली हो चली है? वे उन्हे सलाह दे रहे हैं कि इसके लिए भाभी को कड़ी सजा देनी चाहिए!" और मुक्ता, सबकी आँख बचा माँ की पीठ-पीछे हाथ ले जा तोम्बी की जाँघ में चिकोटी काटती हुई आँखे तिरछी करके चुपके से बोली—"तू किसी भी समय शरारत से बाज नही आती!" और फिर माँ के दूसरे कान के निकट मुँह करके—"तोम्बी झूठ बोलती है इमाँ! शैलेन बाबू कह रहे हैं कि मेरी माँ से अच्छी माँ इस ससार मे कोई नहीं!" और माँ ने मुक्ता के माध्यम से झट आदेश दिया—"शैलेन से कह दे कि अब वह ज्यादा न बोले! भोजन के बाद तनिक आराम करना चाहिए!"

लेकिन शैलेन्द्र का वाणी-प्रवाह जारी रहा—"प्रतिभा और मनुष्यता दो अलग-अलग चीजें हैं! प्रतिभा मस्तिष्क का वरदान है और मनुष्यता हृदय का! जिस मनुष्य में इन दोनों वस्तुओं का समन्वय और समागम हो उसे ही 'महामानव' कहा जा सकता है! किन्तु मै

तो केवल मस्तिष्क के वरदान के मुकाबले हृदय के वरदान को कहीं अधिक मूल्यवान मानता हूँ पंडितजी ! और जहाँ इन दोनों वरदानों का समागम देखता हूँ उसे ही मैं सच्चा मार्क्सवादी मान लेता हूँ ! उसे ही सच्चा मनुष्य ! और केवल हृदय के वरदान से परिपूर्ण मनुष्य को भी ! क्योंकि मार्क्सवाद का चरम उद्देश्य ही है विश्व-मानव को एक स्नेहमय सुखी सपन्न परिवार में बदल देने का ! और जब तक मार्क्सवादी राजनीतिज्ञों में प्रतिभा के साथ मनुष्यता का भी समन्वय नहीं होगा, मार्क्सवाद का चरम लक्ष्य मूर्तिमान कभी हो नहीं सकता ! आप चाहे गाँधीवादी हों, या वेदान्ती साम्यवादी ! पर आप सबसे अधिक हैं सच्चे मनुष्य ! इस नाते मैं आपको सच्चा मार्क्सवादी भी मानता हूँ ! आपने हमें अपनी व्यावहारिक सचाई और उदारता से जीता है पंडितजी, न कि गाँधीवादी या वेदान्ती उपदेशों से ! सच मानिए, मैं आपके समक्ष अपने को पूर्ण पराजित अनुभव कर रहा हूँ ! पर इस पराजय में ग्लानि के बजाय मुझे गर्व और आनन्द अनुभव हो रहा है कि हमें आप जैसा ईमानदार नेता मिला ! सच्चा साथी मिला !"

फिर एकाएक अत्यन्त भावुक बन क्षमा-याचना के स्वर में वह बोला—"जेल-जीवन की अवधि में यदा-कदा सैद्धान्तिक कठमुल्लेपन के नशे में आ कर मैंने जो कुछ बुरा-भला कह दिया हो उसके लिए आज मैं करबद्ध क्षमाप्रार्थी हूँ पंडितजी ! आप हमारे पूज्य हैं, पथ-प्रदर्शक गुरु हैं ! आपने हम-जैसे अनेक युवकों के समक्ष जीवन की एक सजीव परिस्थिति पैदा कर हमें जीवन की घिसी-पिटी लीक से खींच कर असाधारण जीवन के पथ पर अग्रसर किया ! मैं आपका बहुत, बहुत कृतज्ञ हूँ पंडितजी !"—कहते-कहते उसकी आँखों मे कृतज्ञता के आँसू उमड़ आये। उसके दोनों श्रद्धा-भरे हाथ सिर से जैसे अपने-आप जा सटे।

पंडित कृष्णमाधवजी की आँखें भी भर आईं। चादर के छोर से

आँखें पोंछ गद्गद कंठ से वे बोले—"शास्त्र में लिखा है कि 'पुत्रादिच्छेत् पराजयम् !' अपने पुत्र से हर सच्चे पिता को पराजय की कामना करनी चाहिए ! आपने मुझे 'गुरु' का पद दे भी दिया है शैलेन बाबू ! गुरु भी पिता-तुल्य होता है ! साहस, सहृदयता, बलिदान और विद्वत्ता में आप मुझसे कितना आगे हैं यह मेरे बताने या साबित कर देने की बात अब नहीं रही ! आप जैसे शिष्य-साथियों से अपनी पराजय अनुभव करने मे मुझे भी कम गर्व और कम आनन्द अनुभव नहीं हो रहा ! मै ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि सामाजिक, राजनीतिक या वैयक्तिक हर क्षेत्र मे आप जैसा सच्चा साथी भगवान सबको दे शैलेन बाबू !"

इतना कह कर पुनः उभरे आँसुओ को पोछते हुए वे सारी गोष्ठी को सबोधित करते हुए बोले—"साथियो ! चाहे हम गाँधीवादी मार्ग से विजय तक पहुँचे अथवा मार्क्सवादी मार्ग से, इसमे हमारा कोई विवाद नहीं ! किन्तु यह स्पष्ट तथ्य है कि विजय हमे मिली है सबके साझे सहयोग से ! जिस उद्देश्य के लिए हमने सघर्ष आरम्भ किया था उसके अन्तिम चरण का नेतृत्व मणिपुर की मातृ-शक्ति ने सम्हाल कर हमें आशा से कही अधिक विजयी बना दिया ! और इस शानदार और महान विजय के उपलक्ष्य मे एक परम पुनीत और मागलिक उत्सव हमे मनाना है ! आज ही ! और इन 'लोकताक माता' के पवित्र तट पर ही ! शास्त्र ने कहा है—'शुभस्य शीघ्रम् ।' सो, उस शुभ उत्सव को मनाने के लिए हमे शीघ्र तैयारी मे अब जुट जाना चाहिए !"

"कौन-सा शुभ उत्सव गुरुजी ? कौन-सा ?"—एक साथ कई लोगों ने औत्सुक्य और कौतूहल-भरे स्वर में प्रश्न किया ।

पडितजी ने जवाब दिया—"बता रहा हूँ ! मेरे मन के भगवान ने इसी क्षण अचानक मुझे सलाह दे दी है ! भगवान ने मानो जान-बूझ कर ही हमारे शैलेन्द्र और चन्द्रावत को यहाँ पहले ही पहुँचा दिया, और हमें आज यहाँ इस शुभ-सुन्दर रूप में पहुँचाया ! मणिपुर

की प्राचीन राजधानी 'मोयराङ' के किनारे इस लोकताक में हम लोग अभी बैठे हैं ! प्राचीन मणिपुर की महासती 'थोइबी' की जन्म-भूमि है मोयराङ ! और आज वर्तमान मणिपुर की दो महासतियाँ (मुक्ता और तोम्बी की ओर तर्जनी का इशारा करके) बैठी हैं हमारे बीच ! इन दोनों महासतियों का पाणि-ग्रहण-संस्कार उस सती की जन्म-भूमि में ही कराने का हृदय के भगवान ने मुझे आदेश दिया है ! क्यों, क्या विचार है आप सबों का ?"

"भगवान ने बहुत अच्छी सुझाई पंडितजी ! बहुत अच्छी !"—समर्थन के अनेक स्वर गूँज उठे ।

लेकिन चन्द्रावत तनिक सकुचित स्वर में, मुसकाते हुए बोला—"वह संस्कार तो आप अभी-अभी करा चुके पडितजी ?"

और पडितजी ने भी मुसकाते हुए जवाब दिया—"तुम दोनों शास्त्रों की मर्यादा भले ही न मानो, किन्तु मैं तो मानता हूँ ! समाज तो मानता है ! अतः मैं अपने श्रद्धेय वीर साथियों के दाम्पत्य-जीवन को समाज की आँखों में असामाजिक, अनैतिक या अधार्मिक रहने देना नहीं चाहता ! मैं किसी को यह अवसर देना नहीं चाहता कि वह इस छोटी-सी बात को ले कर हमारे पूज्य साथियों की ओर अँगुली भी उठाये ! और एक दूसरी बात ! सामाजिक रूप में तुम लोगों का ऐसा सम्मान करने और ऐसी खुशी मनाने का ऐसा सुन्दर अवसर हमें मिलेगा कब ? हम क्यों इस शुभ अवसर को हाथ से जाने दें ?"

चन्द्रावत चुप हो गया । और सब-के-सब बड़े उल्लास से विवाहोत्सव का यत्किंचित् आवश्यक साज-सरंजाम जुटाने मे जुट पड़े । खुशी की पुनः एक नई लहर छा गई ।

इस विवाहोत्सव की तैयारी मे बिलकुल नवीनता थी। पुरानी रीति-रस्मों से बहुत कुछ स्वतंत्रता की नूतनता! 'हायजबा' या 'कनजबा'[1] की रस्मों को स्वय मुक्तावती और तोम्बी सना ने ही तोड़ दिया था! वर-वधू के आपसी आकर्षण से सपन्न प्रेम-विवाह भी मणिपुरी प्रथा द्वारा पूर्ण अनुमोदित है। हॉ, तो यह विवाह भी प्रेम-विवाह था, किन्तु फिर भी कोई दिन-लग्न पहले से निर्धारित नहीं किया गया। 'वर-बारतन'[2] की रस्म अदा नहीं की गई। 'फॅंगारुक'[3] मे रख कर कन्या के घर ले जाने के लिए तेलही रोटियो, केला, पान, ईख, नारियल और 'कवोक्'[4] आदि शुभ वस्तुओ का प्रबन्ध भी व्यर्थ समझा गया। दहेज की सामग्रियों का इन्तजाम भी नहीं हो सका। और वधू द्वारा विवाह के अवसर पर 'फनिक' के ऊपर पहनने के लिए 'पोलोइ'[5] तथा सिर पर

---

१. वर-वधू के बचपन से ही उभय पक्ष के अभिभावकों द्वारा विवाह की बात चला कर पक्की की गई बात या रस्म को 'कनजबा' कहते हैं, और उभय पक्ष द्वारा ही वर-वधू के वयस्क होने पर पक्की की गई बात को 'हायजबा'।

२. बरात में शामिल होने के निमत्रण को 'वर-बारतन' कहते हैं। पान भेज कर निमन्त्रण दिया जाता है।

३. बॉस की बारीक कमचियों से बनी ढक्कनदार मंदिरनुमा पेटारी को 'फॅंगारुक' कहते हैं।

४. धान की खीलों अथवा लावा (लाजा) को ईख के रस मे भिगोकर बनाये गये मिष्टान्न को 'कवोक्' कहते हैं।

५. 'पोलोइ' घाघरानुमा होती है, कामदार। सफेद या काले रग की न हो कर लाल, नीले, पीले, गुलाबी रंगों से युक्त।

सिरमुकुट की तरह धारण करने को 'तर्जेंगलइ'[1] का प्रबन्ध भी किया न जा सका। वर के लिए सफेद धोती, कुर्ता और पगड़ी का प्रबन्ध बिलकुल आसान था। पर वर के गले से घुटने तक लहराने वाला, खूब बारीक सूत का बना कीमती 'लाङ्गा' (ओढ़ना) भी नहीं जुटाया जा सकता था। किन्तु वधुओं की सहेलियों एवं वर के इष्ट-मित्रों को बरात में निमन्त्रित करने की रस्म तो जैसे अपने-आप पूरी हो गई! हाँ, मोयराङ के बाजार में पहले ही कुछ कुशल व्यक्ति दौड़ा दिये गये ताकि वे वर-वधुओं के लिये नये वस्त्रों का प्रबन्ध कर सकें, विवाह का मंडप भी बना सकें।

सखियाँ बड़े उत्साह और उल्लास से मुक्तावती और तोम्बी सना को सजाने में लगी थीं। सब पुनः नये सिर से नहा-धो आई थीं। थम्बाल पोम्बी मुक्तावती के बाल सजाने में लगी थी, और रंजना तोम्बी सना के। मुक्ता के बालों में कंघी करती-करती थम्बाल हर्षोच्छ्वसित आँसुओं को सम्हालने का प्रयास करती अश्रु-रुद्ध स्वर में बोली—"महाभारत की कथा में सुन चुकी हूँ कि द्रौपदी कौरवों के वध की प्रतिज्ञा में वर्षों तक अपने बाल खोले रही! और अन्त में महाबली भीमसेन ने भरी सभा में द्रौपदी का अपमान करने वाले दुष्ट दुःशासन का बध करके द्रौपदी की प्रतिज्ञा पूरी की, अपने हाथों उसके बाल सँवारे, वेणी बाँधी! उसी तरह हमारी वह प्रतिज्ञा भी पूरी हो चुकी जो माँ की जलती चिता की राख हाथ में ले कर हमने की थी! माँ की वीर बेटी ने स्वयं मणिपुर के दुष्ट कौरवों को धूल चटा कर अपनी माँ के अपमान का बदला चुका लिया! मुझे कितनी खुशी हो रही है अपनी प्रिय सखी के

---

१. 'तर्जेंगलइ' सुनहला चमकीला मुकुट जैसा, जिसमें चमकीले झालर भी लगे होते हैं। यह बड़ा मूल्यवान होता है। अक्सर किराये पर भी ले कर काम चला लेते हैं।

उस क्षण खुले बालों को इस क्षण अपने हाथों सँवारते और बाँधते ! दुख केवल यही कि माँ हमें छोड़ कर चली गई ! आज यदि इस शुभ अवसर को अपनी आँखों से वे देख पातीं !"

कहती-कहती थम्बाल एक साथ सुख और दुख के उच्छ्‌वासो से अवश हो रो पड़ी। दूसरी सखियो की आँखें भी छलक चली ! रजना को सबसे अधिक कष्ट हुआ, क्योंकि उस दुर्घटना की तसवीर उसकी आँखों मे अचानक जैसे साकार हो उठी। मुक्ता और तोम्बी, सिर झुकाये बालों को गुँथवाती, चुपके-चुपके रोती रही। विजय और विवाहोत्सव की खुशी को उस करुण घटना की स्मृति अचानक जैसे जोर का खरोंचा मार गई। किन्तु विजय के उल्लास और प्रतिज्ञा पूरी होने के सन्तोष ने बहुत शीघ्र उस शोक को हलका कर दिया। मुक्ता और तोम्बी की वेणियों में लाल कमल के फूल भी सजा दिये गये। ललाट पर गोपीचन्द की दो खड़ी रेखाओ के अगल-बगल राधा-कृष्ण के नाम की छापें भी चमक उठी ! नई साज-सज्जा में दोनो दुलहिनें यो प्रतीत होने लगीं जैसे राधा अपनी प्रिय सहेली के साथ कृष्ण-अभिसार मे जाने को तैयार हो उठी हो !

अब मुक्ता और तोम्बी स्वय अपने हाथो अन्य सखियो को सजाने लगी। हास-परिहास का रग पुनः उभर उठा। उनकी वेणियो को बाँध जब उनमें कमल के फूल भी सजाने लगीं, थम्बाल ने मीठी चुटकी ली—"अरी, तुम दोनो तो आज अपने जोडो से मिलने जा रही हो ! इस कारण ऐसी साज-सजावट तुम दोनों को शोभा दे सकती है ! मगर हमे तो···"

और तोम्बी बीच में ही झट बोल उठी—"अरी, मूरख ! क्यो हो रही है निराश तू ? आज तो रास-लीला होगी वहाँ, रास-लीला ! क्या कृष्ण-कन्हैया अकेली राधा के ही साथ रास रचायेंगे ? सजी-धजी गोपियाँ भी तो चाहिए उन्हें ?"

राधा-कृष्ण की लीलाओं के साथ मणिपुर का धार्मिक हृदय सैकड़ों वर्षों से तादात्म्य स्थापित कर चुका है। और यह ठहरी खुशी की बेला! और आपस का एकान्त हास-परिहास! जैसे सबका हृदय हजारों वर्ष पहले के वृन्दावन की सरस आत्मा में प्रविष्ट हो चला!

चन्द्रा ठुमक कर हँस उठी। बोली—"मगर कृष्ण-कन्हैया तो अनेक रूप धरा करते थे रास में? है तुम्हारे कृष्ण-कन्हैया में वह सामर्थ्य?"

"तू चिन्ता न कर!"—तोम्बी ने हँस कर जवाब दिया—"हमारे कृष्ण तो कलियुगी हैं! एक साथ अनेक रूप धारण नही कर सकते! मगर ग्वाल-बाल तो हैं ही उनके साथ? मन-ही-मन तुम सबों ने उनमें से अपने-अपने जोड़े भी चुन ही रखे हैं? आज खुल कर खेल लेना उनके साथ! इसलिए ही तो तुम सबों को अभी बहू-वेश में सजा रही हूँ ताकि उनका मन कहीं हम दोनों पर ही भटक न जाय! और अभी जा कर पंडितजी से भी सिफारिश करने की सोच रही हूँ कि आज ही मन्त्र पढ़ कर हम सबको एक साथ अपने-अपने जोड़ों से बाँध दिया जाय ताकि हममें ईर्ष्या न उभर सके!"

और रुक्मिणी उसे झट एक मीठी चपत लगा हँसती हुई बोली—"तेरी सहेलियाँ क्या इतनी ओछी हैं बंगालिन बहू, कि अपनी सहेलियों के सुख पर ईर्ष्या करेंगी? क्या तू यही समझती है पगली?"

और तोम्बी झट रुक्मिणी को चूम कर तनिक गंभीर स्वर में बोली—"तू शायद नाराज हो पड़ी मेरी प्यारी सखी! मैं तो सचमुच चाहती हूँ कि मेरी सभी सहेलियों को वह शुभ अवसर आज ही नसीब हो जाय! मैं तो सचमुच कहूँगी पंडितजी से भी! हम सब आज तक एक साथ अपने शत्रु से लड़ती रहीं! यदि एक साथ ही सुख का यह दिन भी देख सकें तो कितनी खुशी होगी हमें! तुम्हें ईर्ष्या न हो, मगर हमें तो अपनी अकेली के सुख पर ईर्ष्या होगी जरूर?"—कहते-कहते

उसकी आँखें छलछला आई। जैसे हृदय की निष्कपट आत्मीयता आँखों मे उभर कर चमक उठी हो!

इतने मे स्वय प० कृष्णमाधवजी वहाँ पहुँच कर सबको आदेश देते हुए बोले—"प्रस्थान का लग्न आ गया बेटियो! नावे तैयार खड़ी हैं! झटपट तैयार हो जाओ! पहुँचते रात हो जायगी!"

तोम्बी ने झट आगे बढ़ कर अभी कुछ क्षण पहले की अपनी सोची हुई योजना पडितजी से चुपके से कह सुनाई। पडितजी क्षण भर सोच कर प्रफुल्ल स्वर मे बोले—"सुझाव तो तेरा बड़ा सुन्दर है बेटी! किन्तु यह तो बता कि तेरी कौन-सी सहेलियाँ इस शुभ कार्य के लिए तैयार हैं अभी?"

"सभी क्वाँरियाँ चाचाजी!"—तोम्बी ने चुपके से जवाब दिया।

"किन्तु दूसरे क्वाँरे भी तो तैयार हों?"—पडितजी ने तनिक सन्दिग्ध स्वर मे पूछा।

"सबका, दोनों पक्ष की ओर से, मानसिक चुनाव तो वर्षों पहले ही हो चुका है चाचाजी! अब केवल आपके आगे बढ़ने की देर है! दोनो पक्षो के नेता अथवा पिता कहिए, आप ही तो हैं!"

"तो चुपके से सबके अलग-अलग नाम तो बता दे बिटिया!"

तोम्बी ने चुपके से सभी युगल-जोड़ियो के नाम उन्हे बता दिये। और पडितजी झट वापस जा पहुँचे पुरुष-मडल के मध्य। सौदा पटते देर क्या भला? सकेत मात्र पर्याप्त! सघर्ष के चिर-कुमारों के लिए सामूहिक विवाह का ऐसा शुभ अवसर भला कब आ पाता? और सो भी महासती थोइबी और महाबली खम्ब की महिमान्वित निवास-भूमि पर! पडितजी गाँधीवादी ठहरे! और उन्हें मालूम हो चुका था कि गाँधीजी के वर्धा-आश्रम मे विवाह पर केवल दो रुपये खर्च किये जाते हैं। मणिपुरी प्रथा को गाँधीवादी प्रथा के रंग में मिला कर बिना विशेष आडबर के सबका एक साथ विवाह करा देने का निर्णय सर्वसम्मति

से कर लिया गया।

विवाह-यात्रा की मंगल-ध्वनि के रूप में पन्द्रह कीर्तनियों के मृदग और करताल के समवेत स्वर कीर्तन के स्वरों के साथ सहसा गूँज उठे। वर-वधुओं के साथ सभी बराती उस मंगलमय प्रस्थान के निमित्त झट तैयार हो उठे। सामने पवित्र जल से भरा नवीन मगल-कलश रख दिया गया। और पडितजी ने सबसे आगे खड़े हो प्रस्थान का पग उठाने से पहले नीचे-लिखे मगल-श्लाक का खूब हृष्ट स्वर मे उच्चारण किया—

"ओ-ओ-ओं-म्! मङ्गलं भगवान् विष्णुः मङ्गलं गरुडध्वजः!
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षः मङ्गलायतनो हरिः। ओ-ओं-ओ-म्!"

शंख-ध्वनि आकाश मे गूँज उठी। सब चल पड़े। नावों को भी फूल-पत्तों से सजा दिया गया था। केले के मांगलिक स्तंभ भी खड़े कर दिये गये थे। इस अपूर्व महोत्सव को देखने के लोभ में गाँववालों की अनेक नावें भी चल पड़ीं। पूर्वा हवा बहने लग पड़ी थी। अतः 'मोयराङ' की दिशा मे नावों की गति काफी तेज हो चली। और वर्षा ऋतु होने के कारण सरोवर का जल-तट बिलकुल मोयराङ से जा लगे होने के कारण, संध्या होते-होते बड़ी असानी से थोइबी और खम्ब के 'काङला' (महल) के खँडहरों के निकट ही सारी नावें जा लगीं।

खम्ब-थोइबी के महल के खँडहर पर बने आधुनिक 'गवर्नमेंट हाउस' के भवन ने यद्यपि उस महल का कोई चिह्न भी शेष रहने नहीं दिया है, किन्तु उस परमतत्व-निष्ठ दम्पती की अमर प्रेम-गाथा को मणिपुर के लोक-मानस से कौन मिटा सकता है? कौन छीन सकता है? उस स्थान की धूल को महिलाएँ आज भी बड़ी श्रद्धा से मस्तक से लगाती हैं। और जब आज यह बरात वहाँ पहुँची तो मुक्ता और तोम्बी ने भी सखियों-सहित बड़ी श्रद्धा से उस पवित्र भूमि को नमस्कार किया। उस धरती की धूल को मस्तक से लगाया।

मोयराङ बाजार में इस विवाहोत्सव का शुभ समाचार पहले ही पहुँच चुका था। सारे बाजार में चहल-पहल मच गई थी। कामचलाऊ विवाह-मंडप के निर्माण में सभी नागरिक बडी श्रद्धा और तत्परता से सहयोग दे चुके थे। क्योंकि जन-रव के पंख पर सवार हो मुक्तावती के सतीत्व की महिमा वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थी। और तिसपर उस सती के नेतृत्व मे मणिपुरी महिलाओं द्वारा राज-गर्व को धूल चटाने की ताजी-ताजी खबर! तिसपर महासती थोइबी की निवास-भूमि पर इस अनोखे विवाहोत्सव की तैयारी! भला कौन उसे बिना देखे रह पाता अपने घर मे? खबर पा कर आस-पास के गाँवो के लोग तक दौड़ पडे थे! बरात के किनारे से लगते ही कौतूहल-भरी श्रद्धा और उल्लास के साथ नागरिकों की विशाल भीड़ ने उनका ऐसा स्वागत किया मानो स्वय शकर-पार्वती के विवाह की बरात वहाँ पहुँची हो!

कुल मिलाकर वर-वधुओ की सात जोड़ियाँ थीं। वरो के लिए 'लुहोगफाल' (काष्ठासन) का प्रबन्ध हो गया, और वधुओ के बैठने के लिए 'मोरा' का भी। मृदग और करताल पर कीर्तनियो के हाथ मुखर हो उठे और उनके कीर्तन के स्वर आकाश मे! वर-वधुओ की हर जोड़ी के लिए एक-एक 'सेवारी'[1] नियुक्त कर दिया गया। और कीर्तन के स्वर ध्वनित होते ही सेवारियो ने अपनी-अपनी जोडी के वरों को बड़े प्रेम से ले जा कर 'लुहोगफालों' पर बैठा दिया और वधुओं को 'मोराओं' पर। संक्षेप में प्रारंभिक विवाह-विधियो के सपन्न किये जाने के बाद सात फेरे लगाने की मुख्य रस्म अब आरभ की गई।

मृदग और करताल पर कीर्तनियों के हाथ मुखर हो उठे—"खित्ता धेन्त धिन् चेन् त!" और साथ ही कीर्तन के मधुर, मन्द्र, समवेत स्वर

---

१. 'सेवारी' = विवाह-कर्म में वर-वधू का सहायक।

भी मुखरित हो उठे—

"रूपलावनी चितामुहिनी प्रेममूर्तिधारिणी रूप ..!!!

धनी धनी चाँदवदनी रूप.. !!!

...."

और इस मृदग-करताल के लय-ताल पर मधुर मुखरित होते कीर्तन के इन स्वरों म जैसे फेरे डालने का बिगुल बज उठा ! अपने-अपने सेवारियों के निर्देश का अनुसरण करते हुए वधुओं के दल ने अपने-अपने वर के फेरे लगाने शुरू किये। मृदग-करताल के साथ कीर्तन के मधुर-मधुर स्वर गूँजने लगे, और वधुएँ हाथ की 'लाजाओं' (धान की खीलों) को बिखेरती धीरे-धीरे एक ताल पर यों चलने लगीं जैसे नवजीवन के आरभ का मधुर सलज्ज नृत्य उनके पैरों में साकार हो उठा हो ! वरों के आगे थालियों में पुष्प-सिन्दूर आदि मांगलिक वस्तुएँ रखी थीं। एक फेरे के पूर्ण होते ही वधुएँ उन थालियों से पुष्प-सिन्दूर ले-ले कर वरों की पगड़ियों पर डाल देतीं। इसी प्रकार सात बार ! सातवें फेरे के पूर्ण होने पर वधुओं ने थाल में रखी फूल की दो-दो मालाएँ ले कर वरों के गले में डाल दीं। और इसके बाद वे अपने-अपने दूल्हों के बाम भाग मे 'सेवारी' द्वारा उसी आसनपर बैठा दी गईं। फिर सेवारियों ने वरों के गले से फूल की एक-एक माला उतार वरों के हाथों में थमाई। और पुरोहित के मन्त्र-पाठ के साथ ही वरों ने अपनी-अपनी वधुओं को तिरछी चितवन से देख उनके गले मे वह माला पहना दी। वधुओं के गले में वरों द्वारा माला डालते ही बरातियों ने एक साथ हर्षोद्वेग की तालियाँ बजाईं। मानो उनके मगलमय दाम्पत्य की सामूहिक शुभ कामना उन तालियों में एक साथ मुखर हो उठी !

अब पुरोहित श्रीकृष्णमाधव शर्मा ने पारी-पारी से सूत के धागे से वर-वधुओं के हाथ एक साथ बाँधे। उन अंजलिबद्ध हाथों ने जैसे उपस्थित

जनों से मूक भाषा में शुभ कामना की याचना की, और उपस्थित जनों ने अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार शुभ भावना के प्रतीक रूप में रुपये-पैसे देने शुरू किये। ओह, बात-की-बात में कितनी धन-राशि एकत्र हो चली! जैसे लोगों ने अनन्य श्रद्धा-भावना से देवताओं पर अपने हृदय अर्पित कर दिये हों! और इसके बाद सेवारियों ने वर-वधुओं के वस्त्रों की परस्पर गाँठें बाँधीं! विवाह सम्पन्न हो गया! चन्द्रावत और मुक्तावती ने, एव शैलेन्द्र और तोम्बी सना ने उसी रूप में उठ कर सबसे पहले माँ के चरण छुए। फिर कृष्णमाधवजी के। दूसरी जोड़ियों ने भी ऐसा ही किया। माँ की आँखों में अनुपम हर्ष के अश्रु उमड़ आये! वे प्रत्येक वर-वधू पर उसी हृदय से मातृत्व की मंगलमय आशीषों को लुटा रही थीं जिस हृदय से अपने चाँदा और मुक्ता, एवं शैलेन्द्र और तोम्बी पर लुटा चुकी थीं।

कृष्णमाधवजी के आदेश पर फिर सभी दूल्हे अपनी-अपनी वधुओं के साथ लुहोंगफालों पर पूर्ववत् जा बैठे। दर्शक और बराती भी इशारा पा कर पूर्ववत् बैठे रहे। कुछ लोग विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में सर्व-रस भोज्य पदार्थों को तैयार करने में पहले से ही लग चुके थे, विशेषतः मोयराङ के श्रद्धालु, उत्साही नागरिक!

अपने लंबे संघर्ष की शानदार विजय, और मानो उसी विजय की परम मंगलमय पूर्णाहुति के रूप में इस अद्भुत, अभूतपूर्व विवाह-यज्ञ की पूर्णता के उपलक्ष्य में पं० कृष्णमाधव शर्मा अपने हृदय के उद्गारों को सबके सामने रखना चाह रहे थे। क्योंकि इस महायज्ञ के वे आदि से अन्त तक आयोजक थे, मुख्य पुरोहित थे। अपने महायज्ञ की सफल समाप्ति पर भला किस पुरोहित का हृदय उद्वेलित नहीं हो उठता? भावना-भरे स्वर में वे सबको संबोधित करते हुए बोले—

"पूज्य माताओ! भाइयो! बहनो! और बेटियो!—

"हमारे लिए यह अत्यन्त आनन्द की घड़ी है! आज से वर्षों पहले

हमने एक अन्याय के विरुद्ध लड़ाई शुरू की थी ! वह लड़ाई किसी एक की न हो कर मणिपुर के सभी दुखी लोगों की थी ! वह सामान्य लड़ाई न थी, बल्कि दुखी जनता के जीवन का दुख से छुटकारा पाने का अद्भुत महायज्ञ ! विजय हमें मिल चुकी है ! उस महायज्ञ की पूर्णाहुति हमने अभी-अभी की है ! और इस विजय-महायज्ञ को सफल बनाने का सबसे अधिक श्रेय है हमारी इन वेदियों को जो आज वधुओं के रूप में इस मंगलमय अवसर पर हमारे सामने बैठी हुई हैं ! मगर इस मंगलमय वधू-रूप में पहुँचने के पहले इन्होंने जीवन के जिस सुख का जिस महान उद्देश्य की वेदी पर बलिदान कर दिया, वह वेदी कम पवित्र नहीं है ! वह बलिदान कम पवित्र नहीं है ! युग-युग तक इस पवित्रता को हम गर्व से याद किया करेंगे ! हमारी सन्तानें याद किया करेंगी ! महाप्रभु से हमारी प्रार्थना है, इन मंगलमय जोड़ियों के गृहस्थ-जीवन को सदा सुखी रखें ! सदा समुन्नत करें !"

"महाप्रभु इन्हें सदा सुखी रखें !!!"—भीड़ से एक साथ आशीष-भरा सामूहिक वाक्य गूँज उठा ।

अब कृष्णमाधवजी चन्द्रावत की ओर संकेत करते बोले—"त्यागी कई प्रकार के होते हैं ! एक वे त्यागी जिनसे जीवन की सारी सुविधाएँ जबर्दस्ती छीन ली जाती हैं, चाहे राज्य द्वारा कानून बना कर, अथवा तलवार के जोर पर समाज के गलत ढाँचे को कायम रख कर ! और दूसरे वे त्यागी, जो अपनी धन-दौलत का कुछ भाग लौकिक या पारलौकिक लाभ के लोभ में त्याग देते हैं, अर्थात् दान कर देते हैं ! और तीसरे त्यागी वे होते हैं जो दूसरों के जीवन पर अपने जीवन के समस्त सुखों का बलिदान कर देते हैं ! गीता ने कहा है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन !' अर्थात् वे दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए ही त्याग करते हैं, कार्य करते हैं ! और उस त्याग और कार्य के फल पर अपना निजी अधिकार कायम नहीं करते !

"श्रीमान्, आयुष्मान् चन्द्रावत सिंह ने मजिस्ट्रेट के पद का त्याग अपने लिए नहीं, हम लोगों के लिए किया! जीवन के सुखों का बलिदान अपने निजी लाभ के लिए नहीं, दुखी जनता का दुख से उद्धार करने के लिए किया! और..."

चन्द्रावत ने उन्हें झट बीच मे ही रोकते मुसकराते हुए कहा—"मैने जो कुछ किया अपने सुख के लिए पडितजी! अब मेरे सम्बन्ध मे कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं! जो कुछ किया उसके बदले मे गुरुजनो का आशीर्वाद हमे मिल गया! अब और हमे चाहिए क्या? आप..."

"ठहरो भइया!"—कृष्णमाधवजी ने भी उसे रोकते हुए कहा—"मै ठहरा इस सामूहिक विवाह का पुरोहित! दक्षिणा मुझे मिलनी ही चाहिए! विना दक्षिणा के कोई शुभ-कर्म सम्पन्न नहीं होता! और तुम सभी वर-वधुओ से दक्षिणा केवल मै यही चाहता हूँ कि इस शुभ अवसर पर मेरी जिह्वा को नजरबन्द मत करो! मेरे हृदय को नजरबन्द मत करो! उसे भीतर की जेल से जरा बाहर निकलने दो! क्योंकि नजर-बन्दी का दुख हम वर्षों से भोगते आ रहे थे! अब तो तनिक आजाद हो कर कुछ कहने दो! यदि तुम लोगो ने मुझे आजादी की यह दक्षिणा नहीं दी तो हाथ फैला कर यहाँ उपस्थित जनता से मै माँग लूँगा!"

एकाएक हँसी का सामूहिक ठहाका गूँज उठा। कई स्वर एक साथ बोल उठे—"कहिए पडितजी! अवश्य कहिए!"

सामूहिक आवाज शान्त होने पर एक बुजुर्ग ने कहा—"दक्षिणा वर-वधू नहीं देते, उनके घर वाले देते हैं पडितजी! चन्द्रावत बाबू तो सारे मणिपुर के हैं, और हम हैं उनके घर वाले! हम आपको यह माँगी हुई दक्षिणा दे रहे हैं अपनी ओर से पडितजी! इस शुभ अवसर पर एक भले दूल्हे की तरह चन्द्रावत बाबू को केवल चुपचाप बैठे रहना चाहिए!"

पुनः हँसी का सामूहिक ठहाका गूँज उठा। हँसी की ध्वनि शान्त होने पर कृष्णमाधवजी ने पुनः सबको संबोधित करते हुए कहा—"उपस्थित सज्जनो! बात पते की कही गई! और हमारे चन्द्रावत बाबू ठहरे परम विनयी! परम सुशील! अपने गुरुजनों की इच्छा का अपमान वे नहीं कर सकते! उन्होंने हमारे सुख के लिए अपने सुखों का बलिदान किया! और इसमें उन्हें सुख मिला! क्योंकि हम सबका सुख-दुख उनका निजी सुख-दुख है! उनका विशाल हृदय हमारे स्वार्थ के साथ मिल चुका है! और इसी लिए उनका निजी सुख और स्वार्थ अब सारे मणिपुर का सुख-स्वार्थ बन चुका है! और इसी लिए महाप्रभु से हमने उनके सुख की प्रार्थना करके अपने ही सुख की कामना की है!

तनिक गला खखार कर उन्होंने फिर आगे कहा—"महाबली खम्ब का माहात्म्य है महासती थोइबी को ले कर! खम्ब ने जनता के लिए कोई त्याग नहीं किया! उन्होंने जनता की ओर से राज-शक्ति के विरुद्ध कोई संग्राम नहीं किया! किन्तु महाबली खम्ब की उसी वीर आत्मा ने दूसरे जन्म में हमारे चन्द्रावत सिंह में अवतार ले कर जनता के लिए त्याग भी किया, राज-शक्ति के विरुद्ध संग्राम भी किया! हमारे चन्द्रावत सिंह वास्तव में नर-सिंह हैं! हम सबों के प्रणम्य!"—कहते हुए उन्होंने दोनों हाथ जोड़ अपना सिर भी झुका दिया। जनता के सिर भी सहसा श्रद्धा से झुक चले। लेकिन चन्द्रावत चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा।

फिर मुक्ता को सस्नेह संबोधित करते मुसकराते हुए वे पुनः बोले—"बेटी मुक्ता! तुम भी अब अपने भले पति की ही तरह भली दुलहिन की भाँति चुपचाप बैठी सुनती जाओ!"

मुक्ता के चेहरे पर सलज्ज मुसकान की रेखाएँ उभर उठीं। उसने आँखें तनिक और नीची कर लीं। और पंडितजी जनता को संबोधित करते हुए बोले—"सज्जनो! राजकुमारी मुक्तावती भी महासती राजकुमारी थोइबी की ही भाँति अन्त तक अपने मन के सत्य पर अटल रहीं।

मन का सत्य सभी सत्यों से पवित्र होता है ! सती नारियों का मन राजा और रंक का विचार नहीं करता ! एक बार मन ने जिस पुरुष को पति स्वीकार कर लिया, वे अन्त तक अपने मन के इस पवित्र सत्य पर अटल रहती हैं ! पति निर्धन हुआ तो क्या, और धनवान हुआ तो क्या ? महासती थोइबी ही मुक्तावती के रूप में सैकड़ों वर्ष बाद मणिपुर में प्रकट हुई यह विश्वास रखिए ! किन्तु महासती मुक्तावती ने थोइबी के रूप में अपने पूर्व जन्म के शेष कार्य को भी बड़ी शानदारी और सफलता के साथ इस जन्म में पूरा कर दिखाया ! अपने साहस और समझदारी से भरे परम पुनीत नेतृत्व का दान दे कर हमें विजयी बना दिया ! अब तक के दुखों से हमारा उद्धार कर दिया ! महाप्रभु से पुनः हमारी प्रार्थना है कि सारे मणिपुर की, और सारे भारत की, और सारे विश्व की सभी नारियों की आत्मा मुक्तावती के इस अनुपम आलोक से युग-युग मे प्रकाशित हुआ करे ! प्रेरित हुआ करे ! इस महासती महा-महिमामयी नारी के चरणो मे बारबार मेरा शतशः प्रणाम ! उसकी सभी वीर सती सहेलियों को प्रणाम !"—कहते हुए वे पुनः हाथ जोड़ नतमस्तक हो पड़े।

दूसरों ने भी उनका अनुकरण किया। पर मुक्ता मारे लज्जा के लाल हो और भी सिकुड़ चली। सहेलियों के चेहरे भी लाल हो कर झुक चले।

अब पंडितजी ने अपने उसी पहले लहजे में शैलेन्द्र और तोम्बी सना की ओर भी रुख किया। मुसकाते हुए तर्जनी तान कर वे बोले—"आप कुछ अधिक कठोर हैं शैलेन बाबू ! किन्तु जनता की इच्छा के आगे आज आपको भी झुकना पड़ेगा ही !"

शैलेन्द्र ने हँस कर जवाब दिया—"आज सारा प्रहार सहने को तैयार बैठा हूँ पंडितजी ! किन्तु प्रार्थना है कि प्रवचन के अन्त में अपना सिर न झुकायें आप !"

पुनः हँसी का कहकहा गूँज उठा। पंडितजी ने भी हँस कर कहा—"मैं पहले ही अनेक बार आपसे पराजित हो सिर झुका चुका हूँ शैलेन बाबू! यह कोई नई बात नहीं होगी मेरे लिए आज! कुछ कहने तो दीजिए पहले!"—कह कर वे जनता को सम्बोधित करते गम्भीर स्वर में बोले—"सज्जनो! शैलेन बाबू की जाति के लोग किसी भी छोटे बन्धन में नहीं बँध सकते! बाँधे नहीं जा सकते! मणिपुर को अपना सारा हृदय दे कर भी वे मणिपुरीपन से पूरी तरह आजाद हैं जैसे कि बंगाल में जन्म ले कर भी बंगालीपन से! भारत के सारे प्रान्त और प्रदेश उनके अपने हैं, और सारे विश्व के देश और प्रदेश भी! इस जाति का व्यक्ति संसार के किसी भी भाग में पहुँच कर न परदेसी बन सकता है, न विदेशी! ओछे दिल के मनुष्यों द्वारा राजनीति के विधि-विधानों और तलवारों, अथवा धर्म-मत की अन्ध-रूढ़ियों के सहारे खड़ी की गई दीवारें भी उसके मन की गति को रोक नहीं सकती! क्योंकि मन की गति सभी गतियों से तेज और मजबूत होती है, यदि उस मन में तेज गति को भरने की विशाल आत्मा भी मौजूद हो उस व्यक्ति मे!

"शैलेन बाबू वर्षों से हमारे बीच हैं! हमारा एक अभिन्न अंग बन कर! हमारे सुख-दुख के सच्चे साथी बन कर! हमारे मणिपुरी समाज में हजारों वर्षों से बाहर से जाने किन-किन जातियों और प्रदेशों के लोग आ-आ कर हममें घुल-मिल कर एक बन गये! बनते गये! विभिन्न दिशाओं से आ-आ कर जिस प्रकार छोटी-बड़ी नदियाँ किसी बड़ी नदी में घुल-मिल कर उसे और भी बड़ी बना देती हैं! हमारे उन पूर्वजों के रूप-रंग एक न थे, संस्कृति-सभ्यता एक न थी, किन्तु यहाँ एक में मिलते ही वे सब एक बन गये! शैलेन बाबू भी बंगाल से आ कर हममे मिल कर 'एक' बन चुके हैं! क्योंकि वे यहाँ जीविका कमाने के उद्देश्य से अंग्रेजों के या मणिपुर-सरकार के नौकर बन कर हमपर शासन करने नहीं आये! और अनायास एक अच्छी-खासी सरकारी नौकरी

मिली भी तो उसे झट ठुकरा कर हमारे दुख में पूरे हृदय से हमारे साथ हो गये! सुख के साथी सभी होते हैं, दुख के बहुत कम! किन्तु सच्चे साथी की परख दुख में होती है, सुख मे नही!

"हमारी तोम्बी सना ने इस विश्व-मानव के मन में अपने को मिला कर मानो सचमुच सारे मणिपुर को उसमें मिला दिया है! जैसे छोटी-बड़ी अनेक नदियों को अपने में मिलाये महानदी 'गंगा' महासागर में जा मिलती हैं! हमारी तोम्बी सना महासती होने के साथ नारीत्व की तेजस्विता और उदारता की सच्ची प्रतीक है! महाप्रभु से पुनः हमारी प्रार्थना है कि हमारी 'तोम्बी सना' हमें प्रेरणा दे समस्त विश्व-मानव को प्यार करने की! भारत के हर प्रदेश और प्रान्त के निवासियों को अपना बना लेने की!

"महाप्रभु से पुनः हमारी प्रार्थना है कि हमारे हृदय से, एवं समस्त भारतवासियों और विश्व के समस्त निवासियों के हृदय से वह हर प्रकार की संकीर्णता को मिटा दे! क्योकि हर प्रकार की सकीर्णता असत्य और अन्धकार की ओर ले जाती है, और हर प्रकार की उदारता सत्य और प्रकाश की ओर! महाप्रभु हमें सत्य दें! प्रकाश दें!"— कहते हुए उन्होंने झट हाथ जोड़ सिर से सटा उस अगम-अगोचर शक्ति को नमस्कार करते वेद के नीचे-लिखे वाक्यों का खूब तन्मयता से उच्चारण किया—

"असतो मा सद् गमय! तमसो मा ज्योतिर्गमय!"

महायज्ञ सम्पन्न हो गया। उपस्थित लोगों मे पान-सुपारी बाँटी गई। इम्फाल एव चन्द्रावत के मामा के गाँव के लोग खाने-पीने की तैयारी मे लग पड़े।